महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)
Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya
(A Central University Established by Parliament by Act No. 3 of 1997)
नैक द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त / Accredited with 'A' Grade by NAAC

आधुनिककालीन हिन्दी काव्य

एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
तृतीय सेमेस्टर
प्रथम पाठ्यचर्या (अनिवार्य)
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 13

दूर शिक्षा निदेशालय
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट – हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा – 442001 (महाराष्ट्र)

2

आधुनिककालीन हिन्दी काव्य

प्रधान सम्पादक

प्रो॰ गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालयएवं विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास
अनुसंधान अधिकारीएवं पाठ्यक्रम संयोजक– एम. ए. हिन्दी पाठ्यक्रम
दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

सम्पादक मण्डल

प्रो॰ आनन्द वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ कृष्ण कुमार सिंह
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालयएवं विभागाध्यक्ष, हिंदी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग
साहित्य विद्यापीठ, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

प्रो॰ अरुण कुमार त्रिपाठी
प्रोफेसर एडजंक्ट, जनसंचार विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पुरन्दरदास

प्रकाशक

कुलसचिव, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
पोस्ट : हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा, महाराष्ट्र, पिन कोड : 442001

© महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदीविश्वविद्यालय, वर्धा

प्रथम संस्करण : मई 2018

पाठ-रचना

डॉ० राकेश कुमार सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

खण्ड – 1 : इकाई – 1

डॉ० संतोष कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, शहीद भगतसिंह कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

खण्ड – 1 : इकाई – 2
खण्ड – 3 : इकाई – 4
खण्ड – 4 : इकाई – 2 एवं 6

डॉ० सुषमा सोलंकी
असिस्टेंट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, जोधपुर, राजस्थान

खण्ड – 1 : इकाई – 4
खण्ड – 2 : इकाई – 2, 3 एवं 4
खण्ड – 4 : इकाई – 3

डॉ० गीतासिंह
एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग, डी.ए.वी.पी.जी. कॉलेज, आजमगढ़, उत्तरप्रदेश

खण्ड – 2 : इकाई – 1

डॉ० छेदी साह
पूर्व एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष
हिन्दी विभाग, मदन अहल्या महिला महाविद्यालय, नवगछिया, भागलपुर, बिहार

खण्ड – 3 : इकाई – 1 एवं 5

डॉ॰ अनिल कुमार सिंह
वरिष्ठ सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, पी.जी.डी.ए.वी. कॉलेज (सांध्य), नेहरू नगर, नयी दिल्ली

खण्ड – 3 : इकाई – 2

श्री अजय कुमार
सहायक प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, सत्यवती कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली

खण्ड – 3 : इकाई – 3
खण्ड – 5 : इकाई – 3

प्रो॰ भारती गोरे
प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, डॉ॰ बाबासाहेब आंबेडकर मराठवाडा विश्वविद्यालय, औरंगाबाद, महाराष्ट्र

खण्ड – 4 : इकाई – 1
खण्ड – 5 : इकाई – 1 एवं 4

डॉ॰ सत्यप्रकाश शर्मा
विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाजपुर, ऊधमसिंह नगर, उत्तराखण्ड

खण्ड – 4 : इकाई – 5

डॉ॰ प्रभाकर सिंह
एसोसिएट प्रोफेसर
हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तरप्रदेश

खण्ड – 5 : इकाई – 2

पुरन्दरदास

खण्ड – 1 : इकाई – 3 एवं 5
खण्ड – 4 : इकाई – 4

पाठ्यक्रम परिकल्पना, संरचना एवं संयोजन
आवरण, रेखांकन, पेज डिज़ाइनिंग, कम्पोज़िंग ले-आउट एवं प्रूफ़-रीडिंग

पुरन्दरदास

कार्यालयीय सहयोग

श्री विनोद रमेशचंद्र वैद्य
सहायक कुलसचिव, दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

आवरण पृष्ठ पर संयुत विश्वविद्यालय के वर्धा परिसर स्थित गांधी हिल स्थल का छायाचित्र इंटरनेट से साभार प्राप्त

---

http://hindivishwa.org/distance/contentdtl.aspx?category=3&cgid=77&csgid=65

- यह पाठ्यसामग्री दूर शिक्षा निदेशालय, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय द्वारा संचालित एम.ए. हिन्दी पाठ्यक्रम में प्रवेशित विद्यार्थियों के अध्ययनार्थ उपलब्ध करायी जाती है।
- इस कृति का कोई भी अंश लिखित अनुमति लिए बिना मिमियोग्राफ अथवा किसी अन्य साधन से पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।
- पाठ में विश्लेषित तथ्य एवं अभिव्यक्त विचार पाठ-लेखक के अध्ययन एवं ज्ञान पर आधारित हैं। पाठ्यक्रम संयोजक, सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का उससे सहमत होना आवश्यक नहीं है।
- इस पुस्तक को यथासम्भव त्रुटिहीन एवं अद्यतन रूप से प्रकाशित करने के सभी प्रयास किये गए हैं तथापि संयोगवश यदि इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा संताप के लिए पाठ-लेखक, पाठ्यक्रम संयोजक, सम्पादक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा।
- किसी भी परिवाद के लिए न्यायिक क्षेत्र वर्धा, महाराष्ट्र ही होगा।

पाठ्यचर्या विवरण

तृतीय सेमेस्टर
प्रथम पाठ्यचर्या (अनिवार्य)
पाठ्यचर्या कोड : MAHD – 13
पाठ्यचर्या का शीर्षक : आधुनिककालीन हिन्दी काव्य

क्रेडिट – 4

खण्ड – 1 : हिन्दी नवजागरण काव्य

- इकाई – 1 : भारतेन्दु के काव्य में पुनर्जागरण की चेतना का स्वरूप, राष्ट्रीय भावना, सामाजिक चेतना, निजभाषा प्रेम, नवीन भाषा एवं विविध काव्य-विधाओं का सूत्रपात, 'देखी तुमरी कासी' में अभिव्यक्त समाज
- इकाई – 2 : द्विवेदीयुगीन कविता की ऐतिहासिक भूमिका, राष्ट्रीयता की भावना, सामाजिकता, श्रीधर पाठक का काव्यगत वैशिष्ट्य
- इकाई – 3 : 'हरिऔध' का काव्य-शिल्प, 'प्रियप्रवास' का सामयिक सन्दर्भ, विश्वप्रेम
- इकाई – 4 : मैथिलीशरण गुप्त का काव्य-शिल्प, गुप्त के काव्य में युगीन परिवेश, भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना, 'साकेत' में ऊर्मिला की विरह-भावना, 'साकेत' में लोक-कल्याण की भावना
- इकाई – 5 : रामनरेश त्रिपाठी का काव्यगत वैशिष्ट्य, 'पथिक' का सन्देश

खण्ड – 2 : छायावादी काव्य

- इकाई – 1 : 'कामायनी' में निहित आधुनिक सन्दर्भ, दर्शन, परम्परा और आधुनिकता, कामायनी का महाकाव्यत्व, रूपकतत्त्व, प्रसाद की सौन्दर्य चेतना, समरसतावादी दृष्टि
- इकाई – 2 : लम्बी कविता के रूपबन्ध की दृष्टि से 'राम की शक्तिपूजा', मानवीय चेतना का काव्य, आत्मसंघर्ष का कथ्य, प्रासंगिकता
- इकाई – 3 : पन्त की काव्य-कला, पन्त की सौन्दर्य चेतना
- इकाई – 4 : महादेवी का गीति सौष्ठव, विरहानुभूति, 'दीपक' का प्रतीकार्थ

खण्ड – 3 : छायावादोत्तर काव्य

- इकाई – 1 : प्रगतिशीलता की अवधारणा, प्रगतिवाद का मूल भाव, प्रगतिवादी साहित्य का वैचारिक आधार
- इकाई – 2 : प्रगतिशील कवियों की जनवादी चेतना, सामाजिक चेतना
- इकाई – 3 : रामधारीसिंह 'दिनकर' के काव्य में निहित राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना
- इकाई – 4 : केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में अभिव्यक्त किसान संवेदना, काव्य-शिल्प
- इकाई – 5 : नागार्जुन की कविता में अभिव्यक्त लोकदृष्टि, नागार्जुन के काव्य का रचना-विधान, संवेदना के रूप

खण्ड – 4 : प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता

इकाई – 1 : प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की काव्य-दृष्टि का अन्तर, नये पथ के अन्वेषण की भावना, नये शिल्प का प्रयोग, प्रयोगवाद और नकेनवाद का अन्तर, नयी कविता की काव्य-भाषा का नयापन, लघु मानव की प्रतिष्ठा

इकाई – 2 : 'असाध्य वीणा' का मूल प्रतिपाद्य, अज्ञेय के काव्य में आधुनिक भावबोध, काव्य-भाषा और काव्य-शिल्प

इकाई – 3 : 'अँधेरे में' कविता का मूल प्रतिपाद्य, मुक्तिबोध और फैंटेसी, मुक्तिबोध का काव्य-शिल्प, मुक्तिबोध का जीवन-दर्शन

इकाई – 4 : रघुवीर सहाय की राजनैतिक चेतना, रघुवीर सहाय का भाषा-शिल्प

इकाई – 5 : मिथकीय चेतना और नयी कविता, कुँवर नारायण की मिथकीय चेतना

इकाई – 6 : केदारनाथ सिंह की कविताओं का कथ्य, बिम्ब-विधान, बिम्ब और प्रतीक का अन्तर

खण्ड – 5 : समकालीन हिन्दी कविता

इकाई – 1 : साठोत्तरी कविता आन्दोलन : विद्रोही पीढ़ी, अ-कविता, बीट पीढ़ी, युयुत्सावादी कविता, श्मशानी कविता, वाम कविता, सहज कविता, विचार कविता

इकाई – 2 : समकालीन हिन्दी कविता, काव्य-दृष्टि, काल-संसक्ति, लोक-संसक्ति, आधुनिकता और समकालीनता का अन्तर

इकाई – 3 : नवगीत : अर्थ एवं महत्त्व, हिन्दी नवगीत परम्परा, प्रमुख नवगीतकार

इकाई – 4 : ग़ज़ल का मिज़ाज, भाषिक वैशिष्ट्य, हिन्दी ग़ज़ल परम्परा, प्रमुख ग़ज़लकार

निर्धारित पाठ्य कृतियाँ :

01. प्रेमजोगिनी नाटिका – भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, (प्रथम अंक : दूसरा गर्भांक – देखी तुमरी कासी)
02. देश-गीत, सुन्दर भारत, स्वदेश-विज्ञान – श्रीधर पाठक
03. प्रियप्रवास – अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' (सप्तदश सर्ग)
04. साकेत – मैथिलीशरण गुप्त (नवम सर्ग – चयनित अंश)
05. पथिक – रामनरेश त्रिपाठी (दूसरा सर्ग)
06. कामायनी – जयशंकर प्रसाद (चिन्ता, श्रद्धा एवं लज्जा सर्ग)
07. राम की शक्ति-पूजा – सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'
08. परिवर्तन – सुमित्रानन्दन पन्त
09. बीन भी हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ, मधुर मधुर मेरे दीपक जल, मैं नीर भरी दुःख की बदली – महादेवी वर्मा
10. मंगल-आह्वान, हिमालय – रामधारीसिंह 'दिनकर'
11. गाँव का महाजन, पैतृक सम्पत्ति, वह चिड़िया जो – केदारनाथ अग्रवाल
12. अन्न-पचीसी, पुरानी जूतियों का कोरस – नागार्जुन
13. असाध्य वीणा – सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'
14. अँधेरे में – गजानन माधव 'मुक्तिबोध'
15. आत्महत्या के विरुद्ध, एक समय था, अनाज के इस्तेमाल – रघुवीर सहाय

16. नचिकेता, उपसंहार, चक्रव्यूह – कुँवर नारायण
17. पानी की प्रार्थना, लुखरी, चींटियों की रुलाई – केदारनाथ सिंह

सहायक पुस्तकें :

01. अतीत के हंस : मैथिलीशरण गुप्त, प्रभाकर श्रोत्रिय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
02. अपने-अपने अज्ञेय, सं. : ओम थानवी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
03. अलाव (पत्रिका), संयुक्तांक: मई-अगस्त 2015, समकालीन हिन्दी ग़ज़ल आलोचना केन्द्रित विशेषांक
04. 'असाध्यवीणा' की साधना (मूल्यांकन और पाठ), सं. : वशिष्ठ अनूप, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
05. असाध्य वीणा : पाठ और आलोचनात्मक सन्दर्भ, सं. : छबील कुमार मेहेर, आधार प्रकाशन, पंचकूला
06. अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्या, रामस्वरूप चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली
07. अज्ञेय का संसार : शब्द और सत्य, सं. : अशोक वाजपेयी, पूर्वोदय प्रकाशन, नयी दिल्ली
08. अज्ञेय की कविता, चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
09. अज्ञेय : वागर्थ का वैभव, रमेशचन्द्र शाह, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली
10. अज्ञेय संचयिता, सं. : नन्दकिशोर आचार्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
11. अन्तस्थल का पूरा विप्लव : अँधेरे में, सं. : निर्मला जैन, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
12. 'अँधेरे में' : इतिहास, संरचना और संवेदना, सं. : बच्चन सिंह, अभिव्यक्ति प्रकाशन, इलाहाबाद
13. 'अँधेरे में' : एक पुनर्विचार (मूल्यांकन और पाठ), सं. : वशिष्ठ अनूप, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
14. अँधेरे में : पाठ और आलोचनात्मक सन्दर्भ, सं. : छबील कुमार मेहेर, आधार प्रकाशन, पंचकूला
15. आधुनिक कवि – भाग 7, हरिवंशराय बच्चन, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग
16. आधुनिक बोध, रामधारीसिंह दिनकर, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
17. आधुनिक साहित्य, नन्ददुलारे वाजपेयी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
18. आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन, निर्मला जैन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
19. आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, नन्दकिशोर नवल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली
20. आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, हरिचरण शर्मा, मलिक एंड कम्पनी, जयपुर
21. आधुनिकता और हिन्दी साहित्य, इन्द्रनाथ मदान, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
22. आधुनिकता के पहलू, विपिन कुमार अग्रवाल, लोकभारती प्रकाशन, नयी दिल्ली
23. कल्पना और छायावाद, केदारनाथ सिंह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
24. कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
25. कवि-दृष्टि : अज्ञेय, सं. : रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
26. कवि निराला, नन्ददुलारे वाजपेयी, मेकमिलन, नयी दिल्ली
27. कवि सुमित्रानन्दन पन्त, नन्ददुलारे वाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
28. कामायनी : एक पुनर्विचार, गजानन माधव मुक्तिबोध, राजकमल प्रकाशन, इलाहाबाद
29. कामायनी का पुनर्मूल्यांकन, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
30. कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
31. क्रान्तिकारी कवि निराला, बच्चन सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
32. कुँवर नारायण (छवि-संग्रह – 2), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा

33. केदार : शेष-अशेष (केदारनाथ अग्रवाल की अप्रकाशित रचनाएँ), सं. : नरेन्द्र पुण्डरीक, अनामिका प्रकाशन
34. केदारनाथ सिंह (छवि-संग्रह – 9), महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा
35. छठवाँ दशक, विजयदेव नारायण साही, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद
36. छन्द-छन्द पर कुमकुम, वागीश शुक्ल, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली
37. छायावाद, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
38. छायावाद और उसके कवि, इन्दुराजसिंह, तक्षशिला प्रकाशन, नयी दिल्ली
39. छायावाद की प्रासंगिकता, रमेशचन्द्र शाह, वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर
40. जयशंकर प्रसाद, नन्ददुलारे वाजपेयी, कमल प्रकाशन, जबलपुर
41. जयशंकर प्रसाद की प्रासंगिकता, प्रभाकर श्रोत्रिय, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली
42. तार सप्तक से गद्य कविता, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
43. दिनकर, सं. : सावित्री सिन्हा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
44. दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लों का समीक्षात्मक अध्ययन, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
45. नयी कविता, आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, मेकमिलन कंपनी ऑफ इंडिया लिमिटेड
46. नयी कविता, अंक : 5-6, सं. : विजयदेव नारायण साही, जगदीश गुप्त, नयी कविता प्रकाशन
47. नयी कविता और अस्तित्ववाद, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
48. नयी कविता : एक साक्ष्य, रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
49. नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, गजानन माधव मुक्तिबोध, विश्वभारती प्रकाशन, नागपुर
50. नयी कविता की चेतना, जगदीश कुमार, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
51. नयी कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकान्त वर्मा, भारती प्रेस प्रकाशन, इलाहाबाद
52. नयी कविता : विलायती सन्दर्भ, जगदीश कुमार, सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली
53. नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, जगदीश गुप्त, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली
54. नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ , गिरिजाकुमार माथुर
55. नये प्रतिमान : पुराने निकष, लक्ष्मीकान्त वर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन
56. नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, गजानन माधव मुक्तिबोध, राधाकृष्ण प्रकाशन
57. नागार्जुन, सत्यनारायण, रचना प्रकाशन, जयपुर
58. नागार्जुन का रचना-संसार, विजय बहादुर सिंह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
59. नागार्जुन की कविता, अजय तिवारी, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
60. नागार्जुन : रचना प्रसंग और दृष्टि, सं. : रामनिहाल गुंजन, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
61. निराला : आत्महंता आस्था, दूधनाथ सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
62. निराला की कविताएँ, सं. : परमानन्द श्रीवास्तव, नीलाभ प्रकाशन, इलाहाबाद
63. निराला की कविताएँ और काव्य-भाषा, रेखा खरे, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
64. निराला की साहित्य-साधना, भाग- 2, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
65. निराला : कृति से साक्षात्कार, नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
66. प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य, रेखा अवस्थी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
67. प्रयोगवादी काव्य, पवन कुमार मिश्र, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल
68. प्रसाद का काव्य, प्रेमशंकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली

69. पन्त, प्रसाद और मैथिलीशरण गुप्त, रामधारीसिंह दिनकर, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
70. पन्त सहचर, सं. : अशोक वाजपेयी, अपूर्वानन्द, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
71. भारतीय स्वच्छन्दतावाद और छायावाद, प्रेमशंकर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
72. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, रामविलास शर्मा, विद्याधाम, दिल्ली
73. महादेवी, दूधनाथ सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
74. महादेवी वर्मा, जगदीश गुप्त, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
75. महादेवी का काव्य-सौष्ठव, कुमार विमल
76. महादेवी का रचना-संसार, राजेन्द्र मिश्र, तक्षशिला प्रकाशन, नयी दिल्ली
77. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
78. महीयसी महादेवी, गंगाप्रसाद पाण्डेय, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
79. मार्क्सवाद और प्रगतिशील साहित्य, रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
80. मुक्तिबोध की कविताई, अशोक चक्रधर, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
81. मुक्तिबोध की कविताएँ : बिम्ब-प्रतिबिम्ब, नन्दकिशोर नवल, प्रकाशन संस्थान, नयी दिल्ली
82. मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना, नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
83. मैथिलीशरण, नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
84. रघुवीर सहाय का कविकर्म, सुरेश शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
85. रघुवीर सहाय संचयिता, सं. : कृष्ण कुमार, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
86. रामनरेश त्रिपाठी, इंदरराज बैद 'अधीर', साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली
87. राष्ट्रकवि रामधारीसिंह 'दिनकर' की राष्ट्रीय संचेतना, वेदप्रकाश उपाध्याय, अनुराग प्रकाशन, वाराणसी
88. राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य, वीरभारत तलवार, किताबघर, नयी दिल्ली
89. रीति विज्ञान, विद्यानिवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
90. रूपतरंग और प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि, रामविलास शर्मा, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
91. लम्बी कविताओं का रचना-विधान, सं. : नरेन्द्र मोहन, मेकमिलन, नयी दिल्ली
92. समकालीन काव्य-यात्रा, नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
93. समकालीनता और हिन्दी ग़ज़ल, रामनारायण स्वामी 'अन्क़ा', नवचेतन प्रकाशन, दिल्ली
94. संचयिता केदारनाथ अग्रवाल, सं. : अशोक त्रिपाठी, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद
95. साकेत : एक अध्ययन, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
96. साठोत्तरी हिन्दी कविता, विजय कुमार
97. सुमित्रानन्दन पन्त, नगेन्द्र, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
98. सुमित्रानन्दन पन्त, विश्वम्भर 'मानव', किताब महल
99. हरिऔध और उनका साहित्य, मुकुन्ददेव शर्मा, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी
100. हिन्दी ग़ज़ल के विविध आयाम, सरदार मुजावर
101. हिन्दी ग़ज़ल का वर्तमान दशक, सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
102. हिन्दी में छायावाद, मुकुटधर पाण्डेय, तिरूपति प्रकाशन, हापुड़
103. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, नन्ददुलारे वाजपेयी, लोकभारती प्रकाशन

❖❖❖

पाठानुक्रमणिका

क्र.सं.	खण्ड	इकाई	पृष्ठ क्रमांक
01.	खण्ड – 1	इकाई – 1	12 – 24
02.	खण्ड – 1	इकाई – 2	25 – 37
03.	खण्ड – 1	इकाई – 3	38 – 50
04.	खण्ड – 1	इकाई – 4	51 – 71
05.	खण्ड – 1	इकाई – 5	72 – 83
06.	खण्ड – 2	इकाई – 1	84 – 111
07.	खण्ड – 2	इकाई – 2	112 – 128
08.	खण्ड – 2	इकाई – 3	129 – 144
09.	खण्ड – 2	इकाई – 4	145 – 159
10.	खण्ड – 3	इकाई – 1	160 – 173
11.	खण्ड – 3	इकाई – 2	174 – 209
12.	खण्ड – 3	इकाई – 3	210 – 224
13.	खण्ड – 3	इकाई – 4	225 – 240
14.	खण्ड – 3	इकाई – 5	241 – 257
15.	खण्ड – 4	इकाई – 1	258 – 292
16.	खण्ड – 4	इकाई – 2	293 – 304
17.	खण्ड – 4	इकाई – 3	305 – 323
18.	खण्ड – 4	इकाई – 4	324 – 336
19.	खण्ड – 4	इकाई – 5	337 – 352
20.	खण्ड – 4	इकाई – 6	353 – 365
21.	खण्ड – 5	इकाई – 1	366 – 391
22.	खण्ड – 5	इकाई – 2	392 – 409
23.	खण्ड – 5	इकाई – 3	410 – 421
24.	खण्ड – 5	इकाई – 4	422 – 452

खण्ड – 1 : हिन्दी नवजागरण काव्य

इकाई – 1 : भारतेन्दु के काव्य में पुनर्जागरण की चेतना का स्वरूप राष्ट्रीय भावना, सामाजिक चेतना, निजभाषा प्रेम, नवीन भाषा एवं विविध काव्य-विधाओं का सूत्रपात, 'देखी तुमरी कासी' में अभिव्यक्त समाज

इकाई की रूपरेखा

1.1.00. उद्देश्य
1.1.01. प्रस्तावना
1.1.02. भारतेन्दु के काव्य में पुनर्जागरण की चेतना का स्वरूप
1.1.03. भारतेन्दु की कविताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना
1.1.04. भारतेन्दु की कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना
1.1.05. भारतेन्दु का 'निजभाषा प्रेम'
1.1.06. नवीन भाषा एवं विविध काव्य-विधाओं का सूत्रपात
1.1.07. 'देखी तुमरी कासी' में अभिव्यक्त समाज
1.1.08. पाठ-सार
1.1.09. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची
1.1.10. बोध प्रश्न

1.1.00. उद्देश्य कथन

i. आधुनिक हिन्दी काव्य के 'हिन्दी नवजागरण' खण्ड की इस इकाई के अन्तर्गत आप भारतेन्दु के काव्य और पुनर्जागरण से सम्बन्धित विविध पहलुओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे ।
ii. पुनर्जागरण के स्वरूप को समझते हुए भारतेन्दु के काव्य में इसकी अभिव्यक्ति का विश्लेषण कर सकेंगे।
iii. भारतेन्दुयुगीन परिवेश (राष्ट्रीय व सामाजिक भावना) के स्वरूप को समझते हुए भारतेन्दु की कविताओं में राष्ट्रीय भावना व सामाजिक चेतना की अभिव्यक्ति को जान सकेंगे।
iv. भारतेन्दु की कविताओं में 'निजभाषा प्रेम' के स्वर को देख सकेंगे।
v. भारतेन्दु द्वारा सृजित नवीन भाषा एवं विविध काव्य-विधाओं की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
vi. भारतेन्दु विरचित कविता 'देखी तुमरी कासी' में अभिव्यक्त समाज को चिह्नित कर सकेंगे।

1.1.01. प्रस्तावना

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र पुनर्जागरण की चेतना के अग्रदूत होने के साथ ही आधुनिक हिन्दी कविता के युगपुरुष हैं। इस पुनर्जागरणकालीन काव्य चिन्तन में तत्युगीन राष्ट्रीय-सामाजिक प्रश्नों के साथ ही स्वाधीनता की आकांक्षा

परिलक्षित होती है। इनकी कविता अन्तर्वस्तु और भाषा दोनों ही दृष्टियों से एक ओर जहाँ परम्परागत काव्य स्वर को अपनाये हुए है वहीं दूसरी ओर तत्युगीन परिस्थितियों के आलोक में नवीन काव्य स्वर व निजभाषा के स्वरूप का प्रणयन भी करती है।

भारतेन्दु से पहले की हिन्दी कविता मुख्य रूप से रीति की परिपाटी में बँधी हुई कविता थी। दरबारी परिवेश के दमघोटू वातावरण में लिखी जाने वाली यह कविता समाज के व्यापक भावबोध से कटी हुई थी। राजाओं, सामन्तों के स्तुतिगान और कमनीय नायिकाओं की मोहक भंगिमाओं में उलझी हुई रीति कविता ने आम जनता की पीड़ा-आकांक्षा की उपेक्षा की। इसी समय भारतीय समाज ब्रिटिश शोषण का शिकार भी हो रहा था और पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान से परिचित भी। इस तरह समाज में एक नयी चेतना का उदय हो रहा था। यह पुनर्जागरण की चेतना थी। इसके मूल में आम जनता की भौतिक समस्याएँ, उनका सुख-दुःख, उनका संघर्ष और उनके कल्याण की भावना निहित थी। नवीन ज्ञान-विज्ञान और तकनीक से संचित यह चेतना अनेक सामाजिक और धार्मिक रूढ़ियों के विरुद्ध खड़ी थी। इसमें सांस्कृतिक जागरण और राजनैतिक-अस्मिताबोध का स्वर था। ऐसे समय में भारतेन्दु अपनी रचनाओं के माध्यम से औपनिवेशिक शक्तियों के साथ ही सामन्तवादी रूढ़ियों के विरुद्ध अपना सक्रिय हस्तक्षेप दर्ज कर रहे थे। इस हस्तक्षेप की प्रक्रिया में तत्युगीन अन्तर्द्वन्द्वों के साथ ही उनकी कविता का स्वर स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है।

1.1.02. भारतेन्दु के काव्य में पुनर्जागरण की चेतना का स्वरूप

पुनर्जागरण भारतेन्दु के चिन्तन का मुख्य स्वर है। वस्तुतः उन्नीसवीं शताब्दी के भारतीय जनमानस में जिस नयी चेतना का स्वर प्रतिफलित हुआ, उसे कई नामों से लक्षित किया गया। यथा – रिनेसां, पुनर्जागरण, प्रबोधन, नवजागरण आदि। सर्वप्रथम अंग्रेजी शब्द रेनेसां की जगह हिन्दी में पुनर्जागरण शब्द प्रयोग में लाया जाने लगा। रिनेसां (Renaissance) फ्रांसीसी शब्द रेनयात्रे (Renaitra) से लिया गया है। (Henary s. lucas; The renaissance and reformation, P-3) इन शब्दों की उत्पत्ति मुख्य रूप से लैटिन भाषा के रेनासोर शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है पुनर्जन्म या पुनर्जागरण। भारतीय सन्दर्भ में कुछ विद्वानों ने आधुनिककाल के नवजागरण को पुनर्जागरण की संज्ञा दी है। उनका मत है कि भारत का भक्तिकाल का नवजागरण आधुनिककाल का पुनर्जागरण है और इसकी मुख्य विशेषताएँ हैं – पुरातन साहित्य व संस्कृति का पुनरावलोकन तथा मानवतावादी विश्व दृष्टि। भारतेन्दु इस दृष्टि के अग्रदूत हैं।

भारतेन्दु ने अपनी युगान्तरकारी चेतना से भारतीय जनमानस को पुनर्जागरण के बोध से उद्वेलित किया। अंग्रेजी उपनिवेशवाद और तत्कालीन समाज की विकृत मनस्थितियों से जकड़े समाज को भारतेन्दु ने राष्ट्रीय अस्मिता और आधुनिक बोध से सम्पृक्त कर जाग्रत् करने का सफल प्रयास किया। ध्यातव्य है कि पुनर्जागरण की यह चेतना एक ओर अंग्रेजी शासन और उसकी शोषणकारी नीतियों के प्रति विद्रोह के रूप में सामने आती है तो दूसरी ओर भारतीय समाज की अनेक सामाजिक विकृतियों और धार्मिक पाखण्डों के विरोध के रूप में। यह

सांस्कृतिक व सामाजिक जागरण के साथ ही राजनैतिक व राष्ट्रीय जागरण भी था। भारतेन्दु का साहित्य इस जागरण को प्रमुखता से अभिव्यक्ति देता है।

भारतेन्दु के काव्य में पुनर्जागरण की चेतना तत्युगीन चेतना से अलग है। वस्तुतः पुनर्जागरण की इस चेतना का प्रारम्भिक स्वर बंगाल में सुनाई पड़ता है बाद में हिन्दी जगत् में। लेकिन भारतेन्दु का जागरण बोध बांग्ला एवं मराठी के कवियों के जागरण बोध से अधिक व्यापक और समावेशी है। इस सन्दर्भ में बच्चन सिंह का मत ध्यातव्य है – "हिन्दी नवजागरण बंगाल, महाराष्ट्र के नवजागरण से मूलतः भिन्न न होकर अपने दृष्टिकोण और तेवर में भिन्न था। बंगाल के सबसे अधिक प्रभावी लेखक बंकिम थे। उनके लेखन में हिन्दूवाद का स्वर अधिक मुखर था और उनकी राष्ट्रीयता अपने बंगाल तक सीमित थी। उस काल के अनेक बांग्ला लेखकों की दृष्टि भी प्रायः 'सोनार बांग्ला' के आगे नहीं जाती है। क्षेत्रीयता से आज भी उसकी मुक्ति नहीं हुई है। महाराष्ट्र के प्रसिद्ध गद्यकार चिपलूणकर वर्ण-भेद की खाई नहीं पार कर पाए थे। महात्मा फुले को वे हीन दृष्टि से देखते थे। पर भारतेन्दु और उनके मण्डल के लेखकों में किसी प्रकार की संकीर्णता नहीं थी – न वर्ण-भेद की और न क्षेत्रीयता की। अन्य लेखकों की भाँति भारतेन्दु मण्डल भी देश के स्वतन्त्र सांस्कृतिक व्यक्तित्व की खोज कर रहा था। पर इनका देश बड़ा था।"[1] यही कारण है कि भारतेन्दु की काव्य-चेतना में बार बार 'भारत' की चिन्ता व्याप्त है।

भारतेन्दु हिन्दी नवजागरण के प्रतिनिधि साहित्यकार के रूप में सामने आते हैं लेकिन अन्तर्वस्तु और भाषा दोनों ही आधारों पर उनके गद्य में नवजागरण की जैसी बृहत् चेतना निर्मित होती है वैसी उनकी विशुद्ध काव्य-रचनाओं में नहीं होती। इसका तात्पर्य यह कदापि नहीं है कि भारतेन्दु के काव्य साहित्य में नवीन बोध और नवजागरण की अभिव्यक्ति नहीं हुई है। वस्तुतः भारतेन्दु की कविताओं में कई स्वर हैं – शृंगार का स्वर, भक्ति का स्वर और नवजागरणकालीन नवजीवन बोध का स्वर आदि। शृंगार और भक्ति की कविताओं में भारतेन्दु भक्ति और रीति परिपाटी का पालन करते प्रतीत होते हैं लेकिन नवजागरण से सम्बन्धित कविताओं में वे राष्ट्रभक्ति, अंग्रेजी शासन-तन्त्र का विरोध, भारतीय समाज की दुर्दशा और सामाजिक-धार्मिक विकृतियों का बड़ा सजीव चित्रण करते हैं। यह सच है कि भारतेन्दु ने गद्य का लेखन खड़ीबोली में किया लेकिन काव्य-लेखन के लिए उन्होंने ब्रजभाषा को ही अधिक उपयुक्त माना। इसका कारण यह है कि ब्रजभाषा में कविता की इतनी सघन व सशक्त परिपाटी मौजूद थी कि भारतेन्दु भी उसकी उपेक्षा न कर सके। हालाँकि उन्होंने कुछ कविताएँ खड़ीबोली में भी लिखी हैं। यह भी है कि उनकी पुनर्जागरण और खड़ीबोली से सम्बन्धित अधिकांश कविताएँ उनके नाटकों का अंश हैं। विशुद्ध काव्य-ग्रन्थों में तो शृंगार और भक्ति की ही प्रधानता है लेकिन उनकी जागरण से सम्बन्धित कविताएँ इतनी महत्त्वपूर्ण हैं कि उनके आधार पर भारतेन्दु के जागरण के स्वरूप को विश्लेषित किया जा सकता है। भारतेन्दु के पुनर्जागरण में वर्ण, धर्म, क्षेत्र से ऊपर उठकर एक राष्ट्र का सपना है। अंग्रेजी शासन का और उनकी दमनकारी नीतियों का विरोध है तो उनकी अच्छी नीतियों का समर्थन भी है। हमारी सामाजिक विकृतियों और धार्मिक अन्धविश्वासों का खण्डन है तो सांस्कृतिक पुर्नमूल्यांकन की चेतना भी। उसमें वर्तमान की चिन्ता है तो अतीत से जुड़ाव भी। राष्ट्र-प्रेम की भावना है तो समाज की बुराइयों का नग्न चित्रण भी। देश के लोगों की अकर्मण्यता और विवेकहीनता से वे आहत हैं। वे स्त्रियों की दशा में सुधार के प्रबल पक्षधर हैं। उनमें आस्था भाव

भी है और विद्रोही स्वर भी। वे आत्मचेतस भी हैं और समष्टि चेतस भी। "आत्मचेतस का भाव तो सम्पूर्ण भारतीय नवजागरण में है। यही चेतना भारतीय अस्मिता-सांस्कृतिक अस्मिता की पहचान है। भारतेन्दु ने इसी आत्मचेतस को समष्टि-चेतस की ओर उन्मुख किया।"[2]

भारतेन्दु की कविताओं में नवजागरण का स्वरूप बृहत् भी है और समावेशी भी। वे दकियानूसी नहीं हैं। उन्होंने भारतीय समाज की बुराइयों की निन्दा में संकोच नहीं किया। ठीक उसी तरह उन्होंने पश्चिम की अच्छी बातों को भी उदारतापूर्वक स्वीकार किया। अतः उनका नवजागरण भारतीय सांस्कृतिक अस्मिताबोध के पुनर्मूल्यांकन की बात करता है। वे हर भारतीय विचार को न आँख मूँद कर स्वीकार करते हैं न हर पश्चिमी अवधारणा एवं ज्ञान का बिना विचारे विरोध। "विदेशी प्रभाव को उन्होंने स्वस्थ रूप में ग्रहण किया और इसीलिए अंग्रेजों के प्रति तीव्र घृणा की भावना का प्रसार न करके उन्होंने भारतीयता को जगाने की कोशिश की। उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण ज़रा भी विलायती रंग में नहीं रंग पाया है, क्योंकि वहाँ तो 'साँवरो रंग चढ़ यौ सो चढ़ यौ।'[3] कहना न होगा कि भारतेन्दु की कविताओं में अभिव्यक्त पुनर्जागरण न तो पूरी तरह से पश्चिम की नकल है न बंगाल पर निर्भर। वह भारतेन्दु का अपना है जिसे भारतेन्दु ने भारतीय परिस्थितियों के अनुरूप गढ़ा है। उनके मंतव्य को 'कविवचन सुधा' पत्रिका के इस सिद्धान्त वाक्य से समझा जा सकता है –

खलगन सों सज्जन दुखी मति होंहि, हरिपद मति रहै।
अपधर्म घूटें, स्वत्व निज भारत गहै, कर दुःख बहै॥
बुध तजहि मत्सर, नारि नर सम होंहि, जग आनन्द लहै।
तजि ग्राम कविता सुकवि जन की अमृतबानी सब कहै॥

वस्तुतः भारतेन्दु ने तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक सन्दर्भों से अपनी चेतना को आकार दिया। उन्होंने अपनी कविताओं में ऐसे विषयों को स्थान दिया जो तत्कालीन समाज की दशा और दिशा को निर्धारित करने वाले थे। जैसे – अकाल, महँगाई, भूख, निर्धनता, रोग, बैर, कलह, आलस्य, संतोष, खुशामद, कायरता, टैक्स, अनैक्य, देश की दुर्दशा, धार्मिक मत-मतान्तर, बाल-विवाह, विधवा-विवाह, छुआछूत, अशिक्षा, अंग्रेजी भाषा एवं शिक्षा, अज्ञान, रूढ़िप्रियता, समुद्रयात्रा, ईश्वर, देवी-देवता, भूत-प्रेत, अपव्यय, अदालती व्यवस्था, पुलिस के अत्याचार, फैशन, सिफ़ारिश, रिश्वतखोरी, बेकारी, मद्यपान आदि। इस ढंग से भारतेन्दु ने अपनी पुनर्जागरण की चेतना को स्वरूप दिया।

1.1.03. भारतेन्दु की कविताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना

भारतेन्दु की कविताओं में अभिव्यक्त राष्ट्रीय भावना को समझने से पूर्व राष्ट्रीय भावना के अर्थ व स्वरूप को समझना आवश्यक है। राष्ट्रीयता एक ऐसी विचारधारा है जो आधुनिक समाजों के एकीकरण को सम्भव बनाती है तथा समाज के विभिन्न वर्गों की वफादारी राष्ट्रीय राज्य के लिए अर्पित करती है। 'नेशन' के रूप में राष्ट्र शब्द की उत्पत्ति लैटिन के 'नेसियो' (Natio) शब्द से हुई, जिसका मूल अर्थ है 'जाति'। 16-17वीं शती में 'नेशन' शब्द उस देश या राज्य की आबादी का सूचक था, जिसमें जातीय एकता या समानता पाई जाती थी।

19वीं सदी में राष्ट्र एवं राष्ट्रीयता की अवधारणा में व्यापक परिवर्तन दृष्टिगोचर होता है। ए॰आर॰ देसाई के अनुसार "राष्ट्रों के रूप में जनसमुदायों का एकीकरण दीर्घकालीन ऐतिहासिक प्रक्रिया की परिणति है।" (देसाई, ए॰आर॰, भारतीय राष्ट्रवाद की सामाजिक पृष्ठभूमि, पृष्ठ 2) राष्ट्रीयता प्रत्येक देश की उन्नति का अनिवार्य तत्त्व है। राष्ट्र के निवासियों में राष्ट्रीयता की अखण्ड भावना ही राष्ट्र के विकास को अभिप्रेरित करती है तथा उसके विकास का मार्ग प्रशस्त करती है।

भारतेन्दु के सृजन में राष्ट्रीय भावना का स्वरूप सांस्कृतिक और राजनैतिक दो आयामों से जुड़कर विकसित हुआ। इसमें राष्ट्रभक्ति का स्वर राजभक्ति के साथ समन्वित होकर आता है। 1857 के स्वतन्त्रता-संग्राम के प्रति उनकी प्रतिक्रिया राजभक्ति का पोषक बन जाती है। वस्तुतः भारतेन्दु ऐसा करने के लिए विवश थे, क्योंकि सैनिक विद्रोह की असफलता को वे देख चुके थे। इसीलिए उन्होंने राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति दोनों के समन्वित मार्ग को अपनाना अधिक उचित समझा। लेकिन उनकी विशेषता यह है कि वे भारतवासियों को उन्नति की प्रेरणा और स्वाधीनता का सन्देश देते चलते हैं। स्पष्ट है कि उनकी राजभक्ति के मूल में देशभक्ति का सूत्र अनुस्यूत है। इस तरह भारतेन्दु ने अंग्रेजों की स्तुतियों या प्रशस्तियों में भी प्रसंगतः भारत के महिमामय अतीत, दुर्दशाग्रस्त वर्तमान और मंगलमय भविष्य की व्यंजना की है। रामविलास शर्मा का मत सही है कि "राजभक्ति का स्वर भारतेन्दु युग का मूल स्वर नहीं है"[4] किन्तु इसके साथ ही यह भी सच है कि "भारतेन्दु में राजभक्ति और देशभक्ति दोनों समानान्तर चलती हैं, जिसका सबसे अच्छा प्रमाण उनकी निम्नलिखित दो पंक्तियाँ हैं–

अंगरेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन बिदेस चालि जात इहैं अति ख्वारी॥[5]

वस्तुतः भारतेन्दु की कविताओं में राजभक्ति और राष्ट्रभक्ति दोनों का स्वर साथ-साथ सुनाई पड़ता है। इसके बावजूद "भारतेन्दु की देशभक्ति को सन्देह की दृष्टि से नहीं देखा जा सकता। उन्होंने कविता में जिस स्वच्छन्दता और राष्ट्रीयता की नींव डाली, उसी का विकास आगे चलकर कथित द्विवेदी युग से लेकर कथित उत्तर छायावादी कवियों तक में होता है।"[6]

भारतेन्दु ने अंग्रेजी राज का खुलकर विरोध नहीं किया। इसका एक बड़ा कारण था – अंग्रेजों की दमनकारी नीति। ऐसा करने पर प्रतिबन्धित किए जाने और जेल में डाले जाने का प्रावधान था। उन्होंने महारानी विक्टोरिया, प्रिंस ऑफ़ वेल्स और लार्ड रिपन आदि से सम्बन्धित जो कविताएँ लिखीं उनका उद्देश्य देश की दीन दशा के प्रति उनका ध्यान आकृष्ट करना था। इन कविताओं में अनेक स्थलों पर स्तुति और याचना का भाव दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि 1857 के विद्रोह के उपरान्त महारानी विक्टोरिया ने 1858 में एक घोषणा पत्र जारी किया। यह घोषणा पत्र बेहतरी की उम्मीद जगाने वाला था। इसके विपरीत भारतीय राजाओं और नवाबों के आलसीपन और शोषणकारी नीतियों से जनता की दशा दयनीय बनी हुई थी। अनेक सामाजिक और धार्मिक बुराइयों से समाज जकड़ा हुआ था। ऐसे में महारानी विक्टोरिया के शासन से जनता के हित की उम्मीद भारतेन्दु की चेतना में थी। नयी तकनीक और ज्ञान-विज्ञान के नये-नये आयाम नयी आशा जगाने वाले थे।

उम्मीदों का यह क्रम लार्ड रिपन के आगमन तक चलता रहा। भारतेन्दु देश की दयनीय दशा के प्रति पीड़ा और सुधार की उम्मीद भरी गुहार महारानी से लगाते रहे और हित रक्षा की कामना करते रहे। ऐसे में भारतेन्दु की कविताओं में मिलने वाला राष्ट्रभक्ति का स्वर उनकी राजभक्ति के स्वर में घुल-मिल जाता है। शिवकुमार मिश्र ने लिखा है – "जहाँ तक भारतेन्दु की राष्ट्रभक्ति का सवाल है वह भी काफी अर्से तक ऐसी राष्ट्रभक्ति है, जिसमें देश-दशा के प्रति पीड़ा, देशवासियों की दुर्गति पर क्षोभ और अवसाद, देशोद्धार की वास्तविक चिन्ता, देश के रूढ़ि-जर्जर स्वरूप पर खेद और आक्रोश, अपनी परम्परा पर गर्व, अपनी राष्ट्रीय अस्मिता को पाने की ललक तथा प्रगति के नये रास्तों पर देश को ले जाने की चिन्ता, पराधीनता तथा आर्थिक शोषण से उसकी मुक्ति की प्रबल आकांक्षा और उसके लिए किये गए प्रयास आदि तो हैं, परन्तु सब राजराजेश्वरी के संरक्षण में हो सकेगा इस बात का भोला विश्वास भी है।"[7]

भारतेन्दु का यह 'भोला विश्वास' अन्ततः टूटा और उन्हें यह विश्वास हो गया कि अंग्रेजी सत्ता से देशोद्धार की उम्मीद बेमानी है। 'विजय वल्लरी' (सन् 1881) और 'विजयनी विजय वैजयन्ती' (सन् 1884) में उनके इस बोध की अभिव्यक्ति है। 'विजय वल्लरी' अफगान युद्ध के बाद लिखी रचना है तो 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' मिश्र विजय के बाद। इन दोनों ही रचनाओं में देश की दुर्दशा का चित्रण है लेकिन इसके उद्धार हेतु महारानी विक्टोरिया से अनुनय नहीं है। इनमें अंग्रेजी शासन तन्त्र की चालबाजियों और झूठे आश्वासनों की पोल खोली गई है।

वस्तुतः भारतेन्दु की राष्ट्रीय चेतना एक ओर देश की दुर्दशा का यथार्थ चित्रण करती है, दूसरी ओर देश के गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण करती है तो तीसरी ओर अंग्रेजी शासन की भारत विरोधी नीतियों की आलोचना करती है। भारतेन्दु अंग्रेजों की षड्यन्त्रकारी नीतियों को किस ढंग से उद्घाटित करते हैं इसका एक उदाहरण भारत- दुर्दशा से अवलोकनीय है –

मरी बुलाऊँ देश उजाड़ूँ, महँगा करके अन्न।
सबसे ऊपर टिकस लगाऊँ, धन है मुझको धन्य
मुझे तुझ सहज न जानो जी, मुझे एक राक्षस जानो जी॥[8]

यहाँ राक्षस और कोई नहीं, अंग्रेज शासन है। 'नये जमाने की मुकरी' में भी यह भाव अभिव्यक्त हुआ है –

भीतर भीतर सब रस चूसै।
हँसि-हँसि कै तन मन धन मूसै।
जाहिर बातन में अति तेज
क्यों सखि सज्जन नहीं अंगरेज॥[9]

इस तरह भारतेन्दु ने ब्रिटिश शासन व्यवस्था की शोषणकारी आर्थिक नीतियों को इस मुकरी के माध्यम से उजागर किया है।

भारतेन्दु की राष्ट्रीय चेतना का दूसरा आयाम है – 'देश की दुर्दशा का यथार्थ अंकन ।' वे दुखी होकर 'भारत दुर्दशा' में कहते हैं –

रोअहू सब मिलिकै आवहु भारत भाई।
हा हा! भारतदुर्दशा न देखी जाई ॥[10]

भारत की दुर्दशा का चित्रण उन्होंने 'प्रबोधिनी' कविता में इस प्रकार किया है –

गयो राज धन तेज रोष बल ज्ञान नसाई
बुद्धि वीरता श्री उद्दाह सूरता बिलाई।
आलस कायरपनों निरूद्यमता अब छाई
रही मूढता बैर परस्पर कलह लराई ॥[11]

राज, शक्ति, ज्ञान, वीरता और समृद्धि से हीन भारतीय समाज को वे फटकारते भी हैं और एक जुट होकर उद्यम हेतु प्रेरित भी करते हैं। भारतेन्दु देश की दुर्दशा के लिए अंग्रेजों को, हमारी सामाजिक-धार्मिक रूढ़ियों को, देश की जनता की अकर्मण्यता, आलस्य, झूठ-दिखावा और कायरता को मानते हैं। देश की वर्तमान दुर्दशा से आहत होकर वे अपने गौरवशाली अतीत का स्मरण करते हैं। महापुरुषों को बार-बार आमन्त्रण देते हैं और अनेक बार तो वे देश की दशा को सुधारने के लिए ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। 'नील देवी' नाटक में वे कहते हैं –

हाय सुनत नहि निठुर भए क्यों, परम दयाल कहाई।
सब विधिं बुड़त लखि निज देसहि लेहु न अवहु बचाई॥[12]

भारतेन्दु ने राम, चाणक्य, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, अर्जुन, भीम आदि सभी महापुरुषों का स्मरण किया है। 'प्रबोधिनी' कविता की ये पंक्तियाँ महत्त्वपूर्ण हैं –

कहँ गए विक्रम भोज राम बलि कर्ण युधिष्ठिर
चन्द्रगुप्त चाणक्य कहाँ नासे करि कै स्थिर।
कहँ क्षत्री सब मरे जरे सब गए कितै गिर
कह राज को तौन साज, जेहि जानत है चिर ॥[13]

स्पष्ट है कि भारतेन्दु की कविताओं में राष्ट्रभक्ति का स्वर प्रधान है। वे राजभक्ति की ओट में निर्बाध रूप से अपनी राष्ट्रभक्ति की अभिव्यक्ति करने में सफल रहे हैं। वे देश की यथार्थ दुर्दशा का चित्रण भी करते हैं और उसके कारणों का उल्लेख भी करते हैं। वे देश की दयनीय दशा से आहत हैं लेकिन उन्हें अपने गौरवशाली अतीत से प्रेरणा भी मिलती है। उनकी कविता राष्ट्रीय अस्मिता की पड़ताल की कविता है और वे 'हिन्दी की जातीय परम्परा के संस्थापक' ।"[14]

भारतेन्दु की राष्ट्रभक्ति विषयक रचनाओं में प्रमुख पाँच अंग है – देश के उज्ज्वल अतीत पर गर्व, वर्तमान दुर्दशा पर क्षोभ, एकता पर बल, भविष्य के लिए मंगल आशा, भाषाकीय उन्नति पर बल और उद्‍बोधन। भारतेन्दु केवल अपने गौरवपूर्ण अतीत का स्मरण ही नहीं करते अपितु पूरे भारतीय समाज को एकता के सूत्र में बाँधना चाहते हैं। उनका "दृष्टिकोण पूरी तरह भारतीय था। वे जातीय मतभेद को दूर करना चाहते थे। यह हिन्दुओं और मुसलमानों को नजदीक लाकर ही किया जा सकता था।"[15] उनका मत है कि एकता के बिना इस देश का कभी उद्धार नहीं हो सकता। एकता राष्ट्रीय उन्नति का अनिवार्य अंग है। वे उद्‍बोधन देते हुए कहते हैं –

फूट बैर को दूरि करि बाँधि कमर मजबूत।
भारतमाता के बनो भ्राता पूत सपूत॥[16]

1.1.04. भारतेन्दु की कविताओं में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना

भारतेन्दु के समय का समाज अनेक धार्मिक और सामाजिक आडम्बरों से ग्रस्त था। जाति-पाँति, छुआ-छूत, सतीप्रथा, बालविवाह, विधवाओं से भेदभाव, स्त्री-अशिक्षा, धार्मिक कर्मकाण्ड जैसी अनेक समस्याओं से समाज जूझ रहा था। ऐसे में ब्रह्म समाज, आर्य समाज, तदीय समाज और प्रार्थना समाज जैसे अनेक सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थानों ने इन कुरीतियों के विरोध के माध्यम से सामाजिक सुधार का आन्दोलन खड़ा किया। इसी समय भारतेन्दु ने भी अनेक सामाजिक विकृतियों का विरोध करते हुए आम जनता की चेतना को जाग्रत् किया।

भारतेन्दुयुगीन समाज में छुआछूत और ऊँच-नीच का विचार एक गम्भीर समस्या थी। भारतेन्दु ने अपने काव्य-सृजन में इसका पुरजोर विरोध किया। इसके साथ ही समाज की दूसरी बड़ी समस्या नारी विषयक थी। ऐसे समाज में कन्यावध, बालविवाह, विधवाओं की दुर्दशा और स्त्री-अशिक्षा जैसी भयानक समस्याओं से नारियों की दशा अत्यन्त दयनीय बनी हुई थी। भारतेन्दु ने स्त्री-शिक्षा और विधवा-विवाह के समर्थन में खुलकर लिखा। वे बाल-विवाह के विरोधी थे। वे स्त्री और पुरुष की समानता के पक्षधर थे। इस सन्दर्भ में उनकी 'बाला बोधिनी' के मुखपृष्ठ पर अंकित पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं –

जो हरि सोई राधिका जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरुष यामैं कुछ न विभक्ति॥[17]

उस समय के समाज की अनेक बुराइयों के पीछे समाज की रूढ़िवादी सोच और धार्मिक अन्धविश्वास था। भारतेन्दु ने इन दोनों पर आघात किया। धार्मिक अन्धविश्वासों का पर्दाफाश उन्होंने 'भारत दुर्दशा' नाटक में इस प्रकार किया है –

जाति अनेक करी नीच अर ऊँच बनाओ।
खान पान सम्बन्ध सो बरजि छुड़ायो॥
जन्म पत्र विधि मिले ब्याह नहिं होन देत अब।
बालकपन में ब्याहि प्रीतिबल नास कियो सब॥

करि कुलान के बहुत ब्याह बल बीरज मार्‌यो ।
विधवा ब्याह निषेध कियो विभिचार प्रचार्‌यो ॥
रोकि विलायत गमन कूपमण्डूक बनायो ।
औरब को संसर्ग छुड़ाइ प्रचार घटायो ॥
बहु देवी-देवता भूत प्रेतादि पुजाई।
ईश्वर सो सब विमुख किए हिन्दू घबराई ॥[18]

भारतेन्दु ने समकालीन समाज की अनेक विकृतियों का खुलकर विरोध तो किया ही साथ ही आम जनता को जाग्रत् करने का प्रयास भी किया । उन्होंने धर्म और समाज की अनेक रूढ़ियों को छोड़कर नये ज्ञान-विज्ञान और तकनीक से जुड़ने के लिए जनता को बार-बार प्रेरित किया । जाहिर है भारतेन्दु का समाज बोध किसी जाति, वर्ग या धर्म तक संकुचित नहीं है बल्कि समूचे भारतीय समाज के मंगल का बृहत् स्वप्न गढ़ने वाला है ।

1.1.05. भारतेन्दु का 'निजभाषा प्रेम'

भारतेन्दु के लिए भाषा केवल साहित्य-सृजन का माध्यम नहीं थी अपितु वह राष्ट्रीय और सांस्कृतिक अस्मिता का प्रतीक थी । भारतेन्दु ने 'निजभाषा' अर्थात् हिन्दी की उन्नति पर बहुत जोर दिया । इसका एक कारण यह है कि 'निजभाषा' में राष्ट्रीय एकता का बोध है और वह जनता को एक साथ जोड़ने के लिए आवश्यक है । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इस सन्दर्भ में लिखा है कि "भाषा के प्रति इस प्रकार की जागरूकता के क्रियात्मक रूप का कारण तो राष्ट्रीय भावना थी ,किन्तु प्रतिक्रियात्मक रूप के हेतु था हिन्दी की भयंकर उपेक्षा।"[19] यह सच है कि अंग्रेजी सरकार ने हिन्दी की उपेक्षा की और हिन्दी और उर्दू का विवाद जानबूझ कर खड़ा किया । ऐसे में भारतेन्दु ने हिन्दी-उर्दू के विवाद को अपने 'निजभाषा' के हथियार से निष्प्रभ करने की कोशिश की । ये दोनों ही बाते एक दूसरे को पुष्ट करती हैं । वस्तुतः भारतेन्दु निजभाषा की उन्नति को सर्वदेशीय उन्नति का मूल मानते हैं –

निजभाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिनु निजभाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल ॥[20]

भारतेन्दु का यह प्रबल विश्वास था कि भाषा द्वारा ही एकता स्थापित की जा सकती है तथा एकता का अभाव ही स्वार्थ और दुःख का कारण है इसलिए दुःखों से पार पाने के लिए उन्होंने सभी से मिलकर ज्ञान सम्पादन का आग्रह किया । हिन्दी की उन्नति पर व्याख्या के अन्त में वे निवेदन करते हैं कि –

करहु बिलम्ब न भ्रात अब उठहु मिटावहु सूल।
निजभाषा उन्नति करहु प्रथम जो सबको मूल॥[21]

ध्यातव्य है कि भारतेन्दु अंग्रेजी शिक्षा के पक्षधर थे । उनका मत है कि अंग्रेजी से नये ज्ञान-विज्ञान और तकनीक में पारंगत भले ही हो जाएँ लेकिन जब तक अपनी भाषा का ज्ञान नहीं होगा तब हम हीनता-बोध से ग्रस्त रहेंगे –

अंग्रेजी पढ़ि के जदपि सब गुन होत प्रवीन।
पै निजभाषा ज्ञान बिन रहत हीन के हीन ॥[22]

स्पष्ट है कि भारतेन्दु का 'निजभाषा' प्रेम राष्ट्र-प्रेम की भावना का पोषक है। वह भारतीयों में अस्मिताबोध और स्वाभिमान की भावना जगाने का उपकरण है। वह स्वावलम्बन की चेतना का बोधक है। साथ ही अंग्रेजी शिक्षा का आग्रह उनके वैचारिक व्यापकता और खुलेपन को प्रकट करता है। वे ज्ञान-विज्ञान के समस्त साधनों को देखना-समझना चाहते हैं किन्तु अपनी राष्ट्रीय-सांस्कृतिक अस्मिता को बचाए-बनाए रखकर।

1.1.06. नवीन भाषा एवं विविध काव्य-विधाओं का सूत्रपात

भारतेन्दु के गद्य और काव्य दोनों की भाषाएँ अलग-अलग थीं। भारतेन्दु ने गद्य-लेखन के लिए खड़ीबोली का चयन किया जबकि काव्य-लेखन के लिए परम्परा से चली आ रही ब्रजभाषा का। हालाँकि भारतेन्दु ने खड़ीबोली में भी कुछ कविताओं का प्रणयन किया किन्तु उनका मत था कि ब्रजभाषा ही कविता के लिए अधिक अनुकूल है। वस्तुतः भारतेन्दु के काव्य-लोक में अन्तर्वस्तु और भाषा दोनों ही का समयानुरूप विकास दिखाई पड़ता है। उनकी कविताओं का बड़ा हिस्सा भक्ति और शृंगारपरक रचनाओं का है। ये रचनाएँ भक्तिकालीन और रीतिकालीन प्रवृत्तियों के अनुसरण पर ही लिखी गई हैं। जो रचनाएँ पुनर्जागरणकालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों पर केन्द्रित हैं उनमें से अधिकांश इनके नाटकों और अन्य गद्य विधाओं का हिस्सा हैं, साथ ही इन्होंने इन विषयों पर स्वतन्त्र कविताओं का भी लेखन किया। इन कविताओं में ताज़गी, उमंग और युगबोध की सजीव अभिव्यक्तिहै।

ब्रजभाषा में प्रेम और भक्ति की अनेक कविताएँ लिखने के साथ ही भारतेन्दु ने खड़ीबोली में भी कविता लिखने का प्रयास किया। "सन् 1881 में भारतेन्दु ने अपनी खड़ीबोली की कविताएँ 'भारत-मित्र' में प्रकाशनार्थ भेजी थीं। 1874 में हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में भी उनकी एक प्रसिद्ध कविता 'मन्द-मन्द आवे देखो प्रात समीरन' पयार छन्द में छपी थी। उनका एक निबन्ध है – 'हिन्दी भाषा'। उसी का एक उपशीर्षक है – 'नयी भाषा की कविता'। इसी के तहत अपना बनाया हुआ एक दोहा उद्धृत करते हुए उन्होंने लिखा है –

भजन करो श्रीकृष्ण का मिलकर के सबलोग।
सिद्ध होयगा काम और छूटेगा सब रोग॥[23]

इसी निबन्ध में भारतेन्दु ने माना कि खड़ीबोली में कविता लेखन उनके चित्तानुरूप नहीं है। 'दसरथ विलाप' जैसी कुछ कविताएँ ही खड़ीबोली में आयीं। लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय का मत है कि "ब्रजभाषा में कविता लेखन के इतने दिनों की परम्परा से एकदम विमुख हो जाना भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के लिए भी एकदम सरल नहीं था। उनके व्यक्तित्व का प्रभाव भी इतना जबरदस्त था कि उनके जीवनकाल में किसी को भी ब्रजभाषा के विरुद्ध आवाज़ उठाने का साहस नहीं हुआ।"[24] यह सत्य है कि भारतेन्दु ने ब्रजभाषा को ही कविता की भाषा के रूप में अधिक उपयुक्त माना लेकिन उन्होंने खड़ीबोली में कुछ कविताएँ लिखकर और अपने नाटकों में अनेक लावनी

और गीतों को खड़ीबोली में सृजित कर भविष्य की काव्य-भाषा का मार्ग प्रशस्त कर दिया। 'अन्धेर नगरी' के चूरन और पाचक बेचने वालों के गीत और 'सती प्रताप' का 'तुम पर काल अचानक टूटेगा' पद्यगान इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं।

भारतेन्दु ने अपने काव्य-लेखन में जिस तरह ब्रज के साथ-साथ खड़ीबोली का प्रयोग किया उसी तरह प्राचीन के साथ-साथ नवीन काव्य-विधाओं का भी प्रणयन किया। एक ओर उन्होंने भक्ति और रीतिकाल की पद, दोहा और कवित्त-सवैया जैसी पारम्परिक काव्य परिपाटी को अंगीकार किया तो दूसरी ओर निबन्ध काव्य, वर्णनात्मक काव्य और विवरणात्मक काव्य जैसी नवीन काव्य-विधाओं का सूत्रपात भी किया।

भारतेन्दु ने प्रबन्ध काव्य तो नहीं लिखे लेकिन उनकी 'बकरी विलाप', 'रिपुनष्टक', 'होली लीला', 'हिंडोला' और 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' जैसी अनेक रचनाएँ प्रबन्ध और मुक्तकों के बीच की रचनाएँ हैं। किशोरीलाल गुप्त ने इन नवीन काव्य-विधाओं को निबन्ध काव्य, वर्णनात्मक काव्य और विवरणात्मक काव्य नाम दिया है। निबन्ध काव्यों में कोई कथा-सूत्र नहीं होता है। इसमें किसी एक विषय पर सुसम्बद्ध और चिन्तन परम छन्द लिखे जाते हैं। इसे पद्यबद्ध लेख के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे – बकरी विलाप, हिन्दी की उन्नति पर व्याख्या। वर्णनात्मक काव्य में भी कथासूत्र का अभाव होता है। इसमें किसी दृश्य का काव्यात्मक वर्णन किया जाता है। जैसे – 'होली लीला', 'हिंडोला' आदि। विवरणात्मक काव्य में कथा का क्षीण सूत्र विद्यमान रहता है। इसमें किसी घटना का विवरण प्रस्तुत किया जाता है। जैसे – 'विजयिनी विजय वैजयन्ती' में मिश्र विजय की घटना का विवरण है। इस तरह ये काव्य-विधाएँ भारतेन्दु की मौलिक देन हैं।

भारतेन्दु ने पद, दोहा और कवित्त-सवैया जैसे पारम्परिक मुक्तक छन्दों के अतिरिक्त लोकगीतों की अनेक विधाओं में बहुत सरस काव्य लिखा। कजली, होली, चैता, ठुमरी, दादरा, लावनी और ग़ज़ल जैसी लोकगीतों की विधाओं का भारतेन्दु ने खूब प्रयोग किया है। इसके साथ ही पहेलियाँ, मुकरियाँ, सखून और समस्यापूर्तियों का भी भारतेन्दु ने सुन्दर प्रयोग किया है। भारतेन्दु के स्तोत्रकाव्य भी उल्लेखनीय हैं। उन्होंने श्रीनाथ स्तुति, श्रीसीता वल्लभ स्तोत्र और प्रातःस्मरण स्तोत्र सरीखे कई स्तोत्रकाव्यों का प्रणयन किया।

भारतेन्दु की कविता काव्यभाषा और काव्य-विधाओं दोनों ही दृष्टियों से एक ओर पूर्ववर्ती परम्परा बँधी हुई है तो दूसरी ओर भविष्य का नया मार्ग भी प्रशस्त करती है। कविता की नूतन भाषा और नित-नये काव्य-रूप भारतेन्दु की कविता के वितान को और विस्तृत स्वरूप देते हैं।

1.1.07. 'देखी तुमरी कासी' में अभिव्यक्त समाज

'देखी तुमरी कासी' नामक कविता भारतेन्दु के प्रमुख नाटक 'प्रेमजोगिनी'(1875 ई.) का अंश है। इसमें भारतेन्दु ने 'परदेशी' के द्वारा तत्कालीन काशी की दुर्दशा का वर्णन किया है। वस्तुतः यह कविता काशी के बहाने से अंग्रेजी शासन के समय के भारतीय समाज का नग्न यथार्थ प्रस्तुत करती है। इसमें "भारतेन्दु ने अंग्रेजी शासन में भारतीय समाज में होने वाले अनर्थकारी परिवर्तन की ओर ध्यान दिलाया है।"[25]

भारतीय समाज की दुर्दशा के लिए भारतेन्दु ने अनेक कारणों को जिम्मेदार माना। जैसे – अंग्रेजी शासन की नीतियाँ, भारतीय समाज में व्याप्त सामाजिक-धार्मिक आडम्बर और रूढ़ियाँ, भारतीय लोगों का आलस्य, अकर्मण्यता, नशाखोरी तथा कायरता। 'देखी-तुमरी कासी' कविता में भारतेन्दु ने बिना किसी लाग-लपेट के इन मुद्दों को उठाया है और तत्युगीन काशी के जर्जरतन्त्र को भारतेन्दु ने बेपर्दा कर दिया है। यह कविता काशी के समाज के अमीर-गरीब, ब्राह्मण, संन्यासी, रंडी, भाट, दलाल सबके विकृत मानस को उजागर करती है। मन्दिरों, सड़कों, बाज़ारों, घाटों की दुर्दशा, ब्रिटिश प्रशासन की अराजक स्थिति, कचहरियों में व्याप्त भ्रष्टाचार और धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त अकाल को 'देखी तुमरी कासी' के माध्यम से समझा जा सकता है –

आधी कासी भाट भंडेरिया बाम्हन औ संन्यासी।
आधी कासी रंडी मुंडी राँड़ खानगी खासी॥

लोग निकम्मे भंगी गंजड़ लुच्चे बे-बिसवासी।
महा आलसी झूठे शुहदे बे-फिकरे बदमासी॥

आप काम कुछ कभी करैं नहिं कोरे रहैं उपासी।
और करे तो हँसैं बनावैं उसको सत्यानासी॥[26]

इस तरह भारतेन्दु ने इस कविता के माध्यम से तत्कालीन काशी और समूचे भारत की जर्जर स्थिति को पाठकों के समक्ष प्रतिबिम्बित किया है। यह कविता भारतेन्दुयुगीन समाज का कटु यथार्थ है।

1.1.08. पाठ-सार

भारतेन्दु के काव्य-लोक और पुनर्जागरण के अन्तस्सम्बन्ध पर गहन चिन्तन-विश्लेषण से स्पष्ट है कि उनकी कविता तत्युगीन भारत की दुर्दशा और अंग्रेजी शासन तन्त्र की बर्बर नीतियों को हमारे समक्ष लाती है। इनकी कविताओं में पुनर्जागरण की चेतना और राष्ट्रीय-सामाजिक अस्मिता की पड़ताल की सजग अभिव्यक्ति मिलती है। इनकी कविताओं में भारतीय समाज की स्वस्थ समालोचना के साथ ही निजभाषा की सशक्त अभिव्यक्ति है। हालाँकि ऊपरी तौर पर भारतेन्दु के काव्य-चिन्तन में अन्तर्विरोध के कई रूप देखे जा सकते हैं, लेकिन वास्तव में यह अन्तर्विरोध (Contradictory) नहीं, अपितु उनके युग का अन्तर्द्वन्द्व (Ambivalent) है, जो कि तत्कालीन राजनैतिक और सांस्कृतिक जटिलताओं का प्रतिफल है।[27] इन जटिलताओं के आलोक में ही भारतेन्दुयुगीन काव्य-चेतना का मूल्यांकन करना उचित होगा।

1.1.09. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. सिंह, बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, पृष्ठ 258
02. वही, पृष्ठ 286
03. भारतेन्दु मुकुर, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, सं. 2007, पृष्ठ 21-22

04. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, पृष्ठ 19
05. नवल, नन्दकिशोर, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, पृष्ठ 25-26
06. वही, पृष्ठ 27
07. भारतेन्दु और भारतीय नवजागरण, पृष्ठ 63
08. सिंह, ओमप्रकाश (सं.), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली, खण्ड 1, पृष्ठ 117
09. वही, खण्ड 4, पृष्ठ 374
10. वही, खण्ड 1, पृष्ठ 113
11. वही, खण्ड 4, पृष्ठ 113
12. वही, खण्ड 1, पृष्ठ 327
13. वही, खण्ड 4, पृष्ठ 112-113
14. शर्मा, रामविलास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और हिन्दी नवजागरण की समस्याएँ, भूमिका, प्रथम संस्करण
15. गोपाल, मदन, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ 70
16. सिंह ,ओमप्रकाश ,हिन्दी की उन्नति पर व्याख्या, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली, खण्ड 4, पृष्ठ 382
17. सिंह, ओमप्रकाश (सं.), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली, खण्ड 6, पृष्ठ 432
18. वही, खण्ड 1, पृष्ठ 118-119
19. हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 401
20. सिंह, ओमप्रकाश (सं.), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली, खण्ड 4, पृष्ठ 377
21. वही, पृष्ठ 383
22. वही, पृष्ठ 377
23. सिंह, बच्चन, आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 99
24. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पृष्ठ 200-201
25. नवल, नन्दकिशोर, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, पृष्ठ 27
26. सिंह, ओमप्रकाश (सं.), भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ग्रन्थावली, खण्ड 1, पृष्ठ 95
27. डालमिया, वसुधा, दि नेश्नालैजेशन ऑफ़ हिन्दू ट्रेडिशन : भारतेन्दु एंड नाइनटिंथ सेंचुरी

1.1.10. बोध प्रश्न

1. भारत में पुनर्जागरण की अवधारणा को स्पष्ट करते हुए भारतेन्दु के काव्य में सामाजिक चेतना पर प्रकाश डालिए।
2. भारतेन्दु की कविताओं में राष्ट्रीय चेतना के प्रतिफलन पर प्रकाश डालिए।
3. भारतेन्दु के काव्य-चिन्तन की अन्तर्वस्तु को रेखांकित करते हुए उनके 'निजभाषा प्रेम' की समीक्षा कीजिए।

❖❖❖

खण्ड – 1 : हिन्दी नवजागरण काव्य

इकाई – 2 : द्विवेदीयुगीन कविता की ऐतिहासिक भूमिका, राष्ट्रीयता की भावना, सामाजिकता, श्रीधर पाठक का काव्यगत वैशिष्ट्य

इकाई की रूपरेखा

1.2.00. उद्देश्य कथन
1.2.01. प्रस्तावना
1.2.02. द्विवेदीयुगीन कविता की ऐतिहासिक भूमिका
  1.2.02.1. हिन्दी भाषा का एकरूपीकरण और परिष्कार
  1.2.02.2. नवजागरण की चेतना
  1.2.02.3. रीतिविरोधी अभियान
1.2.03. राष्ट्रीयता की भावना
1.2.04. सामाजिकता
1.2.05. श्रीधर पाठक का काव्यगत वैशिष्ट्य
  1.2.05.1. राष्ट्र-प्रेम
  1.2.05.2. प्रकृति-चित्रण
  1.2.05.3. काव्य-भाषा
1.2.06. पाठ-सार
1.2.07. बोध प्रश्न
1.2.08. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य
1.2.09. कठिन शब्दावली
1.2.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1.2.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई द्विवेदीयुगीन कविता की ऐतिहासिक भूमिका, राष्ट्रीयता की भावना, सामाजिकता, श्रीधर पाठक के काव्यगत वैशिष्ट्य पर केन्द्रित है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. द्विवेदीयुगीन कविता की विशेषताओं से परिचित हो सकेंगे।
ii. हिन्दी भाषा के एकरूपीकरण और परिष्कार के लिए किये गए प्रयत्न के बारे में जान सकेंगे।
iii. आधुनिक हिन्दी कविता के माध्यम से नवजागरण की चेतना के प्रसार के बारे में जान सकेंगे।
iv. नवजागरणकालीन हिन्दी कविता में राष्ट्रीयता और स्वदेश-प्रेम की भावना से परिचित हो सकेंगे।
v. श्रीधर पाठक की कविता के वैशिष्ट्य को समझ सकेंगे।

1.2.01. प्रस्तावना

सन् 1900 ई. में सरस्वती पत्रिका के प्रकाशन और महावीरप्रसाद द्विवेदी द्वारा उसके सम्पादन (1903-1920) के साथ ही हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग का आरम्भ माना जाता है। इस युग में सरस्वती पत्रिका ने हिन्दी साहित्य की दुनिया में लगभग केन्द्रीयता प्राप्त कर ली थी और उस के सम्पादक महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इस पत्रिका के माध्यम से हिन्दी कविता में नवीन धारा का सूत्रपात किया। द्विवेदी युग की कविता कुछ अर्थों में भारतेन्दु युग की कविता का ही विस्तार है। इस युग की कविता पर भी नवजागरण की चेतना का गहरा असर है। लेकिन विषय-वस्तु, भाषा और शिल्प के अनेक स्तरों पर वह भारतेन्दु युग की कविता से भिन्न भी है। वह ब्रजभाषा को त्याग कर खड़ीबोली हिन्दी का वरण करती है। नयी भाषा के अंगीकार के कारण कविता की शैली में भी परिवर्तन होता है। भाषा और शैली की यह नवीनता हिन्दी कविता को नया कलेवर प्रदान करती है।

1.2.02. द्विवेदीयुगीन कविता की ऐतिहासिक भूमिका

द्विवेदी युग ने आधुनिक हिन्दी कविता को बदलने में युगान्तरकारी भूमिका का निर्वाह किया है। इस युग में न सिर्फ़ कविता की भाषा और शैली में बदलाव आया बल्कि कविता की बुनियादी धारणा और उसके उद्देश्य के बारे में भी व्यापक बदलाव आया। इससे उस युग की कविता के विषय, अन्तर्वस्तु और भाषा-शैली में भी परिवर्तन आया। इस युग की कविता की ऐतिहासिक भूमिका को निम्नलिखित उपशीर्षकों के माध्यम से विश्लेषित किया जा सकता है।

1.2.02.1. हिन्दी भाषा का एकरूपीकरण और परिष्कार

द्विवेदी युग ने भारतेन्दुकालीन भाषायी संक्रमण को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। इस युग के पूर्व गद्य की भाषा तो खड़ीबोली हिन्दी है लेकिन पद्य की भाषा ब्रजभाषा है। द्विवेदी युग में गद्य की भाषा तो खड़ीबोली हिन्दी ही रही लेकिन पद्य की भाषा हिन्दी और ब्रजभाषा दोनों बनी। 'रत्नाकर' जैसे कवि तो ब्रजभाषा में ही कविता लिखते रहे। कुछ कवि तो दोनों ही भाषाओं में कविता लिखते थे जबकि मैथिलीशरण गुप्त जैसे कवि द्विवेदीजी के प्रभाव में आकर ब्रजभाषा छोड़कर खड़ीबोली हिन्दी में कविता करने को प्रवृत हुए। द्विवेदीजी स्वयं भी चाहते थे कि हिन्दी साहित्य में गद्य और पद्य की भाषा एक ही हो अर्थात् खड़ीबोली हिन्दी ही हो। इसके लिए उन्होंने सरस्वती पत्रिका के माध्यम से अनेक उद्यम किये। खड़ीबोली को कविता की भाषा बनाना आसान नहीं था। ब्रजभाषा में कविता करने की सैकड़ों साल पुरानी परम्परा थी। उसकी लोच, कोमलता, शब्दावली और छन्द-परम्परा का खड़ीबोली के साथ कोई मुकाबला ही नहीं था। कवि भी ब्रजभाषा में ही लिखने के अभ्यस्त थे और नवोदित कवियों का काव्य-प्रशिक्षण भी ब्रजभाषा में ही होता था। खड़ीबोली में कविता करने की कोई सुसंगत परम्परा नहीं थी। अभी तो वह बोली से साहित्य की भाषा के रूप में विकसित ही हो रही थी। उसका कोई साहित्यिक रूप निश्चित नहीं हुआ था न ही उसका व्याकरणिक रूप ही स्थिर हो पाया था। उसमें काव्य की शब्दावली का भी अभाव था। ऊपर से उसके विरोधी भी बहुत थे। लेकिन वह आधुनिकता के अश्व पर

सवार थी। वह गद्य और विचार की भाषा बन चुकी थी। वह राजनीति की भाषा थी और राष्ट्रभाषा होने की प्रबल दावेदार थी। यदि हिन्दी कविता को आधुनिक होना था और समय के साथ कदमताल करना था तो उसे ब्रजभाषा के केंचुल का त्याग करना ही था। द्विवेदीजी समय की इस माँग को समझते थे। इसीलिए महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के लेखक-मण्डल को खड़ीबोली में कविता लिखने के लिए उत्साहित किया। उनके प्रभाव में आकर अनेक कवियों ने खड़ीबोली में कविता लिखने का बीड़ा उठाया। इनमें मैथिलीशरण गुप्त सर्वप्रमुख हैं। इनके अलावा सियारामशरण गुप्त, रामनरेश त्रिपाठी, मुकुटधर पाण्डेय, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' आदि कवियों ने खड़ीबोली हिन्दी में कविता लिखने की शुरुआत की। खड़ीबोली को कविता की भाषा बनाने के लिए सबसे ज़रूरी था कि इसके व्याकरणिक स्वरूप को निश्चित किया जाए। महावीरप्रसाद द्विवेदी ने इसके लिए अथक प्रयत्न किया। वे सरस्वती में छपने के लिए आने वाली रचनाओं की व्याकरणिक त्रुटियों और वाक्य की संरचना को सुधार कर अपनी पत्रिका में छापते थे। उन्होंने अनेक शब्दों के लिंग का निर्धारण किया। सर्वनामों के प्रयोग को स्थिर और निश्चित किया। उन दिनों खड़ीबोली को बरतने की अनेक शैलियाँ थीं। द्विवेदीजी ने हिन्दी लिखने की शैली को भी निश्चित किया। उन्होंने अरबी और फारसी के शब्दों से परहेज किया। खड़ीबोली की सम्प्रेषण-क्षमता और शब्दावली को बढ़ाने के लिए संस्कृत के शब्दों का सहारा लिया। संस्कृत की सहायता से नये शब्दों का निर्माण किया गया। तत्सम और तद्भव शब्दों की जुगलबंदी से खड़ीबोली हिन्दी का नया वितान तैयार हुआ। इसके लिए द्विवेदी युग के साहित्यकारों को उर्दू, ब्रजभाषा, बांग्ला तथा हिन्दी की अन्य बोलियों से संघर्ष करना पड़ा। हिन्दी भाषा के स्वरूप-निर्धारण, मानकीकरण और कविता की भाषा के रूप में खड़ीबोली के प्रचलन को सम्भव बनाने में द्विवेदी युग का अप्रतिम योगदान है।

1.2.02.2. नवजागरण की चेतना

हिन्दी कविता को द्विवेदी युग का दूसरा योगदान है, 'नवजागरण की चेतना का विस्तार करना।' अंग्रेजी राज में धन के विदेश चले जाने का उल्लेख भारतेन्दु कर ही चुके थे। द्विवेदी युग के कवियों में राजनैतिक और समाज-सुधार की चेतना और प्रखर रूप में सामने आती है। हिन्दी कविता के इतिहास में पहली बार कवियों ने अपने देश और उसकी दुर्दशा पर इतना विचार किया। पराधीनता और हतदर्प मनोवृति को दूर करने के लिए इस दौर के कवियों ने अनेक उपाय किये। इसके अतिरिक्त इस दौर के कवियों ने वैज्ञानिक चेतना, विवेक, बुद्धिवाद और शिक्षा के प्रसार पर भी बहुत जोर दिया। सरस्वती पत्रिका में साहित्येतर विषयों पर भी खूब लिखा जाता था। अर्थशास्त्र, समाज की दशा, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति आदि पर लिखते हुए दूसरे देशों से भारत की तुलना की जाती और भारत की दुर्दशा को दूर करने का उपाय बताया जाता। द्विवेदीजी स्वयं ही अनेक अंग्रेजी पुस्तकों की सामग्री का हिन्दी अनुवाद सरस्वती पत्रिका में छापते थे। उनकी पुस्तक सम्पत्तिशास्त्र भी उसी समय छपी। इन प्रयासों से नवजागरण की चेतना के विकास और प्रसार में मदद मिली और इसका सकारात्मक प्रभाव हिन्दी कविता पर भी दिखाई देता है। इस विषय पर आगे के सामाजिकता और राष्ट्रीय चेतना वाले उपशीर्षकों में विस्तार से विचार किया जाएगा।

1.2.02.3. रीतिविरोधी अभियान

इस नवजागरण की चेतना का ही परिणाम था, 'रीतिविरोधी अभियान ।' द्विवेदीजी कविता को देश और समाज की वास्तविक दशा से जोड़ना चाहते थे । वे कविता के माध्यम से सामाजिक बदलाव करना चाहते थे । इसके लिए आवश्यक था कि कविता को मनोरंजन की वस्तु समझने की धारणा का खण्डन किया जाए । नायिका-भेद, प्रेम और शृंगार जैसी प्रवृतियों और विलासिता जैसी मनोवृतियों का विरोध किया जाए । इस युग के कवियों ने नायिका-भेद और अलंकारशास्त्र के अनुरूप कविता करने की परिपाटी का विरोध किया । ब्रजभाषा की कविता के विरोध का एक कारण नायिकाभेद और उसकी अलंकारप्रियता भी थी । इस दौर में समस्यापूर्ति जैसी काव्य-शैलियों का भी विरोध किया गया । इस युग के कवि रीतिवाद के संकुचित सामाजिक आधार और निर्जीव भाषा-सौन्दर्य के आलोचक थे । वे कविता को इस कृत्रिमता से निकाल कर उसे जीवन-संग्राम और समाज-सुधार से जोड़ना चाहते थे । द्विवेदीजी के नेतृत्व में उस युग के साहित्यकारों और कवियों ने इस भूमिका का बखूबी निर्वाह किया । उन्होंने कविता को जीवन, देश और समाज से जोड़ा । हिन्दी कविता के इतिहास में पहली बार कविता के आँगन में राजनैतिक और सामाजिक विषय-वस्तु का प्रवेश सामने के दरवाजे से हुआ ।

1.2.03. राष्ट्रीयता की भावना

राष्ट्रीयता की भावना द्विवेदीयुगीन कविता की मूल प्रवृति है । इस युग के सबसे महत्वपूर्ण कवि मैथिलीशरण गुप्त हैं जिन्हें राष्ट्रकवि के रूप में भी जाना जाता है । इनकी कविता में राष्ट्रीय चेतना पराधीनता के दुःख और प्रतिरोध से पैदा होती है । इसीलिए वे अपनी काव्यपुस्तक 'भारत-भारती' में देश की स्थिति पर विचार करते हुए कहते हैं –

हम क्या थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी;
आओ विचारें आज मिलकर, ये समस्याएँ सभी ।

कवि वर्तमान के बिन्दु से अतीत और भविष्य दोनों को देखता है । काल के तीनों आयामों में देखने पर उसे भारतदेश की हतदर्प स्थिति का भान होता है । वर्तमान की विकट स्थिति के प्रति उद्विग्न होकर ही वह गौरवशाली अतीत की खोज करता है और भविष्य के प्रति चिन्ता भी जाहिर करता है । वह साफ़-साफ़ देख पाता है कि अतीत की समृद्धि और वैभव आज नहीं है तो इसका सबसे बड़ा कारण भारत का पराधीन होना है । उस पराधीनता ने ही भारत के वैभव और कला-कौशल का अपहरण कर लिया था । ठाकुर गोपाल शरण सिंह इस पराधीनता का हाल बयान करते हुए ठीक ही कहते हैं –

वह धीरता कहाँ है गंभीरता कहाँ है ?
वह वीरता हमारी है वह कहाँ बड़ाई ?
क्या हो गईं कलाएँ कौशल सभी हमारे ?
किसने शताब्दियों की ली छीन सब कमाई ?

इस पराधीनता ने सिर्फ़ कमाई ही छीनी होती तो गनीमत थी लेकिन उसने तो भारतीयों की उद्यमशीलता और कौशल को भी नष्ट करके उन्हें परजीवी, स्वार्थी, द्वेषी, ईर्ष्यालु, आलसी और मिथ्याचारी बना दिया। इन सब बुराइयों ने भारतीयों की हीनता को बढ़ाया। भारतवासियों की जबदी मनोवृति को दूर करने और उनके सोये हुए स्वाभिमान को जगाने के लिए आवश्यक था कि उनकी इन बुराइयों को दूर किया जाए। इन बुराइयों के प्रति सचेत करना और कर्मठता, उद्यमशीलता, समाजहित तथा राष्ट्रहित की ओर भारतभूमि के सपूतों को प्रेरित करना इस युग का प्रमुख नवजागरणवादी स्वर है और इस दौर की राष्ट्रीय चेतना का एक महत्वपूर्ण लक्षण है।

भरतखण्ड का हाल ज़रा देखो है कैसा।
आलस का जंजाल ज़रा देखो है कैसा॥
ज़रा फूट की दशा खोल कर आँखें देखो।
खुदगर्जी का नशा खोल कर आँखें देखो॥

है शेखी दौलत की कहीं, बल का कहीं गुमान है।
है खानदान का मद कहीं, कहीं नाम का ध्यान है॥

राय देवी प्रसाद 'पूर्ण' की ये पंक्तियाँ आलस, स्वार्थ, अकर्मण्यता और आडम्बर में पड़े भारतवासियों की कमजोरी का बिल्कुल ठीक विवरण दिया है। कवि की यह शिकायत भी सही है कि उन्हें आडम्बर और कुरीतियों का तो खूब ध्यान है लेकिन देशहित और समाजहित का ध्यान बिलकुल भी नहीं है।

भारतभूमि के वीरों की इस अकर्मण्यता, आडम्बरप्रियता, खुदगर्जी और हीनताबोध से लड़ने के लिए इस युग के कवि प्राचीन गौरव को अपना हथियार बनाते हैं। राम और कृष्ण जैसे पौराणिक देवता और बुद्ध जैसे इतिहासपुरुष इस युग की कविता के नायक बन गए। सीता, ऊर्मिला और यशोधरा जैसी त्यागमयी चरित्र की नारियाँ इस दौर की कविता के लिए आदर्श हो गईं और 'राधा कन्हाई का प्रेम' अब बीते ज़माने की बात हो गया। लोकचेतना में पैठी हुई पौराणिक कहानियाँ अब कविता की मुख्य विषय-वस्तु बन गईं। इस युग के कवियों ने भारतीयों को जगाने, उन्हें पराधीनता का बोध कराने तथा पराधीनता की बेड़ियों को काट फेंकने हेतु उद्धत करने के लिए अतीत की पौराणिक कथाओं व कहानियों का उपयोग किया। इस क्रम में पाठ्यक्रम में संकलित रामनरेश त्रिपाठी के खण्डकाव्य 'पथिक' के दूसरे सर्ग को देखा जा सकता है। इस सर्ग में कवि प्रेम और प्रकृति के मनोहर आलिंगन को त्याग कर मातृभूमि के ऋण को चुकाने को परम कर्त्तव्य के रूप में देखता है। कवि अकर्मण्यता को त्याग कर उद्यमशीलता का वरण करने का आह्वान करता है। इस तरह द्विवेदीयुगीन कविता की राष्ट्रीय चेतना का एक महत्वपूर्ण पक्ष उसका अतीत प्रेम और पुराणोन्मुखता है। इसे ही कई बार द्विवेदी युग का पुनरुत्थानवाद भी कहा जाता है।

द्विवेदी युग की कविता की राष्ट्रीय चेतना का अगला पक्ष है, 'भारत देश की प्रकृति और उसकी प्राकृतिक चौहद्दी का भावपूर्ण यशोगान करना।' रामनरेश त्रिपाठी, सियारामशरण गुप्त और श्रीधर पाठक की कविताओं में इसके अनेक उदाहरण देखे जा सकते हैं। यद्यपि ये कविताएँ स्थूल और इतिवृत्तात्मक हैं लेकिन

स्वदेश-प्रेम की आरम्भिक अवस्था को बहुत सफलतापूर्वक संचरित करती हैं। उदाहरण के लिए रामनरेश त्रिपाठी की एक कविता को देखा जा सकता है –

जिसका चरण निरन्तर रत्नेश धो रहा है।
जिसका मुकुट हिमालय वह देश कौन-सा है ?

नदियाँ जहाँ सुधा की धारा बहा रही हैं।
सींचा हुआ सलोना वह देश कौन-सा है ?

ऐसा नहीं है कि ये कवि सिर्फ़ भारत देश की प्राकृतिक सुषमा और सौन्दर्य का ही वर्णन करते हैं, वे देश की पराधीनता और अवनति के अनेकानेक कारणों का विश्लेषण भी करते हैं और उन बुराइयों को दूर करने का आह्वान भी करते हैं –

उठो त्याग दें द्वेष, एक ही सबके मत हों।
सीख ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल उन्नत हों।
भारत की उन्नति सिद्धि से हम सबका कल्याण है।
दृढ समझो इस सिद्धान्त को, हम शरीर यह प्राण है।

ये पंक्तियाँ सिर्फ़ एकता और प्रगति का सन्देश ही नहीं देती हैं बल्कि इसमें गहरा राजनैतिक सन्देश भी छुपा है। इस युग के कवि भारत की परतन्त्रता की बेड़ियों को हिंसा और पाशविक बल से नहीं काटना चाहते हैं। वे परतन्त्रता की बेड़ियों को काटने के लिए भारतवासियों को ज्ञान-विज्ञान और कला-कौशल के माध्यम से उन्नत, उद्यमशील और सबल बनाना चाहते है। कवि इस सिद्धान्त पर दृढ़ता से विश्वास करने का आह्वान करता है क्योंकि वह जानता है कि ज्ञान-विज्ञान से विमुखता और अकर्मण्यता ही भारतीयों की परतन्त्रता का असली कारण है। कहना न होगा कि सबलीकरण का यह सिद्धान्त गाँधीवादी दर्शन से निकला है। मैथिलीशरण गुप्त, सियारामशरण गुप्त और रामनरेश त्रिपाठी आदि कवियों की कविता राजनैतिक और दार्शनिक रूप से गाँधीवाद से प्रभावित है। इनकी कविताओं में गाँधीवादी नैतिकता, सत्य और अहिंसा की अभिव्यक्ति हुई है। परतन्त्रता के खिलाफ गाँधी के नेतृत्व में चलने वाली स्वतन्त्रता की लड़ाई में उस दौर की हिन्दी कविता अपना स्वर मिला रही थी। इसके प्रमाण के लिए सियाराम शरण गुप्त की 'बापू' और 'नोआखली' जैसी कविताओं को याद किया जा सकता है।

1.2.04. सामाजिकता

काव्य को लेकर द्विवेदीजी की दृष्टि उपयोगितावादी थी। वे काव्य को सिर्फ़ मनोरंजन का साधन नहीं समझते थे। वे चाहते थे कि कविता मनोरंजन के अतिरिक्त अपनी सामाजिक भूमिका का निर्वाह भी करे। उनकी नज़र में मनुष्य, समाज और देश को बनाने तथा बदलने का काम भी साहित्य का ही था। द्विवेदीजी के इस विचार का प्रभाव सरस्वती के लेखकों पर भी पड़ा। मैथिलीशरण गुप्त ने इस युग की साहित्यिक धारणा को व्यक्त करते हुए कहा –

केवल मनोरंजन न कवि का कर्म होना चाहिए।
उसमें उचित उपदेश का भी मर्म होना चाहिए।
क्यों आज रामचरितमानस सब कहीं सम्मान्य है ?
सत्काव्य युत उसमें परम आदर्श का प्राधान्य है।

इस काव्यादर्श के परिणामस्वरूप द्विवेदीयुगीन कवि रीतिकालीन और भारतेन्दुकालीन नायिका भेद, प्रेम और शृंगार को छोड़कर इस देश और समाज को बदलने वाली और कर्म में रत रहने की चेतना जगाने वाली कविताओं की ओर ध्यान देने लगे। इसके परिणामस्वरूप खड़ीबोली हिन्दी कविता की विषय-वस्तु में परिवर्तन आया। अब कविता के लिए सामाजिक सरोकार महत्त्वपूर्ण हो गया। ऊपर के अनुच्छेद में 'भारत भारती' से उद्‌धृत पंक्तियों में आपने देखा कि वर्तमान के प्रति सजगता का भाव ही कवि को अपने अतीत की खोज और भविष्य की चिन्ता की ओर ले जा रहा है। 'भारत भारती' कविता की धारणा में बुनियादी बदलाव का प्रमाण है। अब कविता की अन्तर्वस्तु में राजनैतिक और सामाजिक चेतना का प्रवेश हो गया। केवल मनोरंजन नहीं बल्कि राष्ट्र और सामाजिक हित कविता के लिए सर्वोपरि हो गया। इस काव्यदृष्टि का परिणाम यह हुआ कि देश की व्यथा और दुर्दशा से सम्बन्धित कविताओं का लिखा जाना शुरू हो गया। जागरण और समाज-सुधार कविता के लक्ष्य हो गए। मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत भारती' इसका प्रमाण है। 'साकेत' जैसे काव्य में भी, यदि ध्यान से देखें तो, सीता वन में आदिवासी महिलाओं को सिलाई, बुनाई और कढ़ाई करना सिखाती हैं। 'साकेत' में ही ऊर्मिला जैसे त्याग करने वाले चरित्र को आदर्श के रूप में पेश किया जाता है। इसी युग में यशोधरा के त्याग और स्वाभिमान को भी महिमामण्डित किया गया तथा लोक-कल्याण के लिए बुद्ध के गृह त्याग को उचित माना गया। त्याग, स्वाभिमान और आदर्श का यही स्वर 'जयद्रथ वध', 'मिलन' और 'रंग में भंग' आदि रचनाओं में भी देखा जा सकता है। हरिऔध के 'प्रियप्रवास' की राधा भी अन्ततः समस्त विश्व की सेविका बन जाती है। इस युग के कवियों के ये प्रयास समाज को नये सिरे से पुनर्गठित करने, उसकी कुरीतियों को दूर करने और उसमें नयी चेतना का संचार करने के संकल्प का ही परिणामहै।

ऐसा नहीं है कि इस युग के कवियों का सारा ध्यान उपदेश देने और आदर्श-निर्माण में ही लगा रहा. उनका ध्यान समाज के निर्धन और शोषित-पीड़ित लोगों की ओर भी गया। किसानों के शोषण व दुःख का विवरण देना भी इस युग के कवियों की एक विशेषता है। मैथिलीशरण गुप्त की 'किसान' शीर्षक कविता का एक उदाहरण देखा जा सकता है –

हो जाये अच्छी भी फसल, पर लाभ कृषकों को कहाँ।
खाते, खवाई, बीज ऋण से हैं रंगे रक्खे जहाँ।
आता महाजन के यहाँ वह अन्न सारा अन्त में।
अधपेट खाकर फिर उन्हें है काँपना हेमन्त में॥

इस युग के कवि सिर्फ़ किसानों के शोषण का वर्णन ही नहीं करते बल्कि उनकी आलोचनात्मक चेतना इस शोषण के कारणों की पड़ताल भी करती है। गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही' की 'किसान' शीर्षक कविता किसानों

के दुःख और पीड़ा के कारणों की पड़ताल करती है। वे उनके दुःख के लिए भाग्य या ईश्वर को जिम्मेदार नहीं मानते। वे राजनैतिक-सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था के शोषणमूलक प्रकृति की पहचान करते हैं और उसके लिए औपनिवेशिक शासन उसके द्वारा पैदा किये गए ज़मींदारों और सूदखोरों के तन्त्र को जिम्मेदार ठहराते हैं।

नज़राना देते पेट काट, कारिंदे लेते लहू चाट,
दरबार बीच कह चुके लाट, पर ठोंक-ठोंक अपना लिलाट,
रोते दुखड़ा अब भी किसान।
कितने ही बेढब सूदखोर, लेते हैं हड्डी तक चिन्चोर,
है मंत्रसिद्ध मानो अघोर, निर्दय, निर्गुण, निर्मम, कठोर
है जिनके हाथों में किसान।

किसानों के साथ ही समाज के हाशिए के लोगों के कष्ट की ओर भी इस युग के कवियों और सम्पादकों का ध्यान गया। विधवा स्त्रियों की करुण व्यथा भी हिन्दी कविता के पाठकों के सामने आयी। इसी दौर में हीरा डोम की कविता 'अछूत की शिकायत' शीर्षक से सरस्वती में छपी जिसमें उन्होंने अपने सामाजिक शोषण और दुःख की चर्चा बेबाकी से की है। इस तरह द्विवेदी युग की कविता अपने समय के राजनैतिक-सामाजिक प्रश्नों से मुठभेड़ करती है। वे समाज को आदर्श और नीति के आधार पर चलने की प्रेरणा देते हैं। वे भारतवासियों में त्याग, स्वाभिमान और शौर्य की भावना भर देना चाहते हैं। इसके साथ ही वे समाज के दुखी, पीड़ित और शोषित लोगों के पक्ष में भी अपनी आवाज़ उठाते हैं। वे इस शोषण के कारणों की पड़ताल भी करते हैं। ऐसा करते हुए ये कवि आधुनिक हिन्दी कविता की काव्यभूमि का विस्तार करते हैं। हिन्दी कविता के भूगोल का विस्तार करते हैं। उसे नये मुद्दों और नये सरोकारों से सम्पृक्त करते हैं। जाहिर है कि ऐसा करने के लिए उन्हें हिन्दी कविता की नयी शब्दावली का निर्माण करना पड़ा। अन्य अनुशासनों के शब्दों को काव्यात्मक बनाना पड़ा।

1.2.05. श्रीधर पाठक का काव्यगत वैशिष्ट्य

1.2.05.1. राष्ट्र-प्रेम

श्रीधर पाठक ब्रजभाषा और खड़ीबोली हिन्दी दोनों ही भाषाओं के कवि हैं। वे मुख्य रूप से राष्ट्रप्रेम और प्रकृति-सौन्दर्य के कवि हैं। श्रीधर पाठक के राष्ट्रप्रेम की भावना पर भारतेन्दु युग और द्विवेदी युग की काव्य-प्रवृतियों का सम्मिलित प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। वे भारतेन्दु की तरह ही निज भाषा के प्रयोग को बढ़ावा देना चाहते हैं। वे इस बात को समझते थे कि निज भाषा की उन्नति के बिना देश की उन्नति नहीं हो सकती है। वे यह भी मानते थे कि निज भाषा से प्रेम के बिना देश-प्रेम की बात अधूरी और झूठी है। निज भाषा के प्रयोग का आह्वान करते हुए वे कहते हैं –

निज भाषा बोलहु लिखहु पढ़हु गुनहु सब लोग
करहु सकल विषयन विषैं निज भाषा उपयोग।

भारतीय नवजागरण की एक विशेषता उसका दोचित्तापन भी है। यानी उसमें परस्पर विरोधी प्रवृतियों की अवस्थिति है। राजभक्ति और देशभक्ति जैसी परस्पर विरोधी प्रवृतियों की साथ-साथ उपस्थिति को भारतेन्दु युग के अनेक रचनाकारों की रचनाओं में देखा जा सकता है। श्रीधर पाठक की कविता में भी इस प्रवृति को सहज ही देखा जा सकता है। यदि वे एक तरफ देशभक्ति में 'स्वदेश-विज्ञान', 'सुन्दर भारत', 'भारत वन्दना' जैसी कविताएँ लिखते हैं तो दूसरी तरफ राजभक्ति के प्रदर्शन में 'जार्ज वन्दना' जैसी रचना भी करते हैं। श्रीधर पाठक की राष्ट्रीय चेतना की दूसरी विशेषता है, 'द्विवेदीयुगीन कवियों की तरह भारत की प्रकृति और भारत के लोगों से प्रेम करना।' कवि भारत देश की परिकल्पना एक विराट् पुरुष के रूप में करता है और उसके सौन्दर्य का वर्णन करता है। इस परिकल्पना के बहाने वह अपनी कविता में भारत के पर्वतों, नदियों, वनों, समुद्रों आदि का गुणगान करता है। इस प्रवृति को उनकी अनेक कविताओं में देखा जा सकता है। 'सुन्दर भारत' शीर्षक कविता से एक उदाहरण देखा जा सकता है –

भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है
शुचि भाल पै हिमाचल, चरणों पै सिंधु-अंचल
उर पर विशाल-सरिता-सित-हीर-हार-चंचल
मणि-बद्ध नील-नभ का विस्तीर्ण-पट अचंचल
सारा सुदृश्य-वैभव मन को लुभा रहा है
भारत हमारा कैसा सुन्दर सुहा रहा है

ऐसी ही प्रवृति पाठ्यक्रम की एक अन्य कविता 'देश-गीत' में भी देखी जा सकती है जहाँ कवि देश का जय-जयकार करते हुए भी दरअसल उसकी प्राकृतिक सुषमा का बखान करता है –

जय जय शुभ्र हिमाचल-शृंगा,
कल-रव-निरत कलोलिनि गंगा,
भानु-प्रताप-समत्कृत अंगा,
तेज-पुंज तप-वेश।
जय जय प्यारा भारत-देश।

भारतभूमि की तरह ही भारतवासियों से भी कवि को बहुत प्रेम है। भारतीयों के प्रति कवि का प्रेम उसे दीन-दुखियों की दुर्दशा की ओर ले जाता है। दीन-दुखियों, शोषितों और पीड़ितों की दुर्दशा कवि को समाज-सुधार की प्रेरणा देती है। द्विवेदी युग के अन्य कवियों की तरह ही श्रीधर पाठक के देशप्रेम का एक पक्ष समाज-सुधार की प्रवृति है। वे समाज में स्त्रियों की स्थिति को लेकर अधिक संवेदनशील रहे हैं। वे विधवाओं की कारुणिक स्थिति से द्रवित होकर बाल विधवा पर कविता लिखते हैं –

अन्धकार अपार व्यापित, कहुँ न दीसत छोर
बचे खेवट-हीन किहि विधि, धर्म-नौका-कोर
प्रार्थना अब ईश की सब करहु कर-जुग-जोर

दीन-बन्धु, सुदृष्टि कीजै बाल-विधवा ओर ॥

अपनी कविता 'जग-निठुराई' में भी उन्होंने बाल विधवा की कारुणिक समस्या को उठाया । भारतीय समाज में स्त्रियों की चिन्ताजनक स्थिति का वर्णन करते हुए उन्होंने 'निबल अबला' शीर्षक कविता लिखी और अबलाओं को उबारने का आह्वान किया –

आरति-हरन-हार भारत, निज-नाम सफल किन कीजै ।
वेगि उबारि निबल अबला गन, सुजस-सुधा-रस पीजै ॥

1.2.05.2. प्रकृति-चित्रण

आधुनिक हिन्दी कविता में श्रीधर पाठक का प्रकृति-चित्रण बेहद महत्त्वपूर्ण है । श्रीधर पाठक से पहले प्रकृति रीतिवाद के बन्धन में जकड़ी हुई थी । कवि अपनी शृंगारपरक कविताओं में प्रकृति का उपयोग उद्दीपन और आलम्बन के लिए करते थे । उनकी काव्य-कल्पना में प्रकृति का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं था । श्रीधर पाठक ने पहली बार प्रकृति को रीतिवाद और शृंगार के बन्धन से मुक्त किया । उनकी प्रसिद्ध कविता 'कश्मीर सुषमा' में इस स्वतन्त्र और स्वायत्त प्रकृति का दर्शन होता है ।

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारती ।
पल पल पलटती भेस छनिक छवि छिन छिन धारति ।
विमल अम्बु सर मुकुरन मँह मुख-बिम्ब निहारति ।
अपनी छवि पै मोहि आपही तन मन वारति ॥

इन पंक्तियों में प्रकृति के मानवीकरण की प्रवृति को सहज ही पहचाना जा सकता है । लेकिन प्रसंग प्रकृति के अपने सौन्दर्य का ही है । किसी नायक या नायिका के सौन्दर्य के वर्णन के लिए प्रकृति उपमान के रूप सामने नहीं आयी है और न ही किसी शृंगार के प्रसंग में प्रकृति के सौन्दर्य का उपयोग उद्दीपक के रूप में हुआ है । यहाँ प्रकृति स्वायत और स्वतन्त्र है । श्रीधर पाठक ने हिन्दी कविता में प्रकृति को रीतिवादी आलम्बन-उद्दीपन से मुक्त करके मानव जीवन की सहचरी बनाया । उन्होंने प्रकृति-वर्णन की आलंकारिक और आडम्बरपूर्ण भाषा का त्याग करके उसे जीवन की सहज भाषा से जोड़ा ।

उनकी कविता में प्रकृति के संश्लिष्ट और स्वच्छन्द चित्र मिलते हैं । श्रीधर पाठक की कविता के प्रकृति चित्रों में कल्पना का वैभव, मृदुलता और वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता है । इन अनुभूतियों को सम्प्रेषित करने के लिए कवि ने लाक्षणिक शैली का सहारा भी लिया है । वैयक्तिक अनुभूति, कल्पना की मौलिकता और लाक्षणिक शैली की प्रधानता स्वच्छन्दतावादी काव्य का सूचक है । इसीलिए श्रीधर पाठक को स्वच्छन्दतावाद का प्रवर्तक भी कहा जाता है । आधुनिक हिन्दी कविता में जैसे वे खड़ीबोली के पहले कवि हैं वैसे ही स्वच्छन्दतावाद के भी पहले कवि हैं । बाद में इस प्रवृति का विकास छायावाद में होता है ।

1.2.05.3. काव्य-भाषा

स्वच्छन्दता की प्रवृति का असर उनकी काव्यभाषा पर भी है। उनकी काव्यभाषा अपने समकालीनों से अलग है। वे ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में ही कविता करते थे। अतः उनकी हिन्दी पर ब्रजभाषा के क्रियापदों का प्रभाव दिखाई देता है। काव्य क्षितिज पर महावीरप्रसाद द्विवेदी के उदय से पहले ही उन्होंने खड़ीबोली में कविता लिखने की शुरुआत कर दी थी। वे भी काव्य की भाषा के लिए खड़ीबोली के प्रयोग के समर्थकों में से थे। यह श्रीधर पाठक का ऐतिहासिक महत्त्व है। उनकी काव्यभाषा में तत्समनिष्ठता और सामासिक पदावली निर्मित करने की प्रवृति भी स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस बात का जिक्र पहले किया जा चुका है कि उन्होंने काव्यभाषा को रीतिवादी कृत्रिमता और आलंकारिकता से मुक्त किया। वे काव्यभाषा को जीवन के करीब लेकर आए। उन्होंने काव्य की भाषा को नयी शब्दावली से युक्त किया। इससे काव्य की भाषा में सजीवता आई और आगे की कविता के लिए नया मार्ग खुला। काव्यभाषा में उनके योगदान को समझने के लिए हेमन्त ऋतु पर लिखी उनकी कविता का एक उदाहरण देना उचित होगा –

बीता कातिक मास शरद का अन्त है,
लगा सकल सुखदाय ऋतु हेमन्त है।
ज्वार बाजरा आदि कभी के कट गए।
खल्यान के काम से किसान निबट गए॥

उद्धृत पंक्तियों की भाषा को ध्यान से देखने की ज़रूरत है। श्रीधर पाठक कविता को गाँव, खेत-खलिहान और जीवन के नजदीक ला रहे हैं। उनकी काव्यभाषा भी गाँव और खेत-खलिहान के सीधे व साधारण शब्दों से निर्मित होती है। इसे रीतिवादी कविता की नायिकाभेद और शृंगारप्रधान कविताओं की भाषा के सामने रख कर पढ़ें तो पता चलता है कि यहाँ न तो अलंकारों का घटाटोप है और न ही कवित्व प्रदर्शन की चाहत। कवित्व प्रदर्शन की चाहत न होने के कारन ही यह काव्यभाषा आडम्बरहीन है। आगे चलकर प्रगतिवादी कविता में इस प्रवृति का समुचित विकास होता है। श्रीधर पाठक ने ग्राम्यगीतों की शैली का भी अपने गीतों में खूब निर्वाह किया है।

1.2.06. पाठ-सार

द्विवेदीयुगीन कविता की मूल चेतना देश-भक्ति और नवजागरण की चेतना से सम्पृक्त है। इसी चेतना का प्रभाव है कि इस दौर के कवि और साहित्यकार रीतिकालीन नायिका भेद, आलंकारिता तथा प्रेम-शृंगार जैसी प्रवृतियों का विरोध करते हैं। इस युग में सामाजिक चेतना भी प्रबल रही है। कवि आमतौर पर समाज के सामने आदर्श खड़ा करने के लिए अतीत का सहारा लेते हैं। इस युग का मुख्य योगदान हिन्दी भाषा का परिष्कार और परिमार्जन है। इसी दौर में कविता ब्रजभाषा को छोड़कर हिन्दी का दामन थामती है और इस तरह हिन्दी साहित्य में गद्य और पद्य की भाषा एक ही हो जाती है। श्रीधर पाठक जैसे कवि आधुनिक हिन्दी कविता में प्रकृति और

काव्यभाषा को रीतिवादी आलंकारिकता और आडम्बर से मुक्त कर जीवन के करीब लाते हैं जिससे भविष्य की कविता के विकास के लिए नये मार्ग खुलते हैं।

1.2.07. बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक थे –

(क) मैथिलीशरण गुप्त

(ख) सियारामशरण गुप्त

(ग) हजारीप्रसाद द्विवेदी

(घ) महावीरप्रसाद द्विवेदी

2. सरस्वती पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ –

(क) सन् 1900 ई. में

(ख) सन् 1901 ई. में

(ग) सन् 1902 ई. में

(घ) सन् 1903 ई. में

3. द्विवेदी युग की कविता की राष्ट्रीय चेतना की एक विशेषता है –

(क) अतीतजीवी होना

(ख) अतीत से प्रेरणा लेना

(ग) अंग्रेजों के खिलाफ विद्रोह भड़काना

(घ) ब्रजभाषा का विरोध करना

4. आधुनिक हिन्दी कविता में खड़ीबोली के पहले कवि माने जाते हैं –

(क) महावीरप्रसाद द्विवेदी

(ख) मैथिलीशरण गुप्त

(ग) श्रीधर पाठक

(घ) रामनरेश त्रिपाठी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. द्विवेदीयुगीन कविता में अभिव्यक्त नवजागरण की चेतना पर प्रकाश डालिए।

2. श्रीधर पाठक के काव्य की विशेषताओं का विवेचन कीजिए।
3. द्विवेदी युग की कविता के राजनैतिक-सामाजिक सरोकारों को स्पष्ट कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्दी भाषा के परिष्कार और एकरूपीकरण में द्विवेदीयुगीन कविता की भूमिका पर विचार कीजिए।
2. द्विवेदीयुगीन कविता में अभिव्यक्त राष्ट्रीय चेतना का विश्लेषण कीजिए।
3. द्विवेदीयुगीन कविता की सामाजिकता पर एक सारगर्भित निबन्ध लिखिए।

1.2.08. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य

1. आप द्विवेदी युग का प्रतिनिधि कवि किसे मानते हैं ? उनकी सभी काव्य-पुस्तकों की एक सूची बनाइए।
2. द्विवेदीयुगीन समाज-सुधार से सम्बन्धित कविताओं का एक संकलन तैयार कीजिए।

1.2.09. कठिन शब्दावली

परिष्कार व परिमार्जन	:	अशुद्धि-निवारण
उद्यम	:	प्रयत्न
मिथ्याचार	:	झूठ और पाखण्ड पर आधारित आचरण

1.2.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास, डॉ॰ नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, नॉएडा.
3. हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली.
4. श्रीधर पाठक, रघुवंश, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 1 : हिन्दी नवजागरण काव्य

इकाई – 3 : 'हरिऔध' का काव्य-शिल्प, 'प्रियप्रवास' का सामयिक सन्दर्भ, विश्वप्रेम

इकाई की रूपरेखा

1.3.0. उद्देश्य कथन
1.3.1. प्रस्तावना
1.3.2. 'हरिऔध' का काव्य-शिल्प
    1.3.2.1. भाषिक योजना
    1.3.2.2. बिम्ब-विधान
    1.3.2.3. छन्द योजना
1.3.3. 'प्रियप्रवास' का सामयिक सन्दर्भ
    1.3.3.1. 'प्रियप्रवास' की कथावस्तु
    1.3.3.2. आधुनिक सन्दर्भ एवं मानवीय चेतना
    1.3.3.3. सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ
1.3.4. विश्वप्रेम
    1.3.4.1. आध्यात्मिक एवं लौकिक प्रेम की अभिव्यंजना
    1.3.4.2. लोकहित की कामना एवं विश्वप्रेम की अभिव्यक्ति
1.3.5. पाठ-सार
1.3.6. शब्दावली
1.3.7. उपयोगी ग्रन्थ-सूची
1.3.8. बोध प्रश्न

1.3.0. उद्देश्य कथन

हिन्दी साहित्य और भाषा के विकास में द्विवेदीयुग की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। सुकवि-किंकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के अथक प्रयासों के फलस्वरूप कविता के नये माध्यम के रूप में खड़ीबोली की प्रतिष्ठा हुई। नवजागरण काव्यधारा में विषयगत वैविध्य और विविध काव्यरूपों का सफल प्रयोग हुआ। रीतिकालीन संवेदना का तीव्र विरोध तथा ठोस यथार्थ के चित्रण का प्रबल आग्रह द्विवेदीयुगीन काव्यगत वैशिष्ट्य है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' द्विवेदीयुगीन प्रतिनिधि साहित्यकार हैं। खड़ीबोली में सरस एवं मधुर रचनाएँ प्रस्तुत करने का श्रेय श्रीधर पाठक के पश्चात् हरिऔध को ही प्राप्त है। कवि होने के साथ हरिऔध उपन्यासकार, आलोचक एवं इतिहासकार के रूप में भी ख्यातिलब्ध हैं। उन्होंने भारतीय पुरातन संस्कृति का पुनरुद्धार, युवाओं का मार्गदर्शन तथा काव्य में उपदेशात्मक वृत्ति को अपना रचनात्मक प्रतिपाद्य स्वीकार किया। अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' के काव्य में द्विवेदीयुगीन चेतना पूर्णतः मुखरित हुई है। उनका प्रियप्रवास

'वसुधैव कुटुंबक्म्' की भावना से अनुप्राणित है। प्रस्तुत इकाई 'हरिऔध' के काव्य-शिल्प, 'प्रियप्रवास' के सामयिक सन्दर्भ और उसमें निहित विश्वप्रेम की अभिव्यक्ति पर केन्द्रित है। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप –

i. हरिऔध के काव्य-शिल्प का विवेचन कर सकेंगे।
ii. 'प्रियप्रवास' के सामयिक सन्दर्भों की परख कर सकेंगे।
iii. 'प्रियप्रवास' में निहित विश्वप्रेम की भावना को समझ सकेंगे।

1.3.1. प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी में वैज्ञानिक चिन्तन ने लेखकीय दृष्टिकोण की दिशा और दशा में क्रान्तिकारी बदलाव किया। आधुनिकता के अनुरूप कवियों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आया फलस्वरूप आधुनिक युग की वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण धारणाओं का प्रभाव अवतारी स्वरूप वाले पात्रों के चरित्र-चित्रण पर भी पड़ा। भारतीय संस्कृति, धर्म और अध्यात्म के केन्द्र-बिन्दु, कीर्तिपुरुष कृष्ण के अवतारी स्वरूप को आधुनिक हिन्दी कवियों ने एक नया रूप प्रदान किया है। आधुनिकताबोध से सम्पृक्त कवियों ने कृष्ण के परम्परागत स्वरूप का वैज्ञानिक अवधारणाओं के सन्दर्भ में पुनराख्यान किया। आधुनिक कवियों ने परिवर्तित युग-बोध के अनुरूप कृष्ण-कथा के पात्रों को यथार्थ और स्वाभाविकता के धरातल पर प्रस्तुत किया है।

वस्तुत: आधुनिक युग के कवियों, साहित्यकारों का ध्येय मानव को सर्वश्रेष्ठ घोषित करना है। इसके लिए राधा और कृष्ण जैसे लोकप्रसिद्ध पात्र जो अवताररूप में प्रसिद्ध हैं, उन्हें मानव की संज्ञा से विभूषित किया गया। अलौकिक एवं अवतरित पात्रों में से दैवीय शक्तियों का निराकरण कर उन्हें बुद्धिवाद के नवीन आलोक से विवेक-सम्मत दृष्टि द्वारा व्याख्यायित करने का यत्न किया गया। दार्शनिक, धार्मिक और समाज-सुधार के आन्दोलनों में भी विज्ञानयुक्त बुद्धिवादी चिन्तन को बढ़ावा दिया गया और मानव-चरित्र के विश्लेषण का एकमात्र यही निकष स्थिर किया गया।

यूरोपीय विचारधारा के सम्पर्क में आने से भारत में नवीन वैचारिक आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। धार्मिक आन्दोलनों को राजा राममोहनराय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशवचन्द्र सेन, महर्षि दयानन्द सरस्वती, श्रीमती एनीबेसेंट, स्वामी विवेकानन्द, महादेव गोविन्द रानाडे, स्वामी रामतीर्थ, महर्षि अरविन्द आदि ने बढ़ावा दिया। आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द ने वेदों को महत्त्व दिया। वेदों में मूर्तिपूजा, अवतारवाद, तीर्थों और अनेक पौराणिक अनुष्ठानों का समर्थन नहीं था, अतएव इन सारे कृत्यों और विश्वासों को गलत घोषित किया गया। स्वर्ग-नरक, तीर्थ-व्रत, अनुष्ठान आदि का निषेध किया गया। आधुनिक कवियों ने विभिन्न सामाजिक एवं राजनैतिक विचारों को दृष्टि में रखते हुए अवतारी पात्रों को पुनराख्यायित किया। फलतः राधा और कृष्ण का स्वरूप भी एक नया रूप लेकर सामने आया। उनके देवत्व से अधिक उनके मनुष्य रूप को महत्त्व मिला। वे अब धार्मिक, सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलनों को प्रेरित करने वाले एवं उस तरह के आदर्शों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किए जाने लगे।

आधुनिककाल के कवियों द्वारा पुरातन कथाओं के नायकों को सामान्य मानव की श्रेणी में खड़ा कर उनके चरित्र पर तत्कालीन महापुरुषों के गुणों और उत्कृष्ट कार्यों का आरोपण किया गया । ये अवतारी पात्र बालगंगाधर तिलक जैसे क्रान्तिकारियों के विचारों से प्रभावित हो कर्मयोगी चरित्र के रूप में प्रस्तुत किये जाने लगे । महात्मा गाँधी के असहयोग आन्दोलन, ग्राम-सुधार, हरिजन-सुधार, सर्वोदय एवं चरखा, खादी तथा कुटीर-उद्योग सम्बन्धी विचारों के प्रभाव के कारण राधा और कृष्ण को समाज-सुधारक व किसानों और मजदूरों का हितैषी रूप प्रदान किया गया । अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने राधा और कृष्ण के चरित्र में सहज मानवीय मनोभावों यथा – हर्ष-विषाद, वात्सल्य, शोक, दु:ख, चिन्ता, द्वन्द्व आदि मनःस्थितियों का योग करते हुए उन्हें एक नवीन रूप प्रदान किया है । हरिऔध ने उन्हें एक सामान्य मानवजनित भावनाओं से युक्त आदर्श स्त्री और पुरुष के रूप में सिद्ध किया है । हरिऔध का आदर्श मानवता की महनीय विभूति है इसलिए इस ग्रन्थ में इसी रूप में इसका निरूपण हुआ है । समसामयिकता पर दृष्टि रखकर इस काव्य की रचना हुई है, अतएव असंभव घटनाओं और व्यापारों का वर्णन करने की बजाय इसे बोधगम्य और बुद्धिसंगत बनाने की चेष्टाकी गई है ।

1.3.2. हरिऔध का काव्य-शिल्प

व्यापक आलोचकीय अनिच्छा के बावजूद हरिऔध आधुनिककाल के एक बड़े कवि के रूप में प्रतिष्ठित हैं । उनकी लोकप्रियता के अनेक कारण हैं । यथा – सीधी-सरल भाषा का प्रयोग, पौराणिक कथानकों का चुनाव, नैतिक मूल्यों का समर्थन, राष्ट्रीय भावधारा की अभिव्यक्ति आदि । उन्होंने कविता में खड़ीबोली के प्रयोग को लोकप्रिय करने हेतु सार्थक प्रयास किये । इन कारणों के अतिरिक्त हरिऔध के रचनाकार व्यक्तित्व का एक अन्य पहलू इस सन्दर्भ में ध्यातव्य है । जिस युग में हरिऔध काव्य-रचना में प्रवृत्त थे, उस समय समाज और साहित्य में दो प्रकार के आभिजात्य प्रचलित थे । पहला, राजभाषा अंग्रेजी का और दूसरा, पारम्परिक धर्म और संस्कृति की भाषा संस्कृत का । जो साहित्यकार इन दोनों में सिद्धहस्त थे वे बौद्धिकों के सिरमौर हुए, समाज और साहित्य में प्रतिष्ठित हुए । संयोग से हरिऔध इन दोनों कलाओं में निपुण नहीं थे । किन्तु अपने देशीपन के प्रति गहरे आत्मविश्वास के रहते उन्होंने कविता और निजी जीवन में अंग्रेजियत या संस्कृत का आतंक नहीं माना और न ही उनकी अवज्ञा ही की । वे अपने खाँटी चरित्र में दृढ़ बने रहे । इन्हीं दृढ़ताओं में हरिऔध का रचनात्मक व्यक्तित्व निर्मित हुआ ।

रचनात्मक तत्त्वों के संयोग से राष्ट्रीय, सामाजिक व सांस्कृतिक भावधारा स्वयमेव विकसित होती है, इसलिए विचारकों ने राष्ट्रीयता व संस्कृति की समेकित भावना को यत्नज स्वीकार किया है । द्विवेदीयुगीन साहित्य मूलतः भारतीय नवजागरण की चेतना से स्पन्दित है । हिन्दी प्रदेश में जिस नवजागरण की चेतना का सूत्रपात भारतेन्दु के साहित्य से हुआ था वह हरिऔध की कृतियों में उत्कर्ष को प्राप्त करती है । उनका 'प्रियप्रवास' आधुनिक हिन्दी साहित्य का गौरव ग्रन्थ है जिसमें उन्होंने राधा और कृष्ण को विश्वसेवी तथा विश्वप्रेमी के रूप में चित्रित कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है ।

हरिऔध की प्रारम्भिक रचनाएँ ब्रजभाषा में मिलती हैं। 'रसकलश' में उन्होंने ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। 'कबीर कुण्डल', 'श्रीकृष्ण शतक', 'उपदेश कुसुम', 'प्रेम प्रपंच', 'प्रेमाम्बु वारिधि', 'प्रेमाम्बु प्रस्रवण', 'उद् बोधन', 'ऋतु मुकुर', 'पुष्प विनोद', 'विनोद वाटिका', 'चोखे चौपदे', 'चुभते चौपदे', 'पद्य प्रसून', 'प्रियप्रवास', 'बोलचाल', 'फूल-पत्ते', 'परिजात', 'ग्रामगीत', वैदेही वनवास', 'हरिऔध सतसई', 'मर्मस्पर्श' उनकी अन्य काव्य-कृतियों हैं। इन रचनाओं में कहीं जाति-सेवा, समाज-सेवा, राष्ट्र-सेवा एवं साहित्य-सेवा की भावना है तो कहीं आक्रोश एवं व्यंग्यका आश्रय लेते हुए सामाजिक कुरीतियों एवं दुर्बलताओं पर विचार किया गया है।

1.3.2.1. भाषिक योजना

भाषा साहित्य का मूलाधार है। वह सम्प्रेषण का माध्यम है। हरिऔध का भाषा विषयक दृष्टिकोण उदार है। उनकी भाषा परिष्कृत, प्रौढ़, साहित्यिक एवं भाव-सम्प्रेषणीय है। हरिऔध ने ब्रजभाषा और खड़ीबोली दोनों में रचना की। 'रसकलश' ब्रजभाषा में रचित काव्य-रचना है, जबकि 'प्रियप्रवास' तथा 'वैदेही वनवास' की भाषा खड़ीबोली है। उनकी रचनाओं में सरल व प्रांजल हिन्दी का निरलंकार सौन्दर्य है साथ ही संस्कृत की आलंकारिक समस्त पदावली की छटा भी दिखाई देती है। कविताओं में कहीं मुहावरों और बोलचाल के शब्दों की बहुलता है तो कहीं उन्हें तिलांजलि दे दी गई है। कहीं वर्णनात्मक शैली का अजस्र प्रवाह है तो कहीं चित्रात्मक शैली का चमत्कार विद्यमान है। वस्तुतः हरिऔध ने द्विवेदीयुगीन काव्यभाषा की कर्कशता में सरसता का संचार किया है। हरिऔध की भाषिक योजना की महत्त्वपूर्ण विशिष्टताएँ निम्नलिखित हैं –

i. हरिऔध का भाषा पर असाधारण अधिकार है। उनकी कविताओं में भाषा की पूर्ण शक्ति का विकास होता दिखाई पड़ता है। तत्सम शब्दों के साथ तद्भव व देशज शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। अवसरानुकूल सामान्य बोलचाल की भाषा का प्रयोग भी हुआ है।
ii. वाक्य-विन्यास सुगठित है। उसमें खड़ीबोली हिन्दी की मूल प्रवृत्तियों का ध्यान रखा गया है।
iii. सामासिक पदों का विधान मिलता है, यथा – शक्ति-सौन्दर्य-समन्वित, कर्म-भावना-प्रसून, वस्तु-व्यापार-योजना आदि।
iv. 'चुभते चौपदे', 'चोखे चौपदे' और 'बोलचाल' आदि काव्य-रचनाओं में मुहावरों और कहावतों के प्रयोग द्वारा लाक्षणिकता का समावेश हुआ है।
v. छन्द और भावों के अनुरूप भाषा का प्रयोग किया गया है।

1.3.2.2. बिम्ब-विधान

काव्यभाषा सामान्य भाषा से भिन्न होती है। सामान्य भाषा केवल अर्थ व्यक्त करती है जबकि काव्यभाषा चित्रों का विधान करती है। यह चित्रात्मकता काव्य में 'बिम्ब-विधान' से आती है। बिम्बात्मक काव्यभाषा रचना में चमत्कार उत्पन्न करती है। बिम्ब वह शब्दचित्र है जो कल्पना द्वारा ऐन्द्रिक अनुभवों के आधार पर निर्मित होता

है। बिम्ब द्वारा जो चित्र सृजित होते हैं वे भावों और अनुभूतियों को उद्वेलित करने की शक्ति रखते हैं। ऐसा होने पर ही बिम्ब-विधान को सार्थक कहा जाता है। विद्वानों ने विभिन्न आधारों पर बिम्ब के अनेक भेद किये हैं। इनमें ऐन्द्रिक बिम्ब प्रमुख हैं जो विभिन्न इन्द्रियों से सम्बन्धित होते हैं, यथा – चाक्षुष बिम्ब, नाद बिम्ब, आस्वाद्य बिम्ब, घ्रातव्य बिम्ब, स्पर्श्य बिम्ब। इसके अतिरिक्त काल्पनिक बिम्ब और प्रेरक अनुभूति के आधार पर निर्मित सरल बिम्ब, संकुल बिम्ब, भावातीत बिम्ब, तात्कालिक बिम्ब आदि अन्य भेद हैं।

हरिऔध की बिम्ब योजना सायास है। उनके बिम्ब भावात्मक एवं आलंकारिक हैं। अधिकांश बिम्ब रूपक, उपमा और मानवीकरण जैसे अलंकारों के माध्यम से निर्मित किये गए हैं। हरिऔध के बिम्बों का आधार उनकी सादृश्यमूलक अलंकार योजना है। चित्रात्मकता के कारण भाव सहज सम्प्रेषणीय हैं। उनकी काव्य-शैली मार्मिक एवं भावपूर्ण है। यशोदा के विरह-वर्णन की अभिव्यंजना देखिए –

प्रिय-पति वह मेरा प्राणप्यारा कहाँ है।
दुख-जलधि निमग्ना का सहारा कहाँ है।
अब तक जिसको मैं देख के जी सकी हूँ।
वह हृदय हमारा नेत्र-तारा कहाँ है॥

पल-पल जिसके मैं पंथ को देखती थी।
निशि-दिन जिसके ही ध्यान में थी बिताती।
उर पर जिसके है सोहती मंजुमाला।
वह नवनलिनी से नेत्रवाला कहाँ है॥

स्वयं को उच्च मानने वाली जातियों द्वारा दीन-हीन, दबी-कुचले और शोषित वर्ग के प्रति किये गए अन्याय और दुर्व्यवहार का मार्मिक व कारुणिक वर्णन हरिऔध प्रभावी बिम्ब के माध्यम से प्रस्तुत करते हैं –

आप आँखें खोल करके देखिए।
आज जितनी जातियाँ हैं सिर-धरी।
पेट में उनके पड़ी दिखलायेंगी।
जातियाँ कितनी सिसकती या मरी॥

1.3.2.3. छन्द योजना

छन्द से काव्य में गेयता तथा प्रभविष्णुता का समावेश होता है। चारुता-विधान में छन्द ही सर्वाधिक सहायता पहुँचाता है। छन्दबद्ध कविताएँ मानस-पटल पर सीधे उतरती जाती हैं। उनका प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक स्थायी होता है। मुकुन्ददेव शर्मा के अनुसार "हरिऔध की काव्य-कृतियों में वर्ण्य-विषय के समान ही छन्द के क्षेत्र में भी अद्भुत वैविध्य मिलता है। वे दोहा, कविता या सवैया के प्रयोग तक ही सीमित नहीं रहे, अपितु रोला, छप्पय, कुण्डलिया, सरसी, तांटक, लावनी, वीर आदि छन्दों के साथ-साथ उर्दू शैली के चौपदों का भी अत्यन्त

कुशलतापूर्वक विधान करते हैं। यही वजह है कि छन्दों एवं भावों के अनुरूप भाषा-प्रयोग करने की उनकी अद्‌भुत सामर्थ्य के कायल उनके आलोचक भी हैं।"

1.3.3. 'प्रियप्रवास' का सामयिक सन्दर्भ

'प्रियप्रवास' की रचना सन् 1914 ई. में हुई। यह खड़ीबोली हिन्दी का प्रथम महाकाव्य है। यह कवि की प्रबन्ध-पटुता एवं काव्य-प्रतिभा के उत्कर्ष का परिचायक है। 'प्रियप्रवास' मूलतः वियोगप्रधान काव्य-ग्रन्थ है। वियोग वात्सल्य का चित्रण भी इसमें प्रमुखता से हुआ है। यशोदा के विलाप में वेदना एवं पीड़ा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। साथ ही अवसरानुकूल संयोग शृंगार, रौद्र, अद्‌भुत एवं भयानक रसों का भी सुन्दर परिपाक हुआ है। 'प्रियप्रवास' महाकाव्य महान् उद्देश्य से अभिप्रेरित है। कवि की रचनात्मक प्रवृत्ति मूल्यहीनता की कोरी चिन्ता करने की नहीं, अपितु मूल्यों को प्रतिष्ठित करने की है जहाँ लोकसेवा एवं लोकोपकार ही जीवन का मूल उद्देश्य है। राधा और कृष्ण के चरित्र यही प्रेरणा देते हैं।

1.3.3.1. 'प्रियप्रवास' की कथावस्तु

'प्रियप्रवास' की कथावस्तु कृष्ण के मथुरागमन, राधा एवं गोपियों की विरह व्यथा, पवन दूती प्रसंग, यशोदा की व्यथा, उद्धव-गोपी संवाद, राधा-उद्धव संवाद आदि मार्मिक प्रसंगों पर आधारित है। कृष्ण के जीवन के प्रमुख प्रसंगों, यथा – पूतना वध, बकासुर वध, शकटासुर वध, कालीनाग वध, कंस वध, जरासंध वध आदि, का उल्लेख यथास्थान किया गया है। राधा-कृष्ण के परम्परागत चरित्र को युगीन साँचे में ढालकर मानवीय धरातल पर प्रस्तुत किया गया है। 'प्रियप्रवास' की राधा विरहिणी मात्र नहीं है अपितु वह लोकसेविका एवं समाजसेविका भी है। इसी प्रकार कृष्ण भी जननायक अधिक प्रतीत होते हैं। जन्मभूमि के प्रति अटूट श्रद्धा, दुराचारी के प्रति विद्रोह, अन्याय-दमन, स्वदेश-प्रेम एवं लोकोपकार के भाव भी इस कथा में पिरोये गए हैं। भारतीय संस्कृति का उज्ज्वल रूप 'प्रियप्रवास' महाकाव्य में सफलतापूर्वक चित्रित हुआ है। आध्यात्मिक एवं लौकिक प्रेम को प्रस्तुत करते हुए भी कवि का ध्यान लोकपक्ष एवं लोक-कल्याण पर केन्द्रित रहा है।

'प्रियप्रवास' की कथावस्तु सत्रह सर्गों में निबद्ध है। प्रथम सर्ग में संध्या-वर्णन है। द्वितीय सर्ग में कृष्ण के प्रति आसक्त गोकुलवासियों की विरह-व्यथा का चित्रण है। तृतीय सर्ग में नन्द की व्याकुलता एवं यशोदा द्वारा कृष्ण की कुशलता के लिए मनायी गई मनौतियों का वर्णन है। चौथे सर्ग में राधा के सौन्दर्य का चित्रण किया गया है। पाँचवें एवं छठे सर्ग में सम्पूर्ण गोकुल के विरह का निरूपण हुआ है। इसी सर्ग में राधा एवं माता यशोदा की व्यथा की मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। सातवें सर्ग में नन्द के मथुरा लौट आने पर पुत्र-वियोग से व्यथित माता यशोदा के पुत्र विषयक प्रश्नों का हृदयस्पर्शी वर्णन उल्लेखनीय है। आठवें सर्ग में गोकुलवासियों को अतीत में कृष्ण के साथ बिताये दिनों की स्मृति करते दिखाया गया है। नौवें सर्ग में कृष्ण को गोकुल के स्मरण में व्यथित होते दिखाया गया है। दसवें व ग्यारहवें सर्ग में उद्धव प्रसंग है। उद्धव गोकुलवासियों को सांत्वना और उपदेश देते हैं। ग्यारहवें सर्ग में कृष्ण के लोकोपकारी स्वरूप का चित्रण हुआ है। बारहवें सर्ग में कृष्ण को जननायक के रूप में

चित्रित किया गया है। चौदहवें सर्ग में गोपी-उद्धव संवाद है। पन्द्रहवें सर्ग में कृष्ण-विरह में व्यथित गोपियों की दीन-हीन दशा का मार्मिक वर्णन है। सोलहवें सर्ग में राधा-उद्धव संवाद है। सत्रहवें सर्ग में कवि ने प्रतिपादित किया है कि विश्वप्रेम की भावना व्यक्तिगत प्रेम की कामना से अधिक महत्त्वपूर्ण है।

1.3.3.2. आधुनिक सन्दर्भ एवं मानवीय चेतना

'प्रियप्रवास' के प्रमुख पात्र राधा एवं कृष्ण हैं। उनके परम्परागत चरित्रों को सुरक्षित रखते हुए हरिऔध ने युगानुकूल परिवर्तन किया है। यहाँ कृष्ण को ईश्वर न मानकर एक महापुरुष, लोकसेवक व जननायक स्वीकार किया गया है। हरिऔध के कृष्ण मानवता के अनन्य पुजारी, अन्याय-दमन में सदैव तत्पर तथा जन्मभूमि के अनुराग से युक्त सच्चे देशभक्त हैं। चारित्रिक सद्‌गुण, सदाचरण एवं उदात्त मानवीय भावनाएँ उन्हें सामान्य मानव से बढ़कर 'महामानव' के रूप में प्रतिष्ठापित करती हैं।

'प्रियप्रवास' की राधा भी अपने परम्परागत स्वरूप में वर्णित न होकर नवयुग के अनुरूप सद्‌गुणों से सम्पन्न नायिका के रूप में प्रस्तुत हुई हैं। वे आँसू बहाने वाली विरहिणी नहीं हैं, प्रत्युत कर्त्तव्यपरायण, परदुःखकातर लोकसेविका हैं। नारी सुलभ गुणों से परिपूर्ण राधा आजन्म कौमार्यव्रत का पालन करते हुए लोकसेवा एवं लोकोपकार के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर कर देती है। कृष्ण की अनन्य प्रेमिका राधा का जीवन कृष्णमय है। ब्रजभूमि की सेवा में अपना जीवन समर्पित कर वह ब्रज की आराध्य देवी बन जाती है।

द्विवेदीयुगीन प्रकृति-चित्रण में पर्याप्त स्थूलता है। वहाँ कल्पना-वैभव एवं सौरस्य का अभाव है किन्तु यथार्थ की ताज़गी है। प्रकृति का आलम्बन रूप में चित्रण अधिक हुआ है। 'प्रियप्रवास' में प्राकृतिक सौन्दर्य की अनेकविध छटा नाना प्रसंगों में दिखाई देती है। कवि ने वातावरण-निर्माण के लिए भी प्रकृति-चित्रण किया है। 'प्रियप्रवास' का तो आरम्भ ही प्रकृति-वर्णन से हुआ है –

दिवस का अवसान समीप था।
गगन था कुछ लोहित हो चला।
तरु-शिखा पर थी अब राजती।
कमलिनी-कुल-वल्लभ की प्रभा॥

उद्दीपन रूप में प्रकृति का चित्रण देखिए –

आके तेरे निकट कुछ भी मोद पाती न मैं हूँ।
तेरी तीखी महक मुझको कष्टिता है बनाती॥

अपने युग का सजीव चित्रांकन करने में हरिऔध सफल हुए हैं। युगीन मान्यताओं के कारण ही राधा-कृष्ण के परम्परागत स्वरूप में परिवर्तन किये गए हैं। लोकसेवा, परदुःखकातरता, विश्वबन्धुत्व, मानवता तथा धार्मिक सहिष्णुता के जो भाव 'प्रियप्रवास' में उजागर किये गए हैं, वे युगीन मान्यताओं के अनुरूप हैं। उदाहरणार्थ

उद्धव के मुख से यह सुनकर कि कृष्ण सर्वजनहिताय लोकमंगलकारी कार्यों में संलग्नऔर लीन हैं, राधा अपनी विरह-वेदना विस्मृत कर देती है। विश्वप्रेम की भावना के वशीभूत होकर वह स्वयं को जन-जन की सेवार्थ समर्पित कर देती है । अपने परम्परागत स्वरूप से भिन्न हरिऔध की राधा सात्त्विकता, मानवता, कर्त्तव्यनिष्ठा एवं विश्वबन्धुत्व की साकार प्रतिमूर्ति है। राधा की विरह-वेदना का चित्रण 'प्रियप्रवास' के छठे सर्ग में है। वह पवन को अपना दूत बनाकर उसे प्रियतम कृष्ण के पास मथुरा भेजती है और उससे अनुरोध करती है कि तू मेरे प्रियतम की चरण धूल ला दे। मैं उसी को लगाकर अपने हृदय को शान्त कर लूँगी –

पूरी होवें न यदि तुझसे अन्य बातें हमारी।
तो तू मेरी विनय इतनी मान ले औ चली जा॥
छू के प्यारे कमल पग को प्यार के साथ आ जा।
जी जाऊँगी हृदयतल में मैं तुझी को गले लगा के॥

परदुःखकातर राधा पवन को कहती है कि मार्ग में मिलने वाले रोगी, श्रान्त पथिक और क्लान्त कृषक बाला को अपने शीतल स्पर्श से सुख पहुँचाना और उनकी थकान दूर करना तेरा प्राथमिक कर्त्तव्य है।

1.3.3.3. सामाजिक-सांस्कृतिक सन्दर्भ

'प्रियप्रवास' में सामाजिक-सांस्कृतिक जटिलता व विरूपता के प्रति सहवेदना और उनके कारणों के प्रति क्षुब्ध प्रश्नात्मकता के साथ ही व्यक्ति के अस्तित्वबोध और उसकी आन्तरिक पीड़ा की मुखर अभिव्यक्ति हुई है। यह अभिव्यक्ति इतनी संतुलित और सार्थक है कि व्यक्तिवादी कवियों के अहंकार तथा मंचीय कवियों के'दर्द के दायरे' इसके उदात्त स्तर को छू भी नहीं सकते। 'प्रियप्रवास' की राधा नन्द-यशोदा को सांत्वना देने उनके घर जाती है, उद्विग्न ग्वाल-बालों एवं गोपियों को धीरज बँधाती है और दीन-दुखियों एवं अनाथों की सेवा करती हुई अन्ततः लोकसेवा को ही अपने जीवन का ध्येय बना लेती है। राधा और कृष्ण की सामाजिक-सांस्कृतिक संलग्नता और मानवीयता उनके चरित्रों को यथार्थ स्वरूप प्रदान करती है।

1.3.4. विश्वप्रेम

व्यष्टि और समष्टि की अपरिहार्य एकरूपता एक महत्त्वपूर्ण घटक है। व्यक्तिगत जीवन की पद्धति जब व्यापक संवेदना के साथ संधारित हो जाती हैतब अनुभव की सामाजिक परम्परा वैश्विक व बहुआयामी सन्दर्भों के साथ जन्म लेने लगती है। व्यक्तिगत संवेदना का सामाजिक संवेदना के साथ रूपान्तरण संघर्ष की प्रक्रिया से लगातार जूझता है और कवि की दृष्टि को शनैः शनैः विकसित करता है। किन्तु यदि उसकी वैयक्तिक संवेदना सामाजिक संवेदना में रूपान्तरित नहीं हो पाती तो धीरे-धीरे वह जड़ होने की प्रक्रिया में आ जाती है। व्यक्तिवादिता और आत्मनिर्वासन की जड़ें क्रमशः इतनी गहरी होती जाती हैं कि सम्पूर्ण मानसिकता ही संज्ञाशून्य और विद्रूप हो जाती है।

हरिऔध एक समर्थ व संवेदनशील रचनाकार हैं। वे मानवीय संसार के रचनाकार हैं। मनुष्येतर संसार से उनका उतना ही लगाव है जितना मानवीय संसार को समझने और अभिव्यक्त करने में सहायक हो सके। वे मनुष्य के अन्तर्मन में झाँककर देख लेते हैं और उसकी अभिप्रेरणा बन जाते हैं। कवि की चिन्तन की गहराई उनकी कृतियों में स्पष्टतः दिखाई देती है। 'प्रियप्रवास' की रचना-प्रक्रिया में राधा-कृष्ण का चरित्रांकन हरिऔध के सनातन संस्कारों से युक्त मानवीय चिन्तन का परिणाम है। डॉ॰ मुकुन्ददेव शर्मा के शब्दों में अपने वर्तमान से जूझना किसी रचना की अनिवार्यता है। पर यह रचना-कार्य किसी सरलीकरण से नहीं किया जा सकता। 'हरिऔधजी' का 'प्रियप्रवास' राधा-कृष्ण के माध्यम से नयी संभावनाओं को उजागर करने वाला अद्‌भुत ग्रन्थ है। इसमें कवि की चेष्टा है कि राधा-कृष्ण के परम्परागत चरित्र में छेड़छाड़ किये बिना ही उनके व्यक्तित्व को नये आयाम दिए जाएँ। इसमें अनुभूति का ऐसा फैलाव या बिखराव नहीं दिखता है कि रचना की प्रभावान्विति ही समाप्त हो जाए। सत्रहवें सर्ग में 'विश्व प्रेम' की मार्मिक अभिव्यंजना करते हुए कवि अपने रचनात्मक प्रतिपाद्य को बखूबी स्मरण रखता है। परिणामस्वरूप उसकी रचनात्मक अनुभूति सर्ग के पूरा होते ही समापन ग्रहण कर लेती है और किसी प्रकार का अनावश्यक विस्तार न देकर हरिऔधजी पूरे कथानक को बोझिल होने से सफलतापूर्वक बचा लेते हैं।

1.3.4.1. आध्यात्मिक एवं लौकिक प्रेम की अभिव्यंजना

'प्रियप्रवास' में राधा-कृष्ण की आध्यात्मिक एवं लौकिक प्रेमाभिव्यंजना में कोई फिसलन नहीं है, अपितु यहाँ परम्परागत चिन्तन को समृद्ध करते हुए उस पर जमी काई को फाड़ डालने की शक्ति है। दूसरे के दुःख को अपना अवसाद मानकर उसे जागरूक, धैर्यशील व संघर्षशील बनाने की प्रवृत्ति हरिऔध को बेचैन बनाए रखती है। जीवन-जगत् की गाँठों को खोलने के लिए ही उन्होंने राधा-कृष्ण के प्रेम की नूतन व्याख्या की है। आध्यात्मिक एवं लौकिक प्रेम को प्रस्तुत करते हुए भी रचनाकार का ध्यान लोकपक्ष एवं विश्व-कल्याण पर केन्द्रित रहा है। 'प्रियप्रवास' की राधा के लिए अपनी आँखों की नमी का कोई खास महत्त्व नहीं है। दूसरों की आँखों की नमी उसे व्यथित करती है। 'प्रियप्रवास' की राधा में एक व्यग्र और सन्नद्ध चरित्र दिखाई देता है जो मनुष्य की समानता, विश्वबन्धुत्व और विश्व-कल्याण के सिंहद्वार को खोलने के लिए अकेले ही आगे नहीं बढ़ता, अपितु सामान्य जन को भी अपने साथ आने के लिए आमन्त्रित करता है। राधा की कामना यही है कि कृष्ण मथुरा से भले ही न लौटें पर लोकहित में सदैव संलग्न रहें –

प्यारे जीवें जग-हित करें, गेह चाहे न आवें।

'प्रियप्रवास' की राधा जायसी की नागमती, सूर की राधा, गुप्त की यशोधरा एवं ऊर्मिला आदि अन्य विरहिणियों से भिन्न है। यद्यपि यशोधरा की व्यथा कुछ-कुछ राधा की व्यथा के समान अवश्य है तथापि वहाँ जीवन का ध्येय लोकसेवा और परोपकार नहीं है, जबकि 'प्रियप्रवास' की राधा परदुःखकातर है जो लोकसेवा और परोपकार को अपने जीवन का मूल ध्येय बनाकर कृष्ण के प्रति अपने आध्यात्मिक एवं लौकिक प्रेम को

विश्वप्रेम में रूपान्तरित कर देती है। द्विवेदीयुगीन आदर्शवादी साँचे में ढली हुई राधा अनुपम व्यक्तित्व वाली ऐसी नारी है जो अपने त्याग, सेवा और परोपकार जैसे उदात्त गुणों के कारण जन-जन की प्रिय बन जाती है।

1.3.4.2. लोकहित की कामना एवं विश्व प्रेम की अभिव्यक्ति

हरिऔध द्विवेदीयुग के प्रतिनिधि कवि हैं। द्विवेदीयुग में राष्ट्रीयता, समाज-सुधार, नवजागरण, स्वातन्त्र्य-चेतना, मानवतावाद, सामाजिक समता एवं गाँधीवाद का बोलबाला था। हरिऔध की रचनाओं में उपर्युक्त समस्त विशेषताएँ विद्यमान हैं। अपने काव्य में जीवन-मूल्यों का समावेश करते हुए हरिऔध ने युगबोध एवं समसामयिकता की प्रवृत्ति का परिचय दिया है। 'प्रियप्रवास' के राधा-कृष्ण के चरित्रांकन में प्रेम का आदर्श एवं उसके उदात्त स्वरूप को देखा जा सकता है। राधा सम्पूर्ण विश्व में कृष्ण की कान्ति का दर्शन कर विश्वप्रेमिका और विश्वसेविका बन जाती है। 'प्रियप्रवास' के सत्रहवें सर्ग में लोकहित की कामना करते हुए कवि हरिऔध विश्वप्रेम की अभिव्यंजना करते हैं। राधा के माध्यम से वे सिद्ध करते हैं कि विश्वप्रेम व्यक्तिगत प्रेम से अधिक श्रेयस्कर है।

काव्य समाज-दर्शन और सामाजिक प्रेरणा का शास्त्र है। समसामयिक समाजदृष्टि को परिभाषित, व्याख्यायित और पुरातन मूल्यों को प्रतिष्ठित करने में काव्य की प्रमुख भूमिका है। 'प्रियप्रवास' के कथानक में समसामयिकता की अनुभूति होती है। सामाजिक विवेक का जागरण, विश्व-कल्याण, सार्वजनिक व सार्वभौमिक हित-चिन्तन तथा अमानवीय शक्तियों से संघर्ष का भाव विकसित करना कवि का अभीष्ट है। लोककल्याण के निमित्त वे राधा-कृष्ण के सहज व संवेदनशील चरित्र का विकास करते हैं। सामाजिक व मानवीय यथार्थ का आग्रह, अन्याय का प्रतिकार, पक्षपात का विरोध और विसंगतियों के बखान 'प्रियप्रवास' के कथानक को सामयिक बनाता है और हरिऔध की जागरूकता को प्रमाणित करता है। लोकहित एवं विश्वप्रेम की कामना अभिव्यक्त करती राधा की मनःस्थिति द्रष्टव्य है –

हो के राधा विनत कहतीं मैं नहीं रो रही हूँ।
आता मेरे दृग-युगल में नीर आनन्द का है।
जो होता है पुलक कर के आप की चारु सेवा।
हो जाता है प्रकटित वही वारि द्वारा दृगों में॥

* * *

होती मारे मन यदि कहीं गोप की पंक्ति बैठी।
किम्वा होता विकल उनको गोप कोई दिखाता।
तो काय्यों में सविधि उनको यत्नतः वे लगातीं।
औ ए बातें कथन करतीं भूरि गंभीरता से॥

वर्तमान समय में नष्ट होते सामाजिक मूल्य व बढ़ते भौतिकवाद के प्रभावस्वरूप मानवीयता और नैतिकता लुप्त होती जा रही है। निसर्ग-चित्रण, ग्राम्य-जीवन की सहजता, मूल्य-चेतना और मनःस्थितियों के

रेखांकन के माध्यम से कवि ने नैतिक जीवन-मूल्यों का महत्त्व प्रतिपादित किया है। खण्डित व्यक्तित्व की दुविधाजन्य मानसिकता को राधा के चरित्र में वे रचनात्मक व लयात्मक रेखाओं में बाँधते हैं।

'प्रियप्रवास' हरिऔध की चिन्तनशील प्रवृत्ति एवं सामाजिक प्रतिबद्धता को उजागर करता है। वस्तुतः मनुष्यता और सभ्यता की आधारभूमि व्यक्ति की स्वतन्त्र-चेतना नहीं है, अपितु समाज एवं विश्व-कल्याण की चेतना का सन्दर्भित होना ही सभ्यता का आधार और मानवीयता का सेतु है। राधा-कृष्ण के प्रेम के माध्यम से हरिऔध की मंगल कामना है कि–

देखो प्यारी भगिनि भव को प्यार की दृष्टियों से।
जो थोड़ी भी हृदय-तल में शान्ति की कामना है॥

* * *

उद्योगी हो परम रुचि से कीजिये कार्य्य ऐसे।
जो प्यारे हैं परम-प्रिय के विश्व के प्रेमिकों के॥

1.3.5. पाठ-सार

लोकहित एवं विश्व-कल्याण की भूमिका कभी एकांगी नहीं होती। वह वर्ग, जाति या किसी संगठन विशेष तक सीमित न होकर सम्पूर्ण मनुष्यता व विश्वकल्याण का उन्नत लक्ष्य लेकर चलती है। लोकहित एवं विश्वप्रेम का आलम्बन है, 'वैयक्तिक और सामाजिक जाग्रति।' लोकहित का धर्म व स्वरूप जाग्रत् मनुष्यत्व, सहअस्तित्व, सहबन्धुत्व, सहजीवन का प्रतीक है। यह पूर्णता का जीवन है, रिक्त जीवन नहीं। लोकहित एवं मानव-सेवा से विरहित कोरी आध्यात्मिकता निरर्थक है इसलिए मानवता से भिन्न आत्मपूर्णता खोजना बालू से तेल निकालना है अथवा उस एकांगी सत्य को पकड़ना है जो निष्क्रिय और अनुपयोगी है। 'प्रियप्रवास' के माध्यम से हरिऔध ने नर-नारी, बूढ़े-बच्चे-युवा, प्रकृति सभी की काया में परकाय प्रवेश किया है। राधा-कृष्ण के चरित्र को केन्द्र में रखकर अपने रचनात्मक प्रतिपाद्य के साथ न्याय करने में उन्होंने कोई कसर नहीं रख छोड़ी है।

1.3.6. शब्दावली

पुरातन	:	प्राचीन
उदात्त	:	श्रेष्ठ
आलम्बन	:	आधार
सहजीवन	:	जीवनसहित
विरहित	:	पृथक्

1.3.7. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. वाजपेयी, नन्ददुलारे, आधुनिक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
2. वाजपेयी, नन्ददुलारे, हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.
3. शर्मा, हरिचरण, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, मलिक एंड कंपनी, जयपुर.
4. नवल, नन्दकिशोर, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली.
5. शर्मा, मुकुन्द देव, हरिऔध और उनका साहित्य, हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी.

1.3.8. बोध प्रश्न

टिप्पणी लिखिए –

1. 'प्रियप्रवास' में प्रकृति-चित्रण।
2. हरिऔध की कविताएँ।
3. हरिऔध का भाषिक विधान।
4. 'प्रियप्रवास' की राधा।
5. 'प्रियप्रवास' की काव्य-शैली।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. "राधा और कृष्ण को सामान्य नायक-नायिका के स्तर से उपर उठाकर विश्वसेवी तथा विश्वप्रेमी के रूप में चित्रित करने में हरिऔध ने अपनी मौलिकता का परिचय दिया है।" स्पष्ट कीजिए।
2. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' की काव्यकला पर प्रकाश डालिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. निम्नलिखित में से हरिऔध की काव्य-रचना है –

(क) रसकलश
(ख) प्रियप्रवास
(ग) वैदेही वनवास
(घ) उपर्युक्त सभी

2. 'प्रियप्रवास' किस भाषा में लिखा गया प्रथम महाकाव्य है ?

(क) खड़ीबोली
(ख) अवधी

(ग) ब्रजभाषा

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

3. हरिऔध की किस कृति के आधार पर उन्हें 'मंगलाप्रसाद पारितोषिक' पुरस्कार प्राप्त हुआ ?

(क) प्रियप्रवास

(ख) वैदेही-वनवास

(ग) रसकलश

(घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. 'प्रियप्रवास' का आरम्भ होता है –

(क) प्रकृति-वर्णन से

(ख) नगर-वर्णन से

(ग) शृंगार-वर्णन से

(घ) उपर्युक्त सभी से

5. 'कबीर कुण्डल' के रचयिता हैं –

(क) आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी

(ख) रामनरेश त्रिपाठी

(ग) श्रीधर पाठक

(घ) अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 1 : हिन्दी नवजागरण काव्य

इकाई – 4 : मैथिलीशरण गुप्त का काव्य-शिल्प, गुप्त के काव्य में युगीन परिवेश, भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना, 'साकेत' में ऊर्मिला की विरह-भावना, 'साकेत' में लोक-कल्याण की भावना

इकाई की रूपरेखा

1.4.00. उद्देश्य कथन
1.4.01. प्रस्तावना
1.4.02. गुप्त का जीवन-परिचय और काव्य-परिचय
- 1.4.02.1. जीवन-परिचय
- 1.4.02.2. काव्य-परिचय

1.4.03. गुप्त का काव्य-शिल्प
- 1.4.03.1. अलंकार-विधान
- 1.4.03.2. छन्द-योजना
- 1.4.03.3. प्रतीक-योजना
- 1.4.03.4. बिम्ब-विधान
- 1.4.03.5. शैली
- 1.4.03.6. भाषा

1.4.04. गुप्त के काव्य में युगीन परिवेश
1.4.05. भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना
- 1.4.05.1. भारतीय संस्कृति
- 1.4.05.2. राष्ट्रीय भावना

1.4.06. 'साकेत' में ऊर्मिला की विरह-भावना
- 1.4.06.1. तीव्र विरहानुभूति
- 1.4.06.2. आदर्शीकरण
- 1.4.06.3. प्रकृति-चित्रण

1.4.07. 'साकेत' में लोक-कल्याण की भावना
1.4.08. पाठ-सार
1.4.09. बोध प्रश्न
1.4.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1.4.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के काव्य-शिल्प, उनके काव्य में युगीन परिवेश, भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना तथा 'साकेत' में ऊर्मिला की विरह-भावना का विस्तृत अध्ययन करेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

i. मैथिलीशरण गुप्त के जीवन और काव्य से परिचित हो सकेंगे ।
ii. गुप्त के काव्य-शिल्प को समझ सकेंगे ।
iii. गुप्त के काव्य में वर्णित युगीन परिवेश को जान सकेंगे।
iv. गुप्त के काव्य में निहित भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना से अवगत हो सकेंगे।
v. 'साकेत' में विद्यमान ऊर्मिला की विरह-भावना से परिचित हो सकेंगे ।

1.4.01. प्रस्तावना

हिन्दी कविता को रीतिकालीन प्रवृतियों से पूर्ण तरह मुक्त कर उसे आधुनिककालीन प्रवृतियों से जोड़ने का श्रेय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को दिया जाता है । उन्होंने कविता को जड़ता से प्रगति और रूढ़िवादिता से स्वच्छन्दता की ओर उन्मुख किया । 'सरस्वती' पत्रिका के सम्पादक के रूप में द्विवेदीजी ने हिन्दी साहित्य जगत् को अनेक प्रकार से प्रभावित किया । एक ओर उन्होंने हिन्दी गद्य का संस्कार, परिष्कार और परिमार्जन किया तो दूसरी ओर लेखकों को उनकी कमियों से अवगत करवाते हुए उनकी भूलों को सुधार कर भाषा को परिष्कृत किया । आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से अनेक हिन्दी कवि सामने आए और उनके आदर्शों को लेकर आगे बढ़े । इनमें से प्रमुख हैं – मैथिलीशरण गुप्त, गोपाल शरण सिंह, गयाप्रसाद 'सनेही', लोचन प्रसाद पाण्डेय आदि ।

द्विवेदी युग के सर्वश्रेष्ठ कवि मैथिलीशरण गुप्त को आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिनिधि और राष्ट्रकवि के रूप में जाना जाता है । उन्होंने अपनी कविताओं में भारत के आर्य जातीय संस्कार, मर्यादा और मूल्यों का रक्षण भरपूर रूप से किया है । उन्होंने हिन्दी साहित्य और समाज के उपेक्षित नारी पात्रों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या कर पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त की । अंग्रेजी शासन के खिलाफ भारतीय जनता को प्रेरित करने में भी गुप्त ने विशेष योगदान दिया और साम्राज्यवादी शासन का खुलकर विरोध किया । उनकी 'भारत भारती' को इसी सन्दर्भ में आधुनिक युग की गीता कहा जाता है। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप गुप्त के व्यक्तित्व और कृतित्व की विशेषताओं से भलीभाँति परिचित हो सकेंगे ।

1.4.02. गुप्त का जीवन-परिचय और काव्य-परिचय

मैथिलीशरण गुप्त ने महावीरप्रसाद की प्रेरणा से खड़ीबोली को अपनी रचनाओं का माध्यम बनाया और खड़ीबोली को काव्यभाषा के रूप में पहचान दिलाने की दिशा में सार्थक योगदान दिया । आधुनिककाल की

कविता में जो भी आन्दोलन चले, जो भी नवीन काव्यधाराएँ विकसित हुईं, उन सभी में गुप्तजी को पूर्ण सफलता मिली। साठ वर्ष के सुदीर्घ रचनाकाल में उन्होंने जीवन के प्रायः सभी विषयों, काव्य की सभी शैलियों, सभी काव्य-रसों और सभी प्रकार के पात्रों को अपनी कविता का आधार बनाया। उनके जीवन और काव्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है –

1.4.02.1. जीवन-परिचय

गुप्तजी का जन्म 3 अगस्त 1886 को चिरगाँव, जिला झाँसी, उत्तरप्रदेश में एक वैश्य परिवार में हुआ। उनके पिता का नाम रामचरण गुप्त और माता का नाम काशीबाई था। रामचरण गुप्त स्वयं कविता प्रेमी थे और 'कनक लता' उपनाम से काव्य-रचना करते थे। वे एक निष्ठावान् रामभक्त थे और राम की विष्णुत्व में अटल आस्था रखते थे। इस प्रकार कवि प्रतिभा और रामभक्ति गुप्त को पैतृक देन के रूप में प्राप्त हुए। गुप्तजी की प्रारम्भिक शिक्षा झाँसी के राजकीय विद्यालय में हुई, बाद में उन्हें मैकडोनाल्ड हाई स्कूल में पढ़ने के लिए भेजा गया। किन्तु वहाँ मन नहीं लगने पर घर पर ही शिक्षा का प्रबन्ध किया गया। उन्होंने संस्कृत, हिन्दी और बांग्ला साहित्य का अध्ययन करने के साथ ही इतिहास, पुराण और संस्कृत के काव्य और नाटक का भी अध्ययन किया। अपने पिता से प्रेरणा प्राप्त कर गुप्त ने अल्पायु में ही कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया।

गुप्तजी का पारिवारिक जीवन अधिक सुखी नहीं रहा। क्रमशः उनकी दो पत्नियों की असमय मृत्यु हो गई, तीसरी पत्नी सरयू देवी थीं। उनके एकमात्र पुत्र ऊर्मिलाशरण गुप्त थे और प्रसिद्ध कवि सियारामशरण गुप्त उनके छोटे भाई थे। उन्होंने अधिकतर जीवन एकान्त काव्य-साधना में रहकर बिताया। स्वभाव से संकोची होने के कारण वे सार्वजनिक समारोह आदि से दूर रहते थे। प्रारम्भ में उनकी रचनाएँ वैश्य समाज की पत्रिका में छपती थीं। बाद में द्विवेदीजी ने उनकी प्रतिभा को समझकर और उनकी रचनाओं में आवश्यक संशोधन कर उन्हें सरस्वती पत्रिका में छापना प्रारम्भ कर दिया। महात्मा गाँधी के असहयोग और राष्ट्रीय आन्दोलन से प्रभावित होकर उन्होंने देश-भक्ति और राष्ट्रीय महत्त्व की कविताएँ लिखना प्रारम्भ किया। उनके द्वारा रचित देश-भक्ति की कविताएँ 'भारत-भारती' नाम से प्रकाशित हुई, जिसके पश्चात् राष्ट्र ने उन्हें अनौपचारिक तौर पर राष्ट्रकवि के नाम से सम्बोधित करना प्रारम्भ कर दिया। कविवर की स्वर्ण जयन्ती के अवसर पर महात्मा गाँधी ने उन्हें राष्ट्रकवि की उपाधि से सम्मानित किया। 12 दिसम्बर 1964 को गुप्तजी का देहावसान हुआ।

1.4.02.2. काव्य-परिचय

मैथिलीशरण गुप्त की पहली खड़ीबोली की कविता 'हेमन्त' नाम से सन् 1907 में सरस्वती में प्रकाशित हुई। उनका प्रथम खण्डकाव्य 'रंग में भंग' सन् 1909 में प्रकाशित हुआ। सन् 1910 में 'जयद्रथ वध' और 1914 में 'भारत-भारती' का प्रकाशन हुआ। उन्होंने सतत रूप से काव्य-लेखन का कार्य करते हुए अनेक रचनाएँ लिखीं साथ ही उर्दू, संस्कृत और बांग्ला के ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद भी किया। उनके द्वारा रचित अन्य प्रमुख रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं – किसान, वैतालिका, शकुन्तला, पंचवटी, अनघ, स्वदेश संगीत, हिन्दू, त्रिपथगा, गुरुकुल,

विकटभट, झंकार, साकेत, यशोधरा, मंगलघट, द्वापर, सिद्धराज, नहुष, कुणालगीत, विश्ववेदना, काबा और कर्बला, अजित, प्रदक्षिणा, अंजलि और अर्घ्य, पृथिवीपुत्र, जयभारत, दिवोदास, राजा और प्रजा, विष्णुप्रिया, जयिनी, रत्नावली, लीला, उच्छवास, पद्यप्रबन्धक, पत्रावली । प्रमुख अनुवाद ग्रन्थ इस प्रकार हैं – विरहिणी, वज्रांगना, मेघनाथ वध, प्लासी का युद्ध, रूबाइयात उमर खय्याम, स्वप्नवासवदत्ता, दूत घटोत्कच, गीतामृत, वृत्र संहार, वीरांगना।

मैथिलीशरण गुप्त का सम्पूर्ण काव्य उस युग की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना के विकास के प्रत्येक चरण से प्रभाव ग्रहण करता गया और हिन्दी नवजागरण को अपना योगदान देता रहा । उनके साहित्यिक योगदान के लिए उन्हें अनेक सम्मान प्रदान किये गए । 'साकेत' महाकाव्य के लिए सन् 1936 में हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग में उन्हें मंगलाप्रसाद पारितोषिक और साहित्य वाचस्पति की उपाधि प्रदान की गई। आगरा विश्वविद्यालय ने उन्हें मानद् डी.लिट्. की उपाधि प्रदान की । भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' से अलंकृत किया । सन् 1960 में उन्हें एक बृहत् अभिनन्दन ग्रन्थ भेंट किया गया । राष्ट्रपति ने उनकी साहित्यिक सेवाओं को सम्मान प्रदान करने के लिए दो बार राज्यसभा का सदस्य मनोनीत किया ।

1.4.03. गुप्त का काव्य-शिल्प

काव्य-कृति के निर्माण में जिन उपादानों द्वारा काव्य का ढाँचा तैयार किया जाता है वे सब काव्य के शिल्प-तत्त्व कहलाते हैं । इन उपादानों का प्रयोग कवि अपनी अमूर्त भावनाओं के मूर्त-विधान तथा अभिव्यंजना के सौन्दर्य और शक्ति संवर्द्धन के लिए करता है। गुप्तजी का समग्र काव्य काव्य-शिल्प के मानदण्डों की दृष्टि से उत्तम और सर्वग्राही है । भाषा, शब्द-चयन, शब्द-शक्ति, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, वाक्य-विन्यास, छन्द-विधान, अलंकार-योजना, प्रतीक-योजना आदि मानदण्डों की कसौटी पर उनका काव्य पठनीय और आस्वाद्य है । उनकी शिल्पगत विशेषताओं का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है –

1.4.03.1. अलंकार-विधान

सौन्दर्यप्रियता मनुष्य का स्वाभाविक स्वभाव है । काव्य में अलंकारों का उपयोग सौन्दर्य-वृद्धि के लिए किया जाता है। अलंकार जहाँ एक ओर भावों को सजाने और रमणीयता प्रदान करने में योगदान देते हैं, वहीं दूसरी ओर भावाभिव्यक्ति को प्रांजल बनाकर प्रभावशाली भी बनाते हैं। मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में हमें अलंकारों का सहज स्वाभाविक प्रयोग मिलता है । उन्होंने मात्र अर्थ चमत्कार के लिए ही अलंकारों का प्रयोग नहीं किया वरन् वर्णन में स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता लाने के लिए भी अलंकारों का सुन्दर प्रयोग किया है। उनके काव्य में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, सन्देह, भ्रान्तिमान, अतिशयोक्ति, अनुप्रास, यमक आदि अलंकारों का सार्थक प्रयोग किया गया है । छायावाद के प्रभावस्वरूप उन्होंने मानवीकरण अलंकार का भी प्रयोग किया है। इसके साथ ही कहीं-कहीं व्यतिरेक, विभावना, विरोधाभास और दीपक जैसे अलंकारों का भी प्रयोग मिलता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

उपमा –

मन-सा मानिक मुझे मिला है तुझमें उपल-खनी

रूपक –

जितने कष्ट-कण्टकों में है, जिनका जीवन सुमन खिला,
गौरव-गन्ध उन्हें उतना ही अत्र, तत्र, सर्वत्र मिला।

अनुप्रास –

चारु चन्द्र की चंचल किरणें, खेल रही हैं जल-थल में

व्यतिरेक –

वह मुख देख, पाण्डू-सा पड़कर, गया चन्द्र पश्चिम की ओर।

मानवीकरण –

सखी नील नभस्सर में उतरा, यह हंस अहा तरता-तरता।

1.4.03.2. छन्द-योजना

छन्द काव्य-शिल्प के प्रमुख उपकरणों में से एक है, कविता और छन्द का अन्तरंग सम्बन्ध है। छन्द रागात्मक अनुभूति का सहज और उपयुक्त वाहक है। साहित्यकार की सौन्दर्य अनुभूति यदि सही ढंग से ना हो तो उसका सौन्दर्य नष्ट हो जाता है, जबकि वह छन्द में बँधकर लय से प्रभावित होकर प्रकट होती है तो उसका मूल्य बढ़ जाता है। मैथिलीशरण गुप्त एक कुशल काव्य-शिल्पी हैं। उन्होंने अपने काव्य के भाव वैविध्य और व्यापकता को प्रभावी बनाने के लिए मुक्त छन्दों और परम्परागत छन्दों दोनों का प्रयोग किया है। उनकी ‘जयद्रथ वध’ हरिगीतिका छन्द की श्रेष्ठ कृति है तो ‘साकेत’ में परम्परा के विरुद्ध मुक्त छन्दों का प्रयोग भी किया गया है। गुप्त ने भावों को ओजपूर्ण बनाने के लिए हरिगीतिका और प्रकृति-चित्रण के लिए शिखरिणी या अन्य छोटे छन्दों का प्रयोग किया है।

‘साकेत’ के नवम सर्ग की छन्द-योजना को स्तुत्य प्रयास बताते हुए डॉ॰ नगेन्द्र लिखते हैं कि – “गुप्तजी के साकेत में नवम सर्ग की बदली छन्द योजना ऊर्मिला की विरह-वेदना को करवटें बदल-बदल कर व्यक्त कर देने वाली प्रतीत होती है।” इसका अभिप्राय यह है कि छन्दों की विविधता ऊर्मिला की उत्पीड़ा को क्षण-क्षण में नये आयाम प्रदान करती है। अतः कहा जा सकता है कि छन्द-विधान की दृष्टि से नवम सर्ग एक नूतन प्रयोग है और गुप्तजी उस में सफल रहे हैं।

1.4.03.3. प्रतीक-योजना

साहित्य में प्रतीकों का बड़ा महत्त्व है। प्रतीकों से अर्थबोध का महान् कार्य लिया जाता है। प्रतीक एक प्रकार से रूढ़ उपमान का दूसरा नाम है। जब उपमान स्वतन्त्र न रहकर पदार्थ विशेष के लिए रूढ़ हो जाता है तो वह प्रतीक बन जाता है। इस प्रकार प्रत्येक प्रतीक अपने मूल रूप में उपमान होता है। प्रतीक देश-काल के अभिव्यंजक होते हैं, मैथिलीशरण गुप्त का प्रतीक विधान भी अपने युगबोध का द्योतक है। उन्होंने छायावादी प्रतीकों के साथ ही उर्दू-फारसी, बांग्ला प्रतीकों को भी अपने काव्य में स्थान दिया है। प्रतीकों के प्रयोग ने उनकी भावाभिव्यक्ति को और अधिक प्रभावी बना दिया है। 'साकेत' का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

ऊषा-सी आयी थी जग में, संध्या सी क्या जाऊँ
श्रान्त पवन से वे आवें, मैं सुरभि समान समाऊँ।

1.4.03.4. बिम्ब-विधान

बिम्ब-विधान आधुनिक काव्य की प्रमुख विशेषता है। बिम्ब काव्य में संक्षिप्तता, रंजकता और भाव सरसता की सृष्टि करता है। यद्यपि द्विवेदीयुगीन काव्य-शिल्प में बिम्ब-विधान को विशेष महत्त्व नहीं मिला, किन्तु छायावादी काव्य में इनका आवश्यक रूप से प्रयोग किया गया। गुप्तजी पर छायावादी काव्य-विधान का प्रभाव था अतः उनके काव्य में हमें विविध बिम्बों के सुन्दर प्रयोग देखने को मिलते हैं। साकेत नगरी के निःस्तब्ध वातावरण का प्रस्तुत चित्र दृश्य-बिम्ब का सुन्दर उदाहरण है –

नगरी थी निःस्तब्ध पड़ी क्षणदा-छाया में,
भुला रहे थे स्वप्न हमें अपनी माया में।

* * *

पुरी-पार्श्व में पड़ी हुई थी सरयू ऐसी,
स्वयं उसी के तीर हंसम्माला थी जैसी।

1.4.03.5. शैली

मैथिलीशरण गुप्त ने महाकाव्य, खण्डकाव्य, प्रगीतकाव्य और मुक्तक कविताओं की भी रचना की है। महाकाव्य के रूप में उनके द्वारा रचित साकेत और द्वापर उल्लेखनीय हैं। खण्डकाव्य में जयद्रथ वध, नहुष और पंचवटी उनकी लोकप्रिय रचनाएँ हैं। यद्यपि शैली विधान में गुप्तजी ने संस्कृत साहित्य का अनुकरण किया है तथापि नयी तकनीक और स्वरूपों को भी उन्होंने पर्याप्त महत्त्व दिया है। उदाहरण के लिए 'साकेत' में परम्परागत महाकाव्य के लक्षण मिलते हैं किन्तु फिर भी उसमें छन्द विधान का नियम नहीं अपनाया गया है। अतः कहा जा सकता है कि गुप्त का समग्र काव्य-शैली की दृष्टि से श्रेष्ठ है।

1.4.03.6. भाषा

गुप्तजी ने महावीरप्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा से काव्य-सृजन के लिए खड़ीबोली हिन्दी का प्रयोग किया। उन्होंने अपनी विविध रचनाओं में खड़ीबोली का प्रयोग कर उसे काव्य के लिए कोमल और काव्योचित गरिमा से सम्पन्न कर दिया। उनकी रचनाओं में खड़ीबोली के प्रकृत और सहज रूप के दर्शन होते हैं। वे संस्कृतनिष्ठ सामासिक शब्दावली के स्थान पर सरल शब्दों का प्रयोग करते थे। उनके द्वारा प्रयुक्त खड़ीबोली वर्तमान मानक खड़ीबोली का आधार है। गुप्तजी की भाषा में तत्सम शब्दों का बाहुल्य है। उनकी भाषा की शक्ति उसकी सामासिकता, लाक्षणिकता, मुहावरों और लोकोक्तियों में प्रकट होती है। गुप्त की काव्यभाषा में प्रसाद, ओज और माधुर्य तीनों गुणों का अवसरानुकूल प्रयोग किया गया है। उनकी भाषा की एक अन्य विशेषता उसकी लाक्षणिकता है। इसके साथ ही उनकी भाषा में लयात्मकता और कर्णप्रियता विशेष रूप से देखी जा सकती है।

1.4.04. गुप्त के काव्य में युगीन परिवेश

राष्ट्रकवि गुप्त को काव्य-सृजन की प्रेरणा महावीरप्रसाद द्विवेदी से मिली, लेकिन परिवर्तित युगधाराओं से आवश्यक तत्त्व प्राप्त करते हुए उन्होंने युगानुकूल काव्य-सृजन किया। वे कभी अगतिमय नहीं हुए और न ही गतानुगतिक होकर प्राचीनता के आवर्त में ही पड़े रहे, अपितु वे जागरूक प्रहरी के समान प्रत्येक नूतन परिवर्तन की ओर दृष्टिपात करते हुए सदैव नूतन काव्य-सृष्टि की ओर कदम बढ़ाते रहे। उनके काव्य में अपने युग की सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक जीवन की गतिविधियाँ वर्णित हैं, इसी कारण उनका समग्र साहित्य युगानुकूल है।

उस युग में राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज की स्थापना कर हिन्दू धर्म को रूढ़ियों और आडम्बरों से मुक्त करके उसके शुद्ध रूप को अपनाने का आग्रह किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द आदि ने अपने अतीत, साहित्य और संस्कृति के प्रति श्रद्धा और गौरव की भावना जाग्रत् करने का प्रयास किया। विभिन्न आन्दोलनों से बालविवाह, बहुविवाह, सतीप्रथा, पर्दाप्रथा, अस्पृश्यता आदि असामाजिक कुप्रथाओं का विरोध प्रारम्भ हो चुका था। इसके साथ ही विश्व बन्धुत्व, सर्वभूतहित, सामाजिक समानता, निष्काम कर्म, देश के लिए सर्वस्व बलिदान, पुरुषार्थ की महत्ता, नारी शिक्षा और स्वतन्त्रता, हिन्दू-मुस्लिम एकता, मानवतावाद आदि विचारों का प्रभाव बढ़ता जा रहा था। गुप्तजी के साहित्य पर इन सभी सामाजिक विचारों का प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपनी रचनाओं में युग की विभिन्न समस्याओं को उभार कर उनका समाधान प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

गुप्तजी मानते हैं कि पराधीनता के सुप्त वातावरण में अतीत की जय ही जागरण उत्पन्न कर सकती है। उन्होंने 'मौर्य विजय' की भूमिका में कहा है कि – "यदि सौभाग्य से किसी जाति का अतीत गौरवपूर्ण है तो उस पर अभिमान करें तो उसका भविष्य भी गौरवपूर्ण हो सकता है।" इसीलिए उन्होंने अपनी कृतियों में अतीत-चित्रण को अधिकाधिक सशक्त बनाने का प्रयास किया है। किन्तु वे इस बात के प्रति भी सचेत थे कि केवल अतीत-चित्रण

से उद्देश्य की पूर्ति नहीं होगी बल्कि युगानुसार आने वाले परिवर्तन को भी सहज रूप से स्वीकार करना होगा । वे कहते हैं –

प्राचीन बातें ही भली हैं यह विचार आलोक है,
जैसी अवस्था हो, वहाँ वैसी व्यवस्था ठीक है ।

गुप्तजी का यह मानना है कि युगीन परिस्थितियों के अनुरूप विचारों को बदलने से अनेक समस्याओं का समाधान हो सकता है । इसी सोच के साथ उन्होंने युगीन मूल्यों के साथ प्राचीन गौरव पूर्ण तत्त्वों का संतुलन किया । वे प्राचीन आदर्श भावों की पृष्ठभूमि में आधुनिक जीवन की समस्याओं का समाधान ढूँढ़ते हैं और 'भारत भारती' में अतीत का गौरवभाव जगाकर वर्तमान को सुधारने की प्रेरणा देते हुए कहते हैं –

मानस भवन में आर्यजन, जिसकी उतारें आरती ।
भगवान् भारतवर्ष में, गूँज हमारी भारती ।

गुप्तजी ने अतीत के आधार पर अनेक रचनाओं का सृजन किया । किन्तु उन्हें युगीन परिस्थितियों के अनुसार नवीन रूप प्रदान कर प्राचीन कथाओं को नूतन उद्भावनाओं से सजाया है । परम्परा की लीक पर चलते हुए भी कथा के स्वाभाविक क्रम में उन्होंने परिवर्तन अवश्य दिखाया है । उनकी 'द्वापर' में आमजन को तत्कालीन युग की परिस्थितियों से हीन भावना से ग्रसित न होकर देश के गौरव को बढ़ाने के लिए कर्त्तव्य करने की प्रेरणा दी गई है –

अपने युग को हीन समझना आत्महीनता होगी,
सजग रहो, इससे दुर्बलता और दीनता होगी ।
जिस युग में हम हुए वही तो अपने लिए बड़ा है,
अहा ! हमारे आगे कितना कर्मक्षेत्र पड़ा है ।

गुप्तजी गाँधीवाद के पक्के समर्थक थे । उनकी राजनैतिक दृष्टि पर गाँधीवादी विचारधारा का प्रभाव था । वे कहते हैं – 'सत्याग्रह है कवच हमारा, कर देखे कोई भी वार ।' उन्होंने भारतवासियों को अहिंसा, सत्याग्रह के द्वारा अपनी मातृभूमि की रक्षा का सन्देश दिया है –

अस्थिर किया टोप वालों को गाँधी टोपी वालों ने,
शस्त्र बिना संग्राम किया है इन माई के लालों ने ।

उन्होंने अपने साहित्य में तत्कालीन सामाजिक अव्यवस्था का चित्रण किया है । वे छुआछूत की भावना के विरोधी हैं । उन्होंने समाज में निम्न वर्ग की प्रतिष्ठा करते हुए उन्हें पवित्र गंगा का सहोदर माना है–

उत्पन्न हो तुम प्रभु-पदों से जो सभी को ध्येय है ।
तुम हो सहोदर सुरसरि के चरित जिसके गेय है ॥

इसी युग की प्रमुख समस्या हिन्दू-मुस्लिम एकता थी । गुप्तजी ने अपनी अनेक रचनाओं में इन दोनों की एकता पर बल दिया । धार्मिक समन्वय की भावनाओं को व्यक्त करते हुए, वे कहते हैं –

हिन्दू मुसलमान दोनों अब छोड़ें वह विग्रह की नीति ।

मैथिलीशरण गुप्त मानवतावाद के पोषक और समर्थक थे । उनके काव्य में विश्वमानव की कल्याण-भावना मुखरित होकर सामने आयी है । वे मानवता के सच्चे पुजारी थे इसलिए उन्होंने सभी संकीर्ण भावों का विरोध किया । उनकी मानवतावादी विचारधारा को प्रस्तुत पंक्तियों में सहज ही देखा जा सकता है–

न तन सेवा, न मन सेवा,
न जीवन और धन सेवा
मुझे है इष्ट जनसेवा
सदा सच्ची जन सेवा ।

मैथिलीशरण गुप्त पर नवजागरण की नारी सम्बन्धी विचारधारा का गहरा और व्यापक प्रभाव दिखाई देता है । उन्होंने पौराणिक कथाओं का सन्दर्भ लेकर नारी की गरिमामयी, तेजस्वी प्रतिभा को प्रस्तुत किया । देश की तत्कालीन परिस्थितियों में नारी की स्थिति पर दुःख व्यक्त करते हुए नारीशक्ति की महत्ता को प्रकट करते हुए वे कहते हैं –

अनुकूल आद्या शक्ति की सुखदायिनी जो स्फूर्ति है,
सद्धर्म की जो मूर्ति और पवित्रता की पूर्ति है,
नर-जाति की जननि तथा सुख शान्ति की स्रोतस्वति
हा दैव ! नारी जाति की कैसी यहाँ है दुर्गति।

गुप्तजी यथार्थवादी कवि थे, वे सभी को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता देने के पक्षधर थे । लेकिन इसके साथ ही उन्होंने मर्यादा को भी पर्याप्त महत्त्व दिया । इसी सोच को व्यक्त करती उनकी यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

जितने प्रवाह हैं बहें अवश्य बहें वे ।
निज मर्यादा में किन्तु सदैव रहें वे ॥

उस युग में द्विवेदीजी के प्रेरणा से मैथिलीशरण गुप्त ने खड़ीबोली को अपने काव्य की भाषा बनाया और उसमें आवश्यक सुधारकर उसे काव्योचित रूप प्रदान किया । उनके द्वारा रचित अधिकांश प्रबन्धकाव्य पौराणिक और ऐतिहासिक हैं, लेकिन इनकी मूल संवेदना आधुनिक है। इन रचनाओं में अतीत को विकसित चेतना के आलोक में व्याख्यायित किया गया है । अतः यह कहा जा सकता है कि गुप्तजी के काव्य में अतीत-चित्रण की पृष्ठभूमि में युगीन परिस्थितियों और प्रवृतियों का चित्रण किया गया है ।

1.4.05. भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय भावना

मैथिलीशरण गुप्त आधुनिक हिन्दी काव्यजगत् में राष्ट्रीय भावना के प्रतिनिधि कवि हैं। उनका सम्पूर्ण काव्य उस युग की राष्ट्रीय और सांस्कृतिक चेतना विकास के प्रत्येक चरण का प्रभाव ग्रहण करता गया और हिन्दी में नवजागरण, जनमानस में स्वदेश-प्रेम और सांस्कृतिक चेतना जाग्रत् करने में अपना योगदान देता रहा। उनके काव्य में वर्णित भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है –

1.4.05.1. भारतीय संस्कृति

'संस्कृति' का शाब्दिक अर्थ है – उत्तम या सुधरी हुई। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो संस्कृति का वर्तमान रूप किसी समाज के दीर्घकाल तक अपनायी गई पद्धत्तियों का परिणाम होती है। भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृति है और सहिष्णुता, त्याग, तपस्या, वैष्णव भावना, समन्वयवाद, संयुक्त परिवार, वर्गाश्रम आदि इसकी प्रमुख विशेषताएँ हैं। गुप्तजी के सम्पूर्ण काव्य में भारतीय संस्कृति का व्यापक चित्रण मिलता है। विश्व बन्धुत्व और मानवता की रक्षा हमारी संस्कृति का प्रमुख गुण है जिसे व्यक्त करते हुए 'मनुष्य' कविता में उन्होंने कहा है –

विचार लो कि मर्त्य हो, न मृत्यु से डरो कभी।
मरो परन्तु यों मरो कि याद जो करें सभी।
वही मनुष्य है कि जो मनुष्य के लिए मरे।
वही पशु है कि जो आप आप ही चरे।

भारतीय संस्कृति में कर्म को विशेष महत्त्व दिया गया है। मैथिलीशरण गुप्त ने भी गीता के इस सन्देश को विस्मृत नहीं किया है। वे स्वयं कर्म में विश्वास करते हैं और परिणामस्वरूप उनका प्रत्येक पात्र कर्मप्रधान जीवन जीता है। यथा –

माना पाप सभी भाग्य का भोग है,
किन्तु भाग्य भी पूर्व कर्म का योग है।

संस्कृति का विकास सामाजिक जीवन में होता है। गुप्तजी के काव्य में हमें भारतीय सामाजिकता के जिस रूप के दर्शन होते हैं, उसमें मर्यादा को विशेष महत्त्व दिया गया है। इसके साथ ही स्वहित के साथ-साथ परहित को भी पर्याप्त महत्त्व दिया गया है –

केवल उनके लिए ही नहीं यह धरणी,
है औरों की भी भार-धरणी धारणी।

भारतीय संस्कृति में परिवार को समाज के मूल आधार के रूप में स्वीकार किया जाता है। परिवार के सभी सदस्य अपनी-अपनी मर्यादा में रहते हुए परस्पर स्नेह, सौहार्द और सहयोग का आचरण करते हैं। अपने-अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करते हुए सुखी जीवन यापन करते हैं। गुप्तजी ने 'साकेत' में दशरथ के पारिवारिक जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए सुख-शान्तिपूर्ण जीवन जीने की प्रेरणा दी है –

नहीं कहीं गृह-कलह प्रजा में
हैं संतुष्ट तथा सब शान्त
उनके आगे सदा उपस्थित
दिव्य राज कुल का दृष्टान्त

आर्यों की उक्ति – 'यत्र नार्यस्तु पूज्यते रमन्ते तत्र देवता।' के महत्त्व को स्वीकार करते हुए गुप्तजी ने अपने काव्य में नारी को उचित सम्मान और प्रतिष्ठा प्रदान की है। उनकी दृष्टि में स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक हैं और पारस्परिक सहयोग के द्वारा ही वे अपना और समाज का हित कर सकते हैं। उनकी रचनाओं में वर्णित नारी पात्र पातिव्रत धर्म का पालन करती हैं तो वहीं पुरुष एकपत्नी व्रत का। 'साकेत' में लक्ष्मण एकपत्नी व्रत को अपनी सबसे बड़ी शक्ति मानते हुए कहते हैं –

यदि मैंने निज वधु ऊर्मिला को ही जाना।
तो, बस, अब तू सँभल, बाण यह मेरा छूटा॥

भारतीय संस्कृति में व्रत, उपवास, पूजा-पाठ, यज्ञ-अनुष्ठान, तीर्थ-स्नान आदि का विशेष महत्त्व है। 'साकेत' में ऐसे अनेक स्थल हैं जहाँ पर पूजा-अर्चना, व्रत, अनुष्ठान आदि का वर्णन किया गया है। सरयू नदी को गंगा से भी अधिक श्रेष्ठ बताती प्रस्तुत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

वह मरों को मात्र पार उतारती,
यह यहीं से जीवितों को तारती।

भारतीय संस्कृति कला साहित्य और संगीत की दृष्टि से सदैव ही समृद्ध रही है। गुप्तजी ने अपने काव्य में इसी तथ्य की ओर ध्यान दिलाते हुए कहा है –

जो दिव्य दर्शन शास्त्र की, विख्यात है जन्म स्थली
पहले जहाँ पर अंकुरित हो, सभ्यता फूली फली।
संगीत कविता शिल्प की, जननी वही भारत मही
होगी किसे स्पर्धा कहें, जो परमुखापेक्षी रही।

इस प्रकार स्पष्ट है कि गुप्तजी का काव्य भारतीय संस्कृति का दस्तावेज है। लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर उन्होंने अपनी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के विविध पक्षों का चित्रण कर उसके गौरव की रक्षा और

प्रतिष्ठा की है। इसके साथ ही उन्होंने अपने युगधर्म का भी निर्वाह किया है। परिणामस्वरूप उनके काव्य में प्राचीन और नवीन का सुन्दर सामंजस्य देखने को मिलता है।

1.4.05.2. राष्ट्रीय भावना

मैथिलीशरण गुप्त के काव्य में राष्ट्रीय प्रेमभावना को विशेष स्थान मिला है। उन्होंने अपनी अनेक रचनाओं में देश की महिमा का गान किया है। 'स्वदेशी संगीत' में संकलित उनकी कविता स्वतन्त्रता-आन्दोलन में भारतीय जनता के कोटि-कोटि कण्ठों से गायी जाती थी। इस कविता में मातृभूमि को ईश्वरीय रूप में प्रतिष्ठित कर, उसकी वन्दना करते हुए वे कहते हैं –

नीलाम्बर परिधान हरित पट पर सुन्दर है,
सूर्य-चन्द्र युग मुकुट, मेखला रत्नाकर है,

* * *

करते अभिषेक पयोद हैं, बलिहारी इस वेष की।
हे मातृभूमि, तू सत्य ही, सगुण-मूर्ति सर्वेश की।

उस समय गाँधीजी के नेतृत्व में स्वतन्त्रता-आन्दोलन चरम पर था, उनके प्रभावस्वरूप स्वदेशीकरण, अहिंसा, सत्याग्रह, छुआछूत की समाप्ति, हिन्दू-मुस्लिम एकता जैसे विचारों को पर्याप्त महत्त्व मिला। गुप्तजी स्वतन्त्रता-आन्दोलन और गाँधीवादी विचारधारा के प्रतिनिधि कवि हैं। गाँधीजी के विचारों को स्वर देते हुए 'भारत-भारती' में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के लिए वे कहते हैं –

यदि हम विदेशी माल से मुँह मोड़ तो सकते हैं नहीं –
तो हाय ! उसका मोह भी क्या छोड़ सकते हैं नहीं ?
क्या बन्धुओं के हित तनिक भी त्याग कर सकते नहीं ?
निज देश पर क्या अल्प भी अनुराग कर सकते नहीं ?

गुप्तजी ने प्राचीन काल के कथानकों के माध्यम से स्वदेश-प्रेम और राष्ट्रीय भावना को वाणी दी है। 'साकेत' में विदेशी शक्ति से देश की स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए राम कृतसंकल्प हैं –

पुण्य भूमि पर पाप कभी हम सह न सकेंगे,
पीड़क पापी यहाँ और अब रह न सकेंगे।

उस युग में स्वतन्त्रता-आन्दोलन ने संघर्ष का रूप धारण कर लिया था और इसी समय गुप्तजी का राष्ट्रप्रेम की भावना से परिपूर्ण काव्य 'भारत भारती' प्रकाशित हुआ। ब्रिटिश शासन द्वारा किए जा रहे आर्थिक शोषण

और सांस्कृतिक ह्रास के कारण गुप्तजी अत्यधिक चिन्तित थे, उनकी यह चिन्ता इस काव्य में अनेक प्रसंगों में व्यक्त हुई है। वे कहते हैं –

हम कौन थे, क्या हो गए और क्या होंगे अभी
आओ विचारें आज मिलकर, यह समस्याएँ सभी।

गुप्तजी ने अपनी रचनाओं के माध्यम से प्राचीन गौरव का स्मरण करवाकर देशवासियों के हृदय में पुनः वैसी या उससे भी बेहतर स्थिति को प्राप्त करने की चेतना जाग्रत् करने का प्रयास किया। 'भारत भारती' में वे कहते हैं –

इस देश को हे दीनबन्धु ! आप फिर अपनाइए,
भगवान् ! भारतवर्ष को फिर पुण्य भूमि बनाइए।

* * *

वर मंत्र जिसका मुक्ति था, परतन्त्र पीड़ित है वही,
फिर वह परम पुरुषार्थ इसमें शीघ्र ही प्रकटाइए।

इसी प्रकार ऐतिहासिक प्रसंगों पर आधारित रचनाओं के माध्यम से गुप्तजी ने स्वदेश के लिए आत्मबलिदान की भावना भी व्यक्त की है। यद्यपि मध्यकालीन कथानकों में यह भाव सीमित राष्ट्रीयता की भावना को व्यक्त करते हैं, किन्तु गुप्तजी ने अपने युग के अनुरूप भारतवर्ष के प्रति अपना सर्वस्व न्योछावर करने के अर्थ में उनका प्रयोग किया है। जैसे –

जन्मदायी धाय ! तुझसे उऋण अब होना मुझे,
कौन मेरे प्राण रहते देख सकता है तुझे,
मैं रहूँ चाहे जहाँ, हूँ किन्तु तेरा ही सदा,
फिर भला कैसे ना रक्खुँ ध्यान तेरा सर्वदा।

1.4.06. 'साकेत' में ऊर्मिला की विरह-भावना

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रतिनिधि महाकाव्य 'साकेत' के माध्यम से मैथिलीशरण गुप्त ने रामकथा को एक नवीन परिवेश में चित्रित किया है। रामकथा को नये रूप में प्रस्तुत करने की प्रेरणा गुप्तजी को द्विवेदीजी से प्राप्त हुई। इसके साथ ही छोटेलाल बार्हस्पत्य ने भी अनूठे सुझाव देते हुए 'साकेत' के सृजन में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। उन्होंने गुप्तजी को रामायण की अछूती घटनाओं और ऊर्मिला के पात्र को नये रूप में प्रस्तुत करने का आग्रह किया। इसके साथ ही शान्तिप्रसाद द्विवेदी के लेख 'काव्य की उपेक्षिता – ऊर्मिला' से भी गुप्तजी को प्रेरणा प्राप्त हुई।

साकेत में कुल 12 सर्गों में रामकथा की विविध घटनाओं का चित्रण किया गया है। किन्तु ऊर्मिला का विरह 'साकेत' की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। गुप्तजी ने विरहिणी ऊर्मिला की क्षण-क्षण बदलती मनोदशाओं के अनेक मार्मिक चित्र अंकित किए हैं। विरह की अग्नि में तपकर ऊर्मिला का प्रेम ऐहिक न रहकर आध्यात्मिक रूप धारण कर लेता है। स्वयं गुप्तजी ने एक स्थान पर लिखा है कि – " 'साकेत' में मैंने कालिदास की प्रेरणा से उस प्रेम की झलक देखने की चेष्टा की है, जो भोग से प्रारम्भ होकर, वियोग झेलता हुआ, योग में परिणत हो जाता है।" तभी तो ऊर्मिला मानस-मन्दिर में प्रियतम की मूर्ति स्थापित कर स्वयं आरती बन जाती है–

मानस मन्दिर में पति की प्रतिमा थाप।
जलती से उस विरह में बनी आरती आप।
आँखों में प्रिय मूर्ति थी, भूले थे सब भोग।
हुआ योग से भी अधिक उसका विषम वियोग।

काव्यशास्त्रीय दृष्टि से विरह के चार भेद माने जाते हैं – पूर्वराग, प्रवासजनित, मानजनित, करुणाजनित। ऊर्मिला का विरह प्रवासजन्य है। लक्ष्मण अपने भाई राम की सेवार्थ 14 वर्षों के लिए वनवास चले जाते हैं और तब ऊर्मिला का विरह जाग्रत् होता है। गुप्तजी ने विरहिणी ऊर्मिला का विरह इतने मार्मिक रूप में प्रस्तुत किया है कि सहृदय पाठक / श्रोता के हृदय में भी पीड़ा होने लगती है। ऊर्मिला के विरह को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है –

1.4.06.1. तीव्र विरहानुभूति

ऊर्मिला के विरह-वर्णन में गुप्तजी ने उसकी क्षण-क्षण बदलती हुई मनोदशाओं का मार्मिक चित्रण किया है। लक्ष्मण के वनगमन के पश्चात् ऊर्मिला निरन्तर विरहाग्नि में जलती रहती है। उसे अपने संयोग की सुखद स्मृतियाँ याद आती हैं, जो उसकी वेदना को और अधिक तीव्र बना देती है। हृदय में प्रिय की स्मृतियों को सँजोए वह अपनी सुध-बुध भूलकर उसे 'आओ' कहकर आमन्त्रित करती है तो कभी निद्रा में भी लम्बी विरहावधि को स्मरण कर उसे जाने को कहती है –

भूल अवधि-सुधि प्रिय से कहती जगती हुई कभी– 'आओ'।
किन्तु कभी सोती तो उठती वह चौंक बोलकर – 'जाओ'।

ऊर्मिला के विरह-वर्णन में गुप्तजी ने नारीहृदय की विवशता, दीनता, सहनशीलता को अत्यन्त सुन्दर ढंग से प्रस्तुत किया है। ऊर्मिला का विरह जीवन के बाहर की वस्तु नहीं, उसका प्रतिफलन नित्यप्रति के गृहस्थ जीवन में हुआ है। उसकी दिनचर्या में ही विरह का समावेश है। जब सखी सुलक्षणा उसे भोजन करने को कहती है, तब वह कहती है –

कहे जो मानूँ सो, किस विध बता धीरज धरूँ ?
अरी, कैसे भी तो पकड़ प्रिय के वे पद मरूँ।

ऊर्मिला की दशा भाग्यहीन और निराश्रित प्राणी की तरह है। उसकी दारुण दशा को देखकर सभी को दया आती है, स्वयं सीता कहती है – 'आज भाग्य है जो मेरा। वह भी हुआ न हा! तेरा।' हृदय में तीव्र व्याकुलता के उपरान्त भी ऊर्मिला वेदना में मधुरता का आभास पाती है क्योंकि उसी के प्रभावस्वरूप प्रिय की स्मृति निरन्तर हृदय में बनी रहती है –

वेदने तू भी भली बनी,
पाई मैंने आज तुझी में अपनी चाह घनी।
नयी किरण छोड़ी है तूने, तू वह हीर कनी।
सजग रहूँ मैं, साल हृदय में, ओ प्रिय-विशिख-कनी।

1.4.06.2. आदर्शीकरण

गुप्तजी ने 'साकेत' में अनेक ऐसे प्रसंगों की रचना की है जिनसे ऊर्मिला की विरह-वेदना में परम्परा और आधुनिकता का समन्वय दिखलाई देता है और ऊर्मिला की सहृदयता, उदारता, लोकमंगल की भावना, कर्त्तव्य-परायणता की भावना पर प्रकाश पड़ता है। ऊर्मिला के हृदय में ईर्ष्या लेशमात्र भी नहीं है, वह आदर्श भावों से युक्त होकर रीतिकालीन सभी विरहणियों से आगे निकल जाती है। सूर की गोपियाँ तो अपनी ही तरह मधुबन को झुलसा हुआ देखना चाहती हैं, जबकि ऊर्मिला गम्भीर वियोगावस्था में भी सबल बनी रहती है। उसके हृदय में लताओं, विहगों के प्रति संवेदनशीलता है–

सीचें ही बस मालिने कलश ले कोई ना ले कर्तरी।
शाखा फूल फले यथेच्छ बढ़के फैलें लताएँ हरी॥

ऊर्मिला परम्परागत भारतीय नारी की तरह पति की सिद्धि में ही अपनी सिद्धि समझती है। जब लक्ष्मण राम के साथ जाने का निर्णय लेते हैं तो हृदय में प्रेरित विछोह के कारण कितने ही भाव उद्दीप्त होते हैं परन्तु वह उनके मार्ग की बाधा नहीं बनती और दीर्घ विछोह को स्वीकार कर लेती है। इस अवधि में वह स्वयं एक पल भी अपने प्रिय को नहीं भूलती किन्तु ईश्वर से प्रार्थना करती है कि लक्ष्मण उसे भूलकर श्रीराम और सीता की सेवा करें –

मुझे भूलकर ही विभु-वन में विचरें मेरे नाथ।
मुझे न भूले उनका ध्यान, हे मेरे प्रेरक भगवान्।

विरह की लम्बी अवधि को व्यतीत करने के लिए ऊर्मिला कभी घरेलू कामों को करके अपना समय व्यतीत करती है तो कभी चित्रकारी, संगीत आदि क्रियाकलापों से मन को बहलाती है। इसके साथ ही वह ऐसे काम भी करती है जिससे प्रजा का कल्याण हो। प्रोषितपतिकाओं को बुलवाना, पुरबाला-शाखा खुलवाना और उन्हें ललित कलाओं का ज्ञान प्रदान करना आदि इसी श्रेणी में आते हैं -

प्रोषित पतिकाएँ हों जितनी भी सखी, उन्हें निमन्त्रण दे आ।
समदु:खिनी मिले तो दु :ख बँटे, जा प्रणय पुरस्सर ले आ॥

1.4.06.3. प्रकृति-चित्रण

विरह-वर्णन की सुदीर्घ परम्परा में ऋतु वर्णन के माध्यम से विरह-वेदना को उद्घाटित किया जाता रहा है। गुप्तजी का ऊर्मिला विरह भी इससे अछूता नहीं है, लेकिन यहाँ परम्परा में नवीनता का समायोजन भी देखने को मिलता है। परम्परागत विरह-वर्णन में प्राकृतिक उपादान विरहणी की व्यथा को और भी अधिक दारुण बना देते हैं, जबकि ऊर्मिला प्रिय के वियोग में प्राकृतिक उपादानों में अपने प्रियतम के अंगों का आरोपण कर अपने हृदय का रंजन करती है –

निरख सखी ये खंजन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन इधर मन भाये।

इसी प्रकार शिशिर ऋतु के उपादान उसे स्वयं के शरीर में ही दिखलाई पड़ते हैं–

शिशिर, न फिर गिरि-वन में।
जितना माँगे पतझड़ दूँगी मैं इस निज नन्दन में॥

वसन्त ऋतु के आगमन पर जब काम ऊर्मिला को तप्त करता है तो वह विरहणी दीन होकर निवेदन करती है –

मुझे फूल मत मारो,
मैं अबला बाला वियोगिनी कुछ तो दया विचारो।

प्रस्तुत विवरण के आधार कहा जा सकता है कि ऊर्मिला का विरह-वर्णन आधुनिक हिन्दी काव्य में अद्वितीय है, ऊर्मिला के विरह-वर्णन में गुप्तजी ने शास्त्रीय पद्धत्तियों और नवीनता का अद्भुत समन्वय किया है। उन्होंने आदर्शों और कर्त्तव्यों का सुन्दर समायोजन कर ऊर्मिला को एक सती नारी के रूप में स्थापित कर दिया है। ऊर्मिला के विरह-मर्म का हृदयबेधक उद्घाटन करने वाली नवम सर्ग की अन्तिम पंक्तियाँ, जो ऊर्मिला के सम्पूर्ण विरही जीवन-चरित्र को अपने अन्दर समेटे हुए हैं, द्रष्टव्य हैं –

अवधिशिला का उर पर था गुरु-भार,
तिल-तिल काट रही थी दृग-जल-धार।

1.4.07. 'साकेत' में लोक-कल्याण की भावना

साहित्यजगत् में प्राचीन काल से दो प्रकार की काव्यधाराएँ प्रवाहित होती रही हैं। एक की प्रवृत्ति अन्तर्मुखी है और उसका लक्ष्य आनन्द है, वहीं दूसरी की प्रवृत्ति बहिर्मुखी है और लक्ष्य कल्याण है। पहली में

संसार को आत्मा में देखने और भोगने का भाव रहता है, वहीं दूसरी में आत्मा का जगत् के माध्यम से विस्तार और विकास करने का दृष्टिकोण विद्यमान रहता है। मैथिलीशरण गुप्त का स्थान दूसरी काव्यधारा के प्रतिनिधि कवियों में स्वीकार किया जाता है।

गुप्तजी के काव्य में आधुनिक युग की राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना और मध्ययुगीन वैष्णव भावना का संयोग हुआ है। परिणामस्वरूप उनके जीवन-मूल्यों में मानव मूल्य, सांस्कृतिक मूल्य और धार्मिक मूल्य परस्परगुँथे हुए हैं। वे अपने काव्य में आनन्दवादी मूल्यों की अपेक्षा कल्याणवादी मूल्यों की प्रतिष्ठा करते हैं। उनकी काव्य-साधना का मूल साध्य लोक-कल्याण है। उनके अपने शब्दों में – 'अर्पित हो मेरा मनुज काय। बहुजन हिताय, बहुजन हिताय।'

'साकेत' का कथानक लोकप्रिय पौराणिक रामकथा पर आधारित है। परन्तु इस प्राचीन और पौराणिक कथा को लेकर भी गुप्तजी ने अपने बुद्धि कौशल से नवीन उद्भावनाओं के माध्यम से आधुनिक युग की विचारधाराओं के अनुसार बना दिया है। उन्होंने 'साकेत' में समसामयिक जीवन और उसकी समस्याओं का चित्रण ही नहीं किया वरन् लोक-कल्याण का सार्थक सन्देश भी दिया है। जिससे इस महाकाव्य का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है। गुप्त के राम परम ब्रह्म का प्रतिरूप नहीं है, वे तो एक ऐसे आदर्श पुरुष हैं जिसने सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए इस धरा पर जन्म लिया है। तभी तो वे कहते हैं –

सन्देश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

* * *

वह भौतिक मद से मत्त यथेच्छाचारी,
मेटूँगा उसकी कुगति-कुमति मैं सारी।

गुप्तजी ने जिस प्रकार राम को ईश्वर नहीं मानव के रूप में चित्रित किया है। वैसे ही उनकी सीता भी एक स्वावलम्बी नारी के रूप में उभरकर आई है, जो लोक-कल्याण की भावना से युक्त होकर भोली-भाली वनवासी बालाओं को जीवन को बेहतर ढंग से जीने की प्रेरणा देती है –

तुम अर्द्धनग्न क्यों रहो आशेष समय में,
आओ, हम कातें-बुनें, गान की लय में।

भरत के माध्यम से गुप्तजी ने एक सच्चे और लोक-कल्याणकारी राजा की छवि को प्रस्तुत किया है। उनके अनुसार राज्य जनता की थाती है और राजा उसका सेवक। अतः राज्य की रक्षा और जन-कल्याण के लिए राजा को अपने प्राणों का बलिदान करने के लिए भी उद्धत रहना चाहिए।

तात, राज्य नहीं किसी का वित्त,
वह उन्हीं के सौख्य-शान्ति निमित्त,
स्वबलि देते हैं उसे जो पात्र,
नियत शासक लोक-सेवक मात्र।

माण्डवी के माध्यम से जन-कल्याणकारी व्यक्तित्व की विशेषताओं को बताते हुए गुप्त जी ने कहा है कि जीवन सुख और दु:ख का मिश्रण है, सुख का भोग करके प्रत्येक मनुष्य आनन्द की अनुभूति करता है। किन्तु जन-कल्याण की भावना से युक्त व्यक्ति दुखों को भी आनन्द के साथ स्वीकार कर लेता है –

जीवन में सुख-दु:ख निरन्तर
आते-जाते रहते हैं,
सुख तो सभी भोग लेते हैं,
दु:ख धीर ही सहते हैं।
मनुज दुग्ध से, दनुज रुधिर से,
अमर सुधा से जीते हैं,
किन्तु हलाहल भव-सागर का
शिव शंकर ही पीते हैं।

'साकेत' महाकाव्य में आत्म सुखों का बलिदान करने वाले पात्रों में सर्वाधिक प्रभावशाली पात्र है – ऊर्मिला। जो स्वयं विविध कष्टों को सहन करते हुए भी लोक-कल्याण की भावना से परिपूर्ण है। वह कभी मेघों से जल वर्षा करके संसार का कल्याण करने का अनुरोध करती है तो कभी शिशिर ऋतु से पतझड़ द्वारा प्राकृतिक सौन्दर्य को नष्ट न करने का आग्रह करती है –

बरसो परसो घन बरसो,
सरसो जीर्ण-शीर्ण जगती के तुम नव यौवन, बरसो।
* * *
शिशिर न फिर गिरि-वन में,
जितना माँगे, पतझड़ दूँगी, मैं इस निज नन्दन में।

'साकेत' में ऊर्मिला का विरह अपनी चरम सीमा तक पहुँचा है। विरह की वेदना उसका जीवन बन गई है और प्रिय की स्मृति का आधार भी। तभी तो वह कहती है – 'वेदने तू भी भली बनी। पाई मैंने आज तुझी में, अपनी चाह घनी।' लेकिन यह तीव्र विरह-वेदना और प्रिय के प्रति अनुराग की भावना उसकी लोक-कल्याणकारी भावना में बाधक नहीं बनते हैं। लक्ष्मण के वनवास में लोक-कल्याण को लक्षित कर वह कहती है –

भ्रात-स्नेह-सुधा बरसे,
भू पर स्वर्ग भाव सरसे।

विरह वियोगिनी ऊर्मिला में इतनी सहृदयता और कल्याणकारी भावनाएँ विद्यमान हैं कि वह विरह की दुखद घड़ी में भी परदुःखकातर है और दूसरों की पीड़ा को कम करने के लिए प्रयत्नशील है –

प्रोषितपतिकाएँ हों जितनी सखी, उन्हें निमन्त्रण दे आ।
समदु:खिनी मिलें तो दु :ख बँटे, जा प्रणयपुरस्सर ले आ।

ऊर्मिला की सहृदयता अप्रतिम है क्योंकि वह लोक-कल्याण से भी बढ़कर जीव मात्र के कल्याण की भावना से युक्त है। तभी तो वह पेड़-पौधों को काटना नहीं चाहती, मकड़ी का जाला हटाना नहीं चाहती क्योंकि इससे उन्हें पीड़ा पहुँचेगी –

सीचें ही बस मालिनें कलश लें कोई न ले कर्तरी।
शाखा फूल फलें यथेच्छ बढ़के, फैलें लताएँ हरी॥

गुप्तजी की सभी पात्र विश्व-कल्याण की भावना से युक्त हैं। 'साकेत' के एकादश सर्ग में "वसुधैव कुटुंबकम्" की भावना का सुन्दर उदाहरण विभीषण के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। रावण का भाई विभीषण राक्षसकुल में जन्म लेकर भी लोक-कल्याण की भावना को अपने जीवन का ध्येय बनाता है और विश्व-कल्याण की भावना को व्यक्त करते हुए कहता है –

पर वह मेरा देश नहीं जो, करे दूसरों पर अन्याय।
किसी एक सीमा में बँधकर रह सकते हैं क्या मन प्राण ?
एक देश क्या, अखिल विश्व का, तात, चाहता हूँ मैं त्राण।

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'साकेत' में लोक-कल्याण की भावना को विशेष महत्त्व दिया गया है। 'साकेत' का प्रत्येक पात्र किसी न किसी रूप में स्व से अधिक पर उपकार को महत्त्व देता है और यह कल्याणकारी भावना मनुष्य मात्र के लिए नहीं वरन् समग्र जीवों के प्रति प्रकट हुई है। इस प्रकार गुप्तजी ने भारतीय संस्कृति की समग्र विशेषताओं और कल्याणकारी भावनाओं को जन जन तक पहुँचाने का सार्थक प्रयास किया है।

1.4.08. पाठ-सार

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविताओं के माध्यम से भारत के आर्य जातीय संस्कार,मर्यादा और मूल्यों का पर्याप्त रक्षण किया। उन्होंने साहित्य और समाज में उपेक्षित नारी पात्रों की मनोवैज्ञानिक व्याख्या कर उन्हें उचित सम्मान दिलवाया। उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से अंग्रेजी शासन के खिलाफ भारतीय जनता को प्रेरित किया और साम्राज्यवादी शासन का खुलकर विरोध किया।

गुप्तजी ने अपने काव्य-सृजन में काव्य-शिल्प के मानदण्डों के अनुरूप विभिन्न शिल्प-तत्त्वों प्रयोग किया और यह प्रयोग चमत्कार के लिए नहीं वरन् अपनी रचनाओं में सहजता, स्वाभाविकता और प्रभावोत्पादकता लाने

के लिए किया। भाषा के क्षेत्र में उनका योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने द्विवेदीजी की प्रेरणा से काव्य-सृजन के लिए खड़ीबोली का प्रयोग किया तथा उसे काव्योचित गरिमा प्रदान की।

गुप्तजी की एक खास विशेषता यह रही है कि वह कभी अगतिमय नहीं हुए वरन् जागरूक प्रहरी के समान प्रत्येक नूतन परिवर्तन की ओर दृष्टिपात करते हुए नवीनता की ओर कदम बढ़ाते रहे। उन्होंने अपनी युगीन परिस्थितियों और समस्याओं को न सिर्फ़ अपने काव्य में स्थान दिया वरन् उनके समाधान भी प्रस्तुत करने का प्रयास किया। उन्होंने भारतीय संस्कृति को विश्व की प्राचीनतम संस्कृति स्वीकार किया और उसकी विशेषताओं को उजागर कर जनमानस में अपनी सभ्यता और संस्कृति के प्रति आदरभाव जाग्रत् किया।

राष्ट्रप्रेम की भावना गुप्तजी के काव्य में कूट-कूट कर भरी हुई है। उनकी 'भारत भारती' को आधुनिक युग की गीता तक कहा जाता है, जिसमें भारतवासियों को अपने कर्त्तव्य-पथ पर चलकर अपने देश को स्वतन्त्र कराने की प्रेरणा दी गई है। गुप्तजी द्वारा रचित 'साकेत' रामकाव्य-परम्परा में एक नवीन उद्भावना है, जिसमें रामायण के उपेक्षित पात्रों और घटनाओं पर प्रकाश डाला गया है।

साकेत में वर्णित ऊर्मिला के विरह-वर्णन के सन्दर्भ में डॉ॰ नगेन्द्र ने कहा है – "ऊर्मिला का विरह साकेत की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। उसकी परिस्थिति की दयनीयता ऊर्मिला के विरह को और भी करुण बना देती है। सीता राम के साथ प्रकाश के साथ छाया की भाँति बनी रहती है। माण्डवी और श्रुतिकीर्ति भी अपने पतियों से अविभक्त हैं। दुःख की परवशता उनको और भी निकट खींच लाई है। अतः उनके प्रेम का उपकार ही हुआ है, परन्तु ऊर्मिला निरावलम्ब है, उसके लिए वियोग आदर्श के अतिरिक्त, जो विवशता का अन्तिम उपचार है, और कोई साधन नहीं है।"

1.4.09. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त को किस काव्यधारा का कवि स्वीकार किया जाता है ?
2. गुप्त के काव्य में प्रयुक्त अलंकारों के उदाहरण दीजिए।
3. युगीन परिवेश से आप क्या समझते हैं ?
4. गुप्त के काव्य में प्राप्त होने वाले गाँधीवादी विचारों को उदाहरण सहित प्रस्तुत कीजिए।
5. गुप्त की किस रचना को आधुनिक काव्य की गीता कहा गया है और क्यों ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मैथिलीशरण गुप्त के जीवन और काव्य-सृजन पर प्रकाश डालिए।
2. गुप्त के काव्य-शिल्प की विशेषताएँ बताइए।

3. गुप्त के काव्य में वर्णित युगीन परिवेश से आप क्या समझते हैं?
4. "गुप्त का काव्य भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय चेतना का काव्य है।" स्पष्ट कीजिए।
5. "ऊर्मिला का विरह साकेत की प्रमुख घटना है।" स्पष्ट कीजिए।

1.4.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. डॉ॰ नगेन्द्र, साकेत : एक अध्ययन, दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस।
2. डॉ॰ वचनदेव कुमार, साकेत : विचार और विश्लेषण, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन।
3. कृष्णदत्त पालीवाल, मैथिलीशरण गुप्त प्रासंगिकता के अन्तःसूत्र, नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन, ISBN : 81-8143-201-0.
4. प्रो॰ सूर्यप्रसाद दीक्षित, राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और साकेत, नयी दिल्ली, किताबघर प्रकाशन, ISBN : 81-89859-19-6.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

6. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
7. http://www.hindisamay.com/
8. http://hindinest.com/
9. http://www.dli.ernet.in/
10. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 1 : हिन्दी नवजागरण काव्य

इकाई – 5 : रामनरेश त्रिपाठी का काव्यगत वैशिष्ट्य, 'पथिक' का सन्देश

इकाई की रूपरेखा

1.5.0. उद्देश्य कथन
1.5.1. प्रस्तावना
1.5.2. रामनरेश त्रिपाठी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व
  1.5.2.1. व्यक्तित्व
  1.5.2.2. कृतित्व
1.5.3. रामनरेश त्रिपाठी : काव्यगत वैशिष्ट्य
  1.5.3.1. राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना
  1.5.3.2. सामाजिक सरोकार
  1.5.3.3. आदर्शवाद एवं नैतिकता
  1.5.3.4. प्रेम चित्रण
  1.5.3.5. प्रकृति-चित्रण
  1.5.3.6. शिल्पतगत वैशिष्ट्य
1.5.4. 'पथिक' का सन्देश
  1.5.4.1. कथावस्तु
  1.5.4.2. रचनात्मक प्रतिपाद्य
1.5.5. पाठ-सार
1.5.6. शब्दावली
1.5.7. उपयोगी ग्रन्थ-सूची
1.5.8. बोध प्रश्न

1.5.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई हिन्दी नवजागरण काव्य-परम्परा के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर कविवर रामनरेश त्रिपाठी के काव्यगत वैशिष्ट्य पर आधारित है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. रामनरेश त्रिपाठी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से परिचित हो सकेंगे।
ii. उनके काव्यगत वैशिष्ट्य के विविध आयामों की विवेचना कर सकेंगे।
iii. 'पथिक' खण्डकाव्य की कथावस्तु एवं रचनात्मक प्रतिपाद्य को समझ सकेंगे।

1.5.1. प्रस्तावना

हिन्दी नवजागरण काव्य में राष्ट्रीयता, देश-प्रेम, समाज-सुधार, आदर्शवाद, जीवनमूल्य, नैतिकता के स्वर प्रमुख रूप से मुखरित हुए हैं। आर्य समाज एवं ब्रह्म समाज का प्रभाव भी हिन्दी नवजागरण काव्य पर अपेक्षाकृत अधिक दिखाई पड़ता है। नवजारणकालीन कवियों ने राष्ट्र की गम्भीर व दयनीय स्थिति का चित्रण करने के साथ-साथ देशवासियों को आत्मबलिदान के लिए अभिप्रेरित करते हुए स्वाधीनता का मार्ग प्रशस्त किया। तत्युगीन सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों ने भी रचनाकारों को नवजागरण का सन्देश दिया। मैथिलीशरण गुप्त, गोपालशरण सिंह, गयाप्रसाद 'सनेही', लोचनप्रसाद पाण्डेय, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', नाथूराम शर्मा 'शंकर', राय देवी प्रसाद पूर्ण, रामचरित उपाध्याय, रामनरेश त्रिपाठी आदि रचनाकारों ने सुकवि-किंकर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी से अभिप्रेरित होकर भारतीय नवजागरण को ही अपने काव्य का मूल लक्ष्य स्वीकार किया और हिन्दी काव्यजगत् को अनेक रूपों में प्रभावित किया।

1.5.2. रामनरेश त्रिपाठी : व्यक्तित्व एवं कृतित्व

रामनरेश त्रिपाठी हिन्दी नवजागरण काव्य के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। वे ऐसे रचनाकारों की श्रेणी में शुमार हैं जो जीवन की विविध अनुभूतियों को बड़े ही सरल, सहज व संवेदनशील तरीके से अपने काव्य में प्रस्तुत करते हैं और समसामयिक जीवन में व्याप्त घोर सामाजिक-आर्थिक विषमताओं, असमानताओं और निरर्थकता को काव्य संवेदना के स्तर पर अनुभूति के माध्यम से प्रकट करते हैं। रामनरेश त्रिपाठी ने अपने काव्य में बिम्बों का सार्थक प्रयोग किया है। उन्होंने अपनी सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय अनुभूति को बिम्बों के माध्यम से अत्यन्त कौशलपूर्वक प्रस्तुत किया है। स्वयं की और आमजन की अनुभवगत जटिलता के विश्लेषण और बखान को वे अपने कविकर्म का प्रमुख प्रयोजन अंगीकार करतेहैं।

1.5.2.1. व्यक्तित्व

रामनरेश त्रिपाठी का जन्म वर्ष 1889 ई. में उत्तरप्रदेश के जौनपुर जनपद के अन्तर्गत कोइरीपुर नामक गाँव में हुआ। बचपन से ही वे एक मेधावी छात्र थे। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा-दीक्षा गाँव के विद्यालय में सम्पन्न हुई। बाद में अंग्रेजी पढ़ने के उद्देश्य से वे जौनपुर भी गए। कविता का मर्म उन्होंने विद्यार्थी जीवन में ही पा लिया था, जब वे पाँचवीं-छठवीं कक्षा के छात्र थे। त्रिपाठीजी का व्यक्तित्व, रचनाधर्मिता और साहित्य-सर्जना अध्ययन, चिन्तन और मनन के प्रति उनकी निष्ठा का प्रतिबिम्ब है।

1.5.2.2. कृतित्व

रामनरेश त्रिपाठी की रचनात्मक संवेदना में नवजागरण काव्य की मूल प्रवृत्तियाँ इतनी सहजता से समाहित हो गई हैं कि उन्हें नवजागरण काव्य का 'सहज नागरिक' कहा जा सकता है। खड़ीबोली की ओर उनका वास्तविक रुझान 'सरस्वती' पत्रिका के माध्यम एवं प्रभावस्वरूप ही हुआ। उनके चार काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए

– 'मिलन' (1917), 'पथिक' (1920), 'मानसी' (1927) और 'स्वप्न' (1929)। 'मानसी' फुटकर कविताओं का संग्रह है जो मुख्यतः राष्ट्रभक्ति, प्रकृति-चित्रण और नीति निरूपण से सम्बन्धित है। 'मिलन', 'पथिक' तथा 'स्वप्न' उनके कल्पनाधारित कथाश्रित प्रेमाख्यानक खण्डकाव्य हैं, जिनमें व्यक्तिगत सुख और स्वार्थ को त्यागकर राष्ट्र और लोक के लिए अपना सर्वस्व न्योछावर करने की प्रेरणा दी गई है। उनकी रचनाओं में यथास्थान प्रकृति के मनोहारी चित्रण भी मिलते हैं। त्रिपाठीजी ने हिन्दी, उर्दू, बांग्ला एवं संस्कृत की कविताओं का संकलन और सम्पादन 'कविता कौमुदी' के आठ भागों में किया। लोकगीतों का संग्रह भी उन्होंने बड़े मनोयोग से किया है। घाघ और भड्डरी पर उनके द्वारा सम्पादित पुस्तक एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है।

1.5.3. रामनरेश त्रिपाठी काव्यगत वैशिष्ट्य

कविवर रामनरेश त्रिपाठी नवजागरण हिन्दी नवजागरण काव्य के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। उनकी कविता में नवजागरणकालीन काव्य की सम्पूर्ण विशेषताएँ एक साथ उपलब्ध होती हैं। नवजागरणकाल में राष्ट्रीयता, समाज-सुधार, स्वातन्त्र्य चेतना, मानवतावाद, सामाजिक समरसता एवं गाँधीवाद का बोलबाला था। त्रिपाठीजी ने अपनी रचनाओं में इन मूल्यों का पर्याप्त समावेश करते हुए युगबोध एवं सामयिकता का परिचय दिया है। उनकी आकांक्षा है कि प्रत्येक मानव अपनी पूरी शक्ति से उठ खड़ा हो, उसे अपने अधिकारों और कर्त्तव्यों की पूरी समझ हो और अत्याचारों का वह पुरजोर विरोध कर सके। रूढ़ीवादी मान्यताओं को दूर करने का दृढ़ संकल्प भी उनकी रचनाओं में मौजूद है। सामाजिक व्यवस्था को सँवारने के प्रति उनकी कविताओं में विशेष आग्रह दिखाई देता है।

1.5.3.1. राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना

विकसित राजनैतिक चेतना तथा सांस्कृतिक पुनरुत्थान के परिणामस्वरूप राष्ट्रीयता की भावना हिन्दी नवजागरण काव्य की केन्द्रीय विषय रही है। रामनरेश त्रिपाठी की कविता का मुख्य स्वर भी राष्ट्रीयता ही है। कविवर त्रिपाठी अपनी रचनाओं में देशभक्ति का प्रणयन करते हैं तथा उनके माध्यम से क्रान्ति तथा आत्मोत्सर्ग की प्रेरणा देते हैं एवं परतन्त्रता के बन्धन तोड़ डालने का सन्देश देते हैं –

सच्चा प्रेम वही है जिसकी, तृप्ति आत्म-बल पर हो निर्भर।
त्याग बिना निष्प्राण प्रेम है, करो प्रेम पर प्राण निछावर॥
देश-प्रेम वह पुण्य-क्षेत्र है, अमल असीम त्याग से विलसित।
आत्मा के विकास से जिसमें, मनुष्यता होती है विकसित॥

1.5.3.2. सामाजिक सरोकार

रामनरेश त्रिपाठी जिस सामाजिक परम्परा के रचनाकार हैं, उसका आधार भारतीय नवजागरण से उत्पन्न सांस्कृतिक और राजनैतिक मूल्य हैं। हिन्दी नवजागरण काव्य को सुधारवादी काव्य भी कहा जाता है। रामनरेश त्रिपाठी अनेक सामाजिक समस्याओं तथा धार्मिक जड़ताओं को अपनी कविता का विषय बनाते हैं। जिस समय

और समाज ने उनकी रचनात्मक दृष्टि का निर्माण किया है और उसे सामाजिक प्रतिबद्धता से जोड़ा है, वह समय और समाज भारत में सामाजिक और राजनैतिक आन्दोलन की चरम अवस्था है। तत्कालीन आन्दोलनों के मूल में भारतीय सामाजिक चिन्तन की एक व्यापक और मानवीय भूमिका दिखाई देती है। रामनरेश त्रिपाठी भारतीय स्वतन्त्रता के निहितार्थ सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा साहित्यिक सुधारों को राजनैतिक चेतना से जोड़कर ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध सामाजिक आन्दोलन का सूत्रपात करते हैं। उनकी कविताएँ जहाँ तत्युगीन सामाजिक परिस्थितियों के प्रति ध्यानाकर्षित करती हैं, वहीं समसामयिक समस्याओं के प्रति एक गहन चिन्ता भाव भी उनमें दिखाई देता है –

तुम मनुष्य हो, अमित बुद्धि-बल-विलसित जन्म तुम्हारा।
क्या उद्देश्य रहित है जग में, तुमने कभी विचारा?
बुरा न मानो, एक बार सोचो तुम अपने मन में।
क्या कर्त्तव्य समाप्त कर लिए, तुमने निज जीवन में॥

(– पथिक, द्वितीय सर्ग)

1.5.3.3. आदर्शवाद एवं नैतिकता

रामनरेश त्रिपाठी काव्य में आदर्श एवं नैतिकता के प्रबल पक्षधर थे। अपने रचनात्मक तेवर और समर्पित जीवन-शैली के कारण वे आदर्शवाद एवं नैतिकता का समर्थन करते हैं। जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठापनार्थ वे अभिव्यक्ति के केन्द्रीयकरण पर बल देकर उसे असीम शक्तिशाली बना देते हैं। उनकी कविताएँ उच्च मानवीय आदर्शों ओर उच्चतर सामाजिक चेतना के यथार्थबोध का लक्ष्य लेकर चलती हैं जिनका मानवमात्र के लिए समर्पित दृष्टिकोण अपनी बुनियादी शर्तों के कारण और भी महत्त्वपूर्ण हो उठता है। इसीलिए उनका रचनात्मक दृष्टिकोण निरन्तर प्रवाहमान है। उनकी कविताओं का केन्द्र-बिन्दु मानव-हित है। मनुष्य के सारे अनुभव अपनी पूरी गहनता और संवेदना के साथ दूसरों तक सम्प्रेषित हो जाएँ, यही उनका परम लक्ष्य है। उनके द्वारा विरचित नीतिपरक दोहे द्रष्टव्य हैं –

विद्या, साहस, धैर्य, बल, पटुता और चरित्र।
बुद्धिमान के ये छवौ, हैं स्वाभाविक मित्र॥

नारिकेल सम हैं सुजन, अन्तर दया निधान।
बाहर मृदु भीतर कठिन, शठ हैं बेर समान॥

आकृति, लोचन, बचन, मुख, इंगित, चेष्टा, चाल।
बतला देते हैं यही, भीतर का सब हाल॥

स्थान-भ्रष्ट कुलकामिनी, ब्राह्मण सचिव-नरेश।
ये शोभा पाते नहीं, नर, नख, रद, कुच, केश॥

शस्त्र, वस्त्र, भोजन, भवन, नारी सुखद नवीन।
किन्तु अन्न, सेवक, सचिव, उत्तम हैं प्राचीन॥

व्यक्तिगत जीवन की पद्धत्ति जब समष्टि की संवेदना के साथ संधारित हो जाती है तब अनुभव की सामाजिक परम्परा जन्म लेने लगती है। धीरे-धीरे व्यक्तिगत संवेदना का रूपान्तरण सामाजिक संवेदना के साथ एक ओर तो संघर्ष की प्रक्रिया से जूझता है और दूसरी ओर उसकी दृष्टि को भी विकसित करता है। किन्तु यदि अनुभव की संवेदना आदर्श एवं नैतिक मूल्यों की पहचान न बन सके तो एक ओर जहाँ उसकी संवेदना जड़ होने की प्रक्रिया में आ जाती है, वहीं दूसरी ओर व्यक्तिवादिता और आत्मनिर्वासन की जड़ें इतनी गहरी हो जाती हैं कि सम्पूर्ण मानसिकता ही संज्ञा शून्य और विद्रूप हो जाती है। व्यक्तित्व के विकास की पहली दशा आदर्शवादी एवं नैतिक प्रक्रिया है जबकि दूसरी दशा लगातार जड़ होते भावबोध की एकालाप स्थिति। कवि रामनरेश त्रिपाठी की कविताएँ अपनी यात्रा पहली दशा से आरम्भ करके उसे क्रमशः पूर्ण करती हैं। उनके द्वारा विरचित 'मानसी', 'मिलन', 'पथिक' आदि रचनाएँ आदर्शवादी हैं। उनके काव्य-यात्रा की संवेदनशीलता व चिन्तन की गहराई निम्नलिखित पंक्तियों से अनुभव की जा सकती है –

कभी उदर ने भूखे जन को, प्रस्तुत भोजन पानी।
देकर मुदित भूख के सुख की क्या महिमा है जानी ?
मार्ग पतित असहाय किसी मानव का भार उठा के।
पीठ पवित्र हुई क्या सुख से उसे सदन पहुँचा के ?

(– पथिक, द्वितीय सर्ग)

1.5.3.4. प्रेम चित्रण

रामनरेश त्रिपाठी अपनी काव्यगत प्रस्तुति में प्रेम के आदर्श स्वरूप को अभिव्यक्त करते हैं। उनकी दृष्टि में प्रेम जीवन की अद्‌भुत शक्ति है तथा उसके बिना जीवन अर्थहीन है। उन्होंने अपनी कविताओं में प्रेम का चित्रण रीतिकालीन कवियों की भाँति नहीं किया है। उनके यहाँ प्रेम के निहितार्थ प्रयुक्त शब्दों एवं संवेदनाओं का विस्तार व्यापक है। उनकी प्रेमानुभूति उनके मानस से निकलकर संसार के हरेक प्राणी की अनुभूति बन गई है। उनका हृदय हर पीड़ित का हृदय है जिसमें विश्व के सारे सुख-दुःख समाहित हैं। वे मानवता की मर्यादा और उसकी अनन्त सीमाओं को जानते हैं और उसका निर्वाह करने के आकांक्षी हैं। प्रेम के उदात्त स्वरूप को अनुभूति और चिन्तन दोनों स्तरों पर प्रस्तुत करने में त्रिपाठीजी सफल हुए हैं। प्रेम की महिमा का गुणगान करतीं निम्नलिखित पंक्तियाँ देखिए–

गन्ध-विहीन फूल हैं जैसे चन्द्र चन्द्रिका-हीन।
यों ही फीका है मनुष्य का जीवन प्रेम-विहीन॥
प्रेम स्वर्ग है, स्वर्ग प्रेम है, प्रेम अशंक अशोक।
ईश्वर का प्रतिबिम्ब प्रेम है, प्रेम हृदय-आलोक॥

1.5.3.5. प्रकृति-चित्रण

हिन्दी नवजागरण काव्य में वर्ण्य-विषय का अद्भुत विस्तार देखने को मिलता है। यह अकारण नहीं है कि रामनरेश त्रिपाठी सदृश संवेदनशील कवि ने प्रकृति को भी स्वतन्त्र रूप में काव्य का विषय बनाया है। जीवन और जगत् के प्रायः समस्त दृश्यों और पदार्थों को काव्य का विषय बनाते हुए वे अपनी रचनाओं में प्रकृति का बड़ा ही मनोहारी चित्रण करते हैं। मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रकृति का उपयोग वे खास ढंग से करते हैं। वे प्रकृति के इर्द-गिर्द नहीं घूमते अपितु प्रकृति और उसके बिम्बों को मनुष्य की दुनिया के इर्द-गिर्द घुमाते हैं। वे मानव जीवन में व्याप्त विषमता, असमानता, निरर्थकता आदि को काव्य संवेदना के स्तर पर प्रकृति के माध्यम से भी प्रकट करते हैं। उदाहरण देखिए –

या अनन्त के वातायन से स्वर्गिक विपुल विमलता।
झलक रही थी धरा धाम को थी धो रही धवलता॥
सुख की निद्रा में निमग्न था एक-एक तृण वन का।
था बस, सुखद सुशीतल सन्-सन मन्द प्रवाह पवन का॥

1.5.3.6. शिल्पगत वैशिष्ट्य

जीवन, समाज और संस्कृति के चिन्तक रामनरेश त्रिपाठी की सभी विधाओं पर समान रूप से गहरी पकड़ है। उनकी दृष्टि तत्युगीन परिवेश, भाषा, छन्द योजना आदि पर समान रूप से पड़ती है। उनकी कविताओं की भाषा का तेवर खड़ीबोली है। भौगोलिक दूरियों को तय करती हुई हर अंचल में हल्का छायान्तरण लिए हुए वह अपना मूल रूप सुरक्षित रखती है। उनके पास विपुल शब्दावली है। अपनी रचनाओं में भावनाओं का समावेश कर वे कथ्य को सम्प्रेषणीय एवं प्रभावी बनाते हैं। त्रिपाठीजी की कविताओं में कोमलता का संचार हुआ है। सादृश्यमूलक अलंकारों में उन्हें रूपक और उपमा अलंकार अपेक्षाकृत विशेष प्रिय हैं। अपनी कल्पना शक्ति के बल पर उन्होंने नूतन उपमान विधान किया है। 'पथिक' खण्डकाव्य में उन्होंने अनेक कोमल उपमानों की योजना की है –

चंचल वीचि मरीचि-वसन से सजकर नीले तन को।
होड़-लगी-सी उछल रही थी चारु-चन्द्र-चुम्बन को॥
बैठ जलधि तीरस्थ शिला पर पथिक प्रेम-व्रत-धारी।
देख रहा था छटा चन्द्र की चित्त विमोहनहारी॥

कविवर त्रिपाठी की रचनाओं का छन्द विधान प्रभावी है। छन्दों को संगीत के साँचे में ढालकर उन्हें प्रसंगानुकूल एवं भावानुकूल बनाया गया है। भिन्न-भिन्न भावों की अभिव्यक्ति अलग-अलग छन्दों में की गई है। त्रिपाठीजी के काव्य में भाव के साथ-साथ छन्द परिवर्तित होता रहता है तथा पंक्तियाँ छोटी-बड़ी होती रहती हैं।

कविता में प्रतीकों का सहारा कवि को वहाँ लेना पड़ता है जहाँ सामान्य भाषा में प्रभावी अभिव्यक्ति करना सम्भव नहीं हो पाता। कभी-कभी कुछ शब्द अपना प्रतीकार्थ व्यक्त करते हुए रूढ़ बन जाते हैं। रामनरेश त्रिपाठी काव्यानुभूति की सार्थक अभिव्यक्ति हेतु प्रतीकों का भी आश्रय लेते हैं। 'मिलन' तथा 'स्वप्न' खण्डकाव्यों में प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग कर सूक्ष्म भावों एवं व्यापारों को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त किया गया है। काव्य-कला का अपूर्व चमत्कार वहाँ सहज ही परिलक्षित होता है।

काव्य का शिल्प उसके वक्तव्य के अुनसार होता है। रामनरेश त्रिपाठी की कविताएँ मानवीय कल्याण व लोकहित को साथ लेकर चलती हैं, इसलिए उनकी शैली सांकेतिक और चित्रात्मक न होकर प्रायः उपदेशात्मक हो गई है।

1.5.4. 'पथिक' का सन्देश

'पथिक' रामनरेश त्रिपाठी-कृत प्रसिद्ध खण्डकाव्य है जिसका प्रकाशन वर्ष 1920 ई. में हुआ। यह कृति रामनरेश त्रिपाठी को चिन्तनशील और ईमानदार कवियों की श्रेणी में स्थापित करती है। 'पथिक' के माध्यम से कवि निजी सुख और स्वार्थ को त्याग कर राष्ट्र के लिए अपना सब कुछ अर्पित करने का आह्वान करता है।

समाजशास्त्र में इस रचनात्मक चिन्तन प्रक्रिया को चेतना की संज्ञा दी गई है। परम्पराओं और रूढ़ियों के कारण उपजी जड़ता को नष्ट करते हुए जो विचार, बुद्धि और विवेक मनुष्य को नये मार्ग, नये उपाय और नयी उपलब्धियों की ओर प्रेरित करें तथा जिसके प्रभाव से व्यक्ति व समाज एक नया जागरण अनुभव करने लगे, वस्तुतः वही स्थिति चेतना है। मनुष्य और सभ्यता की आधारभूमि व्यक्ति की स्वतन्त्र चेतना नहीं है, अपितु समेकित सामाजिक चेतना का स्वतन्त्र होना ही मानवीय सभ्यता का आधार है। प्राणियों के अभाव और दुखों की तीव्रता का अनुभव उनके स्तर पर पहुँचकर ही अनुभव किया जा सकता है। जब रचनाकार परदुःखकातर होकर वंचितों की पृष्ठभूमि को पूरी तरह से आत्मसात कर लेता है तभी उसकी रचना वास्तविक हो अमरत्व को प्राप्त कर पाती है। रामनरेश त्रिपाठी 'पथिक' में आदर्श, जीवनमूल्य और नैतिकता को रेखांकित करते हुए लोकमंगल की कामना करते हैं। उनका रचनात्मक चिन्तन मानव जीवन के विभिन्न पहलुओं को एक साथ समेटते हुए विकसित होता है।

1.5.4.1. कथावस्तु

साहित्य समाजदर्शन और सामाजिक प्रेरणा का शास्त्र है। समसामयिक समाजदृष्टि को परिभाषित, व्याख्यायित और पुरातन मूल्यों को प्रतिष्ठित करने में साहित्य की विशिष्ट भूमिका रही है। साहित्य मनुष्य के विवेक, बुद्धि, अस्तित्व और विकास का आधार है। किसी भी साहित्यिक रचना में सामाजिक विवेक का जागरण, सार्वजनिक एवं सार्वभौमिक हित-चिन्तन तथा अमानवीय शक्तियों से संघर्ष का उद्‌घाटन अपेक्षित होता है। कोई समाज जब किन्हीं खास कारणों से अपनी बद्धमूल धारणाओं में परिवर्तन करता है और किसी नयी

वैचारिक चिन्तनधारा को ग्रहण करता है, ऐसा परिवर्तन उस समाज का नवजागरण कहा जाता है। 'पथिक' की कथावस्तु भी मानवतावाद की नवीन वैचारिकता से सम्पृक्त है।

'पथिक' की मूल कथा कुल पाँच सर्गों में विभक्त है। प्रथम सर्ग में प्रकृति (वन) वर्णन है। वन के मनोरम दृश्यों के प्रति आसक्त पथिक के लिए मानव जीवन में दुखों की भरमार है, मनुष्य जगत् में असह्य पीड़ा है। अतः मनुष्य जीवन के दुखों का वर्णन करते हुए वह उससे घृणा प्रकट करता है। उसकी दृष्टि में मनुष्य जगत् से वन कहीं अधिक सुखदायक है। द्वितीय सर्ग में पथिक, उसकी पत्नी और साधु का प्रसंग नियोजित है। कर्ममय जगत् से विरक्त पथिक पर उसकी पत्नी के निवेदन का कोई प्रभाव नहीं पड़ता फलस्वरूप वह लौट जाती है। तभी वहाँ एक साधु आकर पथिक को कर्ममय जगत् का गूढ़ रहस्य समझाते हैं। वैराग्य को पथिक के विचारों की भूल बताकर वे उसे पुनः मनुष्य जगत् में जाकर कर्म करने की अभिप्रेरणा देते हैं। वे उसे समझाते हैं कि मनुष्य के पास पौरुष, साहस, सत्य, न्याय, श्रद्धा, करुणा, उदारता, सुशीलता, सज्जनता, धर्म और क्षमा आदि ईश्वर की धरोहर हैं। समाज में रहकर उसे इनका सदुपयोग करना चाहिए। तृतीय सर्ग में पथिक को अपनी भूल का अहसास होता है तथा वह कर्ममय जगत् की ओर लौटने का दृढ़ संकल्प लेता है। वह देश के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण करता है जहाँ उसे अनुभव होता है कि देश में सर्वत्र व्याप्त दरिद्रता ही राष्ट्र की दयनीय स्थिति का मूल कारण है। समाज में व्याप्त छल, आपसी फूट, दम्भ और विश्वासघात से वह व्यथित हो उठता है। देश का प्राकृतिक सौन्दर्य जहाँ उसे उत्साहित करता है, वहीं लोगों का मालिन्य देखकर वह उदास हो जाता है। समाज की दयनीय स्थिति उसके लिए आश्चर्यजनक है। सामाजिक दुर्दशा के लिए पथिक राजा को उत्तरदायी मानता है, क्योंकि राजा अपने स्वार्थसिद्धि के अनूकूल तथ्यों को ही नीति और अपने वचन को ही राजनियम स्वीकार करता है। इन स्थितियों से खिन्न हो पथिक मानव कल्याण के निमित्त प्रजा को एकजुट करता है तथा राजा से भेंट करने का निश्चय करता है। राजा के सम्मुख उपस्थित हो वह राजा को सुशासन की सलाह देता है। किन्तु राजा पर पथिक के सुझावों का कोई असर नहीं पड़ता बल्कि पथिक के सुझावों से उसे असह्य क्रोध उत्पन्न होता है। चतुर्थ सर्ग में निरंकुश राजा पथिक को अपराधी घोषित करते हुए उसे मृत्युदण्ड सुनाता है। प्रजा राजा के इस निर्णय से बहुत आहत होती है। इसी सर्ग में कवि ने कर्मपथ पर अग्रसर पथिक, उसकी पत्नी, पुत्र और साधु के प्राणोत्सर्ग का उल्लेख किया है। पंचम और अन्तिम सर्ग में कवि पथिक की हत्या के बाद की स्थिति का वर्णन करता है। पथिक की हत्या के उपरान्त प्रजा को कर्त्तव्यबोध होता है। प्रजा के विद्रोह से भयभीत राजकर्मी राजा का साथ छोड़ देते हैं। राजा अपने राजमहल में अकेला हो जाता है। अन्ततः प्रजा निरंकुश राजा को देश की सीमा से बाहर निकाल देती है और इस प्रकार पथिक के बलिदान के परिणामस्वरूप देश में प्रजा के प्रतिनिधियों का शासन स्थापित होता है तथा स्वराज्य का शुभारम्भ होता है।

1.5.4.2. रचनात्मक प्रतिपाद्य

'पथिक' मानवीय आस्था, एकता, समानता, प्रेम और भाईचारे की ललक और आग्रह से परिपूर्ण खण्डकाव्य है। कवि रामनरेश त्रिपाठी गाँधीवाद के समर्थक हैं। मानवीय कल्याण व लोकहित की शक्तियों पर उनकी अटूट आस्था है। 'पथिक' में उनकी गाँधीवाद के प्रति निष्ठा अभिव्यक्त हुई है। रामनरेश त्रिपाठी हताश,

निराश, दुखी और मानसिक रूप से हारे मनुष्यों के मन में दबी एक चिनगारी देखते हैं। उन्हें विश्वास है कि मनुष्य कभी-न-कभी उसी आशा, प्रेम और विश्वास से पुनः भर उठेगा। देश के लोग फिर से एकमन, एकप्राण हो सकेंगे। तब देश में कहीं द्वेष और अलगाव नहीं होगा। इसके लिए वे मानवीय विश्वास को खोजने तथा मनुष्य के कर्ममय होने की प्रबल आवश्यकता अनुभव करते हैं –

जग में सचर अचर जितने हैं सारे कर्म निरत हैं।
धुन है एक न एक सभी को सबके निश्चित व्रत हैं।
जीवन भर आतप सह वसुधा पर छाया करता है।
तुच्छ पत्र की भी स्वकर्म में कैसी तत्परता है॥

(– पथिक, द्वितीय सर्ग)

बढ़ती हुई अराजकता के मध्य समाज विकास पर जाने के बजाय एक विचित्र आपाधापी की स्थिति में पहुँच गया है। समाज में जाति, भाषा, धर्म, अर्थ आदि से प्रभावित राजनैतिक परिस्थितियों में पिसते आमजन, शोषित वर्ग को देखकर और उनकी पीड़ा तथा निर्मम, संवेदनहीन यथास्थितिवादी व्यवस्था का अनुभव कर कवि क्रान्तिकारी हो उठता है। पथिक साधारण लोगों की इस मनोदशा को भलीभाँति जानता है। वह जानता है कि प्रजा को छला गया है। ऐसे में कवि प्रजा को उत्तरदायी स्वर देने का आग्रही है। कवि का पथिक सत्ताधरी लोगों को सचेत करता है और कहता है कि उन्हें (शासक वर्ग) को सत्ता का घटिया खेल बन्द करना होगा, क्योंकि अपने निजी स्वार्थों की पूर्ति के लिए वे जिन मनुष्यों की जीवन सदैव दाँव पर लगाते हैं, वास्तव में वही आमजन देश व समाज के लिए ज्यादा महत्त्वपूर्ण हैं।

पथिक के माध्यम से कवि सम्पूर्ण भारतीय समाज की वास्तविक स्थिति उद्घाटित करता है। वह महसूस करता है कि दरिद्रता का दैन्य समाज और देश को खोखला कर रहा है। पथिक की व्यापक दृष्टि उन परिस्थितियों को तलाश लेती है जो राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उत्तरदायी हैं। इतना होने पर भी 'पथिक' में कहीं भी कवि की तमंचाई उग्रता नहीं है। वहाँ परिवर्तन की आकांक्षा शान्त एवं संयमित स्वर में यातना शिविर को ध्वस्त करना चाहती है। पथिक-साधु संवाद के जरिएकवि सक्रियता उत्पन्न करने का अभिलाषी है –

फिर कहता हूँ डरो न दु:ख से कर्म मार्ग सम्मुख है।
प्रेम-पंथ है कठिन यहाँ दु:ख ही प्रेमी का सुख है॥
कर्म तुम्हारा धर्म अटल हो कर्म तुम्हारी भाषा।
हो सकर्म मृत्यु ही तुम्हारे जीवन की अभिलाषा॥

'पथिक' खण्डकाव्य रामनरेश त्रिपाठी की संवेदनशीलता और जनमानस के प्रति उनके गहरे लगाव का प्रबल साक्षी है। कवि की बेचैनी जो उनकी पूर्ववर्ती रचनाओं में करुणार्द्र आत्मा का हिस्सा बनी रही, 'पथिक' में सफलतापूर्वक अभिव्यक्ति पा गई है। पथिक के निर्भय और निर्भीक कर्ममय चेतनापूर्ण मन ने सामाजिक भय और आतंक के बीच सच कहने की शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त कर ली है। लम्बी यात्रा से गुजरता हुआ पथिक कवि के

निश्छल मन व मार्मिक संवेदना का परिचय देता है। कई बार तो पथिक स्वयं के विरोध में खड़ा दिखाई देता है जिसे काव्य विकास का मूल माना जा सकता है। इस प्रकार पथिक के माध्यम से अपने जीवनानुभवों को पाठकों के समक्ष रखता हुआ कवि मानवीय संवेदना व कर्ममय दृष्टि को अभिप्रेरित करता है।

1.5.5. पाठ-सार

सभ्यता के परिवर्तित होते रूपों के साथ कवि कर्म कठिन होता जा रहा है। इस युग में वही कविता श्रेष्ठ है जो संघर्षरत आम आदमी के यथार्थ और उसकी रोजमर्रा की ज़िन्दगी का सूक्ष्म निरीक्षण तथा विश्लेषण करे एवं उसे अपने में समाहित कर ले। रामनरेश त्रिपाठी की रचनाएँ इस कसौटी पर खरी उतरती हैं। आम आदमी के साधारण संसार से कवि का रिश्ता सहज, आत्मीय और जीवन्त है। शासन-तन्त्र की अराजकता, भ्रष्टाचार, दुराचार, अनैतिकता, अधार्मिकता, कर्त्तव्यविमुखता आदि के प्रति विरोध का स्वर 'पथिक' में मुखरित हुआ है।

1.5.6. शब्दावली

मुदित	:	प्रसन्न, आनन्दित
सदन	:	घर, निवास-स्थान
वातायन	:	झरोखा
विपुल	:	बृहत्, अथाह
वीचि	:	तरंग, लहर
वसुधा	:	पृथ्वी
आतप	:	उष्णता, ताप, कष्ट

1.5.7. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. त्रिपाठी, रामनरेश, पथिक, हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग.
2. शर्मा, हरिचरण, आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, मलिक एंड कंपनी, जयपुर.
3. अधीर, इंदरराज बैद, रामनरेश त्रिपाठी, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली.
4. तलवार, वीरभारत, राष्ट्रीय नवजागरण और साहित्य, किताबघर, नयी दिल्ली.
5. डॉ॰ नगेन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली.
6. वाजपेयी, नन्ददुलारे, आधुनिक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

1.5.8. बोध प्रश्न

टिप्पणी लिखिए

1. रामनरेश त्रिपाठी की कविताओं में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना।
2. रामनरेश त्रिपाठी का कृतित्व।

3. ‘पथिक’ की कथावस्तु।
4. रामनरेश त्रिपाठी का प्रेम-चित्रण।
5. रामनरेश त्रिपाठी का शिल्पगत वैशिष्ट्य।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हिन्दी नवजागरण काव्य-चेतना के आलोक में रामनरेश त्रिपाठी के काव्यगत वैशिष्ट्य का विवेचन कीजिए।
2. रामनरेश त्रिपाठी की राष्ट्रीय-सामाजिक दृष्टि पर प्रकाश डालते हुए ‘पथिक’ के रचनात्मक अवदान को उद्घाटित कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. रामनरेश त्रिपाठी के काव्य-ग्रन्थ हैं –
   (क) मिलन
   (ख) पथिक
   (ग) स्वप्न
   (घ) उपर्युक्त सभी

2. ‘पथिक’ का प्रकाशन कब हुआ ?
   (क) 1920 ई. में
   (ख) 1921 ई. में
   (ग) 1922 ई. में
   (घ) 1923 ई. में

3. रामनरेश त्रिपाठी की फुटकल कविताओं का संग्रह है –
   (क) मानसी
   (ख) मिलन
   (ग) स्वप्न
   (घ) उपर्युक्त में से कोई नहीं

4. ‘पथिक’ की कथावस्तु कितने सर्गों में विभक्त है ?
   (क) चार
   (ख) पाँच

(ग) सात
(घ) दस

5. 'पथिक' का सन्देश है –
(क) कर्त्तव्यविमुखता का निषेध
(ख) सदाचार एवं त्याग
(ग) धर्म और संस्कार
(घ) उपर्युक्त सभी

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : छायावादी काव्य

इकाई – 1 : 'कामायनी' में निहित आधुनिक सन्दर्भ, दर्शन, परम्परा और आधुनिकता, कामायनी का महाकाव्यत्व, रूपक तत्त्व, प्रसाद की सौन्दर्य चेतना, समरसतावादी दृष्टि

इकाई की रूपरेखा

2.1.00. उद्देश्य
2.1.01. प्रस्तावना
2.1.02. कामयानी में निहित आधुनिक सन्दर्भ
2.1.03. दर्शन
- 2.1.03.1. शैव दर्शन
- 2.1.03.2. बौद्ध दर्शन

2.1.04. परम्परा और आधुनिकता
- 2.1.04.1. भोगवाद
- 2.1.04.2. नारी स्वातन्त्र्य
- 2.1.04.3. संघर्ष
  - 2.1.04.3.1. शासक और शासित का द्वन्द्व
  - 2.1.04.3.2. श्रमिकों और पूँजीपतियों का संघर्ष
  - 2.1.04.3.3. जातियों और वर्गों का संघर्ष
- 2.1.04.4. गाँधीवाद एवं साम्यवाद

2.1.05. कामायनी का महाकाव्यत्व
- 2.1.05.1. कथावस्तु
- 2.1.05.2. नायक
- 2.1.05.3. सर्ग
- 2.1.05.4. प्रकृति-चित्रण
- 2.1.05.5. भाव एवं रस
- 2.1.05.6. उद्देश्य
- 2.1.05.7. निष्कर्ष

2.1.06. रूपकत्व
- 2.1.06.1. मनु
- 2.1.06.2. श्रद्धा
- 2.1.06.3. इड़ा
- 2.1.06.4. कुमार
- 2.1.06.5. जल प्लावन
- 2.1.06.6. मानसरोवर
- 2.1.06.7. कामायनी का प्रस्तुत अर्थ

2.1.06.8. प्रतीकात्मक अर्थ
2.1.07. प्रसाद की सौन्दर्य चेतना
2.1.07.1. प्राकृतिक सौन्दर्य
2.1.07.2. नारी सौन्दर्य
2.1.07.3. परोक्ष सौन्दर्य
2.1.07.4. जीवन-सौन्दर्य
2.1.08 समरसतावादी दृष्टि
2.1.09 पाठ-सार
2.1.10 बोध प्रश्न
2.1.11 कठिन शब्दावली
2.1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

2.1.00. उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई छायावाद के प्रमुख कवि जयशंकर प्रसाद के 'कामायनी' महाकाव्य पर आधारित है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. कामायनी के आधुनिक सन्दर्भ को जान सकेंगे।
ii. कामायनी के दर्शन की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
iii. कामायनी और आधुनिकता को समझ सकेंगे।
iv. कामायनी के महाकाव्यत्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
v. कामायनी के रूपकत्व की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
vi. प्रसाद की सौन्दर्य चेतना को समझ सकेंगे।
vii. समरसतावादी दृष्टि की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

2.1.01. प्रस्तावना

स्नातकोत्तर स्तर पर कामायनी को पढ़ने का अर्थ है कि जयशंकर प्रसाद को समग्रता से पढ़ना। जयशंकर प्रसाद छायावाद के प्रतिनिधि कवि हैं। उनके निधन के साथ ही छायावाद युग समाप्त हो जाता है। इस पाठ के अध्ययन की सार्थकता आपके लिए तभी सार्थक होगी जब आपको महसूस हो कि आप सीधे प्रसाद के काव्य-मर्म तक पहुँच गए हैं। यह अध्ययन तभी सार्थक होगा जब कामायनी को पढ़ते हुए आप अनुभव करें कि प्रसाद आपके प्रिय कवि हैं। प्रसाद छायावाद के प्रवर्तक हैं इसलिए स्वाभाविक है कि छायावाद की प्रवृत्तियों का परिचय प्रसाद को पढ़ने-समझने में सहायक हो। प्रसाद छायावादी कवि के रूप में क्या कुछ नया उद्घाटित कर रहे थे ! क्या कुछ नया खोज रहे थे ! इसका अनुमान कामायनी के चिन्ता सर्ग के प्रथम छन्द से लग जाता है। इन संकेतों से सम्भवतः आप प्रसाद की कामायनी के प्रति गहरी उत्सुकता अनुभव करेंगे।

2.1.02. कामयानी में निहित आधुनिक सन्दर्भ

प्रसाद की अधिकांश रचनाओं की भाँति 'कामायनी' की कथावस्तु भी ऐतिहासिक है, बल्कि इसका इतिहास तो इतना प्राचीन है कि इसमें कितना इतिहास है और कितना 'मिथ' है, कहना सरल नहीं है। 'विशाख' की भूमिका में प्रसाद ने लिखा है – "इतिहास का अनुशीलन किसी भी जाति को अपना आदर्श संगठित करने के लिए लाभप्रद होता है। ... क्योंकि हमारी गिरी दशा को उठाने के लिए हमारे जलवायु के अनुकूल जो हमारी अतीत सभ्यता है, उससे बढ़कर उपयुक्त और कोई भी आदर्श हमारे अनुकूल होगा कि नहीं, इसमें मुझे सन्देह है। ... मेरी इच्छा भारतीय इतिहास के अप्रकाशित अंश में से उन प्रकाण्ड घटनाओं का दिग्दर्शन कराने की है, जिन्होंने हमारी वर्तमान स्थिति को बनाने का बहुत कुछ प्रयत्न किया है।"

प्रसादजी में निश्चित रूप से इतिहास-बोध है। वे बौद्धिक संस्कृति के आवश्यक अंग तथा सामाजिक जीवन को बदलने एवं समझने के आवश्यक उपकरण की तरह इतिहास का प्रयोग करते हैं। इसलिए इतिहास पर आधारित कथानकों और चरित्रों में बार-बार वर्तमान की झलक मिलती है और वर्तमान तथा भविष्य के लिए चिन्तित एक सकारात्मक सोच दिखलाई पड़ती है। 'कामायनी' के सन्दर्भ में भी यही सच है। कामायनी एक तरफ आदिपुरुष और आदिरमणी के द्वारा सृष्टि के पुनर्निर्माण की कथा है तो दूसरी तरफ इसके भीतर छिपे मिथकीय रूपकात्मक स्वरूप को भी कवि ने पहचाना है और "ऐतिहासिक पौराणिक कथा पर मनोवैज्ञानिक-दार्शनिक कथा प्रक्षेपित की है। इस तरह से 'कामायनी' हमें वर्तमान सन्दर्भ में 'प्रसाद' की चिन्ता से भी परिचित कराती है और मंगलमयी वृद्धि की ओर यह संसार अग्रसर है, या हो, इस शुभाशंसा से भी।"[1] इसलिए कामायनी में आधुनिक सन्दर्भ सर्वत्र दिखाई पड़ता है।

कामायनी का रचनाकाल सन् 1927-1935 है। 1936 में इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ। सन् 1939 में इसका दूसरा किंचित् संशोधित संस्करण प्रकाश में आया, वही संस्करण आज भी चल रहा है। कामायनी के प्रकाशन से मात्र दस वर्ष बाद हमें आजादी मिली। इस आजादी को देखने और उसका सुख लेने के लिए प्रसादजी तो नहीं रहे परन्तु कामायनी का सृजन करते हुए वे देख रहे थे कि देश को मिलने वाली आजादी कैसी होगी। आजादी के पश्चात् हमारा प्रजातन्त्र किस दिशा में जाएगा जैसी हमारी उस समय गति-मति थी। तीस के दशक में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम अपने चरम पर था। पूर्ण स्वराज्य की संकल्पना हो चुकी थी। एक तरफ सशस्त्र क्रान्ति के जरिए आजादी प्राप्त करने वाले निष्ठावान् नेताओं की टोली थी दूसरी तरफ गाँधी का अहिंसक आन्दोलन उच्चादर्श। जिस पर उनके अनुयायी कभी-कभी संशय दृष्टि से देखते थे परन्तु गाँधी अपनी मंजिल की ओर चल रहे थे। क्या आजादी गाँधीवादी आदर्शों पर मिली या आजादी के पश्चात् हमने गाँधी के साथ कैसा व्यवहार किया – इन सन्दर्भों की गूँज हमें कामायनी में यत्र-तत्र दिखाई पड़ती है। "गाँधी दर्शन का बीज है सत्याचरण। गाँधीजी ने अपनी आत्मकथा को 'सत्य के प्रयोग' नाम दिया। गाँधीजी की सत्यवादिता से बहुतों को हैरानी होती थी, बहुतों को खीझ, बहुत उनके सत्य को समझ नहीं पाते थे, कि आखिर यह है क्या ?"[2] प्रसंग दूसरा है, किन्तु 'कामायनी' के कर्म सर्ग में इसी सत्य के ऊहापोह की ध्वनि मिलती है –

और सत्य ! यह एक शब्द तू कितना गहन हुआ है ?
मेधा के क्रीड़ापंजर का पाला हुआ सुआ है ॥[3]

गाँधी दर्शन का दूसरा बीज है, 'अहिंसा'। कामायनी में मनु के हिंसाचरण पर जो टिप्पणी की गई है वह कथा के एक विशेष प्रसंग में है परन्तु निश्चय ही निम्नांकित पंक्तियों को लिखते समय कवि के मनःमस्तिष्क को वह अहिंसा मथ रही होगी –

अपनी रक्षा करने में जो चल जाय तुम्हारा कहीं अस्त्र;
वह तो कुछ समझ सकी हूँ मैं – हिंसक से रक्षा करे शस्त्र।
पर जो निरीह जीकर भी कुछ उपकारी होने में समर्थ;
वे क्यों न जिएँ, उपयोगी बन इसका मैं समझ सकी न अर्थ ![4]

संघर्ष सर्ग में सारस्वतवासी, मनु से जो संवाद करते हैं उसमें गाँधीवादी विचारों की प्रत्यक्ष ध्वनि सुनाई पड़ती है। गाँधीजी का कहना था "मैं जिसका विरोध करता हूँ वह मशीनीकरण की 'धुन' (क्रेज) है। मशीन का मैं विरोधी नहीं हूँ।" और 'मशीनीकरण' एवं 'उद्योगीकरण' ने भारत को कहाँ ला दिया है यह दिखाई पड़ रहा है। "अत्यधिक मशीनीकरण में व्यक्ति ही मशीन हो जाता है, आत्मकेन्द्रित । भौतिक उपलब्धियों और सुख-सुविधाओं के संचय की इच्छा ऐसे में बढ़ती जाती है। एक कृत्रिम अभाव हमें सालने लगता है, एक खास तरह की संवेदनशीलता हममें आ जाती है, यह संवेदनशीलता दूसरों के प्रति नहीं, अपने आप के प्रति अत्यधिक अनुभूतिशील हो जाने जैसी होती है।"[5] संचय की इस प्रवृत्ति की अति को हम आज देख रहे हैं, कामायनीकार ने उसी समय देख लिया था। यथा –

तुमने योग-क्षेम से अधिक संचय वाला,
लोभ सिखा कर इस विचार-संकट में डाला।
हम संवेदनशील हो चले यही मिला सुख,
कष्ट समझने लगे बना कर निज कृत्रिम दु :ख!
प्रकृति शक्ति तुमने यन्त्रों से सब की छीनी !
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी !

'यान्त्रिकता' का जो संकेत यहाँ मिलता है उसे कतिपय विद्वान् विसंगति कहते हैं, पर प्रसादजी के अन्दर की हलचल को सही मानते हैं। यान्त्रिकता एक मनोवृत्ति है। बहुत पहले श्रद्धा जो तकली घुमा रही थी वह भी यन्त्र ही है। यन्त्र कहने से तात्पर्य एकदम आज के यन्त्रों से नहीं है, संचयी मनोवृत्ति वाली आत्मकेन्द्रित व्यवस्था से है।

प्रसादजी ने सदैव नारी के औदात्य का चित्रण किया है और पुरुष के दानवी चरित्र को उसके सामने बार-बार लाया है। आज की नारियाँ जिस स्वतन्त्रता की माँग कर रही हैं उससे इतर बहुत ऊँची बात लज्जा सर्ग में प्रसादजी कहते हैं –

देवों की विजय, दानवों की हारों का होता युद्ध रहा
संघर्ष सदा उर-अन्तर में जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।[6]

नारी की करुण स्थिति पर जो प्रसादजी ने टिप्पणी की है इसके आगे और क्या कहा जा सकता है। वस्तुतः प्रसादजी स्त्री और पुरुष की असमानता को दूर करने में विश्वास करते थे। इस बात को स्पष्ट करने के लिए श्रद्धा सर्ग में लिखते हैं –

लगा कहने आगंतुक व्यक्ति मिटाता उत्कण्ठा सविशेष;
दे रहा हो कोकिल सानन्द सुमन को ज्यों मधुमय सन्देश।[7]

यहाँ नारी श्रद्धा के लिए क्रिया और संज्ञा पदों को पुल्लिंग बनाकर कवि ने विशिष्ट व्यंजक शैली में अपना संकेत दिया है कि हमारी भाषा ही औरत और मर्द में अन्तर करती है इसलिए पहले इसे ठीक करना आवश्यक है।

कतिपय विद्वान् इसे प्रसाद की भाषागत अवधानता के रूप में लेते हैं। वस्तुतः स्त्री के लिए पुल्लिंगवाची संज्ञा या क्रियापद का प्रयोग उर्दू-फारसी के प्रभावस्वरूप है। कामायनी के पहले आँसू में तो ऐसे अनेक प्रयोग हैं –

शशि-मुख पर घूँघट डाले अंचल में दीप छिपाये
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये।

उर्दू-फारसी से प्रभावित शायरी में ऐसे प्रयोग प्रायः मिलते हैं। 'मेरी महबूबा' की जगह 'मेरे महबूब' जैसे सम्बोधन का प्रयोग उर्दू शायरी में आम बात है।

औद्योगिक युग में चरित्रों में स्खलन आ जाता है, उसके जो दृष्टान्त प्रसादजी ने कामायनी में दिये हैं वे इतने अधिक सजीव हैं कि मानों प्रसाद ने आज की स्थिति को देखकर लिखा है। जैसे –

इड़े! मुझे वह वस्तु चाहिए जो मैं चाहूँ,
तुम पर हो अधिकार, प्रजापति न तो वृथा हूँ।
किन्तु आज तुम बंदी हो मेरी बाहों में
मेरी छाती में फिर सब डूबा आहों में।[8]

इन पंक्तियों को पढ़ते समय आज के राजनेताओं का चरित्र आँखों के सामने आ जाता है और नगरों महानगरों में नारियों के यौन-शोषण की बातें आये दिन यत्र-तत्र घटित होती सुनाई देती हैं उसकी झलक इन पंक्तियों में मिलती है।

सम्प्रति लोकतान्त्रिक व्यवस्था में हम जिन प्रतिनिधियों को चुनकर संसद अथवा विधानसभाओं में भेजते हैं, वे क्या यह नहीं सोचते दिखते कि 'तुच्छ नहीं' है अपना सुख भी ... । दो दिन के इस जीवन का तो वही चरम सब कुछ है?

प्रसाद के समय भारत में पाश्चात्य-सभ्यता संस्कृति चरम पर थी। तब प्रसाद को भारतीय ऐतिहासिक परम्परा के पुनरुत्थान की आवश्यकता महसूस हुई। उन्होंने कामायनी के द्वारा प्राग् ऐतिहासिक काल की कथा को अपने समय की परिस्थितियों के समाधान हेतु प्रस्तुत किया जिसकी उपयोगिता आज भी है। इसलिए उस समय उन्होंने कामायनी में मानव-संस्कृति की रूपरेखा प्रस्तुत की है –

सब भेदभाव भुलाकर दु:ख-सुख को दृश्य बनाता,
मानव कह रे! यह मैं हूँ यह विश्व नीड़ बन जाता।

अस्तु, विश्वमैत्री की भावना से पूर्ण है, 'कामायनी'।

2.1.03. दर्शन

प्रसादजी एक महान् दार्शनिक हैं। भारतीय दर्शनों का उनका गम्भीर अध्ययन है। उन्होंने कामायनी महाकाव्य की रचना आध्यात्मिक दृष्टि से की है। ऋषि-मुनियों के आध्यात्मिक चिन्तन को दर्शन का नाम दिया गया है। प्रसादजी के जीवन का मूल दर्शन शैव था। शिव के वरदानस्वरूप उनका आविर्भाव हुआ था। बचपन में ही उन्हें देश के प्रसिद्ध ज्योतिर्लिंगों की यात्रा करायी गई थी। उनकी पहली स्मृति में घर के पास के शिवालय के घण्टे की ध्वनियाँ थीं। इसलिए शैव दर्शन उनके जीवन का मूल दर्शन रहा। विकासक्रम में उन पर और भी दार्शनिक प्रभाव थे जिनमें प्रमुख बौद्ध दर्शन का प्रभाव था। धारा-प्रवाह में सूफियों का दर्शन तथा अन्य भी आए परन्तु जिन दो दार्शनिक प्रभावों को हम विशेष मान्यता देते हैं, वह बौद्ध और शैव दर्शन ही हैं। "अपनी ऊँची से ऊँची दार्शनिक उड़ानों में उन्होंने धरती पर से अपना चरण हटने नहीं दिया – उनके हृदय में मानव-कल्याण की भावना विराट् थी और स्वोन्नति के लिए अन्तर में सिमट आने को, कोरे रहस्यवाद या अव्यावहारिक दर्शन को वे हेय मानते थे। प्रसाद ने जीवन से कभी पलायन नहीं किया – उन्हें जीवन से, उसके समस्त रसों के साथ अत्यधिक प्यार था और मानव को वह सृष्टि का श्रेष्ठतम जीव मानते थे क्योंकि मानव प्रकृति की समस्त संवेदनशील विभूतियों का सम्मिश्रण था।"[9] प्रसाद के दर्शन का अपना विशिष्ट स्थान है। उसकी अपनी मौलिकता है।

2.1.03.1. शैव दर्शन

प्रसाद ने 'कामायनी' में मन की उस स्थिति को प्रतिपाद्य बनाया है जिसमें समस्त प्रकार के दुःख-सुख का, हृदय-बुद्धि का, नर-नारी का और राजा-प्रजा का व्यष्टि-समष्टि का भेदभाव समाप्त हो जाता है और चारों ओर अखण्ड आनन्द का साम्राज्य स्थापित हो जाता है। जैसे –

समरस में जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था;
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।[10]

इस स्थिति को शैवागम में समरसता का नाम दिया गया है। यह अपने में साध्य भी है और साधन भी। कामायनी का घटनाक्रम इसी समरसता पर आधारित है। पात्र-चयन, पात्रों का नामकरण और उनका चरित्र-चित्रण

भी इसी के आधार पर हुआ है। ग्रन्थान्त में दो सर्ग 'रहस्य' तथा 'आनन्द' उसी वर्णन के लिए जोड़े गए हैं। अन्य सर्गों में भी प्रसाद को जहाँ अवसर मिला है, उन्होंने शिव के अनेक रूपों एवं शैव दर्शन के विभिन्न तत्त्वों का वर्णन किया है। समरसता का सिद्धान्त शैव दर्शन की नींव है। भेद-बुद्धि जीवन को उससे दूर रखती है। जिस पल भेद-बुद्धि का लोप हो जाता है, मन स्वयं समरस हो जाता है। शैवदर्शनानुसार शिव और शक्ति में कोई भेद नहीं है। "शिव ही बहिर्मुख होने पर शक्ति और शक्ति ही अन्तर्मुख होने पर शिव है।" कामायनी में जगत् का यही रूप लिख गया है –

कर रही लीलामय आनन्द महाचिति सजग हुई सी व्यक्त,
विश्व का उन्मीलन अभिराम इसी में सब होते अनुरक्त।[11]

जीव की यह स्थिति है कि वह सामरस्यपूर्ण नहीं हो पाता –

ज्ञान दूर कुछ, क्रिया भिन्न है इच्छा क्यों पूरी हो मन की;
एक दूसरे से न मिल सके यह विडम्बना है जीवन की।[12]

सामरस्यपूर्ण स्थिति में पहुँच जाने पर सभी प्रकार के द्वन्द्वों यथा – दुःख-सुख, हृदय-बुद्धि, नर-नारी, राजा-प्रजा, व्यष्टि-समष्टि का भेदभाव समाप्त हो जाता है। हर तरफ अखण्ड आनन्द का साम्राज्य अनुभव होता है।

2.1.03.2. बौद्ध दर्शन

कामायनी के प्रतिपाद्य को स्थिर करने में प्रसाद को बौद्ध-दर्शन से भी सहायता मिली है। 'चिन्ता सर्ग' के कई छन्दों में बौद्ध-दर्शन के दुःखवाद और क्षणवाद का प्रभाव मिलता है। जैसे –

जीवन तेरा क्षुद्र अंश है व्यक्त नील घन माला में,
सौदामिनी-सन्धि सा सुन्दर क्षण भर रहा उजाला में।[13]

दुःखवाद अधोलिखित छन्द में मिलता है –

वे सब डूबे, डूबा उनका विभव, बन गया पारावार;
उमड़ रहा है देव-सुखों पर दुःख-जलधि का नाद उपार।[14]

कामायनी में अनेक स्थलों पर वेदान्त-दर्शन की भी स्वीकृति मिलती है साथ ही डार्विन के विकासवाद की छाप भी स्पष्ट अंकित है। हतोत्साहित मनु में फिर से साहस का संचार करने के लिए (विकासवाद से सम्बन्धित एक अन्य धारणा) परिवर्तनवाद का भी प्रयोग किया गया है। जैसे –

प्रकृति के यौवन का शृंगार करेंगे कभी न बासी फूल;
मिलेंगे वे जाकर अति शीघ्र आह उत्सुक है उनकी धूल।

पुरातनता का यह निर्मोह सहन करती न प्रकृति पल एक;
नित्य नूतनता का आनन्द किये है परिवर्तन में टेक।[15]

शैव दर्शन के व्यक्तिवादी होने पर भी 'कामायनी' में सामाजिक दर्शन को भी महत्त्व दिया गया है। जीवन के सामाजिक पक्ष की उपेक्षा करके मनुष्य जीवन का पूर्ण विकास नहीं कर सकता। प्रसादजी इस तथ्य के पूर्ण समर्थक थे। उन्होंने यथाअवसर जीवन के सामाजिक पक्ष को प्रस्तुत किया है और कहा है कि व्यक्ति अपने को समष्टि के लिए समर्पित करे। उदाहरणार्थ –

अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकान्त स्वार्थ भीषण है अपना नाश करेगा ![16]

अस्तु कामायनी की दार्शनिक पृष्ठभूमि सुदृढ़ है। उसे अनेक दर्शनों का आधार प्राप्त है। शैव दर्शन का समरसता सिद्धान्त, बौद्धों का क्षणवाद एवं दुःखवाद, वेदान्त दर्शन का ज्ञानवाद और अनेक समाजवादी तत्त्व। आचार्य शुक्ल ने कामायनी के घटनाचक्र पर शैव-दर्शन का आरोप करते हुए लिखा है – "श्रद्धा ने मनु को सरस्वती तट पर एक गुफा में पाया। मनु उस समय आँखें बन्द किये चित्ती-शक्ति का आन्तर्नाद सुन रहे थे, ज्योतिर्मय पुरुष का आभास पा रहे थे, अखिल विश्व के बीच नटराज नृत्य देख रहे थे। श्रद्धा को देखते ही बेहद चेत होकर पुकार उठे – श्रद्धे ! उन चरणों तक ले चल। श्रद्धा आगे-आगे और मनु पीछे-पीछे हिमालय पर चढ़ते चले जाते हैं। यहाँ तक कि वे ऐसे महादेश में अपने को पाते हैं जहाँ वे निराधार ठहरे जान पड़ते हैं। भू-मण्डल के रसों का कहीं पता नहीं।" यहाँ अब कवि पूरे रहस्यवादी का बाना धारण करता है और मन के भीतर एक नयी चेतना (इस चेतना से भिन्न) का उदय बताता है। अब मनु को त्रिषिक (थ्री डाइमेंशन) – विश्व और त्रिभुवन के प्रतिनिधि तीन अलग-अलग आलोक बिन्दु दिखाई पड़ते हैं। श्रद्धा उन्हें एक-एक का रहस्य समझाती है। इन तीन बिन्दुओं का रंग लाल, काला और श्वेत है। जिसमें प्रथम लाल बिन्दु 'इच्छा' का क्षेत्र है, दूसरा काला बिन्दु कर्म का क्षेत्र है और तीसरा श्वेत बिन्दु 'ज्ञान' का क्षेत्र है। श्रद्धा इनका सविस्तार वर्णन करती है। तीनों की भिन्नता को ही दुखों का कारण बताती है और जब वह मुस्कुराती है तो तीनों बिन्दु एक हो जाते हैं। आचार्य शुक्ल के मतानुसार – "इस रहस्य को पार कर लेने पर ही आनन्द-भूमि दिखाई गई है। वहाँ इड़ा भी कुमार (मानव) को लिये अन्त में पहुँचती है और देखती है कि पुरुष पुरातन प्रकृति से मिला हुआ अपनी ही शक्ति से लहरें मारता हुआ आनन्द-सागर-सा उमड़ रहा है।"

2.1.04. परम्परा और आधुनिकता

कामायनी की कथा शतपथ ब्राह्मण तथा पुराण प्रसिद्ध होती हुई भी आधुनिक युग की कहानी है। उसमें प्रदर्शित जीवन सभ्यता एवं संस्कृति का रूप मनुकालीन नहीं, रचनाकालीन है। कामायनी महाकाव्य मनुकालीन परिस्थितियों, हलचलों तथा आन्दोलनों की ओट में आधुनिक समय की परिस्थितियों, हलचलों एवं आन्दोलनों को चित्रित करता है। उसमें प्रतिपादित विचार एवं परिलक्षित प्रवृत्तियाँ आज की हैं। आर्नोल्ड ने काव्य की जो परिभाषा दी है कि "तत्त्वतः वह जीवन की समीक्षा है", सामान्य काव्य के लिए भले ही उपयुक्त न हो पर वह

'कामायनी' पर पूर्णतः चरितार्थ होती है। "अपनी ज्ञान, विज्ञानमयी सम्पदा के कारण ही 'कामायनी' 'मानस' की भाँति चिर नवीन है। उसमें ऐसी ही मौलिक और मानव जीवन से घनिष्ठतम सम्बन्धित समस्याओं को उठाया गया है, जो किसी एक युग और देश-विदेश तक सीमित न होकर समस्त मानव जाति के चिरकालीन जीवन से अनुबन्धित है। उसमें ऐसे जीवन-मूल्यों का अन्वेषण है जो हर नवागत पीढ़ी के प्राप्तव्य और मानवता के अभ्युदय में सहायक है।"[17] इस प्रकार प्रसादजी का युग-कवि रूप हर युग का प्रतिदर्शक सिद्ध होता है। 'कामायनी' की इसी वैचारिक गम्भीरता के कारण उसे 'हिन्दी का वेद' भी कहा गया है। कामायनी यद्यपि आदिम मानव की कथा है किन्तु कवि ने उसमें भी आधुनिक समस्याओं को स्थान दिया है। मुख्य समस्याएँ अधोलिखित हैं –

2.1.04.1. भोगवाद

पूँजीवादी सभ्यता के विकसित होने से भोगवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। वैज्ञानिक युग में मानव ने अनेक सुखों की खोज कर ली है जिसके कारण उसमें स्वार्थ की भावना भर गई है। अपने सुख के लिए वह दूसरे मनुष्यों की हानि करने में संकोच नहीं करता। दूसरे की सुख-सुविधा के विषय में वह ध्यान नहीं देता। देवताओं के जीवन का जो स्मृतिबिम्ब कामायनी में वर्णित है और उसका जो परिणाम दिखाया गया है, वह आधुनिक भोगवादी जीवन की ओर संकेत करने वाला है। प्रसाद इस भोगवाद के विरुद्ध हैं। उन्होंने इन्द्रियजन्य लिप्साओं की अवहेलना करते हुए कहा है –

आकर्षण से भरा विश्व यह केवल भोग्य हमारा;
जिनके दो कूलों में बहे वासना धारा।
* * *
वही स्वर्ग की बन अनन्तता मुसकाता रहता है;
दो बूँदों में जीवन का रस लो बरबस बहता है।[18]

देवसृष्टि का विनाश उसकी भोगवादी संस्कृति के कारण ही होता है। कवि यह कहना चाहता है कि अखण्ड विलास एवं भोग-लिप्सा अन्ततः विध्वंस का कारण होती है।

2.1.04.2. नारी स्वातन्त्र्य

नारी का स्वाभिमान, उसकी मर्यादा, उसकी स्वतन्त्रता, आधुनिक युग का बड़ा प्रश्न है। प्रसाद ने कामायनी में श्रद्धा एवं इड़ा के रूप में दो नारी प्रतीकों का सृजन किया है। प्रसाद ने श्रद्धा के रूप में आदर्श नारी की कल्पना की है वे आज की नारी को श्रद्धा के रूप में देखना चाहते हैं –

दया, माया, ममता लो आज मधुरिमा लो अगाध विश्वास;
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है पास।[19]

प्रसाद पुरुष नारी में सामंजस्य चाहते हैं। वह पुरुष को यह बताना चाहते हैं कि नारी मात्र भोग्या नहीं है। उसका अपना अस्तित्व है उसकी अपनी सत्ता है। काम मनु को तिरस्कृत करते हुए कहता है –

तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की;
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।

प्रसाद नारी को चहारदीवारी के भीतर बन्द करके नहीं रखना चाहते थे। पुरुष के साथ निरन्तर सहयोग करते हुए सही अर्थों में उसकी सहधर्मिणी होना ही नारी की सार्थकता है। इड़ा और श्रद्धा के माध्यम से उन्होंने दिखाया है कि नारी अपने स्वार्थ को त्याग कर पुरुष के लिए सदैव उन्नति का मार्ग प्रशस्त करती है।

2.1.04.3. संघर्ष

कामायनी के इड़ा सर्ग में सारस्वत प्रदेश के लोकजीवन में हमें आधुनिक संघर्ष दिखई पड़ताहै। आज का यह संघर्ष हमारे देश में ही नहीं, सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त है। शासक और शासित की समस्या, श्रमिकों और पूँजीपतियों की समस्या, जाति और वर्ग भेद की समस्याएँ सम्प्रति हमारे सम्मुख विकराल मुँह बाए खड़ी हैं।

2.1.04.3.1. शासक और शासित का द्वन्द्व

जब शासक अपने ही बनाये गए नियमों का उल्लंघन करता है, स्वेच्छाचारी हो जाता है और प्रजा को प्रताड़ित करता है तब शासक की यही निरंकुशता संघर्ष का कारण बनती है। सारस्वत प्रदेश में मनु की इसी निरंकुशता से संघर्ष हुआ। मनु की उच्छृंखलता उनके स्वरों में स्पष्ट होती है। इड़ा के समझाने पर भी मनु अपना हठ नहीं छोड़ते हैं और कहते हैं –

आह प्रजापति होने का अधिकार यही क्या!
अभिलाषा मेरी अपूर्ण ही सदा रहे क्या?
मैं सबको वितरित करता ही सतत रहूँ क्या?
कुछ पाने का यह प्रयास है पाप, सहूँ क्या?[20]

मनु की इस मनोवृत्ति में वर्तमान शासक वर्ग की मनःस्थिति देखी जा सकती है।

2.1.04.3.2. श्रमिकों और पूँजीपतियों का संघर्ष

सम्पूर्ण विश्व में इस संघर्ष की स्थिति आज विद्यमान है। श्रमिकों और पूँजीपतियों के बीच की खाई दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। एक तरफ पूँजीपति अधिक चर्बी के कारण दिनोदिन मोटा होता जा रहा है दूसरी तरफ श्रमिकों की हड्डियाँ दिखाई पड़ रहीं हैं। इस समस्या का जड़ यान्त्रिक सभ्यता है जिसके फलस्वरूप राष्ट्र की सम्पूर्ण पूँजी गिने-चुने लोगों के पास इकट्ठा हो रही है। कामायनी में सारस्वत प्रदेश की उन्नति यान्त्रिक सभ्यता के द्वारा हुई है। वहाँ का सारा वैभव बुद्धि के आधार पर टिका है। मनुष्य स्वाभाविक प्रकृति से दूर चला गया है।

जिसके कारण संघर्ष के समय प्रकृति मनु का साथ छोड़ देती है, कुपित हो जाती है। पीड़ितों की आवाज़ मनु के लिए अभिशाप बन गई –

प्रकृति शक्ति तुमने यन्त्रों से छीनी।
शोषण कर जीवनी बना दी जर्जर झीनी।[21]

2.1.04.3.3. जातियों और वर्गों का संघर्ष

जातियों और वर्गों का संघर्ष आधुनिक समाज में किसी न किसी रूप में सर्वत्र विद्यमान है। इससे सामाजिक एकता खण्डित हो गई है। सामाजिक सुख-शान्ति समाप्त हो गई है। लोग अपने वर्ग के हितों को ध्यान में रखकर कार्य कर रहे हैं। कवि ने स्थान-स्थान पर इस समस्या को इंगित किया है। काम ने जो शाप दिया है उससे वर्ग-भेद जनित विषमता स्पष्ट हो जाती है –

यह अभिनव मानव प्रजा सृष्टि
द्वयता में लगी निरन्तर ही वर्णों की करती रहे वृष्टि
अनजान समस्याएँ गढ़ती रचती हो अपनी ही विनष्टि
कोलाहल कलह अनन्त चले, एकता नष्ट हो बढ़े भेद
अभिलषित वस्तु तो दूर रहे हाँ मिले अनिच्छित दुखदखेद।[22]

2.1.04.4. गाँधीवाद एवं साम्यवाद

प्रसादजी गाँधीवाद और साम्यवाद से प्रभावित थे। कामायनी 1935 में प्रकाशित हुई। उस समय गाँधीजी का देशभर में प्रभाव था। श्रद्धा के चरित्र में गाँधीवादी विचारधारा दिखाई पड़ती है जब वह तकली पर सूत काटती है –

चल री तकली धीरे-धीरे, प्रिय गये खेलन अहेर

यही नहीं वह हिंसा का विरोध और अहिंसा का समर्थन भी करती है। वह जीवन के विकास के लिए समर्पण और विश्वास को महत्त्वपूर्ण बताती है। जो गाँधीवादी जीवन दर्शन का प्रभाव है। वह मनु से कहती है –

समर्पण लो सेवा का सार सजल संस्कृति का यह पतवार
आज से यह जीवन उत्सर्ग इसी पद तल में विगत विकार।[23]

सारस्वत प्रदेश के संघर्ष में साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव दिखाई देता है। सारस्वत प्रदेश के सारे द्वन्द्वों की जड़ में वितरण की असमानता और यान्त्रिक पूँजीवाद का निरन्तर बढ़ना है।

परम्पराएँ ऋणात्मक ही नहीं, धनात्मक भी होती हैं । धनात्मक परम्पराएँ हमारे चतुर्दिक विकास में सहायक होती हैं । प्रसाद ने उन परम्पराओं में आधुनिकता का पुट देकर मनुष्य को सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया है । अतः इस क्षेत्र में उनकी सारस्वत प्रतिभा प्रशंसनीय है ।

2.1.05. कामायनी का महाकाव्यत्व

साहित्यशास्त्रों में महाकाव्य के लक्षणों की विद्वानों ने अपने-अपने ढंग से भारतीय काव्यशास्त्र के अनुसार विशद् व्याख्या की है । महाकाव्य के लक्षण इस प्रकार हैं –

i. महाकाव्य का आधार विशाल होता है । उसका कथानक पौराणिक अथवा ऐतिहासिक होना चाहिए ।
ii. महाकाव्य का नायक धीरोदात्त होना चाहिए । शौर्य, पराक्रम, स्थिरता आदि उसके चरित्र के प्रधान अंग हों । उसमें चारित्रिक गरिमा एवं औदात्य भी होना चाहिए ।
iii. महाकाव्य सर्गबद्ध होना चाहिए । सर्गों की संख्या कम से कम आठ होनी चाहिए ।
iv. महाकाव्य का प्रमुख रस शृंगार, वीर अथवा शान्त होना चाहिए ।
v. प्रकृति के रमणीय दृश्यों यथा – प्रातः, संध्या, रजनी, चन्द्रिका, मनोहर स्थलों जैसे – सरोवर, पर्वत, वन, उपवन के साथ-साथ मृगया, युद्ध आदि कार्यों का भी यथास्थान वर्णन होना चाहिए ।
vi. प्रासंगिक कथाएँ मुख्य कथावस्तु से पूर्णरूप से सम्बन्धित तथा संक्षिप्त होनी चाहिए ।
vii. महाकाव्य का उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इनमें से कोई भी होना चाहिए । लौकिक अभ्युदय के साथ-साथ लोक-स्वभाव का भी वर्णन होना चाहिए ।

पाश्चात्य काव्यशास्त्र के अनुसार महाकाव्य की निम्नांकित विशेषताएँ होती हैं –

i. महाकाव्य में महान् कथा होती है ।
ii. महाकाव्य की मूल घटना महान् होनी चाहिए ।
iii. महाकाव्य में महान् घटनाएँ प्रसंग के रूप में होनी चाहिए ।
iv. महाकाव्य की महान् घटनाओं से जिन पात्रों का सम्बन्ध हो, वे भी महान् हों ।
v. सार्वभौम प्रभाव होना चाहिए ।
vi. उसकी वर्णन शैली उत्तम होनी चाहिए ।
vii. महाकाव्य का उद्देश्य महान् होना चाहिए ।

महाकाव्य के भारतीय तथा पाश्चात्य लक्षणों में कोई विशेष अन्तर नहीं है । दोनों में पर्याप्त साम्य है । डॉ॰ नगेन्द्र कामायनी के महाकाव्यत्व पर विचार करते हुए कहते हैं – 'स्वदेश' विदेश के काव्यशास्त्र में निर्दिष्ट महाकाव्य के लक्षणों की गणना प्रस्तुत सन्दर्भ में कदाचित् सार्थक न होगी । इसलिए मैं महाकाव्य के उन्हीं तत्त्वों को लेकर चलूँगा जो देशकाल सापेक्ष नहीं है, जिसके अभाव में किसी भी देश अथवा युग की कोई रचना

महाकाव्य नहीं बन सकती और जिनके सद्‌भाव में परम्परागत शास्त्रीय लक्षणों की बाधा होने पर भी किसी कृति को महाकाव्य के गौरव से वंचित नहीं किया जा सकता।"[24]

कामायनी में प्रसादजी ने शास्त्रीय रूढ़ियों का अनुगमन नहीं किया है। उनकी रचना में शास्त्रीय संस्कार तो है किन्तु उसकी आत्मा कवि के मानसिक संगठन एवं जीवनदृष्टि के आधार पर निर्मित हुई है। इसलिए कामायनी के महाकाव्यत्व का मूल्यांकन हम शास्त्रीय लक्षणों के आधार पर न करके उसमें निहित काव्य-तत्त्वों की महनीयता के आधार पर करेंगे। प्रायः महाकाव्यों की रचना में कथानक, नायक, चरित्र-चित्रण, प्रकृति-वर्णन, युग चित्रण, भाव और रस तथा शैली आदि उपादानों का संगठन किया जाता है।

2.1.05.1. कथावस्तु

'कामायनी' की कथावस्तु पौराणिक एवं प्रागैतिहासिक है। कामायनी की कथा ऋग्वेद, पुराणों, शतपथ ब्राह्मण आदि से ग्रहण की गई है। प्रसादजी ने प्राचीन ग्रन्थों की बिखरी हुई कथाओं को समेटकर अपनी कल्पना शक्ति से एक धागे में पिरोकर कामायनी का सृजन किया। इसकी कथा मानव-सभ्यता का विकास करने वाले आदि पुरुष मनु और श्रद्धा की कथा है। इस कथा का बहुत महत्त्व है।

कामायनी में प्रलय से बचे मनु का नये सिरे से याज्ञिक संस्कृति की प्रतिष्ठा, श्रद्धा के साथ दाम्पत्य सूत्र में बँधना, गृहस्थ जीवन के प्रतीक के स्वरूप पशु-पालन, पुत्र-जन्म, श्रद्धा से विरक्ति होने के कारण गृह-त्याग, सारस्वत प्रदेश में गमन, इड़ा के प्रदेश का शासन एवं उनके नगर को पुनः बसाना तथा उनकी उन्नति करना, इड़ा पर बलात्कार के प्रयत्न के पश्चात् प्रजाजनों से संघर्ष, युद्ध में मूर्च्छित हो जाने पर पुनः श्रद्धा से भेंट फिर उसके साथ कैलाश की यात्रा, नटराज के दर्शन एवं तत्त्वज्ञान के साथ आनन्द की स्थिति प्राप्त करना, इस प्रकार पूर्ण कथा हो गई है। सीमित पात्र होने के कारण उसे अधिकाधिक एवं प्रासंगिक कथाओं में बाँटना सम्भव नहीं है। किरात एवं आकुलि के नेतृत्व में सारस्वत प्रदेश में होने वाला विप्लव पृथक् कथा न होकर मूल कथा का ही एक अंग है क्योंकि उसी युद्ध में वे मारे जाते हैं। वहीं उनकी कथा समाप्त हो जाती है। "कामायनी का कथानक लघु होते हुए भी एक महाकाव्य के अनुकूल है, उसमें मनु और श्रद्धा की जीवन गाथा के सहारे आधुनिक मानव के बौद्धिक एवं भावात्मक चित्र अंकित किये गए हैं, जिनमें यथार्थ दृष्टिकोण अपनाया गया है और जो समग्र मानव-जीवन के अन्तर्बाह्य स्वरूप की झाँकी प्रस्तुत करते हैं।"[25] डॉ॰ नगेन्द्र का कथन है – "अन्य महाकाव्य जहाँ मानव सभ्यता के खण्ड चित्र प्रस्तुत कर रह जाते हैं, वहाँ कामायनीकार ने उसका समग्र चित्र प्रस्तुत करने का साहसपूर्ण प्रयास किया है। यह प्रयास पूर्ण नहीं हुआ, किन्तु इसका परिधि-विस्तार इतना अधिक है कि अपनी अपूर्णता में भी यह अद्‌भुत है – असामान्य है।"[26]

2.1.05.2. नायक

कामायनी महाकाव्य के नायक मनु हैं। वे देव पुरुष हैं। उच्चवंश के हैं। परन्तु उनमें धीरोदात्तता के दर्शन नहीं होते। प्रसाद ने नायक मनु को मानव रूप में दर्शाया है। मनु में मानवीय शक्ति और दुर्बलताएँ दोनों विद्यमान

हैं। मनु मन के प्रतीक भी हैं इसलिए उनके व्यक्तित्व में मानसिक प्रवृत्तियों को दिखाना आवश्यक था। कामायनीकार ने पहले मनु की दुर्बलताओं का चित्रण किया है। फिर उत्तरोत्तर उन्हें ऊपर उठाया है। वे दुर्बलताओं पर विजय श्रद्धा के माध्यम से प्राप्त करते हैं। फिर श्रद्धामय हो जाते हैं। अन्ततः श्रद्धा के ही माध्यम से आनन्द भूमि तक पहुँचते हैं। नायक मनु में जातीय गुण विद्यमान हैं। कामायनी नायकप्रधान महाकाव्य न होकर नायिकाप्रधान महाकाव्य है। एक ओर मनु में जहाँ निर्बलता और सबलता दोनों विद्यमान हैं वहीं श्रद्धा में मात्र उच्चगुणों का समावेश है। श्रद्धा में नायिका के समस्त गुण विद्यमान हैं। "वह दया, माया, ममता, मधुरिमा और अगाध विश्वास की प्रतिमूर्ति है। उसमें प्रारम्भ से अन्त तक सभी गुण रहते हैं।"

2.1.05.3. सर्ग

कामायनी में 'सर्गबद्धो महाकाव्यम्' लक्षणांश सर्वथा घटित होता है। कामायनी में 'चिन्ता' से लेकर 'आनन्द' तक पन्द्रह सर्ग हैं।

2.1.05.4. प्रकृति-चित्रण

प्रसादजी ने कामायनी में प्रकृति को बड़ी आत्मीयता के साथ देखा है। वे इसके बीच हँसते-खेलते हुए पाए जाते हैं। कामायनी में प्रकृति-चित्रण के सारे रूप पाए जाते हैं परन्तु प्रसाद ने प्रायः प्रकृति के उद्दीपन रूप का चित्रण किया। जिसमें एक जिज्ञासा भी विद्यमान है जो उनकी अपनी विशेषता है और वह उन्हें रीतिकालीन कवियों से ऊपर उठा देती है। कामायनी में वन, निर्झर, नदी, पर्वत आदि अनेक प्राकृतिक दृश्यों का वर्णन है साथ ही एक महाकाव्य के लिए अपेक्षित सभी प्रकार के चित्र सुलभ हैं। प्रसाद के प्रकृति-चित्रण की सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि उन्होंने उसे मानवीय चेतना से युक्त कर दिया है। शैव दर्शन के प्रभाव से उन्होंने प्रकृति में एक चेतन तत्त्व माना है। "प्रसाद ने प्रकृति-वर्णन करते हुए केवल वस्तुओं की गणना नहीं की है उनका संश्लिष्ट चित्र अंकित किया है। उनकी दृष्टि में प्रकृति के अन्तर्गत एक ऐसी चेतना सम्पन्न विराट् सत्ता विराजमान है, जिसके उदर में वन, गिरि, नदी, निर्झर सभी समाये हुए हैं, जो समयानुकूल परिवर्तनों द्वारा अद्‌भुत घटा विकीर्ण किया करती है तथा जो अपने अद्‌भुत दृश्यों एवं आश्चर्यजनक लीलाओं द्वारा अलौकिक आनन्द प्रदान करती है।"[27] प्रसाद का यह दृष्टिकोण उनके सभी प्रकृति चित्रों में लक्षित है। 'चिन्ता' सर्ग में प्रकृति अपने भयंकर रूप में आती है –

दिग्दाहों से धूम उठे, या जलधर उठे क्षितिज तट के!
सघन गगन में भीम प्रकम्पन, झंझा के चलते झटके।[28]

2.1.05.5. भाव एवं रस

कामायनी में सभी रसों का परिपाक हुआ है। इसका प्रधान रस शृंगार है साथ ही शान्त रस से लेकर वात्सल्य रस भी सुनियोजित रूप में मिलते हैं। प्रासंगिक रूप में आए अंगभूत रसों का निर्वाह उन्हीं स्थलों तक

सीमित रहा है। श्रद्धा के साथ मिलन और परिणय-बन्धन एवं उसकी गर्भावस्था तक संयोग शृंगार का परिपाक हुआ है। ईर्ष्या से लेकर मनु के पलायन, श्रद्धा के विरह-वर्णन में वियोग शृंगार है। वियोग शृंगार के मान और प्रवास दो पक्ष इसमें है। शृंगार का स्थायी भाव रति, सौन्दर्य के द्वारा जाग्रत् होता है। प्रसादजी ने श्रद्धा का जो वर्णन किया है, उससे इसमें शृंगार के अंगी रस होने की बात सिद्ध हो जाती है। श्रद्धा सर्ग में देखिए –

घिर रहे थे घुँघराले बाल अंस अवलम्बित मुख के पास;
नील घन-शावक से सुकुमार सुधा भरने को विधु के पास
और उस मुख पर वह मुसक्यान! रक्त किसलय पर ले विश्राम –
अरुण की एक किरण अम्लान अधिक अलसाई हो अभिराम।[29]

यज्ञ में पशुवध के कारण श्रद्धा के दुःख में करुण रस है। सारस्वत प्रदेश में हुंकार और युद्ध में वीर रस है। मनु पुत्र के प्रति श्रद्धा की भावकुशलता वात्सल्य का विषय है। दर्शन से आनन्द तक शान्त रस का स्थल है। अद्‌भुत रस की योजना कवि ने प्रकृति-वर्णन में, श्रद्धा के रूपवर्णन में और बाद में 'दर्शन' सर्ग में की है।

2.1.05.6. उद्देश्य

कामायनी की रचना में प्रसाद का प्रारम्भिक उद्देश्य था, 'मानव को आध्यात्मिकता की ओर ले जाना।' इसकी पूर्ति के लिए मनु का जीवन हमारे सामने आता है। मनु द्वारा पाक यज्ञ, मैत्रावरुण, यज्ञ के अनुष्ठान में पुरानी याज्ञिक संस्कृति के अनुसार धर्मप्राप्ति है। श्रद्धा और मनु के प्रणय-बन्धन व कामव्यापार में काम की, इड़ा सर्ग से लेकर संघर्ष तक अर्थ की और शेष में मोक्ष की योजना है।

2.1.05.7. निष्कर्ष

कामायनी महाकाव्य प्राचीन शास्त्रीय रूढ़ियों से बँधा हुआ नहीं है। इसमें भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों ही काव्यदृष्टियों का, संश्लिष्ट विधान के अनुसार एक अभिनव प्रयोग किया गया है। इसमें भौतिक घटनाओं का विकास नहीं हुआ है। मानव चेतना के विकास को लेकर चलने के कारण, भौतिक धरातल पर घटित होने वाली घटनाओं की संकुलता नहीं है। डॉ॰ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के अनुसार – "कहने की आवश्यकता नहीं है कि इस महाकाव्य में अधिक विस्तार न होते हुए भी अपनी लघु सीमा में ही मानवता के समग्र रूप, उसकी समस्याओं एवं उसके समाधानों को एक उत्कृष्ट एवं भव्य साहित्यिक शैली में चित्रित करने का जो प्रयत्न हुआ है, वह सर्वथा सराहनीय है, और इन सभी विशेषताओं के आधार पर 'कामायनी' को आधुनिक युग का एक प्रतिनिधि महाकाव्य कहा जा सकता है।

2.1.06. रूपकत्व

'कामायनी' में रूपकत्व का संकेत स्वयं प्रसाद ने उसके आमुख में दो स्थलों पर कियाहै। एक स्थल पर आपने लिखा है – "यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा

भावमय और श्लाघ्य है । यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है ।"[30] इसके बाद आपने इड़ा का ऐतिहासिक-पौराणिक इतिवृत्त देते हुए उसे बुद्धि का प्रतीक बताया और उसके बुद्धिवाद को श्रद्धा और मनु के बीच व्यवधान माना । उन्हीं के शब्दों में – "यह आख्यान इतना प्राचीन है कि इतिहास में रूपक का भी अद्‌भुत मिश्रण हो गया है । इसलिए मनु, श्रद्धा और इड़ा इत्यादि अपना ऐतिहासिक अस्तित्व रखते हुए, सांकेतिक अर्थ को भी अभिव्यक्त करें तो मुझे कोई आपत्ति नहीं । मनु अर्थात् मन के दोनों पक्ष हृदय और मस्तिष्क का सम्बन्ध क्रमशः श्रद्धा और इड़ा से भी सरलता से लग जाता है ।"[31] अतः 'कामयानी' में एक ओर मनु श्रद्धा की इतिहाससम्मत कहानी कही गई है दूसरी ओर मानवता का मनोवैज्ञानिक इतिहास भी प्रस्तुत है । कवि ने जिस प्रकार के रूपक तत्त्व की ओर संकेत किया है वह अंग्रेजी के 'एलिगरी' शब्द से अधिक स्पष्ट होता है । 'एलिगरी' शब्द में एक ओर तो अभिधात्मक इतिवृत्त को लेकर ऐतिहासिक कथा चलती है दूसरी ओर किसी दार्शनिक या मनोवैज्ञानिक तत्त्व को लेकर परोक्ष कथा विकसित होती है ।

प्रसाद ने कामायनी में आदिपुरुष मनु और आद्यिस्त्री श्रद्धा के संयोग से मानव सृष्टि का सृजन दर्शाया है । दूसरी तरफ मन के दोनों पक्षों बुद्धि और हृदय के पूर्ण सामंजस्य द्वारा जीव को समरसता की आनन्दमयी स्थिति तक पहुँचाया है । दोनों कथाओं में प्रगाढ़ सम्बन्ध है । इतना गहरा सम्बन्ध रूपक तत्त्व में ही विद्यमान रहता है । पात्रों की दृष्टि से कामायनी में मनु, श्रद्धा और इड़ा प्रमुख पात्र हैं । मनु और श्रद्धा का पुत्र कुमार तथा असुर पुरोहित आकुलि और किलात गौण पात्र हैं । काम और लज्जा अशरीरी हैं । केवल इनकी वाणियाँ ही सुनाई देती हैं ।

2.1.06.1. मनु

मनु 'मन' के प्रतीक हैं । स्वयं प्रसादजी ने मनु की 'मनन शक्ति' का निर्देशन आमुख में किया है । मन के प्रतीक होने के कारण मनु मनोमय कोश में स्थित जीव के प्रतीक हो जाते हैं । व्याकरण में 'मन्यते अनेत इति मनु' की निरुक्ति के द्वारा जिससे मनन किया जाय, वही मन या मनु है । इस प्रकार यहाँ मन और मनु को एकार्थक माना गया है । मन से तात्पर्य उस चेतना से है जो मूलतः अहंकारमयी, चंचल, स्वच्छन्द, संघर्षमयी, असंतुष्ट, चिन्ताशील रहने वाली होती है । मनु प्रारम्भ से ही चिन्ताशील मुद्रा में सामने आते हैं । वे चिन्ता और अहंकार के कारण संकल्प और विकल्प के पलड़े में झूलते रहते हैं । आदि से अन्त तक इनका यह रूप देखने को मिलता है । चिन्ता सर्ग में उनके यह भाव स्पष्ट दिखाई पड़ते हैं –

चिन्ता-कातर वदन हो रहा पौरुष जिसमें ओत प्रोत,
उधर उपेक्षामय यौवन का बहता भीतर मधुमय स्रोत ।[32]

2.1.06.2. श्रद्धा

श्रद्धा विश्वासमयी है । विश्व हृदय की अनुभूति है । प्रसाद ने श्रद्धा को 'हृदय' का प्रतीक माना है । ऋग्वेद के दशम मण्डल के 151वें सूक्त के चतुर्थ मन्त्र में श्रद्धा की महिमा का आख्यान करते हुए लिखा गया है – "श्रद्धां हृदय्याकृत्या श्रद्धया विन्दते वसु ।" अर्थात् मनुष्य हृदय में स्थित आकूति (इच्छा-संकल्प) के द्वारा श्रद्धा प्राप्त होती

है और श्रद्धा के द्वारा सब प्रकार की समृद्धि, सम्पत्ति प्राप्त होती है, वह जीवन में सब प्रकार से स्थित और सफल होता है। श्रद्धा कामायनी में दया, माया, ममता, मधुरिमा तथा विश्वास से पूर्ण है। यह सब हृदय की उदात्त वृत्तियाँ हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसे विश्वासमयी रागात्मिका वृत्ति कहा है। कामायनी में इसे हम प्रारम्भ से अन्त तक इसी रूप में पाते हैं और मनु रूप मन पूर्ण श्रद्धायुक्त हो जाता है तब उसे आत्मानन्द की प्राप्ति होती है। श्रद्धा ही मनु को इस आत्मानन्द शिवत्व तक पहुँचाती है।

दया, माया, ममता लो आज, मधुरिमा लो, अगाध विश्वास;
हमारा हृदय रत्न निधि स्वच्छ तुम्हारे लिए खुला है पास।[33]

2.1.06.3. इड़ा

इड़ा का सम्बन्ध मन की दूसरी वृत्ति बुद्धि से है। जिसमें तर्क, ज्ञान-विज्ञान का समावेश किया गया है। यह अपने बुद्धि-बल से ऐश्वर्य भोग तथा भौतिक सुखों की प्राप्ति कराती है। इसमें हृदय पक्ष का अभाव है। चिन्ता, सर्ग में प्रसादजी ने इसे 'बुद्धि, मनीषा, मति, आशा, चिन्ता' आदि अनेक नाम-भेद-रूपा कहा है। इस दृष्टि से बुद्धि 'पुण्य सृष्टि में सुन्दर पाप' रूप में मनुष्य के जीवन में उपस्थित रहती है। उसी के कारण 'गृह-कक्ष' में 'हरी भरी दौड़-धूप' प्रारम्भ होती है। मनु के जीवन में इड़ा इसी दौड़-धूप की केन्द्र बनती है।

2.1.06.4. कुमार

श्रद्धा और मनु का पुत्र कुमार है। वह देव-द्वन्द्व का प्रतीक है। श्रद्धा ने इसे इड़ा से तर्कशीलता अपनाकर, निर्भय कर्म करने, सबका सम्पात हरने, नये ढंग से मानव का भाग्योदय करने एवं सबकी समरसता प्रचार करने का आदेश दिया है। इस प्रकार कुमार (श्रद्धा-मनु-इड़ा से समरस) 'नव मानव' का प्रतीक बनता है।

2.1.06.5. जल प्लावन

कामायनी में देव जलप्लावन, श्रद्धा का पशु वृषभ, मानसरोवर तथा कैलाश पर्वत भी अपने सांकेतिक अर्थ देते हैं। देव इन्द्रियों के प्रतीक हैं। इन्द्रियाँ सदैव विषयों की ओर जाती हैं। यही स्थिति देवों की है –

अरी उपेक्षा भरी अमरते ! री अतृप्ति ! निर्बाध विलास !

जलप्लावन को वासनामय, अन्नमय कोश माना गया है। जीवन जब आनन्दमय कोश की ओर न जाकर अन्नमय कोश में ही रहता है तब उसकी चेतना माया में लिप्त हो जाती है।

2.1.06.6. मानसरोवर

कैलाश शिखर पर स्थित यह सरोवर सांसारिक माया से ग्रस्त मानव को निर्मलता प्रदान करता है। जो मन की समरसता का प्रतीक है। 'कैलाश पर्वत' आनन्दमय कोश का प्रतीक है। जहाँ मनु श्रद्धा के साथ पहुँचकर

अखण्ड आनन्द को प्राप्त करते हैं। 'त्रिकोण' इच्छा-ज्ञान एवं क्रियावृत्ति का प्रतीक है। कामायनी के समस्त प्रतीक अधोलिखित रूप में प्रस्तुत हैं –

मनु	:	मन
श्रद्धा	:	हृदय
इड़ा	:	बुद्धि
जल प्लावन	:	वासना
मानसरोवर	:	समरसता
कैलाश पर्वत	:	अखण्ड आनन्द
आकुलि किरात	:	बुरी प्रवृत्तियाँ
सोमलता	:	भोग
वृषभ	:	धर्म
देव	:	इन्द्रियाँ
त्रिकोण	:	इच्छा, ज्ञान, कर्म प्रवृत्तियाँ
श्रद्धा का पशु	:	करुणा, अहिंसा की भावना से युक्त निरीह प्राणी

2.1.06.7. कामायनी का प्रस्तुत अर्थ

जल प्लावन के बाद मनु चिन्तित हैं। उनका परिचय श्रद्धा से होता है और वे कर्म में प्रवृत्त होते हैं। फिर उनका अहं समाप्त हो जाता है परन्तु आसुरीप्रवृत्तियाँ आकुलि और किरात उन्हें फिर दुष्कर्म में लगा देती हैं किन्तु श्रद्धा के प्रभाव से उनका संस्कार होता है। अकस्मात् मनु का अहं फिर प्रबल होता है और वे श्रद्धा को छोड़कर इड़ा की ओर प्रवृत्त हो जाते हैं। बुद्धि, बल से सारस्वत प्रदेश में ऐश्वर्य भोग करते हैं। वहाँ भी अहं की तुष्टि नहीं होती इसलिए बुद्धि पर भी अधिकार चाहते हैं। तब प्रजा विद्रोह कर देती है। मनु हार जाते हैं। उनका फिर श्रद्धा से मिलन होता है। श्रद्धा अपने पुत्र कुमार को इड़ा को सौंपकर, मनु को साथ लेकर कैलाश पर्वत चली जाती है। वहाँ मनु त्रिपुरों का दर्शन करते हैं। श्रद्धा बताती है कि ये भावलोक, कर्मलोक और ज्ञानलोक हैं। इनके अलग-अलग होने से संसार में अशान्ति हो जाती है और फिर श्रद्धा की मुस्कान के साथ तीनों लोक मिल जाते हैं तब मनु को अखण्ड आनन्द की प्राप्ति होती है। अन्ततः सारस्वत प्रदेश के निवासी मानसरोवर पहुँचते हैं और वृषभ का उत्सर्ग कर अखण्ड आनन्द प्राप्त करते हैं।

2.1.06.8. प्रतीकात्मक अर्थ

मन अपने प्रकृत रूप में मननशील और अहंकारी है। श्रद्धा के संयोग से उसका परिष्कार होता है परन्तु समय-समय पर आसुरी प्रवृत्तियाँ उसे श्रद्धारहित कर देती हैं जिससे भोग की प्रवृत्तियाँ बढ़ जाती है तो वह प्राणमय कोश में पहुँच जाता है और बुद्धिचक्र में पड़कर भोग में लिप्त हो जाता है। वह बुद्धि पर नियन्त्रण चाहता है पर सफलता नहीं मिलती है। वह कुण्ठित हो जाता है किन्तु श्रद्धा के संयोग से वह फिर विकास की ओर बढ़ताहै। श्रद्धा के संयोग से उसकी तीनों मूलवृत्तियों इच्छा, क्रिया, ज्ञान में सामंजस्य घटित होता है तो मन का द्वैत समाप्त हो

जाता है। तब उसे पूर्णानन्द की प्राप्ति होती है। श्रद्धा द्वारा अपने पुत्र कुमार को इड़ा को सौंपने का अर्थ यह है कि भावी मानवता श्रद्धा-बुद्धि समन्वित हो पूर्ण विकास प्राप्त करे। अन्त में सारस्वतप्रदेशवासियों का मानसरोवर जाना दिखाया गया है उसका अर्थ यह है कि सम्पूर्ण मानवता भोग धर्म को त्याग कर अखण्ड आनन्द का प्राप्त करे। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि कामायनी में रूपक तत्त्व विद्यमान है। इसमें कोई सन्देह नहीं।

कतिपय विद्वान् कामायनी को रूपक नहीं मानते। उनका कथन है कि यह एक ऐतिहासिक कथा है और पूर्णरूपेण इसमें सभी सांकेतिक अर्थ घटित नहीं होते। डॉ० भगीरथ दीक्षित कामायनी को ऐतिहासिक काव्य कहना उचित मानते हैं किन्तु वे रूपक को भी अस्वीकार नहीं करते। वे केवल मनु, श्रद्धा, इड़ा एवं मानव के ही प्रतीकार्थ लेते हैं, शेष पात्रों के नहीं। उनके अनुसार – "जलप्लावन और श्रद्धा के पशु को मैं प्रतीक नहीं मान पाता, जैसा श्री नगेन्द्र ने माना है। वैसा मानना, मेरे विचार में व्यामोह होगा। डॉ० नगेन्द्र कामायनी में रूपक तत्त्व स्वीकार करते हुए भी कथा के सूक्ष्म ब्योरों में उसकी पूर्ण संगति नहीं स्वीकारते, उनका कथन है – "एक प्रश्न और रह जाता है – यह रूपक कहाँ तक संगत है ? जहाँ तक कथा का सम्बन्ध है, रूपक सामान्यतः संगत और स्पष्ट है; उसमें कोई विशेष सैद्धान्तिक असंगति नहीं है। हाँ, कथा के सूक्ष्म अवयवों में संगति पूरी तरह नहीं बैठती।"[34]

यह सभी लेखकों ने स्वीकार किया है कि कामायनी में मूल कथा के अतिरिक्त एक अन्य कथा भी चलती है। भले उसका स्वरूप पूर्णतः स्फुटित न हुआ हो। अस्तु कामायनी चाहे पूर्णतः रूपात्मक कथाकाव्य न हो परन्तु उसमें प्रतीकों की स्थिति स्पष्ट होने के कारण एक प्रकार की रूपात्मकता है।

2.1.07. प्रसाद की सौन्दर्य चेतना

महादेवी वर्मा ने 'दीपशिखा' की भूमिका में लिखा है कि "सत्य काव्य का साध्य और सौन्दर्य साधन है। एक अपनी एकता में असीम रहता है और दूसरा अपनी अनेकता में अनन्त; इसी से साधन के परिचय-स्निग्ध खण्डरूप से साध्य की विस्मय भरी अखण्ड स्थिति तक पहुँचने का क्रम आनन्द की लहर पर लहर उठाता हुआ चलता है।" आज सौन्दर्य का जो आदर्श है, कल वह नहीं था और भविष्य में भी वह वैसा नहीं रहेगा। इसी रुचि भेद के कारण सौन्दर्य सम्बन्धी अनगिनत सिद्धान्तों का प्रतिपादन होता चला आ रहा है। इमानुएल कांट से पूर्व सौन्दर्य सम्बन्धित सिद्धान्तों में एक यह सिद्धान्त था कि "सौन्दर्य ऐन्द्रिक प्रसन्नता का साधन मात्र है।" किन्तु इसमें अव्याप्ति दोष दृष्टिगोचर होता है। सुन्दरता केवल इन्द्रियों को ही नहीं हमारी आत्मा को भी प्रसन्न करती है। दूसरा सिद्धान्त था कि "सुन्दरता अनुपात, सुडौलता और सुघड़ता में सन्निहित है।"

प्राचीन सौन्दर्य-सम्बन्धी सर्वाधिक लोक-प्रसिद्ध सिद्धान्त यह रहा कि सौन्दर्य अनेकता में एकता के प्रदर्शन में अन्तर्निहित है। उस सिद्धान्त के अनुसार फूल इसलिए सुन्दर है कि उसके भिन्न-भिन्न भाग एवं विशेषताएँ मिलकर एक हो रहे हैं। उस सिद्धान्त के प्रतिपादक से जीवन में सौन्दर्य के दर्शन होते हैं, क्योंकि उसमें विविधता के साथ गतिशीलता है। अस्तु सुन्दर वह है, जो पूर्ण, निर्मित और सुघड़ है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सौन्दर्य की स्थिति प्रकृति, विचार, भावना तथा कार्य के अतिरिक्त उनके समन्वय में है। वह तीन प्रकार का है

– शारीरिक, बौद्धिक एवं नैतिक। इमानुएल कांटके पश्चात् कला-क्षेत्र में 'सीलर' का आविर्भाव होता है। 'सीलर' के विचार से भावना एवं विचार और भौतिकता एवं आध्यात्मिकता की एकता ही सौन्दर्य है। सौन्दर्य के विषय में विश्व-कवि रवीन्द्र का मत है कि कवि जब सत्य की उपलब्धि कर लेता है, तभी उसे समझ पड़ता है कि सत्य का प्रकाश सहज सुन्दर है।

प्रसादजी का सौन्दर्य-सम्बन्धी अपना स्वतन्त्र विचार है। वे ज्ञान और सौन्दर्य-बोध को विश्वव्यापी वस्तु मानते हुए इस बात को स्वीकार करते हैं कि उनके केन्द्र देश, काल और परिस्थितियों से तथा प्रधानतः संस्कृति के कारण भिन्न-भिन्न अस्तित्व रखते हैं। उनका कहना है कि "खगोलवर्ती ज्योति-केन्द्रों की तरह आलोक लिए उनका परस्पर सम्बन्ध हो सकता है, किन्तु वही आलोक शुक्र की उज्ज्वला और शनि की नीलिमा में सौन्दर्य बोध के लिए अपनी अलग-अलग सत्ता बना लेता है।"[35] उस समय जब योरोपीय सौन्दर्य-सिद्धान्त की धूम मच रही थी, प्रसाद को सौन्दर्य का पश्चिमीय मान स्वीकार्य नहीं है। वे पश्चिम की सौन्दर्य-भावना को भारतीय सौन्दर्य-भावना के प्रतिकूल पाते हैं। उन्हें अलकों के भूरेपन, नेत्रों की नीलिमा, चंचल गति आदि में सौन्दर्य दिखाई नहीं देता। इसके विपरीत वे अलकों की नीलिमा, नेत्रों के भोलेपन, गति की मंथरता, झुकी पलकों आदि में सौन्दर्य देखते हैं। उनके अनुसार यह आवश्यक नहीं कि किसी देश एवं काल का सौन्दर्य-आदर्श दूसरे देश एवं काल को मान्य ही हो। जैसे महादेवी वर्मा को सर्वत्र सुन्दरता दिखाई पड़ती है और उन्हें कोई वस्तु असुन्दर नहीं लगती, जैसे ही प्रसादजी को जीवन और जगत् की प्रत्येक वस्तु सुन्दर जान पड़ती है। उन्हें प्रकृति, नर, नारी, ब्रह्म, पशु, कुंज-कुटीर ग्राम, नगर कल-कारखाने आदि सब कुछ में सौन्दर्य दिखाई पड़ता है।

2.1.07.1. प्राकृतिक सौन्दर्य

प्रसादजी काव्य-रचना के प्रारम्भिक काल से एक प्रकार से लताच्छादित पर्वतश्रेणी, नक्षत्रमण्डित गगन, उन्मादकारिणी रात्रि, संध्या सुन्दरी, उषा आदि उपादानों के माध्यम से प्रकृति के सूक्ष्मातिसूक्ष्म सौन्दर्य का चित्रण करते आ रहे हैं। उस समय भी उन्हें शीतल जल से मुख धोती अलसाई वनस्पतियाँ, स्वर्ण-शालियों की कलमें, सुनहरे तीर बरसती जय-लक्ष्मी सी उषा, शिला-सन्धियाँ से टकराते पवन, प्राची में फैलते मधुर राग विश्वकल्पना से उच्च हिमालय, खिलखिलाती रात्रि, प्राची में फैलते मधुर राग, निर्जन स्थल, बहती सरिता, अरुण जलज के सर से मन बहलाने वाली संध्या आदि में सौन्दर्य छलकता दिखाई पड़ता है। छायावादी परम्परा में मानवीकरण का प्रमुख स्थान है। इस रूप में प्रकृति को चेतन और सप्रमाण मानकर उसकी मानवीय भावनाओं का चित्रण किया जाता है। जल प्लावन के मध्य में पृथ्वी एक टापू सदृश दिखाई पड़ती है। उसका मानवीकरण कितना सरल एवं सजीव है –

सिन्धु सेज पर धरा वधू अब तनिक संकुचित बैठी सी;
प्रलय निशा की हलचल स्मृति में मान किये सी ऐंठी सी।[36]

2.1.07.2. नारी सौन्दर्य

जब प्राकृतिक सौन्दर्य से कवि की सौन्दर्य-वृत्ति को संतुष्टि नहीं मिलती, तब वह नारी सौन्दर्य को अपनी सौन्दर्योपासना का साधन बना लेता है। "अखिल विश्व के निखिल सौन्दर्य के सार से बनी नारी सौन्दर्य का प्रतीक है। सौन्दर्य की उर्मिल मधुधारा उसके अंगों में ही नहीं, उसके हृदय एवं मानस में भी कलनिनाद करती बहती रहती है। नारी-सुलभ सलज्जता एवं अल्हड़ता उसकी आंगिक सुघड़ता, सुकुमारता एवं कान्तता से मिलकर उसके रमणी-रूप को सार्थक बना देती है।"[37] कामायनी के प्रणयन-काल में श्रद्धा एवं इड़ा के रूप में नारी का रूप सौन्दर्य उसकी सौन्दर्यानुभूति का विषय है। यौवन छवि से तृप्त रूप-राशियाँ उसकी आँखों के सामने इन्द्रजाल खड़ा कर देती हैं। अवलम्बित मुख के पास घिरे उसके घुँघराले बाल तथा रक्त किसलय से उसके अधरों पर खेलती मुस्कान की रेखा उसमें नवीन स्फुरण जगाती हैं। श्रद्धा का सौन्दर्य देखिए –

नील परिधान बीच सुकुमार खुल रहा मृदुल अधखुला अंग;
खिला हो ज्यों बिजली का फूल मेघ-बन बीच गुलाबी रंग।[38]

इसी प्रकार कवि ने इड़ा के मुख मण्डल पर बिखरी अलक, पद्म-पलाश चषक-सी उसकी दो आँखें तथा मधुप मुखरित मुकुल सदृश उसका आनन, शशि-खण्ड सदृश उसके भाल का वर्णन किया है। कवि का मानना है कि जो सुन्दर है, वह अलंकार के बिना भी सुन्दर लगता है। उसे श्रद्धा और इड़ा का अलंकाररहित सौन्दर्य, देवांगनाओं के कृत्रिम सौन्दर्य से कहीं अधिक मनमोहक लगता है। जिस प्रकार वसन्त के आते ही कोयल का कण्ठ फूट पड़ता है, उसी प्रकार यौवन का आगमन होते ही सौन्दर्य मुखरित हो उठता है।

प्रसाद को नारी में ही नहीं मानव में भी सौन्दर्य दिखाई देता है। वह सुन्दरता की प्रतिमूर्ति श्रद्धा एवं इड़ा जैसी सुकुमारियों के सौन्दर्य को देखते हुए मनु जैसे पुरुष के सौन्दर्य एवं मानव जैसे चंचल शिशु के सुकुमार सौन्दर्य की ओर भी दृष्टि डालते हैं। यदि नारी की कोमलता, रमणीयता में उन्हें सौन्दर्य का साक्षात्कार होता है तो पुरुष के पौरुष में भी सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। उनकी दृष्टि में पुरुष का सौन्दर्य उसका पौरुष है। सुन्दर पुरुष वह है जिसकी शिराओं में स्वस्थ रक्त का संचार होता है –

अवयव की दृढ़ मांस-पेशियाँ ऊर्जस्वित था वीर्य अपार;
स्फीत शिरायें स्वस्थ रक्त का होता था जिनमें संचार।[39]

2.1.07.3. परोक्ष सौन्दर्य

रचना-काल में दृश्य-जगत् का इन्द्रिय-प्रत्यक्ष सौन्दर्य परोक्ष सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब मात्र नहीं रह जाता, वह अनुभूति का विषय बन जाता है। क्षितिज की श्याम छटा, शुक्र की छाया एवं उषा की लालिमा में केवल उसकी छाया-झलक मिल पाती है। जैसे –

उषा सुनहले तीर बरसती जयलक्ष्मी-सी उदित हुई;
उधर पराजित काल रात्रि भी जल में अन्तर्निहित हुई ।[40]

प्रसादजी चर्म-चक्षुओं से उसके बाध्य और अन्तश्चक्षुओं से उसके अन्तस्वरूप को देखते हैं। फलतः उन्हें मस्तिष्क तथा जीवन में अनोखा सौन्दर्य देखने को मिलता है।

2.1.07.4. जीवन-सौन्दर्य

प्रसाद की जीवन-व्यापिनी अनुभूति की तरह उनकी सौन्दर्य चेतना सर्वव्यापिनी है। "वह त्रिशूल स्थित काशिका के विश्वनाथ के श्री चरणों के पास शैवों की सौन्दर्य-साधना में सफल हो नेत्रत्रय की दिव्य दृष्टि पा लेता है, जिसके सन्निकर्ष से उसे वस्तुगत एवं भावात्मक दोनों प्रकार के सौन्दर्य का साक्षात्कार होता है। साथ ही उसकी अनुभूति, बुद्धि, कल्पना, भाषाशक्ति, शैली, कला आदि का ऐसा विकास होता है कि रचना में आरम्भ से अन्त तक सर्वत्र सौन्दर्य का स्वर्ण-जाल स्वतः बिछ जाता है।"[41] वे पहले की भाँति केवल प्रकृति ब्रह्म एवं नारी के माध्यम से ही सौन्दर्य की अनुभूति नहीं करते, वरन् उन्हें जीवन और जगत् के प्रत्येक उपादान में सौन्दर्य ही सौन्दर्य दिखाई पड़ता है। कवि के लिए सम्पूर्ण जड़ या चेतन जगत् तथा जीवन सौन्दर्य है।

सौन्दर्य-बुद्धि वास्तव में श्रद्धा-बुद्धि बन जाती है। वह चेतना का उज्ज्वल वरदान है, 'सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं।' इसीलिए स्थूल एवं निर्जीव सौन्दर्य में कवि के लिए कोई आकर्षण नहीं रह जाता, उस सूक्ष्म और सजीव सौन्दर्य की अपेक्षा "प्रसादजी सौन्दर्य को रूपात्मक मानते चले जाते हैं। उनकी धारणा है कि रूप सौन्दर्य-बोध का एकमात्र साधन है। वे कहते हैं कि सीधी बात तो यह है कि सौन्दर्य-बोध बिना रूप के हो ही नहीं सकता। सौन्दर्य की अनुभूति के साथ ही साथ हम अपने संवेदन को आकार देने के लिए उनका प्रतीक बनाने को बाध्य हैं।" कवि के लिए सौन्दर्य सदैव कौतूहल और विस्मय बना रहा है। माधवी रजनी में नव इन्द्रनील लघु शृंग को फोड़कर धधकती लघु ज्वालामुखी की कान्ति के सदृश श्रद्धा की रूप ज्वाला को मनु का लुटे-सा देखना वास्तव में सौन्दर्य के प्रति कवि का कौतूहल ही है।

प्रसाद की सौन्दर्यानुभूति एकान्त सांस्कृतिक है। कवि के सौन्दर्य सम्बन्धी भाव वैदिक, बौद्ध, पौराणिक, शैव एवं सूफी संस्कृतियों के मेल मेंहै। वह अपनी रुचि-भेद के अनुसार सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिए उन्हीं उपकरणों को चुनता है जो उपर्युक्त संस्कृतियों में सौन्दर्य के प्रतीक हैं। इसके बावजूद भी उनकी सौन्दर्य-चेतना रूढ़ नहीं है। उसमें एक विचित्र प्रकार की नूतनता है, जो उनकी भावनाओं को पूर्ववर्ती कवियों की भावना से अलग करती है।

2.1.08 समरसतावादी दृष्टि

दो का मिलकर एक हो जाना समरसता है। एक नदी सागर से मिलकर समरस हो जाती है। "जब योगी को यह प्रतीति होने लगती है कि न तो मैं हूँ, न कोई मुझसे अन्य है; न कोई ध्याता है और न कोई ध्येय है, अपितु

सर्वत्र एक शिवरूप ही विद्यमान है, तब उसका मन आनन्द पद-संलीन हो जाता है। योगी की इसी स्थिति को समरसता कहते हैं।" नरहरि स्वामी ने 'बोधसार' में लिखा है – "जाते समरसानन्दे द्वैतमप्यमृतोपमम्। मित्रयोरिव दाम्पत्यो जीवात्मपरमात्मनोः।" अर्थात् जिस प्रकार परस्पर अत्यन्त प्रेम करने वाले दम्पति का द्वैतभाव दोनों के 'समरस' हो जाने पर अत्यन्त आनन्ददायक हो जाता है, उसी तरह जीवात्मा तथा परमात्मा के समरस हो जाने पर अखण्ड आनन्द की अवस्था प्राप्त होती है, उसी अवस्था को 'समरसता' कहते हैं।

"समरसता शैव दर्शन का सिद्धान्त है और वही उपनिषद् में अद्वैत का रूप लेता है। अध्यात्म का केन्द्रीय संघर्ष प्रकृति और पुरुष का है। देवताओं का विनाश इसी कारण हुआ था। सांख्य में प्रकृति पुरुष के इस संघर्ष पर विशेष रोशनी डाली गई है।"[42] सांख्यकारिका 10/11 में यह स्पष्ट है कि सत्त्व, तम, रज गुणों में साम्यावस्थारूप प्रकृति के कारण रहित, नित्य, व्यापक, निष्क्रिय, एकाकी, निराश्रित, स्वतन्त्र, विवेकरहित, सामान्य, अचेतन और प्रसवधर्मिणी है। पुरुष इसके विपरीत त्रिगुणातीत, विवेकमय, चेतन, अविकारी और नित्य है। इन दोनों विरोधों के मिलन और समन्वय से सृष्टि होती है। सृजन के लिए विरोध परमावश्यक है क्योंकि उसमें विरोधों का समन्वीकरण होना अनिवार्य है। कामायनी एक ऐसे आदर्श की स्थापना करती है जिसमें प्रकृति और पुरुष का अन्तर्विरोध नहीं रहता है। श्रद्धा सर्ग में प्रसाद ने लिखा है –

विषमता की पीड़ा से व्यस्त हो रहा स्पन्दित विश्व महान्;
यही दुःख-सुख विकास का सत्य यही भूमा का मधुमय दान।
नित्य समरसता का अधिकार, उमड़ता कारण जलधि समान;
व्यथा की नीली लहरों बीच बिखरते सुख मणि गण द्युतिमान![43]

'विषमता' शब्द का प्रयोग प्रसाद ने समरसता के विलोम के रूप में किया है। विषमता के अन्तर्गत जीवन में सुख-दुःख, पाप-पुण्य का भेद पृथक्-पृथक् बना रहता है। जिसमें सुख-दुःख, ग्राह्य-ग्राहक, मूढ़ भाव आदि उपस्थित रहते हैं। इसके विपरीत समरसता में सुख-दुःख, पाप-पुण्य सब घुल-मिल जाते हैं, लीन हो जाते हैं। एकमात्र आनन्दरूप परमार्थतत्त्व ही शेष रह जाता है। 'स्पन्दकारिका' के अनुसार – "न दुःखं न सुखं यत्र नग्राह्यं ग्राहको न च। न चास्ति मूढ़भावोऽपि तदस्ति परमार्थतः॥" प्रसादजी की पंक्तियों में 'भूमा' शब्द का प्रयोग हुआ है जो अतिशयता या बहुत्व का द्योतक है – "अतिशयेन बहु इति भूमा।" छान्दोग्य उपनिषद् में नारद तथा सनत्कुमार के प्रसंग में इस शब्द का प्रयोग हुआ है – "यो वै भूमा तत्सुखम्। नाल्पे सुखमस्ति भूमा वै सुखम्।" जो भूमा है वही सुख है; अल्प में सुख नहीं है। भूमा अल्प के विरुद्ध बहुत्व, विराट् या ब्रह्म का सूचक है। कामायनीकार 'विषमता' को 'भूमा का मधुमय दान' कहते हैं। इस माधुर्यपूर्ण सृष्टि का सृजन विराट् सत्ता द्वारा हुआ है। इस सृष्टि का निर्माण तब हुआ जब 'भूमा' अपनी साम्यावस्था से हटकर विषमावस्था को प्राप्त हुई। प्रत्यभिज्ञा दर्शन में कहा गया है यह कार्य उसकी इच्छा के अनुसार हुआ – 'स्वेच्छया स्वभितौ विश्वमुन्मीलयति।' विराट् सत्ता (चित्ति) ने 'विषमता' को इसलिए स्वीकार किया कि वह, उपनिषदों के 'एकोहम् बहुस्यामि' के अनुसार, एक से अनेक होना चाहती थी। इस वैभव सम्पन्न-विश्व के सृजन हेतु ही 'भूमा' ने इस 'विषमता' को धारण किया था। इस संसार के प्राणी समरसता के अधिकारी हैं किन्तु तुच्छ सुखों की लालसा के कारण निराश पड़े रहतेहैं।

डॉ॰ द्वारिकाप्रसाद सक्सेना ने विषमता के प्रति प्रसादजी के मानव-जीवन हेतु वरदान-स्वरूप दृष्टि की प्रशंसा इन शब्दों में की है – "प्रसादजी ने विषमता को उत्पन्न करने वाले दोनों कारणों का विरोध प्रस्तुत किया अर्थात् जगत् की असत्यता, नश्वरता एवं अनित्यता के स्थान पर श्रद्धा के मुख से जगत् की सत्यता, शाश्वतता एवं नित्यता का प्रतिपादन कराया और जीवन की क्षणभंगुरता, अस्थिरता एवं अनित्यता के स्थान पर उसकी अनन्तता, अखण्डता एवं नित्यता का प्रतिपादन कराया। इन दोनों विचारों के जाग्रत् होते ही मनु के जीवन में व्याप्त विषमता का उन्हें ज्ञान होने लगा और श्रद्धा जैसी सती-साध्वी के साथ रहकर वे समझने लगे कि उन्हें सारा जगत् मिथ्या एवं असत्य ज्ञान पड़ता है।"

जिस समय प्रसादजी ने अपने साहित्य का सृजन कर रहे थे, उस समय स्त्रियों की दशा बहुत खराब थी। वे शोषित वर्ग से अधिक शोषण का शिकार थीं। जैसे एक पुरुष कई जोड़ी कपड़े रख सकता है वैसे ही एक पुरुष अनेक पत्नियाँ रख सकता था। अनमेल-विवाह, बाल-विवाह, और बहु-विवाह ने नारी जीवन नारकीय बना दिया था। प्रसादजी ने मनु के माध्यम से समाज के उन पुरुषों को ललकारा जो नारी को महत्त्व नहीं देते थे-

तुम भूल गए पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की
समरसता है सम्बन्ध बनी अधिकार और अधिकारी की।

यदि जीवन में सामंजस्य नहीं आएगा तो विरोधी शक्तियाँ एक-दूसरे के प्रति सदैव संघर्ष करेंगी। जिससे एक दूसरे की शक्तियाँ क्षीण होती रहेंगी। जब मनु अपने जीवन में संतुलन एवं सामंजस्य को भूल जाते हैं तभी वह घोर संकट में पड़ जाते हैं। वह समन्वय कर लेने की क्षमता भी नहीं रखते। जिससे उनका द्वन्द्व चलता रहता है और श्रद्धा से कहते हैं –

यह क्या ! श्रद्धे ! बस तू ले चल, उन चरणों तक दे निज सम्बल,
सब पाप पुण्य जिसमें जल जल, पावन बन जाते हैं निर्मल,
मिटते असत्य से ज्ञान लेश समरस अखण्ड आनन्द वेश।

प्रसाद ने अपनी तात्कालिक शक्ति के अनुसार रस की निष्पत्ति की है और उसमें स्वयं भी आनन्दित हुए हैं और दूसरों को भी आनन्द उठाने दिया है परन्तु आनन्द का दार्शनिक रूप 'कामायनी' में आता है जब संघर्ष, द्वयता और विषमताएँ समाप्त हो जाती हैं तब समरसता स्थापित होती है और उसके फलस्वरूप आनन्द। कामायनी के आनन्द सर्ग का अन्तिम छन्द है –

समरस थे जड़ या चेतन सुन्दर साकार बना था;
चेतनता एक विलसती आनन्द अखण्ड घना था।[44]

शैव दर्शन के अनुसार आनन्द शिव का पर्यायवाची है। इस आनन्द को हर पुराने दर्शन में थोड़ी बहुत मान्यता मिली है। स्पन्दन शास्त्र के अनुसार सर्वत्र और सर्वकाल आनन्द रहता है जो सृष्टि की गति को अनुप्राणित करता रहता है। शैव दर्शन में आनन्द शिव का साकार रूप है और शिव सर्वत्र व्याप्त है इसलिए आनन्द भी

सर्वव्यापक है। ऐसा होने पर आनन्द की प्राप्ति के लिए इधर उधर भटकना नहीं है न किसी वैराग्य की आवश्यकता पड़ती है। बस इस साधना की आवश्यकता है कि व्यक्ति अपने आप को समरसता में डुबो सके। शैव दर्शन में अत्यधिक सरसता है जिससे उसे साहित्य में स्थान मिल सका। शैव दर्शन से आनन्दवाद को ग्रहण करके कामायनीकार ने इस धरा पर मानव कल्याण के लिए उतार कर यहाँ अपनी मौलिकता का परिचय देकर एक नवीन दर्शन प्रस्तुत किया। ज्ञान, इच्छा और कर्म जब तीनों का समन्वय होगा तब वास्तविक आनन्द की प्राप्ति होगी। प्रसाद का आनन्दवाद सर्वव्यापक और मानवतावादी है।

2.1.09 पाठ-सार

द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप जिस छायावादी काव्य शैली का जन्म हुआ उसके प्रवर्तक जयशंकर प्रसाद ही थे। उनकी कविता छायावाद के साँचे में ढली है। "छायावाद अनाधुनिक पौराणिक-धार्मिक चेतना के विरुद्ध आधुनिक लौकिक चेतना का विद्रोह था।" कामायनी हमें वर्तमान सन्दर्भ में प्रसाद की चिन्ता से भी परिचित कराती है और मंगलमयी वृद्धि की ओर यह संसार अग्रसर है इसका अनुमान भी। इसलिए कामायनी में सर्वत्र आधुनिक सन्दर्भ दिखाई पड़ता है। प्रसादजी के जीवन का मूल दर्शन शैव था। विकास क्रम में उन पर और भी दार्शनिक प्रभाव थे जिनमें प्रमुख बौद्ध दर्शन का प्रभाव था।

कामायनी महाकाव्य मनुकालीन परिस्थितियों, आन्दोलनों तथा हलचलों की ओट में आधुनिक समय की परिस्थितियों आन्दोलनों एवं हलचलों को चित्रित करता है। उसमें प्रतिपादित विचार एवं परिलक्षित प्रवृत्तियाँ आज की हैं। कामायनी महाकाव्य प्राचीन शास्त्रीय रूढ़ियों से बँधा हुआ नहीं है। इसमें भारतीय तथा पाश्चात्य दोनों ही काव्य दृष्टियों का संश्लिष्ट विधान के अनुसार एक अभिनव प्रयोग किया गया है इसलिए कामायनी आधुनिक युग का प्रतिनिधि महाकाव्य है। कामायनी के रूपकत्व का संकेत स्वयं प्रसादजी ने उसके आमुख में किया है – "यदि श्रद्धा और मनु अर्थात् मनन के सहयोग से मानवता का विकास रूपक है, तो भी बड़ा भावमय और श्लाघ्य है। यह मनुष्यता का मनोवैज्ञानिक इतिहास बनने में समर्थ हो सकता है।" छायावादी कवि सौन्दर्य का प्रेमी होता है। उसे विश्व की प्रत्येक वस्तु में असीम सौन्दर्य के दर्शन होते हैं। समरसता में सुख-दुःख, पाप-पुण्य सब घुल-मिल जाते हैं, लीन हो जाते हैं, एकमात्र आनन्दस्वरूप परमार्थ ही शेष रह जाता है।

2.1.10 बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

1. कामायनी में कितने सर्ग हैं ?
   - (क) उन्नीस
   - (ख) सोलह
   - (ग) पन्द्रह
   - (घ) अट्ठारह

सही उत्तर (ग)

2. प्रसाद की अन्तिम काव्यकृति है ?
   - (क) कामायनी
   - (ख) आँसू
   - (ग) लहर
   - (घ) झरना

सही उत्तर (क)

3. कामायनी का प्रमुख छन्द है ?
   - (क) आल्हा
   - (ख) तांटक
   - (ग) दोहा
   - (घ) सोरठा

सही उत्तर (ख)

4. कामायनी का पहला सर्ग है ?
   - (क) आशा
   - (ख) श्रद्धा
   - (ग) इड़ा
   - (घ) चिन्ता

सही उत्तर (घ)

5. "नील परिधान बीच सुकुमार, खुल रहा मुदुल अधखुला अंग, खिला हो ज्यों बिजली का फूल, मेघ बन बीच गुलाबी रंग।" पंक्ति किसके द्वारा विरचित है ?
   - (क) पन्त
   - (ख) प्रसाद
   - (ग) निराला
   - (घ) महादेवी वर्मा

सही उत्तर (ख)

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. छायावाद किसे कहते हैं ?
2. छायावाद की चार विशेषताएँ बताइए।
3. 'चिन्ता' सर्ग का संक्षिप्त सार अपने शब्दों में लिखिए।
4. श्रद्धा का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. कामायनी के महाकाव्यत्व पर प्रकाश डालिए।
2. कामायनी के भावपक्ष पर विचार कीजिए।
3. कामायनी के आधार पर प्रसादजी के दार्शनिक चिन्तन की तर्कपूर्ण व्याख्या कीजिए।

2.1.11 कठिन शब्दावली

सौदामिनी	:	बिजली
विभव	:	ऐश्वर्य
पारावार	:	सागर
नाद	:	गर्जन
समरसता	:	सामरस्य, आनन्द की स्थिति
भूमा	:	विराट् शक्ति
स्पन्दित	:	गतिशील
पुरातनता	:	रूढ़िवादिता

2.1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. अशोक प्रियदर्शी, कामायनी पढ़ते हुए, पृष्ठ 145, अनुपम प्रकाशन पटना, प्रथम संस्करण 1997
02. वही, पृष्ठ 145
03. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, कर्म सर्ग, पृष्ठ 25, नागरीप्रचारिणीसभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2003
04. वही, ईर्ष्या सर्ग, पृष्ठ 34-35
05. अशोक प्रियदर्शी, कामायनी पढ़ते हुए, पृष्ठ 146, अनुपम प्रकाशन पटना, प्रथम संस्करण 1997
06. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, लज्जा सर्ग, पृष्ठ 24, नागरीप्रचारिणीसभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2003
07. वही, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 12
08. वही, संघर्ष सर्ग, पृष्ठ 45-47
09. डॉ॰ विमल शंकर नागर, प्रसाद की काव्य प्रतिभा, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, संस्करण 1984, पृष्ठ 226
10. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, आनन्द सर्ग, पृष्ठ 71, नागरीप्रचारिणीसभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2003
11. वही, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 13
12. वही, रहस्य सर्ग, पृष्ठ 66
13. वही, चिन्ता सर्ग, पृष्ठ 05
14. वही, चिन्ता सर्ग, पृष्ठ 02
15. वही, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 13
16. वही, कर्म सर्ग, पृष्ठ 31

17. डॉ॰ गणेश खरे, युग कवि प्रसाद, पृष्ठ 210, ग्रन्थम्, कानपुर, संस्करण 1967
18. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, कर्म सर्ग, पृष्ठ 30, नागरीप्रचारिणीसभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2003
19. वही, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 14
20. वही, संघर्ष सर्ग, पृष्ठ 46
21. वही, पृष्ठ 47
22. वही, इड़ा सर्ग, पृष्ठ 38
23. वही, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 14
24. डॉ॰ नगेन्द्र, कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, पृष्ठ 12, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण सन् 1970
25. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन, पृष्ठ 137
26. डॉ॰ नगेन्द्र, कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, पृष्ठ 14, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, संस्करण सन् 1970
27. इन्दु-कला 1, किरण 1, श्रावण शुक्ल 2, सं. 1966, पृष्ठ 8-11
28. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, पृष्ठ 03, नागरीप्रचारिणीसभा, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2003
29. वही, पृष्ठ 11
30. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, आमुख, पृष्ठ 02, प्रसाद प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण 1995
31. वही, पृष्ठ 06
32. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, चिन्ता सर्ग, पृष्ठ 01, नागरीप्रचारिणीसभा, वाराणसी, संस्करण 2003
33. वही, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 14
34. डॉ॰ नगेन्द्र, कामायनी के अध्ययन की समस्याएँ, पृष्ठ 44, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, संस्करण सन् 1970
35. डॉ॰ कामेश्वर सिंह, कामायनी का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन, पृष्ठ 200, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर-3
36. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, आशा सर्ग, पृष्ठ 6, नागरीप्रचारिणीसभा, वाराणसी, संस्करण-2003
37. डॉ॰ कामेश्वर सिंह, कामायनी का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन, पृष्ठ -207, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर-3
38. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 11, नागरीप्रचारिणीसभा, वाराणसी, संस्करण-2003
39. वही, चिन्ता सर्ग, पृष्ठ 01
40. वही, आशा सर्ग, पृष्ठ 05
41. डॉ॰ कामेश्वर सिंह, कामायनी का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन, पृष्ठ 209, अनुसन्धान प्रकाशन, कानपुर-3
42. डॉ॰ विमल शंकर नागर, प्रसाद की काव्य प्रतिभा, पृष्ठ 235, प्रेरणा प्रकाशन, मुरादाबाद, संस्करण 1984
43. कामायनी, जयशंकर प्रसाद, श्रद्धा सर्ग, पृष्ठ 13, नागरीप्रचारिणीसभा, वाराणसी, संस्करण 2003
44. वही, आनन्द सर्ग, पृष्ठ 71

❖❖❖

खण्ड – 2 : छायावादी काव्य

इकाई – 2 : लम्बी कविता के रूपबन्ध की दृष्टि से 'राम की शक्ति-पूजा', मानवीय चेतना का काव्य, आत्म-संघर्ष का कथ्य, प्रासंगिकता

इकाई की रूपरेखा

2.2.00. उद्देश्य कथन
2.2.01. प्रस्तावना
2.2.02. निराला : जीवन परिचय और रचनाएँ
  2.2.02.1. जीवन परिचय
  2.2.02.2. रचनाएँ
2.2.03. लम्बी कविता : परिभाषा और स्वरूप
2.2.04. लम्बी कविता के रूपबन्ध की दृष्टि से 'राम की शक्ति-पूजा'
  2.2.04.1. दीर्घकालिक सर्जनात्मक तनाव
  2.2.04.2. नाटकीयता
  2.2.04.3. यथार्थ के गतिशील रूप
  2.2.04.4. बिम्ब, विवरण तथा विचार का समीकरण
  2.2.04.5. अन्विति
  2.2.04.6. वैचारिक बनावट
2.2.05. मानवीय चेतना का काव्य
2.2.06. आत्म-संघर्ष का कथ्य
2.2.07. प्रासंगिकता
2.2.08. पाठ-सार
2.2.09. बोध प्रश्न
2.2.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

2.2.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई में आप छायावादी कवि निराला-कृत 'राम की शक्ति-पूजा' के सन्दर्भ में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप –

i. निराला के जीवन का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
ii. लम्बी कविता के स्वरूप और परिभाषा को जान सकेंगे।
iii. लम्बी कविता के रूपबन्ध की दृष्टि से 'राम की शक्ति-पूजा' के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
iv. 'राम की शक्ति-पूजा' में विद्यमान मानवीय चेतना को समझ सकेंगे।
v. 'राम की शक्ति-पूजा' में निहित आत्मसंघर्ष के कथ्य को हृदयंगम कर सकेंगे।
vi. 'राम की शक्ति-पूजा' की प्रासंगिकता को जान सकेंगे और उसकी समीक्षा कर सकेंगे।

2.2.01. प्रस्तावना

आधुनिककाल के तृतीय चरण को छायावाद कहा जाता है । छायावाद की समय सीमा 1918 ई. से 1938 ई. तक स्वीकार की जाती है । यद्यपि इस काल में राष्ट्रीय-धारा से जुड़ी रचनाएँ, प्रणय की लौकिक एवं माँसल अभिव्यक्ति की रचनाएँ तथा हालावादी रचनाएँ भी लिखी गईं, किन्तु परिमाण की दृष्टि से छायावादी विशेषताओं से युक्त काव्य की बहुलता से रचना होने के कारण इस काल की प्रधान प्रवृत्ति छायावाद को मानते हुए, इसे छायावाद नाम दिया गया । आधुनिक हिन्दी कविता के अध्येता के समक्ष यह प्रश्न आता है कि छायावाद का अभिप्राय क्या है ? इस शब्द के प्रथम प्रयोक्ता मुकुटधर पाण्डेय ने छायावाद की पाँच विशेषताएँ बतायी हैं, जो इस प्रकार हैं – वैयक्तिकता, स्वतन्त्र चेतना, रहस्यवाद, अस्पष्टता तथा शैलीगत विशेषताएँ । विभिन्न विद्वानों ने भी छायावाद के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए परिभाषाएँ दी हैं, जो इस प्रकार हैं –

"छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिए – एक तो रहस्यवाद के अर्थ में, जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलम्बन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। ... छायावाद शब्द का दूसरा प्रयोग काव्य शैली या पद्धत्ति विशेष के व्यापक अर्थ में है ।"

– आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

"परमात्मा की छाया आत्मा में, आत्मा की छाया परमात्मा में पड़ने लगती है, तभी छायावाद की सृष्टि होती है ।"

– डॉ० रामकुमार वर्मा

"छायावाद स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है ।"

– डॉ० नगेन्द्र

"मानव तथा प्रकृति के सूक्ष्म किन्तु व्यक्त सौन्दर्य में आध्यात्मिक छाया का भाव छायावाद की सर्वमान्य व्याख्या हो सकती है ।"

– आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी

"हिन्दी की छायावादी कविता की व्याख्या करने के लिए 'छाया' से लड़ना आवश्यक नहीं है । ... न्यूनाधिक विशेषताएँ वही हैं जो अन्य भाषाओं की रोमांटिक कविता की है। रहस्यवाद, प्रकृति-पूजा, नारी की नवीन प्रतिष्ठा, सांस्कृतिक जागरण, नये छन्द, नये प्रतीक आदि गुण-दोष बनकर अन्य साहित्यों में भी प्रतिष्ठित हैं ।"

– डॉ० रामविलास शर्मा

अतः कहा जा सकता है कि प्रेम, प्रकृति और मानवीय सौन्दर्य की स्वानुभूतिमयी रहस्यपरक सूक्ष्म अभिव्यंजना छायावाद है। छायावाद ने हिन्दी काव्य को समृद्ध बनाया और जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा जैसे श्रेष्ठ कवि दिए। इनके अलावा माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामनरेश त्रिपाठी, हरिवंश राय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', रामकुमार वर्मा, जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज' आदि कवियों ने भी अपने अपूर्व काव्य-वैभव से इसे समृद्ध किया। छायावाद के प्रमुख कवियों में से जयशंकर प्रसाद के सन्दर्भ में आप प्रस्तुत पाठ्यचर्या के खण्ड 2 की प्रथम इकाई में विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आप सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' और उनके द्वारा रचित 'राम की शक्ति-पूजा' का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.2.02. निराला : जीवन परिचय और रचनाएँ

निराला छायावादी युग के महत्त्वपूर्ण कवि हैं, उन्होंने अपनी सुकोमल और ओजस्वी रचनाओं से छायावादी काव्य को विस्तार और दृढ़ता प्रदान की। वे युगान्तरवादी कवि हैं, उनकी कविताओं में नवजागरण का सन्देश, प्रगतिशील चेतना और राष्ट्रीयता का स्वर विद्यमान है। साथ ही मानव की पीड़ा, परतन्त्रता के प्रति तीव्र आक्रोश और अन्याय-असमानता के प्रति विद्रोह की भावना सर्वत्र विद्यमान है। सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' अपने नाम के अनुरूप निराले रचनाकार हैं। वे हिन्दी साहित्याकाश के देदीप्यमान नक्षत्रों में से एक हैं। उनके जीवन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

2.2.02.1. जीवन परिचय

निराला का जन्म 1896 ई. में वसन्त पंचमी के दिन बंगाल के मेदिनीपुर जिले के महिषादल नामक स्थान पर हुआ। उनके पिता पण्डित रामसहाय त्रिपाठी मूलतः उत्तरप्रदेश के उन्नाव जिले के रहने वाले थे, वे महिषादल में जमादार की नौकरी करते थे। जनश्रुति के अनुसार इनकी माता, जिनका नाम रुक्मणी था, सूर्य का व्रत करती थीं और निराला का जन्म भी रविवार को हुआ, इस कारण उनका नाम सुर्जकुमार रखा गया। लेकिन सन् 1917-18 में उन्होंने अपना नाम बदलकर सूर्यकान्त त्रिपाठी रख लिया और निराला उपनाम उन्होंने 'मतवाला' पत्र के सम्पादन काल में रखा।

निराला की तीन वर्ष की अल्प आयु में ही उनकी माता की मृत्यु हो गई और उन्होंने पिता के शुष्क और कठोर साये में अपना बाल्यकाल व्यतीत किया। निराला ने हाई स्कूल के पश्चात् ही स्कूली शिक्षा को विराम दे दिया, उनकी रुचि पढ़ाई की अपेक्षा खेलने, तैरने, कुश्ती लड़ने और संगीत में अधिक थी। इसके साथ ही पत्रिकाएँ और पुस्तकें पढ़ने के शौक के कारण उन्होंने अंग्रेजी, संस्कृत, बांग्ला के अनेक ग्रन्थ पढ़ लिए और गहन तथा उपयोगी ज्ञान अर्जित किया।

निराला का विवाह मात्र 14 वर्ष की अल्पायु में मनोहरा देवी के साथ हो गया था, जो अत्यन्त रूपवती और गुणवती थीं। यद्यपि निराला विद्यार्थी काल से बांग्ला में कविता लिखने लगे थे किन्तु उन्हें हिन्दी में साहित्य-

सृजन की प्रेरणा मनोहरा देवी से ही मिली। निराला को उनके प्रति अत्यधिक अनुराग था। बचपन के नैराश्यपूर्ण एकाकी जीवन के बाद उन्होंने अपनी पत्नी के साथ कुछ वर्ष सुखपूर्वक बिताए, लेकिन मात्र 20 वर्ष की अल्प आयु में उनकी मृत्यु हो गई। इससे निराला बुरी तरह टूट गए, उनकी दशा अर्द्ध विक्षिप्त-सी हो गई। इसी दौरान उनके पिता, चाचा आदि सम्बन्धी भी एक-एक कर स्वर्ग सिधार गए। उन पर अपने दो बच्चों और परिवार के अन्य बच्चों के पालन-पोषण की जिम्मेदारी आ गई। इस प्रकार विषम परिस्थितियों में निराला के व्यक्तित्व का निर्माण हुआ। उनके जीवन में एक और जबरदस्त आघात लगा, जब उनकी पुत्री सरोज की युवावस्था में अकाल मृत्यु हो गई। इस प्रकार उनके जीवन में दुखों और अभावों का सिलसिला अनवरत चलता रहा। उनके यह उद्गार उनके जीवन पर पूर्णतः चरितार्थ होते हैं –

दु:खही जीवन की कथा रही,
क्या कहूँ आज जो नहीं कही।

सरस्वती के वरद् पुत्र निराला ने आजीवन साहित्य-साधना की। सन् 1918-1922 तक महिषादल राज्य की सेवा की किन्तु बाद में इस नौकरी को छोड़कर पूर्ण संकल्प से साहित्यिक जीवन में प्रवेश किया। इन्होंने 1922-23 के दौरान 'समन्यव' नामक दार्शनिक पत्र का सम्पादन किया। 1923 के अगस्त से 'मतवाला' नामक पत्र के सम्पादक नियुक्त हुए। 1929 से उन्होंने 'गंगा-पुस्तक माला' का काम सँभाला और 'सुधा' पत्रिका का प्रकाशन किया। 1942 से मृत्युपर्यन्त (15 अगस्त 1961 तक) इलाहाबाद में रहकर स्वतन्त्र लेखन और अनुवाद कार्य किया। साहित्य जगत् में उन्हें सदैव विरोध सहन करना पड़ा। जिसे देखते हुए 'राम की शक्ति-पूजा' में राम के यह उद्गार उनके अपने आत्मोद्गार प्रतीत होते हैं –

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

2.2.02.2. रचनाएँ

निराला का काव्य अनेक विलक्षणताओं से परिपूर्ण है। इन्होंने जीवन के विविध रूपों को देखा और विकट परिस्थितियों में टूट कर भी वह अपने अन्तर से शक्ति ग्रहण कर संघर्षों से जूझे। प्रतिकूल परिस्थितियों ने उन्हें तराशा और समर्थ-सृजक के रूप में साहित्य जगत् में प्रतिष्ठित किया। इन्होंने विविध विधाओं की रचना कर सरस्वती के भण्डार की अभिवृद्धि की। इनकी रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं –

उपन्यास	:	अलका, प्रभावती, निरूपमा, चोटी की पकड़, काले कारनामे, उशृंखल, चमेली।
कहानी-संग्रह	:	लिली, सखी, चतुरी चमार, सुकुल की बीवी।
रेखाचित्र	:	कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा।
निबन्ध-संग्रह	:	प्रबन्ध पद्म, प्रबन्ध प्रतिमा, चाबुक, प्रबन्ध परिचय।

आलोचनात्मक ग्रन्थ	:	आनन्दमठ, कपाल कुण्डला, चन्द्रशेखर, दुर्गेश-नन्दिनी, कृष्णकान्त का बिल, युगालांगुलीय, रजनी, देवी चौधरानी, विषवृक्ष, राजसिंह, राधारानी, महाभारत का हिन्दी अनुवाद, श्रीरामकृष्ण कथामृत (पाँच भाग), विवेकानन्द के व्याख्यान।
नाटक	:	समाज, शकुन्तला, ऊषा-अनिरुद्ध।
जीवनियाँ	:	ध्रुव, भीष्म, राणा प्रताप।
काव्य-संकलन	:	अनामिका, परिमल, गीतिका, अनामिका (द्वितीय भाग) , तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, बेला, नये पत्ते, अर्चना, आराधना, गीत गुँजन, सांध्यकाकली।

2.2.03. लम्बी कविता : परिभाषा और स्वरूप

रूपबन्ध की दृष्टि से काव्य के दो भेद स्वीकार किए जाते हैं – दृश्यकाव्य तथा श्रव्यकाव्य। दृश्यकाव्य का आनन्द देख कर लिया जाता है। इसमें नाटक, एकांकी, प्रहसन आते हैं। श्रव्यकाव्य का आनन्द पढ़कर या सुन कर लिया जाता है। इसमें प्रबन्ध काव्य और मुक्तक काव्य आते हैं। निबद्ध रचनाओं को प्रबन्ध काव्य तथा अनिबद्ध रचनाओं को मुक्तक कहा जाता है। प्रबन्ध काव्य के पुनः दो भेद स्वीकार किए जाते हैं – महाकाव्य तथा खण्डकाव्य। महाकाव्य में मनुष्य के सम्पूर्ण जीवन का चित्रण होता है तथा खण्डकाव्य में मनुष्य के जीवन के किसी एक खण्ड या पक्ष का चित्रण होता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के युग में प्रबन्ध और मुक्तक काव्य से अलग एक नये काव्य रूप अर्थात् 'लम्बी कविता' का विकास हुआ। युग परिवेश के अनुरूप मनुष्य की परिस्थितियों, सोच और भावनाओं में भी पर्याप्त बदलाव आ गया। इसी प्रकार उसकी अभिव्यक्ति का माध्यम भी बदला और प्रबन्ध काव्य का स्थान लम्बी कविता ने ले लिया। डॉ॰ युद्धवीर धवन के शब्दों में – "लम्बी कविता ने महाकाव्य का स्थान लेकर एक अलग ढंग से जीवन के बहुआयामी यथार्थ को अत्यन्त प्रभावशाली ढंग से अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है।"

हिन्दी साहित्य में पूर्व में प्रबन्ध काव्य को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना जाता रहा और वह भी अभिव्यक्ति के सशक्त माध्यम के रूप में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे। लेकिन समय के साथ आगे चलकर प्रबन्ध काव्य की कथात्मक इतिवृत्तात्मकता धीरे-धीरे लुप्त होने लगी और इसके स्थान पर लम्बी कविता का विकास हुआ। हिन्दी साहित्य में लम्बी कविताओं के सृजन की शुरुआत छायावाद से हुई। कालक्रम के अनुसार सुमित्रानन्दन पन्त की 'परिवर्तन' कविता हिन्दी की पहली लम्बी कविता मानी जाती है। लेकिन लम्बी कविताओं की सार्थक शुरुआत 'राम की शक्ति-पूजा' से मानी जाती है। डॉ॰ रमेश कुन्तल मेघ के शब्दों में – "लम्बी कविता विधा की समकालीन और सार्थक शुरुआत निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' के पौराणिक सन्दर्भ से हुई और इसके बाद इसका समारम्भ मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' से हुआ।"

लम्बी कविता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए विभिन्न विद्वानों ने इसे परिभाषित किया है, जिनमें से प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं –

"लम्बी कविता की तुलना उस विशाल, भव्य, सुदृढ़ उत्तुंग मीनार से की जा सकती है जिसकी नींव इतिहास की ज़मीन में बड़ी गहराई तक है। जिसकी बाह्य भित्तियाँ युग-परिप्रेक्ष्य से जुड़ी हैं और जिसकी चोटी आगत से भी बेखबर नहीं। उसकी एक-एक ईंट व्यक्ति, समाज, देश तथा विश्व के सन्दर्भ में घटित घटनाएँ हैं, जो सृजनात्मक तनाव रूपी सीमेंट द्वारा मजबूती से परम्परा से जुड़ी हैं। उसके कोण कवि मानस के गुह्यतम प्रदेश हैं। वहाँ संवेदनाओं की सीढ़ियाँ हैं और विचारों के वातायन हैं।"

– डॉ० कमलेश्वर प्रसाद

"लम्बी कविता वह है जिसमें नये जीवन विधान की संगति हो और जो परम्परागत रूप-विधान की रूढ़ियों से मुक्त भी हो। जिसमें नये सत्य के साक्षात्कार की क्षमता हो और जो आधुनिक परिस्थिति और संवेदना द्वारा पुष्ट और प्रमाणित भी हो। "

– डॉ० नरेन्द्र मोहन

"लम्बी कविता समसामयिक युग-सत्य को उसकी सम्पूर्णता, संश्लिष्टता और नाटकीयता में पकड़ने की बड़ी कोशिश होती है इसलिए लम्बी कविता को महाकाव्यात्मक रचना कहा जाता है। ऐसी कविता प्रायः एक विराट् रूपक के माध्यम से युग-सत्य को चित्रित करती है।"

– डॉ० नरेन्द्र वशिष्ठ

समग्रतः कहा जा सकता है कि लम्बी कविता मानव जीवन के विविध भावों, पक्षों और विचारों को सशक्त रूप से उभारने में पूर्णतः समर्थ है तथा मानव जीवन का खुला यथार्थ पूरी व्यापकता और विशालता के साथ अभिव्यक्त करना लम्बी कविता का मूल कथ्य है। वर्तमान में लम्बी कविता एक समर्थ काव्य-विधा के रूप में स्थापित हो चुकी है, जो वर्तमान सन्दर्भों और समस्याओं को प्रभावी ढंग से अभिव्यक्त करने में पूर्णतः समर्थ है।

2.2.04. लम्बी कविता के रूपबन्ध की दृष्टि से 'राम की शक्ति-पूजा'

'राम की शक्ति-पूजा' महाकवि निराला की सर्वश्रेष्ठ रचना है। यह कृति निराला के कृतित्व और व्यक्तित्व की महानतम उपलब्धि है। यह कविता मूल रूप से उनके काव्य-संकलन 'अनामिका' में संकलित है। इस लम्बी कविता की रचना 1936 ई में हुई। इसका कथानक कृतिवास ओझा-कृत बांग्ला रामायण से लिया गया है। निराला ने इस पौराणिक कथा को सर्वथा मौलिक रूप में प्रस्तुत किया है। इसका विधान ऊपरी तौर पर आख्यान मूलक है, लेकिन यह कविता राम के मिथकीय चरित्र को आधुनिक जीवन और परिस्थितियों से जोड़ती है। निराला ने राम के वनगमन के पश्चात् रावण के साथ हुए युद्ध का चित्रण युग की परिस्थिति के अनुरूप कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। यह कविता रामकथा की दीर्घ परम्परा में एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होने के साथ ही

निराला की प्रसिद्धि का प्रमुख आधार भी है। अपने औदात्य, ओज, चरित्र-चित्रण, रस वैविध्य, भावानुकूल भाषा और प्रवाहपूर्ण मुक्त छन्द के कारण यह रचना हिन्दी की उत्कृष्ट रचना स्वीकार की जाती है।

लम्बी कविता के सन्दर्भ में विलियम बटलर येट्स ने लिखा है कि – "जब हम अपने से बाहर संघर्ष करते हैं तो कथा-साहित्य की सृष्टि होती है और अपने आप से लड़ते हैं तो गीतिकाव्य की।" अपने आप से लड़ने पर जो गीत काव्य पैदा होता है वह निःसन्देह छायावादी गीत नहीं बल्कि आज की कविता का गीत है। लेकिन एक तीसरी भी स्थिति होती है, जब हम अपने आप से लड़ते हुए बाहरी स्थिति से भी लड़ने की कोशिश करते हैं और एक विशेष प्रकार की लम्बी कविता पैदा होती है, जो आधुनिक कविता की सबसे बड़ी उपलब्धि है। निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' इसी प्रकार के संघर्ष से उत्पन्न हुई है।

'राम की शक्ति-पूजा' को लम्बी कविता के रूपबन्ध की दृष्टि से निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है –

2.2.04.1. दीर्घकालिक सृजनात्मक तनाव

दीर्घकालिक तनाव से अभिप्राय उस तनाव से है जिसे एक कवि लम्बे अरसे तक कई धरातलों पर अपने भीतर संयोजित करता रहता है। यह तनाव यथार्थ के बदलते रूपों, प्रसंगों, मस्तिष्क पर अपना प्रभाव छोड़ती हुई घटनाओं तथा अनगिनत विचारों को लेकर चलता है। लम्बी कविता का सीधा सम्बन्ध आधुनिक जीवन के विविध रूपों और जटिलताओं के साथ जुड़े हुए तनाव से है। लम्बी कविता में तनाव का दीर्घ फलक रहता है और उसकी अभिव्यक्ति भी वैसी ही दीर्घ फलक पर होती है। तनाव की अभिव्यक्ति हो जाने के बाद, वह तनाव कवि का न रहकर पाठक तक पहुँचता है। परिणामस्वरूप पाठक भी उन्हीं दीर्घकालिक तनाव की दशाओं में से गुजरता है जिन से कविता सृजन की प्रक्रिया के वक्त स्वयं कवि गुजरा होता है। 'रवि हुआ अस्त' के साथ ही अनिर्णित युद्ध के परिणामस्वरूप उपजे एक विचित्र तनाव की स्थिति से इस कविता की शुरुआत होती है। यह तनाव और हताशा पूरी कविता में बने रहते हैं और पाठक के हृदय को द्रवीभूत करते हैं। निराला ने राम को सामान्य मानव के रूप में चित्रित करते हुए युद्ध में राम को पराजय के भय से शंकित और आक्रान्त दिखाया है। राम चिन्तित और तनाव ग्रस्त हैं कि साक्षात् रणदेवी रावण के पक्ष में खड़ी है। घोर निराशा और अवसाद से ग्रस्त राम के नेत्रों से अश्रु बिन्दु टपक पड़ते हैं –

"अन्याय जिधर, हैं उधर शक्ति।" कहते छल छल
हो गए नयन, कुछ बूँद पुनः ढलके दृगजल,

इसी प्रकार शक्ति-पूजा के दौरान एक कमल देवी द्वारा चुरा लिए जाने पर भी वह अत्यन्त व्याकुल हो जाते हैं। उनका यह तनाव, व्याकुलता, निराशा, अवसाद इस कविता का केन्द्रीय तत्त्व बनकर इसे संचालित करते हैं। राम की व्याकुलता और तनाव पाठक-श्रोता को भी उद्वेलित कर देते हैं।

2.2.04.2. नाटकीय संरचना

नाटकीय संरचना को लम्बी कविता का प्राणतत्त्व स्वीकार किया जाता है। कविवर निराला ने 'राम की शक्ति-पूजा' की कथा का प्रस्तुतीकरण अत्यन्त नाटकीय ढंग से किया है। इसकी कथा योजना में नाटक की उचित कार्य-अवस्थाओं का समुचित रूप से पालन हुआ है। जाम्बवन्त के द्वारा राम को शक्ति की मौलिक कल्पना करने के लिए प्रेरित करने से पहले कथा की पृष्ठभूमि ही मानी जाएगी और जाम्बवन्त के कथन से 'आरम्भ' नामक कार्यावस्था मानी जा सकती है। राम द्वारा शक्ति की मौलिक कल्पना करना और हनुमान को नीलकमल लाने के लिए भेजना 'प्रयत्न' नामक अवस्था है। 'निशि हुई विगत' वाले अवतरण में 'प्राप्त्याशा' का बोध होता है, शक्ति द्वारा एक कमल को चुरा लेना और राम द्वारा नेत्र समर्पित करने के लिए प्रस्तुत होने में 'नियताप्ति' मानी जा सकती है। देवी के साक्षात् प्रकट होकर राम को विजय होने का वरदान देने में 'फलागम' है। इस कविता का प्रारम्भ और अन्त ऐसे नाटकीय ढंग से होता है कि पाठक के हृदय में कौतूहल, हर्ष, उत्कण्ठा और औत्सुक्य आदि नाट्य संचारियों का ताता बँध जाता है। यह नाटकीयता इसकी घटनाओं में ही नहीं है वरन् इसके चरित्रों में, इसके भाव में और इसमें प्रयुक्त संवादों की भाषा में भी है। पूरी कविता एक नाटक की तरह है जिसमें सारे दृश्य रंगमंच पर प्रत्यक्ष होते हैं।

2.2.04.3. यथार्थ के गतिशील रूप

यथार्थ के गतिशील रूप को सही ढंग से पकड़ने और उसकी सही ढंग से अभिव्यक्ति करने की क्षमता लम्बी कविता की अपनी खास विशेषता है। कवि जब अपनी रचना में अपने परिवेश, जन-जीवन और भावबोध को ग्रहण कर उसे समाहित करता है तो वह रचना प्राणवान् हो जाती है। निराला की कविता में यथार्थ के गतिशील रूप दिखाई देते हैं, उनके काव्य में सामाजिक यथार्थ को ग्रहण करने की विशेष प्रबल प्रवृत्ति दिखाई देती है, जिसके कारण मनुष्य और समाज से सम्बन्धित विभिन्न पहलू उभर कर आते हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' में कवि निराला ने पौराणिक कथानक में तत्कालीन परिवेश और परिस्थितियों को अत्यन्त स्वाभाविक रूप से समाहित कर उसे और गहन आयाम प्रदान किया है। इसमें राम और रावण के माध्यम से सात्त्विक और तामसिक वृत्तियों का संघर्ष दिखाया गया है लेकिन यह संघर्ष जहाँ एक ओर निराला के जीवन संघर्ष को दर्शाता है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक युग में जीने वाले मनुष्य की दशा का भी चित्रण करता है।

'राम की शक्ति-पूजा' का रचनाकाल वह काल है जब देश गुलामी और निराशा के अन्धकार में डूबा हुआ था। निराला ने जहाँ राम को देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना के अनुरूप प्रस्तुत किया है, वहीं रावण को अंग्रेजी शासन की क्रूरता, अनीति और अत्याचार के रूप में प्रस्तुत कर यथार्थ के साथ संयोजन किया है। राम की निराशा पूरे देश की निराशा है, इस निराशा में आशा का संचार करते हुए कवि निराला ने शक्ति की मौलिक कल्पना का सन्देश दिया है। इसके साथ ही निराला ने तत्कालीन रूढ़िवादी समाज में नारी की मुक्ति की बात को सीता की मुक्ति के माध्यम से उठाया है।

2.2.04.4. बिम्ब, विवरण और विचार का समीकरण

लम्बी कविता की सृजनात्मक प्रक्रिया में बिम्ब, विवरण और विचार का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। लम्बी कविता – बिम्बों, विचारों, भावों और विवरणों को प्रस्तुत ही नहीं करती वरन् उन्हें परस्पर सम्बद्ध करती है, उनमें संतुलन स्थापित करती है और उसे एक साथ अनेक अर्थों-सन्दर्भों तथा आशयों से समृद्ध करती है।

'राम की शक्ति-पूजा' में भी बिम्ब कभी कविता की धुरी बनकर विचारों और विवरणों को संचालित-संयोजित करता है तो कभी विचार कविता के केन्द्र में स्थापित होकर बिम्बों और विवरणों को क्रमबद्धता और संगति प्रदान करता है। राम जब युद्ध में विजय के प्रति संशयग्रस्त होते हैं तो उन्हें सीता का स्मरण हो आता है। वे अपने प्रेम के क्षणों को याद कर भावुक हो जाते हैं और सीता की छवि में खो जाते हैं, इस दशा का विवरण कविवर निराला ने इस प्रकार दिया है –

ऐसे क्षण अन्धकार घन में जैसे विद्युत,
जागी पृथ्वी-तनया-कुमारिका-छवि, अच्युत
* * *
ज्योति-प्रपात स्वर्गीय-ज्ञात छवि प्रथम स्वीय,
जानकी-नयन-कमनीय प्रथम कम्पन तुरीय।

निराला ने सम्पूर्ण कविता में अनेक छोटे-बड़े बिम्बों का सृजन किया है, जैसे – युद्ध से पराजित मन से लौटते राम का बिम्ब, युद्ध के वातावरण के बिम्ब, जनकपुर वाटिका में सीता का स्मृत-शृंगारी मुद्राओं का बिम्ब, शक्ति का दस-भुजा, सिंह-आसीन, निर्भय करने वाला बिम्ब आदि। इन बिम्बों की सृष्टि ने 'राम की शक्ति-पूजा' के प्रभाव को बढ़ा दिया है।

2.2.04.5. अन्विति

अन्विति लम्बी कविता का वह विधायक तत्त्व है जो बाहरी रूप में विशृंखल और अराजक लगने वाली कविता को भीतर से संगठित करता है। यदि ऐसा नहीं होगा तो समूची लम्बी कविता खण्ड-चित्र हो कर बिखर जाएगी और अपने उद्देश्य में असफल रहेगी। रामदरश मिश्र के शब्दों में "लम्बी कविता अनेक खण्डों की यात्रा है और ये अनेक खण्ड अपने स्वभाव में एक-दूसरे से विषम होकर भी सन्दर्भ से जुड़े हुए होते हैं इसलिए लम्बी कविता में भाषा, मूड, बिम्ब-विधान, छन्द सभी में अनेक रूपता दिखाई पड़ती है।" यह अनेकरूपता आन्तरिक अन्विति तभी अर्जित कर सकती है, जब उन्हें किसी सर्जनात्मक सूत्र के माध्यम से संगठित किया जाए। ऐसे में असम्बद्ध प्रसंगों और सन्दर्भों में भी एक सम्बद्धता दिखाई देने लगती है और अनेक रूपता में एकरूपता का समावेश हो जाता है। 'राम की शक्ति-पूजा' में निराला में अन्विति का पूर्णतः निर्वाह किया है।

2.2.04.6. वैचारिक बनावट

लम्बी कविताओं में कथाओं, सन्दर्भों, संकेतों और उद्धरणों का चित्रण रहता है जो परस्पर अन्तर्संयोजित होकर कविता की मूल संवेदना को गहराने में सहायक होते हैं। इसके साथ ही विविध भावनाएँ, मनोदशाएँ और विचार लम्बी कविता की संरचना को एक अलग रचना रूप प्रदान करते हैं। 'राम की शक्ति-पूजा' में भी विविध प्रसंगों की सृष्टि की गई है और ये प्रसंग परस्पर सम्बद्ध होकर कविता के स्वरूप को और अधिक प्रभावी बना रहे हैं।

'राम की शक्ति-पूजा' का काव्यरूप विवादास्पद रहा है कुछ विद्वान् इसकी महाकाव्यात्मक गरिमा और औदात्य को स्वीकार करते हुए इसे महाकाव्य की संज्ञा देते हैं तो अन्य राम के जीवन के खण्ड चित्र के वर्णन के कारण इसे खण्डकाव्य के रूप में स्वीकार करते हैं। एक अन्य वर्ग का मानना है कि 'राम की शक्ति-पूजा' में खण्डकाव्य के लिए अपेक्षित विस्तार नहीं है अतः यह आख्यानात्मक लम्बी कविता की श्रेणी में रखी जा सकती है। डॉ॰ नरेन्द्र मोहन के शब्दों में " 'राम की शक्ति-पूजा' निराला की महत्तम कृति है। जिसे महाकाव्यात्मक गुणों से सुशोभित कविता माना ही जाता है, लेकिन इसके औदात्य के आधार पर रस, अलंकार की व्याख्या ही न करके हमारी दृष्टि मिथकीय आख्यान के साथ नायक राम और पात्रों के अन्तर्द्वन्द्व पर गहराती है। इस लम्बी कविता में मिथकीय संयोजन की संगति परस्परगुम्फित भावनाओं, कल्पनाओं और विचारों में है। भावनाओं और मनोदशा के सान्निध्य और टकराव से यह कविता लम्बी हो गई है। अतीत प्रसंगों में प्रतिगमन या प्रत्यावर्तन आनुषांगिक प्रसंगों, असम्बद्ध भावनाओं और बिम्बों को दृढ़तापूर्वक कविता की केन्द्रीय स्थिति से जोड़ देते हैं।" स्पष्ट है कि 'राम की शक्ति-पूजा' लम्बी कविता के रचना तत्त्वों से युक्त होने के साथ ही महाकाव्यात्मक गुणों को अपने कलेवर में समेटे हुए है और अपने कथ्य को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सफल है।

2.2.05. मानवीय चेतना का काव्य

'राम की शक्ति-पूजा' में राम को पौराणिक पात्र होते हुए भी आधुनिक मानव के रूप में चित्रित किया गया है। तुलसीदास-कृत रामचरितमानस में कहा गया है कि – "रामकथा सुन्दर करतारी, संशय विहग उड़ावन हारी" अर्थात् रामकथा को सुनने मात्र से संशय का अन्त हो जाता है। वहीं 'राम की शक्ति-पूजा' में निराला ने राम का सम्पूर्ण व्यक्तित्व ही संशय पर निर्मित किया है। उन्हें रावण पर विजय प्राप्त करने में संशय है–

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय;
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय;

इस दशा में जाम्बवन्त का परामर्श –

विचलित होने का नहीं देखता मैं कारण,
हे पुरुष-सिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण,

आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर;

जाम्बवन्त की सलाह उनमें एक नयी चेतना का संचार करती है कि मनुष्य अपनी जिजीविषा और लगन से समस्त बाधाओं को पार कर सकता है। इस प्रकार निराला ने 'पुरुषोत्तम नवीन' राम के माध्यम से मानव समाज में एक नयी चेतना का संचार करने का प्रयास किया है। मनुष्य यदि सत्य और धर्म के पथ पर बढ़ता है तो वह अपनी आन्तरिक शक्ति से मार्ग में आने वाली बाधाओं को सहज ही पार कर सकता है। लेकिन इसके लिए यह अनिवार्य है कि वह अपनी क्षमता और शक्ति को पहचाने और लक्ष्य पर अडिग रहे। 'राम की शक्ति-पूजा' में संघर्ष की परिस्थितियों को विजय की परिस्थितियों से अधिक उभारा गया है। इसका प्रमुख कारण यह है कि निराला मनुष्य की चेतना को जाग्रत् करना चाहते हैं कि कठिन से कठिन और विषम से विषम परिस्थितियों में भी हार स्वीकार नहीं करनी चाहिए। बार-बार गिरकर भी जो उठने का प्रयास करता है, उसे जीवन में विजयश्री अवश्य प्राप्त होती है।

2.2.06. आत्मसंघर्ष का कथ्य

निराला-कृत 'राम की शक्ति-पूजा' कृतिवास से प्रभावित है किन्तु इसमें पर्याप्त अन्तर भी विद्यमान है। जैसे कृतिवास की कथा पौराणिकता से पूर्णतः युक्त है, अतः अर्थ की भूमि में वह सपाट है। वहीं 'राम की शक्ति-पूजा' में कथा आधुनिकता से युक्त होने के साथ अर्थ की कई भूमियों को स्पर्श करती है। इसके संश्लिष्ट भावबोध में एक से अधिक अर्थ स्तर छिपे हुए हैं, इसमें निराला ने युगीन चेतना और संघर्ष का मनोवैज्ञानिक धरातल पर प्रभावशाली चित्रण किया है। उनकी इसी मौलिकता के कारण यह रचना कालजयी बन गई है। राजकुमार सैनी के शब्दों में "हिन्दी के महाकाव्यों में जो स्थान 'रामचरितमानस' का है, लम्बी कविताओं में लगभग वही स्थान इस कविता का है। यदि गुण में परिणाम को पराजित करने की शक्ति है तो हिन्दी की यह एक कविता कई एक खण्ड काव्यों / प्रबन्ध काव्यों से कहीं ज्यादा महत्त्वपूर्ण है। इस अकेली कविता का महत्त्व उतना ही है जितना कि एक महाकाव्य का।"

राम और रावण के युद्ध के निर्णायक अन्तिम दिनों की छोटी सी कथा के सहारे राम के आत्मसंघर्ष का चित्रण करने में कवि निराला को विशेष सफलता हासिल हुई है। इसका एक विशेष कारण यह है कि 'राम की शक्ति-पूजा' में स्वयं निराला का व्यक्तित्व प्रक्षेपित हुआ है और इसी कारण बच्चन सिंह और दूधनाथ सिंह ने इस कविता को निराला के जीवनसंघर्ष और आत्मसंघर्ष की कविता माना है। कविता की शुरुआत अँधेरे की स्थिति से हुई है – "रवि हुआ अस्त।" यह अँधेरा निराला के जीवन में भी व्याप्त है। यह निराशा वही है जो 'सरोज स्मृति' में – "दुःख ही जीवन की कथा रही / क्या कहूँ आज जो नहीं कही" के रूप में दिखाई देती है।

युद्ध से लौटते राम का जो खिन्न चित्र प्रस्तुत किया गया है वह वास्तव में प्रकाशकों द्वारा रचनाओं को लौटाए जाने और आलोचकों के कटु वाक्य-बाणों को सह कर लौटते कवि निराला की अपनी ही चेतना का चित्र

है। दूधनाथ सिंह के अनुसार इस कविता में राम की शारीरिक संरचना और सौन्दर्य वैसा ही है जैसे स्वयं निराला का व्यक्तित्व था। निराला शारीरिक रूप से विशालकाय थे, उनकी लम्बी केश-राशि और सम्पूर्ण देहयष्टि राम के इस वर्णन में साकार हो उठती है –

श्लथ धनु-गुण है, कटिबन्ध स्रस्त तूणीर-धरण,
दृढ़ जटा-मुकुट हो विपर्यस्त प्रतिलट से खुल
फैला पृष्ठ पर, बाहुओं पर, वक्ष पर, विपुल
उतरा ज्यों दुर्गम पर्वत पर नैशान्धकार
चमकतीं दूर ताराएँ ज्यों हों कहीं पार।

इसी प्रकार राम की संशयग्रस्त परिस्थितियों के प्रस्तुत चित्र में भी कविवर निराला के जीवन की संशय-ग्रस्त, खिन्न और ध्वस्त परिस्थितियों का ही चित्रण प्रतीत होता है। निराला राम के समान ही अपने समस्त प्रयत्नों की असफलता से आशंकित दिखाई देते हैं–

स्थिर राघवेन्द्र को हिला रहा फिर-फिर संशय,
रह-रह उठता जग जीवन में रावण-जय-भय;
* * *
कल लड़ने को हो रहा विकल वह बार-बार,
असमर्थ मानता मन उद्यत हो हार-हार;

'राम की शक्ति-पूजा' में राम के हृदय में सीता के प्रति जो गहरा और एकनिष्ठ प्रेम दिखाई देता है, वह निराला के एकनिष्ठ गार्हस्थ्यिक प्रेम का ही प्रक्षेपण है। मनोहरा देवी के प्रति निराला का प्रेम एकनिष्ठ था इसीलिए उन्होंने अल्पायु में पत्नी की मृत्यु हो जाने के उपरान्त भी पुनर्विवाह नहीं किया। उनकी यही एकनिष्ठता राम में भी परिलक्षित होती है, जो सीता की मुक्ति का आधार है– "जानकी ! हाय, उद्धार प्रिया का हो न सका।"

'राम की शक्ति-पूजा' की मूलभूत समस्या है – शक्ति का अन्याय के पक्ष में होना। रावण समस्त वैभव से सम्पन्न है जबकि राम वनवास में होने के कारण सुविधाओं से वंचित हैं। इन विकट परिस्थितियों में महाशक्ति भी रावण के साथ है। निराला को भी व्यक्तिगत जीवन में आर्थिक कठिनाइयों और साहित्यिक जीवन में विरोध का सामना करना पड़ा। इन विकट परिस्थितियों में राम और निराला की हताशा स्वाभाविक है और इस हताशा को प्रकट करती यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

रावण, अधर्मरत भी, अपना, मैं हुआ अपर,
यह रहा, शक्ति का खेल समर, शंकर, शंकर!
* * *
पश्चात्, देखने लगीं मुझे बँध गए हस्त,
फिर खिंचा न धनु, मुक्त ज्यों बँधा मैं, हुआ त्रस्त!

'राम की शक्ति-पूजा' में निराला जाम्बवन्त के माध्यम से राम को शक्ति की आराधना करने की युक्ति बताते हैं और इस प्रकार निराला स्वयं को ही प्रेरणा देते हैं –

आराधन का दृढ़ आराधन से दो उत्तर,
तुम वरो विजय संयत प्राणों से प्राणों पर।
रावण अशुद्ध होकर भी यदि कर सकता त्रस्त
तो निश्चय तुम हो सिद्ध करोगे उसे ध्वस्त,

महाशक्ति की आराधना का जो अनुष्ठान किया गया, वह ज्ञान और हठयोग का मार्ग है। निराला स्वयं योगमार्ग से जुड़े हुए थे, इससे संकेत मिलता है कि उन्होंने अपने ही व्यक्तित्व का आरोपण राम पर किया है –

क्रम-क्रम से हुए पार राघव के पंच दिवस,
चक्र से चक्र मन चढ़ता गया ऊर्ध्व निरलस;

जिस प्रकार निराला सदैव ही संघर्षों से जूझते रहे, उसी प्रकार शक्ति-पूजा के राम भी निरन्तर संघर्षरत रहे। अनुष्ठान की पूर्णता के दौरान देवी दुर्गा पूजा का अन्तिम फूल उठा कर ले जाती है जो उनके अन्तिम संघर्ष का परिचायक है। निराला के जीवन में पत्नी का साथ छूट जाना, आर्थिक अभाव के कारण पुत्री सरोज की मृत्यु हो जाना और महान् रचनात्मकता के बावजूद साहित्य क्षेत्र में स्वीकृति नहीं मिलना। ये सभी संघर्ष मिलकर निराला को उस भावभूमि पर ले जाते हैं जहाँ कोई भी व्यक्ति आत्मधिक्कार की अवस्था में आ जाता है। ऐसी स्थिति में निराला के राम या स्वयं निराला चीत्कार कर उठते हैं–

धिक् जीवन को जो पाता ही आया विरोध,
धिक् साधन जिसके लिए सदा ही किया शोध।

शक्ति-पूजा के राम की तरह निराला भी कभी ना हारने वाले पुरुषार्थी थे। यही कारण है कि राम सीता मुक्ति के अपने उद्देश्य को पूरा करने के लिए कभी न थकने वाली मनःस्थिति में पहुँच जाते हैं –

वह एक और मन रहा राम का जो न थका,
जो नहीं जानता दैन्य, नहीं जानता विनय।

स्पष्ट है कि 'राम की शक्ति-पूजा' निराला के आत्मसंघर्ष की कथा है, वह निराला जो 'सरोज स्मृति' में जीवन के संघर्षों से जीत नहीं पाए, 'राम की शक्ति-पूजा' में राम बनकर विजयी हुए। इस रूप में यह कविता राम की विजय यात्रा के साथ-साथ निराला की विजय यात्रा है। इसके नायक 'पुरुषोत्तम नवीन' राम स्वयं निराला हैं, जो नयी शक्ति और नये ओज से युक्त हैं।

2.2.07. प्रासंगिकता

'राम की शक्ति-पूजा' निराला की कालजयी रचना है, जिसमें रामकथा के एक अंश को नये शिल्प और कलेवर में ढाल कर प्रस्तुत किया गया है। कविवर निराला ने प्राचीनकाल से विख्यात रामकथा के संकटपूर्ण स्थल – 'रावण के साथ युद्ध में राम की निराशा' का चुनाव किया और अपनी सृजनात्मक कल्पना के माध्यम से उसमें पौराणिक वातावरण की सृष्टि करने के साथ ही नयी अन्तर्वस्तु का समावेश किया। स्पष्ट है कि 'राम की शक्ति-पूजा' पौराणिक आख्यान की आवृत्ति भर नहीं है वरन् उसमें निहित सत्य को आधुनिक परिवेश के अनुसार बदलकर नवीनता के साथ प्रकट करने का प्रयास भी है। यह कथानक अप्रत्यक्ष रूप से अपने रचनाकाल के दौरान हुए विश्वयुद्ध की ओर संकेत करता है। इस समय भारत में स्वाधीनता संग्राम निरुत्साहिता के दौर में था। स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रणी नेताओं और देश की आम जनता का हृदय पराजय के बोध से भारी था। ऐसे समय में राम के प्रतीक का चयन बेहद प्रभावशाली ढंग से करते हुए, निराला ने हताश भारतीय जनमानस में आशा का संचार करने का प्रयास किया है।

कोई भी व्यक्ति, घटना या प्रसंग किसी अन्य काल में पूर्णतः प्रासंगिक नहीं हो सकता है वरन् उसमें कल्पना के माध्यम से हस्तक्षेप करते हुए प्रासंगिक बनाया जाता है। निराला ने भी राम के मिथक में कई परिवर्तन किए, जो 1936 के भारत की आवश्यकता के अनुरूप थे। इसके कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

निराला ने राम को देशभक्ति और राष्ट्रीयता की भावना के रूप में प्रस्तुत किया है तो रावण को अंग्रेजी शासन की क्रूरता, अनीति और अत्याचार के रूप में प्रस्तुत किया है। जब राम कहते हैं – " मित्रवर, विजय होगी न समर" तो यह देश की निराशाजनक स्थिति का ही सूचक है। निराशा के इन क्षणों से उबरने के लिए निराला ने शक्ति की मौलिक कल्पना की है, जो इस बात की सूचक है कि केवल सत्य और न्याय के मार्ग पर चलना ही पर्याप्त नहीं वरन् किसी भी देश के लिए शक्ति का संचय होना भी अनिवार्य है, तभी वह दासता की जंजीरों को तोड़ सकता है – "हे पुरुष सिंह, तुम भी यह शक्ति करो धारण।" स्पष्ट है कि संघर्ष के क्षणों में बिना शक्ति और पौरुष के सफलता मिलना अत्यन्त मुश्किल है और यह सन्देश भारत की परतन्त्रता के समय प्रेरणा का स्रोत रहा। निराला ने शक्ति-साधना के लिए राम को योग-प्रक्रिया का प्रयोग करते हुए चित्रित किया है। यह प्रक्रिया आन्तरिक शक्ति की ओर संकेत करती है, जो तत्कालीन स्वतन्त्रता संग्राम की दृष्टि से अत्यन्त प्रासंगिक और अनिवार्य प्रतीत होती है।

इसी प्रकार कविता में हनुमान की उपस्थिति यह दर्शाती है कि तत्कालीन भारतीय जनता के पास इतनी शक्ति थी कि वह अंग्रेजी शासन को हरा सके। किन्तु आवश्यकता थी तो इस बात की कि उस शक्ति को संयोजित करके उसका समुचित प्रयोग किया जाए। 'राम की शक्ति-पूजा' में राम का सीता के प्रति जो प्रेमभाव दर्शाया गया है वह आधुनिक समतामूलक समाज में नारी-पुरुष के सम्बन्धों का प्रतीक है। वाल्मीकि, तुलसी और कृतिवास की रामायण में नारी को वह सम्मान नहीं मिला, जो निराला ने 'राम की शक्ति-पूजा' में अपनी मौलिकता के माध्यम से प्रस्तुत किया। नन्दकिशोर नवल का दावा है कि इस कविता का केन्द्रीय भाव 'सीता की मुक्ति' है और

सीता के प्रतीक के माध्यम से 'नारी की मुक्ति' है। सीता इस सम्पूर्ण युद्ध और शक्ति-पूजा का मूल उद्देश्य ही नहीं वरन् कथा के हर मोड़ पर सक्रिय रूप से उपस्थित है।

कविता के अन्त में – "होगी जय, होगी जय, हे पुरुषोत्तम नवीन ! कह महाशक्ति राम के बदन में हुई लीन" राम के मुख में शक्ति को लीन होते दर्शाया गया है, जबकि रावण को शक्ति की गोद में बैठे हुए दर्शाया गया है। यह इस बात का प्रतीक है कि शक्ति का सम्बन्ध नैतिकता के साथ आन्तरिक होता है, जबकि अनैतिकता के साथ मात्र बाह्य रूप में विद्यमान रहती है।

वर्तमान युग भी विभिन्न विषम और नकारात्मक परिस्थितियों से परिपूर्ण है । अनैतिक-आचरण, अराजकता, कुरीतियाँ, भ्रष्टाचार जैसी अनेक काली शक्तियों के समक्ष सदाचारी जनमानस विवश प्रतीत होता है। इन परिस्थितियों में 'राम की शक्ति-पूजा' हमें पुरुषार्थ की प्रेरणा देती है, जिससे हम इन विकट परिस्थितियों का निडर होकर सामना कर सकें। गहन निराशा के अन्धकार में भी आस्तिकता, आस्थावादिता और आशा का दामन थामे रहने की प्रेरणा का स्वर हमें 'राम की शक्ति-पूजा' में सुनाई देता है। निराला का यह दृढ़ विश्वास है कि अडिग शक्ति और अदैन्य भाव से संघर्षरत रहने वाला, अन्ततः विजय अवश्य प्राप्त करता है। उनका यह विश्वास हमें भी निष्काम कर्म करने की प्रेरणा प्रदान करता है। इस प्रकार निराशा पर विजय प्राप्त कर, शक्ति का संचार करने और बुरी शक्तियों पर अपने पौरुष-बल से विजय प्राप्त करने का सन्देश देने वाली 'राम की शक्ति-पूजा' अपने रचनाकाल में ही नहीं वरन् वर्तमान काल में भी प्रासंगिक प्रतीत होती है। डॉ॰ रामकिशोर के अनुसार – 'राम की शक्ति-पूजा' की कथा योजना में किसी तरह का रूपात्मक विधान न होते हुए भी राम के संघर्ष में कवि और युग दोनों का संघर्ष बखूबी अभिव्यंजित हो जाता है।

2.2.08. पाठ-सार

प्रस्तुत पाठ के सार के रूप में कहा जा सकता है कि छायावाद के महत्त्वपूर्ण कवि निराला ने अनेक कृतियों की रचना कर हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया। उन्होंने अपने जीवन में विविध विकट परिस्थितियों का सामना करते हुए भी हार नहीं मानी और साहित्य के माध्यम से समाज में नयी चेतना फूँकने के सार्थक प्रयास किये। 'राम की शक्ति-पूजा' उनके द्वारा रचित सर्वश्रेष्ठ रचना है, जो मूल रूप से उनके काव्य-संकलन 'अनामिका' में संकलित है। इस लम्बी कविता का कथानक कृतिवास-कृत बांग्ला रामायण से लिया गया है। इस कविता के माध्यम से कविवर निराला ने राम के पौराणिक चरित्र को आधुनिक जीवन और परिस्थितियों से जोड़कर अपनी मौलिकता का परिचय दिया है। यह कविता लम्बी कविता की विविध विशेषताओं यथा – दीर्घकालिक सृजनात्मक तनाव, नाटकीयता, यथार्थ के गतिशील रूप, बिम्ब-विवरण तथा विचार का समीकरण, अन्विति, वैचारिक बनावट आदि को स्वयं में समाहित किए हुए है, साथ ही महाकाव्यात्मक गरिमा और औदात्य से भी युक्त है।

'राम की शक्ति-पूजा' में निराला ने राम को साधारण मानव के रूप में चित्रित किया है। राम के हृदय में उठने वाला संशय, अविश्वास, भविष्य की चिन्ता मानवोचित कमजोरियों के रूप में प्रस्तुत किये गए हैं। मानव जीवन का संघर्ष और विरोध राम के माध्यम से ध्वनित हुए हैं। निराला ने 'पुरुषोत्तम नवीन राम' के माध्यम से मानव समाज में एक नयी चेतना का संचार करने का प्रयास किया है तथा विषम परिस्थितियों में भी निरन्तर प्रयासरत रहने का सन्देश दिया है। 'राम की शक्ति-पूजा' का समापन इस सन्देश के साथ होता है कि शक्ति का स्रोत मनुष्य के भीतर है, उसे जाग्रत् करने से ही बाहरी विश्व में विजय प्राप्त हो सकती है। मानवीय चेतना के साथ ही प्रस्तुत कविता निराला के आत्मसंघर्ष का कथ्य भी प्रस्तुत करती है। 'राम की शक्ति-पूजा' के राम की हताशा, निराशा और संघर्षरत रहने के अथक प्रयासों में अप्रत्यक्ष रूप से निराला के व्यक्तित्व की छवि दिखाई पड़ती है। निराला ने आजीवन विकट परिस्थितियों का निडर होकर सामना किया, कठिन से कठिन हालातों में भी उनका मन कभी हार नहीं माना। यही मनोभाव शक्ति-पूजा के राम में भी परिलक्षित होते हैं।

इसके साथ ही 'राम की शक्ति-पूजा' पौराणिक कथानक को लिए हुए भी आधुनिक समय में प्रासंगिक प्रतीत होती है क्योंकि इसके माध्यम से कविवर निराला ने तत्कालीन भारतीय जनता को पुरुषार्थ की प्रेरणा देते हुए विजयश्री प्राप्त करने के लिए शक्ति को संयोजित कर उसके समुचित प्रयोग की प्रेरणा दी है। उनका यह सन्देश वर्तमान युग में भी पूर्णतः सार्थक है।

2.2.09. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'छायावाद' का अर्थ स्पष्ट करते हुए परिभाषा दीजिए।
2. निराला के किन्हीं पाँच काव्य-संकलनों के नाम बताइए।
3. लम्बी कविता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसे परिभाषित कीजिए।
4. "जाम्बवन्त का परामर्श राम में ही नहीं वरन् सम्पूर्ण मनुष्य जाति में नयी चेतना का संचार करता है।" स्पष्ट कीजिए, कैसे?
5. 'राम की शक्ति-पूजा' की मूलभूत समस्या क्या है?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. छायावादी काव्यधारा के प्रमुख आधार स्तम्भ निराला का जीवन परिचय देते हुए उनकी प्रमुख रचनाओं के नाम बताइए।
2. लम्बी कविता के रूपबन्ध की दृष्टि से 'राम की शक्ति-पूजा' की विवेचना कीजिए।
3. स्पष्ट कीजिए कि 'राम की शक्ति-पूजा' की केन्द्रीय संवेदना 'शक्ति की मौलिक कल्पना' है।
4. " 'राम की शक्ति-पूजा' में निराला का आत्मसंघर्ष परिलक्षित होता है।" उदाहरण सहित स्पष्ट कीजिए।

5. "निराला ने पौराणिक कथानक को आधुनिक परिवेश के अनुरूप बदलकर नवीनता के साथ प्रकट करने का प्रयास किया है।" विवेचन कीजिए।

2.2.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. नन्दकिशोर नवल, निराला कृति से साक्षात्कार, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, ISBN : 978-81-267-1794-1.
2. डॉ॰नरेन्द्र मोहन, समकालीन कविता के बारे में, नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन, ISBN : 81-7055-326-1.
3. रामेश्वर राय, कविता का परिसर : एक अन्तर्यात्रा, नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन, ISBN : 978-93-5072-741-6.
4. रामविलास शर्मा, निराला की साहित्य साधना, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, ISBN : 978-81-267-1693-7.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : छायावादी काव्य

इकाई – 3 : पन्त की काव्य-कला, पन्त की सौन्दर्य चेतना

इकाई की रूपरेखा

2.3.0. उद्देश्य कथन
2.3.1. प्रस्तावना
2.3.2. पन्त : जीवन परिचय और काव्य-यात्रा
 2.3.2.1. जीवन परिचय
 2.3.2.2. काव्य-यात्रा
  2.3.2.2.1. प्रथम चरण : छायावादी युग
  2.3.2.2.2. द्वितीय चरण : प्रगतिवादी युग
  2.3.2.2.3. तृतीय चरण : अन्तश्चेतनावादी युग
  2.3.2.2.4. नवमानवतावादी युग
2.3.3. 'परिवर्तन' कविता का परिचय
2.3.4. पन्त की काव्य-कला
2.3.5. पन्त की सौन्दर्य चेतना
2.3.6. पाठ-सार
2.3.7. बोध प्रश्न
2.3.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

2.3.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई में आप प्रकृति के सुकुमार कवि सुमित्रानन्दन पन्त की काव्य-कला और सौन्दर्य चेतना के सन्दर्भ में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप –

i. पन्त के जीवन का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
ii. पन्त की काव्य-यात्रा के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
iii. पन्त द्वारा रचित 'परिवर्तन' कविता का मर्म समझ सकेंगे।
iv. पन्त की काव्य कला से भली-भाँति अवगत हो सकेंगे।
v. पन्त की सौन्दर्य चेतना को हृदयंगम कर सकेंगे।

2.3.1. प्रस्तावना

छायावाद हिन्दी साहित्य का अत्यन्त समृद्ध युग है। भक्तिकाल के बाद हिन्दी साहित्य का इतना उत्कर्ष अन्य किसी युग में नहीं हुआ जितना कि छायावाद में। इस काल की कविता ने विषय और शिल्प दोनों ही दृष्टियों

से नवीन आयाम प्रस्तुत किए हैं । छायावादी कवियों ने परम्परा के प्रति विद्रोह करते हुए द्विवेदीयुगीन साहित्यिक प्रवृत्तियों (इतिवृत्तात्मकता, आदर्शवाद, उपदेशात्मकता) को त्यागकर प्रेम, प्रकृति और मानवीय सौन्दर्य की स्वानुभूतिमयी रहस्यपरक सूक्ष्म अभिव्यंजना की।

जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', सुमित्रानन्दन पन्त तथा महादेवी वर्मा को छायावाद के चार आधार स्तम्भ के रूप में स्वीकार किया जाता है। इनके महत्त्व को प्रकट करते हुए रामधारीसिंह 'दिनकर' ने लिखा है – "छायावाद में जो कुछ भी सुन्दर और साखान् था, वह मुख्यतया हिन्दी के चार कवियों में विभक्त हुआ। उसकी दार्शनिकता प्रसाद के हाथ लगी तथा पौरुष निराला को मिला। पन्त ने उसकी प्रभावी अरुणिमा, गन्ध और ओस को ग्रहण किया और महादेवी के हिस्से आई उसकी धूमिलता, जिससे उनकी आध्यात्मिक विरह की कल्पना और भी गम्भीर हो गई।" छायावाद के चतुष्टय कवियों में से जयशंकर प्रसाद और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के सन्दर्भ में आप प्रस्तुत पाठ्यचर्या में पूर्व की इकाइयों में विस्तृत अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आप सुमित्रानन्दन पन्त और उनके द्वारा रचित कविता 'परिवर्तन' का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.3.2. पन्त : जीवन परिचय और काव्य-यात्रा

खड़ीबोली हिन्दी कविता में आधुनिकता का श्रीगणेश छायावाद से हुआ, जिसके प्रतिनिधि कवि सुमित्रानन्दन पन्त हैं। छायावादी काव्यधारा को सँवारने में पन्त ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। उनके काव्य की प्रमुख विशेषता यह है कि उसमें कल्पना की उड़ान, प्रकृति के प्रति आकर्षण तथा प्रकृति और मानव जीवन के कोमल और सरस पक्षों के प्रति अटूट आग्रह है। किसी भी कवि के साहित्य-संसार में प्रविष्ट होने के लिए उसके व्यक्तित्व का ज्ञान होना आवश्यक है क्योंकि कवि की समस्त काव्य-उपलब्धियाँ उसके व्यक्तित्व का परिणाम होती है। सुमित्रानन्दन पन्त के काव्य का विस्तृत अध्ययन करने से पूर्व उनके जीवन का संक्षिप्त परिचय आवश्यक है, जो इस प्रकार है –

2.3.2.1. जीवन परिचय

सुमित्रानन्दन पन्त, जिनका बचपन का नाम गोसाईं दत्त था, अपने माता-पिता की आठवीं और अन्तिम संतान थे, उनका जन्म 20 मई 1900 को कौसानी, उत्तराखण्ड में हुआ था। उनके पिता गंगादत्त कौसानी में चाय के बगीचे में मैनेजर थे। पन्त के जन्म के मात्र 6 घण्टे बाद ही उनकी माता सरस्वती देवी की मृत्यु हो गई। तब उनकी दादी ने उन्हें पाला-पोसा, मातृ-स्नेह के अभाव का वर्णन कवि ने 'ग्रन्थि' में इस प्रकार किया है –

नियति ने ही निज कुटिल कर से, सुखद
गोद मेरे लाड़ की थी छीन ली,
बाल में ही हो गई थी लुप्त हा!
मातृ अंचल की अभय-छाया मुझे।

माँ के इस अभाव की पूर्ति प्रकृति ने की और वही उनकी माता-पिता, भाई, शिक्षक, मित्र और प्रेमिका सभी कुछ बन गई। स्वयं पन्त ने 'साठ वर्ष : एक रेखांकन' में स्पष्ट किया है कि "कौसानी की गोद मुझे माँ की गोद से भी अधिक प्यारी रही है।" बाल्यकाल में ही प्राकृतिक सौन्दर्य के सान्निध्य और दादी माँ की कहानियों ने उन्हें कविहृदय बना दिया था। प्रकृति के ममतामयी आँचल में पले पन्त को अपने भाई हरदत्त, जो संस्कृत और अंग्रेजी के अच्छे जानकार थे और हिन्दी तथा कुमाऊँनी में कविताएँ लिखते थे, से प्रेरणा मिली और वे शब्दों की तुकबन्दी कर कविता लिखने लगे। उनकी प्राथमिक शिक्षा कौसानी के वर्नाक्यूलर स्कूल में हुई, जहाँ उनके कविता-पाठ से प्रभावित होकर स्कूल इंस्पेक्टर ने उन्हें उपहार में एक पुस्तक दी। ग्यारह साल की अवस्था में उन्हें आगे की पढ़ाई के लिए अल्मोड़ा के गवर्नमेंट हाईस्कूल में भेज दिया गया। नयी संस्कृति, समाज और वातावरण ने गोसाईं दत्त को प्रभावित किया और उन्होंने लक्ष्मण के चरित्र को अपना आदर्श मानते हुए अपना नाम गोसाईं दत्त से बदलकर सुमित्रानन्दन पन्त रख लिया।

सन् 1918 में पन्त ने जयनारायण हाईस्कूल बनारस में प्रवेश लिया और हाईस्कूल परीक्षा पास करने के बाद सन् 1919 में प्रयाग के म्योर सेंट्रल कॉलेज में इंटर में प्रवेश लिया। प्रयाग उनके लिए साहित्य-उर्वर स्थल साबित हुआ और यहीं उनकी साहित्य-साधना विकसित हुई। यहाँ उन्हें आत्म-परिष्कार का उचित अवसर और वातावरण प्राप्त हुआ। परिणामस्वरूप यह उनका प्रिय स्थान रहा और यहीं उन्होंने अपना स्थायी निवास बना लिया। सन् 1921 में असहयोग आन्दोलन के दौरान महात्मा गाँधी के अंग्रेजी विद्यालय, महाविद्यालय और सरकारी कार्यालयों का बहिष्कार करने के आह्वान पर उन्होंने महाविद्यालय छोड़ दिया और जीवन की पाठशाला में संसार की महान् पुस्तकों के अध्ययन में जुट गए। हिन्दी-साहित्य के विलियम वर्ड्सवर्थ कहे जाने वाले पन्त की रचनाओं में सामाजिक यथार्थ के साथ ही प्रकृति और मानवीय सत्ता के बीच का संघर्ष दिखलाई पड़ता है। उनके समग्र साहित्य में आधुनिक हिन्दी कविता का एक पूरा युग समाया हुआ है। 28 दिसम्बर 1977 को हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य उपासक का इलाहाबाद में देहान्त हो गया।

2.3.2.2. काव्य-यात्रा

पन्त एक विकासशील कवि हैं। उनकी कविता का स्वर और स्वरूप समय के साथ निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। उन्होंने युग की सीमाओं में बँधकर और तत्कालीन विचारधाराओं को अपनाकर काव्य-सृजन किया। परिणामस्वरूप उनकी सृजनात्मक प्रतिभा का निरन्तर विकास होता रहा। उनकी प्रारम्भिक कविताएँ छायावादी काल की हैं, जो प्रकृति सौन्दर्य से ओतप्रोत हैं। किन्तु बाद में उन्होंने प्रगतिवाद का पथ अपना लिया और अपने साहित्य के माध्यम से गरीबों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की। आगे चलकर अरविन्द-दर्शन के प्रभावस्वरूप उन्होंने अन्तश्चेतनावादी कविताओं का सृजन किया। पन्त के काव्य का चौथा चरण नवमानवतावादी कविता का है, जिसमें उन्होंने लोकचेतना का प्रतिनिधित्व करते हुए नवमानवता का सन्देश सुनाया। पन्त की काव्य-यात्रा के विविध सोपानों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

2.3.2.2.1. प्रथम चरण : छायावादी युग (1918-1934 ई.)

पन्त की काव्य-यात्रा का प्रथम चरण सौन्दर्यवादी युग रहा, जिसका प्रमुख लक्ष्य प्रकृति ही रही। पन्त ने स्वयं माना है कि – "कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति निरीक्षण से मिली है।" इस काल में उनकी चार कृतियाँ प्रकाश में आईं – वीणा, ग्रन्थि, पल्लव और गुँजन। इन सभी रचनाओं में प्रकृति सौन्दर्य के प्रति प्रेम किसी न किसी रूप में दिखलाई पड़ता है। पन्त को प्रकृति से इतना प्रेम रहा कि प्रकृति से परे सोचना उनके लिए असम्भव था इसलिए वे कहते हैं –

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया।
तोड़ प्रकृति से भी माया।
बाले ! तेरे बाल जाल में
कैसे उलझा दूँ लोचन ?

2.3.2.2.2. द्वितीय चरण : प्रगतिवादी युग (1935-1945 ई.)

पन्त की काव्य-यात्रा का दूसरा चरण प्रगतिवादी विचारधारा से युक्त है। इस समय में पन्त पर गाँधीजी का विशेष प्रभाव पड़ा और उन्होंने असहयोग आन्दोलन में भाग लिया। इस काल में पन्त ने सौन्दर्य भावना को अनुपयोगी मानते हुए 'सुन्दरम्' से 'शिवम्' की भूमि पर पदार्पण किया। इस काल की उल्लेखनीय रचनाएँ हैं – युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या। इन रचनाओं में कवि ने प्राचीन और पुरातन मान्यताओं के प्रति तीव्र विरोध प्रकट किया तथा नूतन विचारों और नवजागरण के लिए नवीन क्रान्ति का समर्थन किया। 'युगान्त' की प्रस्तुत पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र !
हे स्रस्त-ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
हिम-ताप-पीत, मधुवात-भीत,
तुम वीत-राग, जड़, पुराचीन !!

2.3.2.2.3. तृतीय चरण : अन्तश्चेतनावादी युग (1946-1948 ई.)

पन्त की काव्य-यात्रा के तीसरे चरण को अन्तश्चेतनावादी युग के नाम से जाना जाता है। इस अवधि में पन्त को ऐसा प्रतीत होने लगा कि भौतिकवाद और अध्यात्म के समन्वय से ही मानव-कल्याण सम्भव है और यह समन्वय उन्हें अरविन्द-दर्शन में प्राप्त हुआ। इस काल की प्रमुख रचनाएँ 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि' हैं। पन्त ने यह माना कि मानव जाति का कल्याण मात्र अर्थोपार्जन से नहीं वरन् मन और कर्म के समन्वय से सांस्कृतिक-उत्थान करने से है। इसके लिए प्रत्येक मानव को अपने अन्तःकरण में तप, संयम, श्रद्धा, आस्तिकता के भावों को स्थान देना चाहिए –

फिर श्रद्धा विश्वास प्रेम से
मानव अन्तर हो अन्त:संयमित।
संयम तप की सुन्दरता से
जग जीवन शतदल दिक् प्रहसित।
व्यक्ति विश्व में व्यापक समता
हो जन के भीतर से स्थापित।
मानव के देवत्व से ग्रथित
जन समाज जीवन हो निर्मित॥

2.3.2.2.4. नवमानवतावादी युग (1949 ई. से अन्त समय तक)

पन्त के काव्य के क्रमिक विकास का चतुर्थ चरण मानवतावादी युग है। इस काल की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं – उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, अतिमा, लोकायतन, चिदम्बरा, अभिषेकिता और समाधिता। ये सभी रचनाएँ मानवता को उन्नत बनाने के लिए दिए गए सन्देशों से युक्त हैं। इनमें पन्त की चेतना मानवतावाद विशेषकर विश्व मानवतावाद की ओर प्रवृत्त हुई है और उन्होंने लोकमंगल के लिए व्यक्ति और समाज के बीच सामंजस्य को महत्त्व दिया है –

हमें विश्व संस्कृति ये,
भू पर करनी आज प्रतिष्ठित
मनुष्यत्व के नव द्रव्यों से
मानस-उर कर निर्मित।

प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट है कि पन्त की काव्य-यात्रा या उनके वैचारिक धरातल में जितने परिवर्तन हुए, उतने किसी अन्य कवि में नहीं। उनका काव्य प्रारम्भिक सौन्दर्य भावना के युग से नवमानवतावादी युग की यात्रा कर आया है। इस यात्रा में कई पड़ाव आए। साधना-पथ पर अग्रसर पन्त ने अपनी प्रतिभा, कल्पना और अनुभूति के माध्यम से जो काव्य-सृजन किया, उसमें युग का स्पन्दन और अनुभूति है। उनकी काव्य-यात्रा मानवता के विकास की यात्रा है।

2.3.3. 'परिवर्तन' कविता का परिचय

छायावादी काव्यधारा को सँवारने में पन्त ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। उनके द्वारा रचित 'पल्लव' का छायावाद के इतिहास में विशिष्ट महत्त्व है। इसे पन्त की उत्कृष्टतम काव्य-कृति माना जाता है। यह सन् 1922 से 1926 के मध्य लिखी गई कविताओं का काव्य-संग्रह है। इसकी रचनाओं को छह भागों में विभक्त किया जा सकता है –

i.	प्रणय-भावप्रधान रचनाएँ	:	उच्छवास, आँसू, स्मृति आदि।
ii.	कल्पनाप्रधान रचनाएँ	:	वीचिविलास, विश्व-वेणु, निर्झर गान, नक्षत्र।
iii.	भावप्रधान रचनाएँ	:	मोह, विसर्जन, मुस्कान आदि।
iv.	चिन्तन-प्रधान रचनाएँ	:	नारी, विश्व-व्याप्ति, जीवन-यान, शिशु आदि।
v.	भाव और कल्पनाप्रधान रचनाएँ	:	बालापन, छाया, मौन निमन्त्रण, बादल, स्वप्न।
vi.	भाव, कल्पना एवं चिन्तन प्रधान रचना	:	परिवर्तन।

'पल्लव' के महत्त्व को इस प्रकार समझा जा सकता है कि उस समय के विद्वान् आलोचक शुकदेव बिहारी मिश्र ने कहा था कि – "मैं हिन्दी में केवल नवरत्नों को ही महान् कवि मानता आया हूँ किन्तु 'पल्लव' को पढ़कर मुझे ऐसा ज्ञात होता है कि यह बालक भी महाकवि है।"

'परिवर्तन' काव्य-संग्रह 'पल्लव' में संकलित लम्बी रचना है। इसमें कवि की भावुकता, विराट् कल्पना, चिन्तनशीलता, संवेदनशीलता, विश्वव्यापी अनुभूति, पाण्डित्य प्रखरता और कला-मर्मज्ञता का भव्य परिचय प्राप्त होता है। 'परिवर्तन' उस दौर की रचना है, जब प्रबन्धात्मक रचना-विधान को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ और उसकी प्रासंगिकता और महत्त्व के बारे में कोई सन्देह नहीं था। इसमें पन्त के बदलते विचारों की आहट है। डॉ० नगेन्द्र ने इस कविता के महत्त्व को प्रकट करते हुए लिखा है कि "वास्तव में पन्त ने ना तो इससे पूर्व ही और ना इसके बाद ही इतनी आवेशपूर्ण कविता लिखी है। ... 'परिवर्तन' पन्त के काव्याकाश में दूरवर्ती तारे के सदृश्य है, जो सबसे पृथक् रहकर अपनी ज्योति विकीर्ण करता है।"

'परिवर्तन' कविता किसी आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लिए बिना परिवर्तन सम्बन्धी धारणा को आवेशपूर्ण ढंग से बिम्बात्मक रूप में अभिव्यक्त करती है। एक प्रमुख बिम्ब और उससे छोटे-छोटे बिम्बों को जोड़ने का प्रयास यही इसकी रचना-प्रक्रिया और रचना-संघर्ष है। यह कविता मुक्तक खण्डों का एक संकलन प्रतीत होती है। इसके प्रत्येक छन्द को स्वतन्त्र छन्द के रूप में पढ़ा जा सकता है। निराशा की अन्तर्वर्ती मनोदशा का सूत्र ही इस कविता को बाँधे हुए है, जो इस कविता के खण्डों में एकता स्थापित करता है और इसे एक लम्बी कविता बनाता है।

'परिवर्तन' कविता में एक विशेष क्रम दिखाई देता है, जिसके कारण हम इसे छह भागों में विभाजित कर सकते हैं। पहले खण्ड में प्रथम पाँच पदों को लिया जा सकता है, जिसमें कवि पन्त ने आरम्भ में ही प्रश्न किया है – "कहाँ आज वह पूर्ण-पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?" कवि को ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्ण पुरातन और स्वर्ण काल की बातें मिथ्या है, आज का यथार्थ यह है कि सुख दुःख में परिवर्तित हो रहा है और यह परिवर्तन ही संसार का नियम है –

खोलता इधर जन्म लोचन,
मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण,

अभी उत्सव औ हास-हुलास,
अभी अवसाद, अश्रु, उच्छवास !

दूसरे खण्ड में पद संख्या छह से दस को लिया जा सकता है, जिसमें परिवर्तन को विभिन्न साँग-रूपकों द्वारा मूर्त किया गया है। इसमें प्रयुक्त मुख्य रूपक– शिव, वासुकि, निरंकुश नृप और काल के हैं। जिनका निहित भाव है – ‘विनाश’।

अरे क्षण-क्षण सौ-सौ निःश्वास।
छा रहे जगती का आकाश !
चतुर्दिक घहर-घहर आक्रान्ति।
ग्रस्त करती सुख-शान्ति !

पद संख्या ग्यारह और बारह को तीसरे खण्ड में स्वीकार किया जा सकता है, जिसमें संसार की नश्वरता और उसकी सतत परिवर्तनशीलता पर चिन्तन किया गया है। मनुष्य के जीवन से लिए गए विभिन्न प्रतीक चित्रों द्वारा यह सिद्ध किया गया है कि नश्वर संसार में सुख और शान्ति केवल भ्रान्ति है–

हाय री दुर्बल भ्रान्ति!
कहाँ नश्वर जगती में शान्ति ?
सृष्टि ही का तात्पर्य अशान्ति !

चौथे खण्ड अर्थात् पद संख्या तेरह से सत्रह तक यह स्थापना है कि संसार में सब कुछदुःखमय है। संसार में हिंसा, रोष, अकाल, क्रूरता, संहार, युद्ध, शोषण का साम्राज्य छाया हुआ है वस्तुतः यह पूरा संसार दुःख से परिपूर्ण है –

सकल रोओं से हाथ पसार,
लूटता इधर लोभ गृह द्वार;
उधर वामन डग स्वेच्छाचार,
नापता जगती का विस्तार !

इस प्रकार प्रथम चार खण्डों में निराशा के अनुभव के विभिन्न रूप अभिव्यक्त हुए हैं। इसके बाद कविता एक नया मोड़ लेती है और पाँचवा खण्ड (पद संख्या अट्ठारह से अट्ठाईस), जो सबसे लम्बा है, में दुःख के कारण उत्पन्न निराशा से उबरने के लिए कवि संसार की परिवर्तनशीलता पर दार्शनिक ढंग से चिन्तन करता है –

बिना दुःख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार;
दीन दुर्बल है रे संसार,
इसी से दया क्षमा औ प्यार !

पद संख्या उनतीस से बत्तीस को छठा खण्ड माना जा सकता है, जिसमें कवि ने परिवर्तन को सर्वव्यापी और सर्वशक्तिमान् माना है। उनके अनुसार संसार में जो कुछ है, जैसा है, वह परिवर्तन ही है –

तुम्हारा ही अशेष व्यापार,
हमारा भ्रम, मिथ्याहंकार;
तुम ही में निराकार साकार,
मृत्यु जीवन सब एकाकार।

'परिवर्तन' लम्बी कविताओं के इतिहास में सबसे पहली सशक्त शीर्षस्थ कविता है। यह कविता न केवल आकार में बड़ी है वरन् अपने रागात्मक और वैचारिक आयाम में भी बड़ी है। पन्त मूलतः मानवतावादी हैं अतः वे परिवर्तन निरन्तरता में जहाँ स्थितियों की कटुता के दर्शन करते हैं, वहीं दीनदुर्बल संसार में प्यार, दया और क्षमा के निरन्तर अस्तित्व को भी व्यक्त करते हैं। उनका विश्वास है कि मानव के उच्च मूल्य हमेशा उसके जीवन व्यापार का संचालन करते रहेंगे। शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में " 'परिवर्तन' में कवि की विशेषता यह है कि उसने दर्शनशास्त्र की शुष्कता में भी काव्य का रस संचार कर दिया है। ज्ञान को भाव बना दिया है, काल को कला का स्पर्श दे दिया है। ... इसमें सभी छन्दों और सभी रसों का समावेश है। कथा का आधार लेकर लिखे गए हिन्दी के प्रबन्ध काव्य अनेक हैं, किन्तु बिना किसी आधार के केवल भाव और कला का इतना विशद् काव्य खड़ीबोली में कोई नहीं।"

2.3.4. पन्त की काव्य-कला

सुमित्रानन्दन पन्त की साहित्य-साधना युगानुरूप विभिन्न विचारधाराओं से प्रभावित होती रही है, अतः उनके काव्य विकास में विविधता के दर्शन होते हैं। उनके द्वारा रचित प्रारम्भिक काव्य में छायावादी भाव की प्रधानता रही। वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुँजन छायावादी काल की कृतियाँ हैं, जिनमें प्रकृति-प्रेम और सौन्दर्य सर्वथा विद्यमान है। 'वीणा' की अधिकांश रचनाओं में प्रकृति माँ के रूप में चित्रित है –

तुहिन बिन्दु बनकर सुन्दर,
कुमुद किरण से सहज उतर,
माँ ! तेरे प्रिय पद-पद्मों में,
अर्पण जीवन को कर दूँ।

प्रारम्भिक होते हुए भी इस संग्रह की कविताएँ कथ्य और शिल्प की दृष्टि से प्रशंसनीय हैं। भावप्रधान होते हुए भी इस संग्रह में काव्यकला का पर्याप्त प्रस्फुटन हुआ है। इसकी पदावली सरस, भाषा सरल, प्रवाहमयी, लाक्षणिक और चित्रात्मक है। छन्द, अलंकार और प्रतीक का प्रयोग भी सहजता से हुआ है।

'ग्रन्थि' एक वियोगात्मक प्रणय काव्य है, जिसमें प्रेम का विप्रलम्भ पक्ष अत्यन्त मार्मिक और मधुर रूप में प्रस्तुत किया गया है। सौन्दर्य-भावना की अभिव्यक्ति, रम्य प्रकृति-चित्रण, भावनाओं का सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक

चित्रण, शृंगार के संयोग और वियोग पक्ष का कलात्मक चित्रण इस कृति की सफलता का प्रमुख कारण है। 'ग्रन्थि' के भावपक्ष के साथ ही कलापक्ष भी पुष्ट और विकसित है। इसकी भाषा-शैली संस्कृत पर आधारित और अलंकार से परिपूर्ण है। इसमें प्रयुक्त उपमाएँ भावपूर्ण और प्रसंगानुकूल हैं। इस गीतिकाव्य ने खड़ीबोली को संस्कृत और ब्रजभाषा की रम्यता के समकक्ष ला खड़ा किया–

हाय ! मेरे सामने ही प्रणय का,
ग्रन्थि बन्धन हो गया,
वह नवमधुप सा मेरा हृदय लेकर,
किसी अन्य मानस का विभूषण हो गया।

पन्त का तीसरा काव्य-संग्रह 'पल्लव' है, जो पूर्णतः प्रकृति चिन्तन का काव्य है। इस समय पन्त संस्कृत के साथ ही अंग्रेजी साहित्य का अध्ययन, मनन कर परिपक्वता प्राप्त कर चुके थे और शिल्प, ध्वनि-सौन्दर्य और शैली के सम्बन्ध में उनका नवीन दृष्टिकोण विकसित हो गया था। इस संकलन में पन्त ने कल्पना, कला, चित्रात्मकता, भाषा-माधुर्य और अभिव्यंजना की प्रौढ़ता में अपने पूर्ववर्ती रचनाओं को पीछे छोड़ दिया। 'मौन निमन्त्रण', जो अत्यन्त लोकप्रिय कविता है, में प्रकृति के उपादानों के माध्यम से रहस्यमूलक भावों की व्यंजना की गई है –

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार,
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार,
विचरते हैं जब स्वप्न अजान,
न जाने नक्षत्रों से कौन,
निमन्त्रण देता मुझको मौन।

पन्त-कृत 'गुँजन' का मुख्य विषय मानव-जीवन है। इसके गीतों में पन्त की राग-विराग सम्बन्धी मान्यताओं, विश्व के प्रति संवेदना, चिन्तनशीलता, जीवन के प्रति आकर्षण को काव्यात्मक अभिव्यक्ति मिली है। इसमें भाव-सौन्दर्य के साथ ही कला-सौन्दर्य भी परिष्कृत और संतुलित रूप में विद्यमान है। इसकी भाषा भाव और कल्पना के सूक्ष्म सौन्दर्य से युक्त है। इसमें जीवन के प्रति नवीन उल्लासपूर्ण दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है –

जग के उर्वर आँगन में,
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर,
हे चिर-अव्यय चिर-नूतन।

प्रगतिवादी काल में पन्त ने लोकमंगल की प्रखर इच्छा से प्रेरित होकर अपनी रचना भूमि का पुनः संस्कार किया और उनकी चिन्तनधारा मानवतावादी भाव-भूमि के अनुसंधान में लग गई। संवेदना, कथ्य और शिल्प सभी

स्तर पर धीरे-धीरे परिवर्तन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे। इस काल में पन्त ने युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या जैसे काव्य-संग्रहों की रचना की। 'युगान्त' सन्धि-स्थल की रचना है, इसमें कवि कोयल से जीर्ण-पुरातन के विध्वंस और नूतन के सृजन का सन्देश सुनाने के लिए कहते हैं –

गा कोकिल, बरसा पावक कण,
नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण-पुरातन,
झरें जाति-कुल, वर्ण पर्ण घन,
अन्ध नीड़ से रूढ़ि-रीति छन,
व्यक्ति राष्ट्र-गत राग द्वेष-रण,
झरें मरें विस्मृति में तत्क्षण।

इस काल में मानव आलम्बन बन गया और कला की अपेक्षा जीवन को महत्त्व दिया गया। अतः भाषा भी विषयानुरूप ढलते हुए महाप्राणता से युक्त हो गई परिणामस्वरूप उसकी व्यंजना शक्ति अत्यन्त सशक्त और विकसित हो गई। इस काव्य की अनेक कविताएँ भाषा और शैली की दृष्टि से गद्य की सीमा तक पहुँच गई।

'युगवाणी' में भौतिक जगत् की सत्यता में विश्वास, सामूहिक हित चिन्तन में आस्था, पूँजीवाद का विरोध, कृषकों और श्रमिकों के लिए सहानुभूति व्यक्त हुई है। इसकी काव्यकला के बारे में स्वयं पन्त ने कहा है कि – " 'युगवाणी' में काव्यात्मकता का अभाव है प्रत्युत उसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलंकृत तथा विचार-भावना प्रधान है।"

तुम वहन कर सको जन मन में मेरे विचार,
वाणी मेरी, चाहिए तुम्हें क्या अलंकार?

'ग्राम्या' में ग्रामीण जीवन की यथार्थता और विविध समस्याओं का चित्रण किया गया है। इसमें ग्राम्य जीवन का सौन्दर्य-निरूपण न होकर वहाँ की कुत्सा का वर्णन किया गया है। अतः ये कविताएँ व्यंग्यपरक हैं। 'ग्राम्या' के कला-सौन्दर्य के सन्दर्भ में दूधनाथ सिंह कहते हैं – " 'ग्राम्या' की कविताएँ पन्त के सारे प्रयासों में अप्रतिम हैं। उनकी सहजता, अनुभवगत सक्षमता और यथार्थ का गहरा, सर्वसुलभ और यथातथ्य चित्रण सहसा चकित कर देते हैं। व्यंजना की अन्यतम गहराइयों में प्रवेश करके अर्थों के अनेक दिशाएँ संगठित करने वाले कवि का अभिधा के सीधे-साधे वर्णनात्मक धरातल पर उतर आना निश्चय ही प्रशंसनीय है।"

यह तो मानव लोक नहीं रे यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित।

* * *

मानव दुर्गति की गाथा से ओतप्रोत मर्मान्तक,
सदियों से अत्याचारों की सूची यह रोमांचक।

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि इन रचनाओं में छायावादी काल जैसा सूक्ष्म और उदात्त सौन्दर्य नहीं, किन्तु फिर भी बुद्धि-रस चैतन्य-प्रकाश है जो सरलता से चित्रांकन और विश्लेषण करता है। इन्हीं कविताओं के कारण कवि पन्त ने प्रगतिवाद का प्रतिनिधित्व किया। प्रगतिवाद के बाद पन्त के साहित्य में एक नवीन चेतना का उदय हुआ, जिसकी पहली किरण 'स्वर्ण किरण' है। इसमें संकलित अधिकांश कविताएँ आध्यात्मिक हैं, जो मनश्चेतना से सम्बन्धित हैं। 'स्वर्ण' शब्द को कवि ने चेतना के अर्थ में प्रयुक्त किया है। इस चेतना के द्वारा कवि ने मृत्यु में अमरता, निराशा में आशा, अपूर्णता में पूर्णता के दर्शन किये हैं और उसे नवीन अलौकिक सौन्दर्य की अनुभूति हुई है। 'स्वर्ण किरण' में नये युग-बोध का सन्देश देते हुए कवि कहते हैं –

सृजन करो नूतन मन,
खोल सके जो ग्रन्थि हृदय की
उठा सके संशय गुंठन,
आँक सके जो सूक्ष्म नयन से
जीवन का सौन्दर्य गहन।

'स्वर्ण धूलि' में पन्त ने सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालते हुए, उनको सुलझा कर मानव समाज को विकसित करने का संकेत दिया है। वे मनुष्यत्व को ललकारते हुए कहते हैं –

छोड़ नहीं सकते रे यदि जन
जाति वर्ग और धर्म के लिए रक्त बहाना,
बर्बरता को संस्कृति का बाना पहनाना,
तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम हिन्दू मुस्लिम और ईसाई कहलाना।

कवि पन्त के स्वर्ण-काव्य के कला-पक्ष के सन्दर्भ में यह कहा जा सकता है कि इसमें स्वतः चेतना या प्रेरणा अपने अतिशयता में रूप-विधान का अतिक्रमण करती है। इनकी शब्द-योजना में प्रस्फुटन से अधिक परिणति है। अतः इस काल की कृतियों में व्यक्त चैतन्य के फलस्वरूप कवि का कला-बोध भी कहीं अधिक प्रौढ़ और परिष्कृत है।

'स्वर्ण किरण' से उद्भूत विचारधारा जो 'स्वर्ण धूलि' में विकसित हुई, 'उत्तरा' में आकर पूर्णतः पुष्ट हो गई। इस काव्य-संग्रह में उत्तरकालीन रचनाएँ संगृहीत होने के कारण इसका शीर्षक 'उत्तरा' दिया गया। सामान्य रूप से देखने पर 'उत्तरा' में 'स्वर्ण किरण' और 'स्वर्ण धूलि' की परम्परा का आभास होता है किन्तु वास्तव में पूर्ववर्ती दोनों रचनाओं में समष्टि चिन्तन की प्रधानता है, जबकि 'उत्तरा' में कवि मानव को, मानव समाज को, संस्कृति को बदल डालने की आकांक्षा व्यक्त करता है–

यह रे भू का निर्माण काल,
हँसता नवजीवन अरुणोदय

ले रही जन्म नव मानवता,
आज खर्व मनुजता होगी क्षय !

'कला और बूढ़ा चाँद' कविता-संग्रह पन्त की काव्य-कला के उत्कर्ष का नया रूप है। यह काव्य स्वतः नियन्त्रित है, छन्दों के बन्धन से मुक्त है। इसका शिल्प और शैली भी अप्रतिम हैं। इसमें प्रतीकों के माध्यम से बताया गया है कि व्यक्ति का सत्य उसके भीतर है, व्यक्ति का कल्याण समाज एवं मानव कल्याण है। इस संग्रह की कविताएँ जीवनसत्य से आलोकित हैं और यह काव्य मानवता का काव्य है। 'अतिमा' में प्रकृति सम्बन्धित कविताओं के अतिरिक्त ऐसी रचनाएँ संगृहीत हैं जिनकी प्रेरणा युग-जीवन के अनेक स्वरों को स्पर्श करती हुई सृजन चेतना के नवीन रूपकों और प्रतीकों में मूर्त हुई है। शैली की दृष्टि से इस संग्रह में किसी प्रकार की नवीनता नहीं है। इसका स्वर चिरपरिचित छायावादी स्वर है। फिर भी इसमें संगृहीत कविताएँ सुन्दर और सरस हैं।

'लोकायतन' महाकाव्य में पन्त के सौन्दर्य-विषयक आदर्श, भाव-चेतना और वैचारिक विकास को समग्र रूप में देखा जा सकता है। इसमें कवि की मूल परिकल्पना है, 'लोकभूमि पर जीवन्त सांस्कृतिक महत् चेतना के निर्माण की।' लोक जीवन के सुन्दर आयतन (घर) की परिकल्पना इस काव्य में प्रतिफलित हुई है अतः इसका 'लोकायतन' नाम प्रतीकात्मक है –

सहज प्रसन्न जननि वह जन को दे वर
बरसे श्री शोभा मंगल पग पग पर
महत् सत्य से प्रेरित हो मानव-उर
धरा-स्वर्ग हो सुन्दर से सुन्दरतर।

प्रस्तुत विवरण से स्पष्ट है कि पन्त की काव्य-कला निरन्तर विकासशील रही है। जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण आशावादी है। गतिशीलता में उनकी सदैव ही आस्था रही है। कवि पन्त की काव्य-कला के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि छायावादी काव्य के उपरान्त पन्त अलंकार तथा छन्द की दृष्टि से उतने सचेत नहीं रहे फिर भी उनके काव्य में कला-उपकरण की दृष्टि से बिम्बों और प्रतीकों का सर्वाधिक प्रयोग किया गया है। भाषा-शैली अधिकांशतः सपाट कथन-शैली अथवा वक्तव्य प्रधान शैली रही है। निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पन्त बिम्बवादी रुचि के चित्र-केन्द्रित कला-शिल्प के कवि हैं। उनका काव्य विकसित सौन्दर्य चेतना और लोकमंगल की भावना से अनुप्राणित है।

2.3.5. पन्त की सौन्दर्य चेतना

सम्पूर्ण जगत् में जितने भी रमणीय पदार्थ हैं उनकी तरफ आकृष्ट होना मानव-मन की सहज प्रवृत्ति है। इसी से सौन्दर्यबोध का जन्म होता है। साहित्य-सृजन के लिए भी सौन्दर्य एक आवश्यक उपकरण है। सौन्दर्य की अनुभूति को अभिव्यक्त करना ही काव्य की आत्मा को सँवारना है जो कवि जितना भावुक होता है उसमें सौन्दर्य -

ग्रहण की प्रवृत्ति भी उतनी ही अधिक होती है। सुमित्रानन्दन पन्त मूलतः सौन्दर्य-कवि हैं और यही उनकी कविता का मुख्य प्रतिपाद्य है।

पन्त के काव्य में सौन्दर्य की कई प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे – प्राकृतिक सौन्दर्य निरीक्षण की प्रवृत्ति, सामाजिक सौन्दर्य की प्रवृत्ति, नारी या मानवीय सौन्दर्य की प्रवृत्ति तथा उत्तरकालीन काव्य में आध्यात्मिक सौन्दर्य की प्रवृत्ति। पन्त सर्वप्रथम प्रकृति के रम्य दृश्यों की ओर आकर्षित हुए। उनकी कृतियों 'वीणा' और 'पल्लव' में प्राकृतिक सौन्दर्य की चेतना प्रमुखता से प्रकट हुई है। प्राकृतिक सौन्दर्य ने पन्त को चेतना प्रदान की। उनके प्रकृति-चित्रण में भावुकता के साथ चित्रकार की कुशलता और चातुर्य सहज ही दृष्टिगोचर होता है। संध्या सुन्दरी के आगमन का प्रस्तुत चित्र कितना भव्य प्रतीत होता है–

कहो तुम रूपसी कौन,
व्योम से उतर रही चुपचाप,
छिपा निज छाया छवि में आप,
सुनहला फैला केश कलाप,
मधुर मन्थर मृदु मौन।

पन्त को प्रकृति से विशेष मोह रहा इसीलिए उन्हें प्रकृति सौन्दर्य चित्रण में विशेष सफलता मिली। मनुष्य के जीवन में कई ऐसे मोड़ आते हैं, जब सिद्धान्त और धारणाएँ नये रूप और नये आदर्शों की तरफ उन्मुख हो जाते हैं। पन्त के जीवन में भी परिस्थितियों के अनुसार स्वयमेव परिवर्तन आते चले गए और वे सामाजिक सौन्दर्य की भूमि पर बढ़ चले, जो लोग मंगल से सम्बद्ध है। उनकी रचनाओं 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में लोकमंगल तथा सामाजिक चेतना को अभिव्यक्ति मिली है। उन्होंने अपने साहित्य में दलितों, पीड़ितों और शोषितों की व्यथा को मुखर किया। इसके उपरान्त भी वे महसूस करते थे कि एक सम्पूर्ण विकसित समाज में मनुष्य को सौन्दर्य-प्रेमी और संस्कृत होना चाहिए–

संस्कृत हो सब जन, स्नेही हों, सहृदय सुन्दर
संयुक्त कर्मपर हो संयुक्त विश्व निर्भर।
राष्ट्रों से राष्ट्र मिले, देशों से देश आज,
मानव से मानव हो जीवन निर्माण काज।

पन्त की सौन्दर्य निरीक्षण की अगली प्रवृत्ति मानवीय सौन्दर्य की रही है। इसमें पन्त ने नारी सौन्दर्य को देखा और उसे उदात्त रूप में प्रस्तुत किया। नारी के ऐन्द्रीय आकर्षण का चित्रण करने के उपरान्त भी वे उसकी अन्तरात्मा की उपेक्षा नहीं करते और अपनी प्रिया के स्पर्श में अलौकिक माधुर्य-सौन्दर्य के दर्शन करते हैं –

तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा-स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणी

त्रिवेणी की लहरों का गान।

धीरे-धीरे किशोर और अल्हड़ कवि पन्त भावुक और चिन्तनशील हो गए और 'गुँजन' में आ कर उनकी सौन्दर्यानुभूति पूर्णतः संयत और संतुलित हो गई। 'गुँजन' और उसके बाद का समस्त काव्य इस प्रकार के मानवीय सौन्दर्य का काव्य है जिसमें कवि जीवन की कुरूपता को सुन्दर बनाता है–

हँसने ही में तो है सुख
यदि हँसने को होवे मन
भाते है दु:ख में आते
मोती से आँसू के कण।

कवि पन्त की सौन्दर्य चेतना निरन्तर बदलती रही, जो आगे चलकर इतना ऊपर उठ गई कि कवि को उस विराट् सत्य और यथार्थ का प्रत्यक्षीकरण हो गया जिसकी खोज में उनके प्राण लालायित थे और वे कहते हैं –

हो गए तुम में एकाकार
प्राण में तुम और तुम में प्राण।

पन्त ने अपने काव्य में सौन्दर्य की प्रत्येक भूमि को छुआ है, उनकी प्राकृतिक सौन्दर्य चेतना सामाजिक सौन्दर्य चेतना में परिवर्तित होती है और फिर सामाजिक सौन्दर्य चेतना का स्थान मानवीय सौन्दर्य चेतना ले लेती है। अन्ततः मानवीय सौन्दर्य चेतना के स्थान पर आध्यात्मिक सौन्दर्य चेतना स्थापित हो जाती है। अतः कहा जा सकता है कि पन्त की सौन्दर्य चेतना 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' का समन्वित रूप है, जो उनके काव्य की आत्मा है।

2.3.6. पाठ-सार

सुमित्रानन्दन पन्त आधुनिक हिन्दी जगत् के अनुपम, गत्यात्मक व्यक्तित्व से पूर्ण कवि हैं। उन्होंने समय और समाज के अनुसार अपने काव्य की दिशा, विचार, आदर्श और मान्यताएँ बदलीं। इसी कारण उनके काव्य में भावों और विचारों के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं। उनकी प्रारम्भिक कविताएँ छायावादी काल की हैं, जिनका मुख्य लक्ष्य प्रकृति रही। इस काल में उन्होंने वीणा, ग्रन्थि, पल्लव, गुँजन नामक काव्य-संग्रह लिखे। बाद में गाँधीजी के प्रभावस्वरूप उन्होंने प्रगतिवादी पथ अपना लिया और युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या नामक काव्य-संग्रह लिखे, जिनमें उन्होंने न सिर्फ़ गरीबों के प्रति सहानुभूति व्यक्त की वरन् प्राचीन और पुरातन मान्यताओं के विरुद्ध तीव्र विरोध प्रकट करते हुए नूतन विचारों और नवजागरण के लिए नवीन क्रान्ति का समर्थन किया। पन्त की काव्य-यात्रा का अगला पड़ाव अन्तश्चेतनावादी युग के नाम से जाना जाता है, जिसमें पन्त अरविन्द दर्शन से प्रभावित हुए और मानव-कल्याण के लिए भौतिकवाद और आध्यात्मिकता के समन्वय पर बल दिया। उन्होंने स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि नामक काव्य-ग्रन्थों का सृजन कर मानव को अपने अन्तःकरण में तप, संयम, श्रद्धा, आस्तिकता के भावों को स्थान देने का सन्देश दिया। पन्त की काव्य-यात्रा का चौथा पड़ाव मानवतावादी युग है,

जब उन्होंने उत्तरा, कला और बूढ़ा चाँद, अतिमा, लोकायतन, चिदम्बरा, अभिषेकिता और समाधिता नामक काव्य-संग्रहों की रचना कर मानवता को उन्नत बनाने का सन्देश दिया।

पन्त प्रकृति के कवि स्वीकार किए जाते हैं, उन्होंने अपनी काव्ययात्रा के प्रत्येक पड़ाव में प्रकृति के दामन को थामे रखा। उनके द्वारा रचित 'पल्लव' का छायावादी काव्य-निधि में विशेष महत्त्व है। इसमें पन्त ने प्रणय-भावप्रधान, कल्पनाप्रधान, भावप्रधान, चिन्तन-प्रधान रचनाओं का सृजन किया। 'पल्लव' में संगृहीत 'परिवर्तन' कविता एक लम्बी कविता है, जिसमें कवि पन्त ने किसी आख्यान या इतिवृत्त का सहारा लिए बिना परिवर्तन सम्बन्धी धारणा को आवेश पूर्ण ढंग से बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। इस कविता में कुल बत्तीस छन्द हैं, जिनके माध्यम से कवि पन्त में परिवर्तन को संसार का अवश्यम्भावी नियम बताया है। कविता के प्रथम सत्रह छन्दों में सुख-शान्ति को भ्रान्ति बताया है, वहीं बाद के छन्दों में कविता एक नया मोड़ लेती है और कवि दुःख से उत्पन्न निराशा से उबरने के लिए परिवर्तनशीलता पर दार्शनिक ढंग से चिन्तन करते हैं। 1918-1977 की अवधि में पन्त का काव्य निरन्त विकासशील रहा, अतः उनकी काव्यकला में अनेक विशेषताएँ पाई जाती हैं। उनके काव्य सौन्दर्य में भी अनेक प्रवृतियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे – प्राकृतिक सौन्दर्य, सामाजिक सौन्दर्य, नारी या मानवीय सौन्दर्य, आध्यात्मिक सौन्दर्य। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि साहित्य-साधना के पथ पर निरन्तर अग्रसर पन्त के काव्य में अपने युग का स्पन्दन और अनुभूति विद्यमान है । उनकी कविता मानवता के उत्तरोतर विकास की गाथा है।

2.3.7. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. छायावाद के चतुष्टय स्तम्भों के महत्त्व को रामधारीसिंह 'दिनकर' ने किस प्रकार प्रकट किया है ?
2. पन्त की काव्ययात्रा को कितने भागों में बाँटा जा सकता है ? नामोल्लेख कीजिए।
3. 'पल्लव' काव्य-संग्रह में कितने प्रकार की रचनाएँ संगृहीत हैं ? शीर्षक सहित उल्लेख कीजिए।
4. 'परिवर्तन' कविता का मूल सन्देश क्या है ?
5. पन्त की सौन्दर्य चेतना को किन भागों में विभक्त किया जा सकता है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. सुमित्रानन्दन पन्त का जीवन परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का नामोल्लेख कीजिए।
2. 'परिवर्तन' कविता का मूल प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।
3. "पन्त की काव्ययात्रा प्रगतिशील है।" स्पष्ट कीजिए।
4. पन्त की सौन्दर्य चेतना पर प्रकाश डालिए।

2.3.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. डॉ॰ किश्वर सुल्ताना, पन्त काव्य में कला-शिल्प और सौन्दर्य, इलाहाबाद, राजीव प्रकाशन।
2. रामगोपाल शर्मा, प्रताप चन्द जैसवाल (सं.), कवि सुमित्रानन्दन पन्त, आगरा, सरस्वती पुस्तक सदन ।
3. अशोक वाजपेयी (प्रधान सम्पादक), अपूर्वानन्द (सम्पादक), (2001), पन्त सहचर, नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन, ISBN : 81-7055- 834-4.
4. हेमन्त कुकरेती, (2017), नवजागरणकालीन कवियों की पहचान, नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन, ISBN : 978-93-87155-00-8.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 2 : छायावादी काव्य

इकाई – 4 : महादेवी का गीति सौष्ठव, विरहानुभूति, 'दीपक' का प्रतीकार्थ

इकाई की रूपरेखा

2.4.0. उद्देश्य कथन
2.4.1. प्रस्तावना
2.4.2. महादेवी का जीवन-परिचय और साहित्य-परिचय
  2.4.2.1. जीवन परिचय
  2.4.2.2. साहित्य परिचय
2.4.3. महादेवी वर्मा का गीति-सौष्ठव
  2.4.3.1. आत्माभिव्यंजकता
  2.4.3.2. रागात्मकता
  2.4.3.3. काल्पनिकता
  2.4.3.4. संगीतात्मकता
  2.4.3.5. भावगत एकरूपता
  2.4.3.6. संक्षिप्तता
  2.4.3.7. कोमलकान्त पदविन्यास
2.4.4. महादेवी की विरहानुभूति
  2.4.4.1. प्रेम वेदना की गहनता
  2.4.4.2. करुणा की प्रधानता
  2.4.4.3. भावोद्रेक की नैसर्गिकता
  2.4.4.4. नारीसुलभ सात्त्विकता
  2.4.4.5. विरह की आध्यात्मिकता
  2.4.4.6. चिर-विरह की आकांक्षा
2.4.5. दीपक का प्रतीकार्थ
2.4.6. पाठ-सार
2.4.7. बोध प्रश्न
2.4.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

2.4.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई में आप हिन्दी की प्रतिभावान् कवयित्री महादेवी वर्मा के सन्दर्भ में विस्तृत अध्ययन करेंगे। इस पाठ को पढ़ने के बाद आप –

i. महादेवी वर्मा के जीवन का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
ii. महादेवी की रचनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

iii. महादेवी के गीति-सौष्ठव को भली-भाँति समझ सकेंगे।
iv. महादेवी के काव्य में वर्णित विरहानुभूति को जान सकेंगे।
v. दीपक के प्रतीकार्थ को हृदयंगम कर सकेंगे।

2.4.1. प्रस्तावना

हिन्दी साहित्य का सर्वाधिक चर्चित और लोकप्रिय काल छायावाद है। इस काल के महाकवियों में प्रसाद, निराला और पन्त के बाद महादेवी वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। डॉ॰ नगेन्द्र के शब्दों में "महादेवी के काव्य में हमें छायावाद का शुद्ध अभिमिश्रित रूप मिलता है। छायावाद की अन्तर्मुखी अनुभूति, अशरीरी प्रेम, मानव की प्रकृति का चेतन संस्पर्श, रहस्य-चिन्तन, तितली के पंखों और फूलों की पंखुड़ियों से चुराई हुई कला और इन सबसे ऊपर स्वप्न-सा फैला हुआ वायवीय वातावरण ये सभी तत्त्व जिसमें घुले-मिले मिलते हैं, वह है – महादेवी की कविता।"

महादेवी की काव्य-साधना प्रशान्त, गम्भीर और एकाकी रहस्यसाधना की भाँति प्रतीत होती है। महादेवी ने मीरा की भाँति ही अपने आराध्य को प्रियतम के रूप में चित्रित किया है। उनके काव्य में विद्यमान अलौकिक प्रेम-भाव, वेदना की गहनता और रहस्य की प्रचुरता के कारण उन्हें 'आधुनिक मीरा' कहा जाता है। हिन्दी साहित्य संसार में महादेवी वर्मा को सर्वतोन्मुखी व्यक्तित्व सम्पन्न छायावादी-रहस्यवादी कवयित्री के रूप में जाना जाता है। उन्होंने शिक्षाविद्, समाज-सेविका, सम्पादक, चित्रकार, स्त्रियों के अधिकारों के लिए लड़ने वाली कर्मठ नेत्री की भूमिका का भी सफलतापूर्वक निर्वाह किया तथा महिलाओं को शिक्षित बनाने के लिए कई सार्थक कदम उठाए। उन्होंने अपनी कविताओं, संस्मरणों, रेखाचित्रों और उत्कृष्ट निबन्धों के माध्यम से हिन्दी साहित्य भण्डार की श्रीवृद्धि की। प्रस्तुत पाठ में आप सजल गीतों की गायिका महादेवी वर्मा के गीति-सौष्ठव, विरहानुभूति और दीपक के प्रतीकार्थ का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.4.2. महादेवी का जीवन-परिचय और साहित्य-परिचय

महादेवी वर्मा को छायावाद के चौथे स्तम्भ के रूप में स्वीकार किया जाता है। वे छायावाद के क्षेत्र में प्रसाद, पन्त और निराला के पश्चात् प्रविष्ट हुई। किन्तु उन्होंने उसका सबसे अधिक साथ दिया। सुमित्रानन्दन पन्त और निराला की कविता में समयानुरूप नवीन परिवर्तन हुए, किन्तु महादेवी वर्मा छायावाद और रहस्यवाद के पथ पर निरन्तर अग्रसर रहीं। वे कवयित्री होने के साथ ही उच्च कोटि की गद्य-लेखिका भी थीं। अपने साहित्य के माध्यम से उन्होंने रूढ़ियों और विगलित संस्कारों से समाज को मुक्त कराने का भागीरथ प्रयास किया था।

2.4.2.1. जीवन परिचय

महादेवी अपने माता-पिता की पहली संतान थीं, जिनका जन्म लम्बी प्रतीक्षा और मनौती के बाद होली के दिन 26 मार्च 1907 में उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद में हुआ। कुलदेवी का विशेष वरदान समझकर उनका नाम

महादेवी रखा गया। उनके पिता बाबू गोविन्दप्रसाद वर्मा भागलपुर के कॉलेज में प्राध्यापक थे तथा उनकी माता हेमरानी देवी धर्मपरायण विदुषी महिला थीं। उनका महादेवी पर गहरा प्रभाव पड़ा, स्वयं महादेवी के शब्दों में "एक व्यापक विकृति के समय, निर्जीव संस्कारों के बोध से जड़ीभूत वर्ग में मुझे जन्म मिला है। परन्तु एक ओर साधनाभूत, आस्तिक और भावुक माता तथा दूसरी ओर सभी प्रकार की साम्प्रदायिकता से दूर, कर्मनिष्ठ एवं दार्शनिक पिता ने अपने-अपने संस्कार देकर मेरे जीवन को जैसा रूप दिया, उससे भावुकता बुद्धि के कठोर धरातल पर, साधना एक व्यापक दार्शनिकता पर और आस्तिकता एक सक्रिय पर किसी वर्ग या सम्प्रदाय में न बँधने वाली चेतना पर स्थित हो सकती थी। जीवन की ऐसी पार्श्वभूमि पर माँ से पूजा-आरती के समय सुने-गाये मीरा-तुलसी आदि के तथा स्वरचित पदों के संगीत पर मुग्ध होकर मैंने ब्रजभाषा में पद रचना आरम्भ की थी।"

महादेवी वर्मा के दो भाई जगमोहन वर्मा, मनमोहन वर्मा और एक बहन श्यामा देवी सक्सेना थीं। सुभद्रा कुमारी चौहान उनकी घनिष्ठ मित्र थीं। वहीं निराला और पन्त इनके मानस-बन्धु थे, जो जीवन-पर्यन्त उनसे राखी बँधवाते रहे। महादेवी वर्मा के शिक्षा जीवन में क्रमबद्धता नहीं है। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा 1912 में इन्दौर के मिशन स्कूल से प्रारम्भ हुई। बचपन में विवाह के कारण पढ़ाई का क्रम टूट गया किन्तु बाद में उन्होंने पुनः शिक्षा आरम्भ की और 1921 में आठवीं कक्षा में प्रान्त में प्रथम स्थान प्राप्त किया। महादेवी ने प्रयाग विश्वविद्यालय से बी.ए. तथा संस्कृत में एम.ए. किया। इसके बाद अध्यापन से कार्य-जीवन की शुरुआत की और अन्तिम समय तक वे प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या रहीं।

महादेवी का विवाह मात्र 9 वर्ष की अवस्था में स्वरूप नारायण वर्मा से कर दिया गया किन्तु वे पति-पत्नी के सम्बन्ध को स्वीकार नहीं कर सकीं। उन्होंने एक संन्यासिनी का जीवन व्यतीत किया और जीवन-पर्यन्त श्वेत वस्त्र पहने। 1929 में उन्होंने बौद्ध धर्म की दीक्षा ली और बौद्ध भिक्षुणी बनने का मन बना लिया। किन्तु बाद में महात्मा गाँधी के सम्पर्क में आने पर वे समाज-सेवा के पथ पर अग्रसर हुईं। वे एक राष्ट्र-सेविका भी थीं, 1942 के आन्दोलन में ब्रिटिश साम्राज्य के अत्याचारों से पीड़ित लोगों को उन्होंने सहयोग प्रदान किया। उन्होंने 'साहित्यकार संसद' नामक संस्था की स्थापना की, जिसका ध्येय हिन्दी लेखकों की सहायता करना था। वे मासिक पत्रिका 'चाँद' की सम्पादिका भी रहीं। इस प्रकार कविता, गद्य, चित्र, नारी-चेतना, राष्ट्रीय-आन्दोलन आदि विभिन्न क्षेत्रों में महीयसी महादेवी ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। हिन्दी-साहित्य के लगभग सभी प्रकार के महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से उन्हें सम्मानित किया गया। 11 सितम्बर 1986 को उनका देहावसान हो गया।

2.4.2.2. साहित्य परिचय

महादेवी वर्मा हिन्दी साहित्य में प्रभावी और सफल साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठित हैं। वे एक सफल कवयित्री होने के साथ ही एक सिद्धहस्त गद्यकारा भी थीं। उनका रचना-संसार अत्यन्त व्यापक है, अपनी जीवन यात्रा को साहित्य-सृजन की राह से पूर्ण करने वाले महादेवी की प्रमुख रचनाएँ इस प्रकार हैं –

काव्य-कृतियाँ	:	नीहार (1930), रश्मि (1932), नीरजा (1934), सांध्यगीत (1936), दीपशिखा (1942), सप्तपर्णा (अनूदित 1959), प्रथम आयाम (1974), अग्निरेखा (1990)।
काव्य-संग्रह	:	यामा (प्रथम चार काव्य-कृतियों का संकलन), आत्मिका, निरन्तरा, परिक्रमा, सन्धिनी, गीतपर्व, दीपगीत, स्मारिका, हिमालय, आधुनिक कवि महादेवी।
रेखाचित्र	:	अतीत के चलचित्र (1941), स्मृति की रेखाएँ (1943)।
संस्मरण	:	पथ के साथी (1941), मेरा परिवार (1972), स्मृति चित्र (1973), संस्मरण (1983)।
निबन्ध-संग्रह	:	शृंखला की कड़ियाँ (1942), विवेचनात्मक गद्य (1942), साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध (1962), संकल्पिता (1969)।
ललित निबन्ध संग्रह	:	क्षणदा (1956)।

2.4.3. महादेवी वर्मा का गीति-सौष्ठव

भारतीय और पाश्चात्य साहित्य में गीति-काव्य को स्वानुभूतिपरक काव्य के रूप में विश्लेषित किया जाता है। भारत में गीति-काव्य की परम्परा उतनी ही प्राचीन मानी गई है जितना कि वेद, क्योंकि वेदों में भी भावमय संगीत सहज ही दृष्टिगोचर होता है। विभिन्न विद्वानों ने गीतिकाव्य को इस प्रकार परिभाषित किया है –

"गीतिकाव्य में विशुद्ध कलात्मक धरातल पर कवि के अन्तर्मुखी जीवन का उद्घाटन प्रमुख रूप से होता है और उसमें उसके हर्ष-उल्लास, सुख-दुःख एवं विषाद को वाणी प्रदान की जाती है।"

– विश्वकोश

"गीतिकाव्य के छोटे-छोटे गेय पदों में मधुर भावनापन्न स्वाभाविक आत्मनिवेदन रहता है। इन पदों में शब्द की साधना के साथ-साथ संगीत के स्वरों की भी उत्कृष्ट साधना रहती है। इनकी भावना प्रायः कोमल होती है और एक-एक पद में पूर्ण हो कर समाप्त हो जाती है।"

– डॉ॰ श्यामसुन्दरदास

"जिस काव्य में एक तथ्य या एक भाव के साथ-साथ एक ही निवेदन, एक ही रस, एक ही परिपाटी हो – वह गीतिकाव्य है।"

– डॉ॰ दशरथ ओझा

"गीतिकाव्य में निजीपन के साथ रागात्मकता रहती है और यह रागात्मकता भाव की एकता और संक्षिप्तता के साथ संगीत की मधुर लय में व्यक्त होती है इसीलिए संगीत यदि गीतिकाव्य का शरीर है तो भावातिरेक उसकी आत्मा है।"

– आचार्य गुलाब राय

वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान,
उमड़ कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान ।

– कविवर पन्त

"सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था विशेष का गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है । साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में तीव्र और सुख-दुःखात्मक अनुभूति का शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।"

– महादेवी वर्मा

समग्रतः कहा जा सकता है कि गीतिकाव्य वह विशिष्ट काव्यधारा है जिसके अन्तर्गत संगीतात्मकता, सरस और रोचक पदावली, रागात्मकता, संक्षिप्तता, भावों की एकता, मधुरता और भावातिरेकता की प्रधानता होती है।

प्रस्तुत विवेचन के आधार पर गीतिकाव्य के निम्नलिखित तत्त्व निरूपित किए जा सकते हैं – (i) आत्माभिव्यंजकता, (ii) रागात्मकता, (iii) काल्पनिकता, (iv) संगीतात्मकता, (v) भावगत एकरूपता, (vi) आकारगत लघुता, (vii) शैलीगत सुकुमारता। महादेवी की कविता में गीतिकाव्य की उपर्युक्त समस्त विशेषताएँ उपलब्ध होती हैं, जिनका विवरण इस प्रकार है –

2.4.3.1. आत्माभिव्यंजकता

आत्माभिव्यंजकता से तात्पर्य है – व्यक्तिगत सुख-दु:खात्मक अनुभूति की अभिव्यंजना। महादेवी के गीतों में उनकी आन्तरिक भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं । उन्होंने स्वयं 'यामा' में लिखा है – "मेरे गीत मेरे आत्मनिवेदन भाव हैं – इन्हें मैं व्यंकिंचन भेंट के अतिरिक्त कुछ नहीं मानती।" उन्होंने अनेक गीतों में अपने जीवन की करुण कथा कही है, हृदय की वेदना का सरल सम्प्रेषण प्रस्तुत पंक्तियों मेंद्रष्टव्य है –

अब न लौटाने कहो, अभिशाप की वह पीर,
बन चुकी स्पन्दन हृदय में, वह नयन में नीर।

महादेवी ने अपने हृदय की संचित अनुभूतियों को गीतों के रूप में अभिव्यक्त किया है । उनके गीतों मे व्यक्तिगत सुख-दुःख के साथ-साथ विश्व की करुण दशा का भी चित्रण हुआ है –

विरह का जलजात जीवन, विरह का जलजात।
वेदना में मिला जन्म, करुणा में मिला आवास।
अश्रु चुनता दिवस इनका, अश्रु गिनती रात।
जीवन विरह का जलजात।

2.4.3.2. रागात्मकता

रागात्मकता गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताओं में से एक है। रागात्मकता का तात्पर्य है – भाव और रस का समावेश। इसी के प्रभावस्वरूप गीत में प्रेषणीयता आती है और वह श्रोता या पाठक के हृदय को सहज ही प्रभावित कर पाता है। महादेवी के गीतों में विद्यमान रागात्मकता के कारण श्रोता भाव-सरिता में गोते लगाने लगता है। उनके आरम्भिक गीतों में यह तत्त्व अपेक्षाकृत अधिक मिलता है। काव्य-संग्रह 'नीहार' में संकलित 'मिलन' का उदाहरण द्रष्टव्य है –

कैसे कहती हो सपना है,
अलि ! उस मूक मिलन की बात।
भरे हुए अब तक फूलों में,
मेरे आँसू उनके हास।

2.4.3.3. काल्पनिकता

काल्पनिकता का तात्पर्य है – कल्पना द्वारा रमणीय अर्थ की सृष्टि करना। महादेवीजी के गीतों में कल्पना चित्रों की भरमार है। यद्यपि उन्होंने अपने गीतों में अनुभूतिपरक मार्मिक चित्र अंकित किए हैं तथापि कल्पना की तूलिका से उनमें विविध रंगों का समावेश कर दिया गया है। परिणामस्वरूप यह अनुभूतिपरक मार्मिक चित्र अपनी सजीवता, सरसता और सुकुमारता के कारण काल्पनिक होकर भी वास्तविक जान पड़ते हैं। उदाहरण के लिए आत्मा-परमात्मा की एकता का यह चित्र द्रष्टव्य है –

बीन हूँ मैं तुम्हारी रागिनी भी हूँ।
नयन में जिसके जलद वह तृषित चातक हूँ,
शलभ जिसके प्राण में वह निठुर दीपक हूँ,
फूल को उर में छिपाए विकल बुलबुल हूँ,
एक होकर दूर तन से छाँव वह चल हूँ,
दूर तुम से हूँ अखण्ड सुहागिनी भी हूँ।

2.4.3.4. संगीतात्मकता

संगीत गीति-काव्य का मूल आधार है। कवि अपने गीतों को गेय बनाने के लिए प्रायः दो साधनों का आश्रय लेता है – स्वर का संगीत तथा शब्द-योजना का संगीत। महादेवी ने अपने गीतों को गेय बनाने के लिए इन दोनों तत्त्वों का आश्रय लिया है। उनका वर्ण-विन्यास बड़ा ही लयात्मक और भावानुरूप है। उनका गीति-काव्य संगीत का अक्षय भण्डार है, जिसमें संगीत की सुमधुर सरिता प्रवाहित होती रहती है। स्वयं महादेवी के शब्दों में – "मेरे गीत अध्यात्म के अमूर्त आकाश के नीचे लोक-गीतों की धरती पर पले हैं।" स्पष्ट है कि उनके गीतों का

आधार आध्यात्मिक है और उनके गीतों पर लोकगीतों का प्रभाव है। लोकगीतों की सरल, सहज लय के कारण उनका गीतिकाव्य और भी अधिक मधुर और प्रभावशाली बन गया है।

लाए कौन सन्देश नये घन।
अम्बर गर्वित, हो आया नत,
चिर निस्पन्द हृदय में उसके,
उमड़े री पुलकों के सावन।
लाए कौन सन्देश नये घन।

2.4.3.5. भावगत एकरूपता

गीतिकाव्य में भाव की तीव्रता को बनाए रखने के लिए भाव की एकता अनिवार्य होती है। साहित्य की विविध विधाओं में विविध भावों का संयोजन होता है किन्तु गीतिकाव्य में एक ही भाव निरन्तर चलता है और वह भाव उस गीत की सीमा में अखण्ड रूप से विद्यमान रहता है। उदाहरण द्रष्टव्य है –

मैं नीर भरी दु:ख की बदली
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली।

2.4.3.6. संक्षिप्तता

महाकाव्य और खण्डकाव्य दीर्घाकार होते हैं जबकि गीतिकाव्य में लघु आकार के अन्तर्गत मार्मिक भावों की अभिव्यंजना की जाती है। महादेवी वर्मा ने अपने गीतों में कम शब्दों में अधिक कहने की कहावत को सिद्ध किया है। प्रकृति के उपमानों को ग्रहण करते हुए वे अपने भावों को अत्यन्त संक्षिप्त शैली में प्रस्तुत करते हुए कहती हैं –

सब आँखों के आँसू उजले, सबके सपनों में सत्य पला,
जिसने उसको ज्वाला सौंपी, उसने इसमें मकरन्द भरा,
आलोक लुटाता वह घुल घुल, देता झर यह सौरभ बिखरा,
दोनों संगी पथ एक किन्तु, कब दीप खिला कब फूल जला।

2.4.3.7. कोमलकान्त पदविन्यास

महादेवी के गीतों में शैलीगत सुकुमारता, कोमलकान्त पदविन्यास, वर्ण मैत्री, स्वर मैत्री, व्यंजन मैत्री के साथ-साथ नाद-सौन्दर्य भी विद्यमान है। वह कोमल भावों को अभिव्यक्त करने में पूर्ण कुशल हैं। कोमलकान्त पदविन्यास का उदाहरण द्रष्टव्य है –

वे मुस्काते फूल नहीं जिनको आता है मुरझाना,
वे तारों के दीप नहीं जिनको भाता है बुझ जाना,
वे सूने से नयन नहीं जिनमें बनते आँसू मोती,
वह प्राणों की सेज नहीं जिसमें बेसुध पीड़ा सोती।

महादेवी के गीत गीतिकाव्य की सम्पूर्ण विशेषताओं से युक्त हैं। डॉ० द्वारिकाप्रसाद सक्सेना के अनुसार – "महादेवी के गीतिकाव्य में सहज स्वाभाविकता है, सहज संगीतात्मकता है, उसमें शिल्प-सौष्ठव है, वह कोमलकान्त पदावली युक्त है, उसमें मनोभावाभिव्यंजना भाव-प्रेषक है । वे आधुनिक युग की सर्वोच्च गीत लेखिका है, उनका गीतिकाव्य हिन्दी काव्य का अमर शृंगार है।"

विविध विशेषताओं और गुणवत्ता के परिणामस्वरूप महादेवी और उनका गीतिकाव्य हिन्दी गीतिकाव्य और काव्यकारों की परम्परा में सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में – "गीत लिखने में जैसी सफलता महादेवीजी को हुई, वैसी और किसी को नहीं। न तो भाषा का ऐसा स्निग्ध और प्रांजल प्रवाह और कहीं मिलता है, न हृदय की ऐसी भावभंगिमा । जगह-जगह ऐसी ढली हुई और अनूठी व्यंजना से भरी हुई पदावली मिलती है कि हृदय खिल उठता है।"

2.4.4. महादेवी की विरहानुभूति

विरह प्रेम का उदात्त स्वरूप है, इसे प्रेम की कसौटी भी कहा जाता है। महादेवी वर्मा के काव्य में अज्ञात प्रियतम के प्रति विरह-वेदना की अभिव्यक्ति हुई है, उनके सम्पूर्ण काव्य में आद्योपान्त करुणा और वेदना की धारा प्रवाहित हुई है। जिसके कारण उन्हें आधुनिक मीरा कहा जाता है। उनके काव्य में वियोगावस्था की अनेकानेक मनोदशाओं के चित्र उपलब्ध होते हैं। स्वयं महादेवी ने 'यामा' की भूमिका में लिखा है – "दुःख मेरे निकट जीवन का ऐसा काव्य है जो सारे संसार को एक सूत्र में बाँधकर रखने की क्षमता रखता है। हमारे असंख्य सुख हमें चाहे मनुष्यता की पहली सीढ़ी तक भी न पहुँचा सके, किन्तु हमारा एक बूँद आँसू भी जीवन को अधिक मधुर, उर्वक बनाए बिना नहीं गिर सकता। ... व्यक्तिगत सुख विश्व वेदना में घुलकर जीवन को सार्थकता प्रदान करता है, तो व्यक्तिगत दुःख विश्व के सुख में घुलकर जीवन को अमरत्व।" स्पष्ट है कि दुःख जीवन को प्रेरणा और स्फूर्ति देता है। उसमें निर्माण की शक्ति विद्यमान है और वह जीवन को अमरत्व देने के साथ ही सुख का दूत भी है। महादेवी की विरहानुभूति को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है –

2.4.4.1. प्रेम वेदना की गहनता

महादेवी को वेदना की कवयित्री कहा जाता है। उनके काव्य में वेदना, पीड़ा, विरह आदि का विशेष महत्त्व है। प्रिय के वियोग में पीड़ा की अतिशयता ने महादेवी को वेदनाप्रिय बना दिया। उन्हें विरह भी उतना ही प्यारा है, जितना प्रियतम। उनके काव्य में प्रेम-वेदना की गहनता सर्वत्र विद्यमान है। वेदना ही वह माध्यम है जिसने उन्हें सर्वशक्तिमान् ईश्वर के दर्शन करवाये –

मेरे बिखरे प्राणों में सारी करुणा ढुलका दो,
मेरी छोटी सीमा में अपना अस्तित्व मिटा दो।
पर शेष नहीं होगी यह मेरे प्राणों की क्रीड़ा,
तुमको पीड़ा में ढूँढ़ा तुममें ढूँढूगी पीड़ा।

2.4.4.2. करुणा की प्रधानता

विरह की गहन अनुभूति के प्रभावस्वरूप महादेवी के हृदय में करुणा का सागर उमड़ पड़ा। उनके करुणा भाव में निराशा या अवसाद नहीं है वरन् जीवन का संकल्प और दूसरों के दुःख से द्रवीभूत होने की क्षमता है । वे पुष्प की भाँति सुगन्ध देकर, बादलों की भाँति वर्षा कर, दीपक की भाँति जलकर संसार को प्रकाश युक्त करने की भावना से ओतप्रोत होकर दूसरों के दुःख में सम्मिलित होने में जीवन की सार्थकता स्वीकारने लगीं। तभी तो वे कहती हैं –

जिन प्राणों से लिपटी हो, पीड़ा सुरभित चन्दन-सी,
*** * ***
जिसको जीवन की हारें, हों जय के अभिनन्दन सी,
वर दो यह मेरा आँसू, उसके उर की माला हो !

2.4.4.3. भावोद्रेक की नैसर्गिकता

महादेवीजी की वेदना में कहीं कृत्रिमता नहीं, किसी तरह का बाहरी आडम्बर नहीं। उनकी विरहानुभूति सहज, सरल गति से प्रवाहित हुई है। जिसमें भावोद्रेक सहज द्रष्टव्य है। कुछ विद्वानों ने उनकी वेदना पर काल्पनिक होने का आरोप लगाया है, किन्तु महादेवी वर्मा ने इस आक्षेप का निराकरण करते हुए जो उत्तर दिया है, उससे स्पष्ट है कि उनकी पीड़ा सच्ची और सहज नैसर्गिक है –

जो न प्रिय पहचान पाती।
दौड़ती क्यों प्रति शिरा में प्यास विद्युत-सी तरल बन,
क्यों अचेतन रोम पाते चिर व्यथामय सजग जीवन ?
किस लिए हर साँस तम में सजल दीपक-राग गाती।

2.4.4.4. नारीसुलभ सात्त्विकता

महादेवी के काव्य में नारीहृदय की कोमल भावनाओं के साथ सात्त्विक गुणों का भी पूर्ण परिपाक हुआ है। उनके गीतों में प्रेम की जिस वेदना का चित्रण हुआ है, उसमें हृदय की कलुषता, द्वेष, घृणा, कटुता, प्रतिकार की भावना को मिटाकर उसे पवित्र-पावन बनाने की क्षमता विद्यमान है। उनकी वेदना में विश्वव्यापी करुणा का अगाध सागर लहराता है। उनकी करुण पुकार में नारी हृदय की वेदना का स्पष्ट चित्र द्रष्टव्य है –

जो तुम आ जाते एक बार!
कितनी करुणा कितने सन्देश पथ में बिछ जाते बन पराग,
गाता प्राणों का तार-तार अनुराग भरा उन्माद राग,
आँसू लेते वे पद पखार!

2.4.4.5. विरह की आध्यात्मिकता

महादेवी की वेदना निराशा और अकर्मण्यता की पर्याय न होकर संकल्प की दृढ़ता और पावनता की प्रतीक है। परोक्ष प्रिय के प्रति अलौकिक और आध्यात्मिक वेदना के कारण महादेवी ने अपने अन्तःकरण का परिष्कार किया है। वे सुख की अपेक्षा दुःख में, मिलन की अपेक्षा विरह में आनन्द की अनुभूति करने लगती हैं। वे मुक्ति और मिलन की अपेक्षा विरहिणी ही रहना चाहती हैं क्योंकि विरह ही उनका पाथेय बन जाता है –

विरह की घड़ियाँ हुईं अलि मधुर मधु की यामिनी-सी!
सजनी अन्तर्हित हुआ है 'आज में धुँधला विफल कल'
हो गया मिलन एकाकार मेरे विरह में मिल;
राह मेरी देखती स्मृति अब निराश पुजारिनी-सी!

2.4.4.6. चिर-विरह की आकांक्षा

महादेवी वर्मा अत्यधिक पीड़ा और वेदना के उपरान्त भी प्रिय के साथ मिलन की अपेक्षा न करके चिर विरह की आकांक्षा करती हैं। वे वियोग में ही संयोग की अनुभूति करती हैं। उनकी विरह भावना में नदी की तीव्र धारा के समान अजस्र स्रोत है, जिसकी गति अखण्डित है। उनके हृदय में मिलन की चाह नहीं वरन् चिर विरह की साधना का भाव है। उनके व्याकुल प्राणों का संगी अँधेरा ही है –

शून्य मेरा जन्म था अवसान है मुझको सवेरा।
प्राण आकुल के लिए संगी मिला केवल अँधेरा।
मिलन का मत नाम ले मैं विरह में चिर हूँ।

महादेवी के काव्य का मूल भाव वेदना है, लेकिन उसमें आनन्द भी समाहित है। वे सुख और दुःख दोनों के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए भी दुःख को अधिक महत्त्वपूर्ण मानती हैं। दुःख और वेदना की अनुभूति ने ही महादेवी के गीतों को रसपूर्ण ने बनाया है। गंगाप्रसाद पाण्डेय के शब्दों में "महादेवीजी की वेदना मानवीय चेतना के उच्चतम शिखर से फूटकर बहने वाली आध्यात्मिक गंगा है, जो अलौकिक भावनाओं की शत-शत लहरियों से विश्व के संतप्त प्राणों को परिप्लावित करती हुई चिर शान्त सागर की ओर बराबर प्रवाहित है।"

2.4.5. दीपक का प्रतीकार्थ

'प्रतीक' शब्द का सामान्य अर्थ है, 'चिह्न' या 'संकेत'। साहित्य जगत् में प्रतीक वह साधन है जिसके माध्यम से कवि अपने काव्य में सूक्ष्मता, अर्थव्यंजना और सौन्दर्य की सृष्टि करता है। प्रतीक को स्पष्ट करती कुछ परिभाषाएँ इस प्रकार हैं –

"काव्य में वह गोचर या अगोचर वस्तु जो किसी अन्य वस्तु या भाव का बोध कराए और जिसमें भाव जगाने की शक्ति हो, प्रतीक कहलाती है।"

– डॉ० सुरेश त्यागी

"अप्रस्तुत, अप्रमेय, अगोचर अथवा अमूर्त का प्रतिनिधित्व करने वाले उस प्रस्तुत या गोचर वस्तु-विधान को प्रतीक कहते हैं जो देश, काल अथवा सांस्कृतिक मान्यताओं के कारण हमारे मन में अपने चरित्र साहचर्य के कारण किसी तीव्र आलोचना को जाग्रत् करता है।"

– डॉ०नित्यानन्द शर्मा

"प्रतीक वह संकेतात्मक चिह्न है जो किसी गूढ़ एवं सूक्ष्म भाव या विचार का अर्थ प्रतिपादित करने के लिए स्वेच्छापूर्वक या परम्परागत रूप में प्रयुक्त होता है।"

– कृष्ण कुमार गोस्वामी

महादेवी के काव्य में सांकेतिकता प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है वे अपने भावों की अभिव्यक्ति प्रतीकों के माध्यम से ही करती हैं। महादेवी के प्रतीक विधान के मूल में आध्यात्मिकता, स्त्रियोचित-शालीनता, संवेदनशीलता, कला-प्रियता तथा छायावादी आन्दोलन आदि कारणों को माना जा सकता है। उनका काव्य आरम्भ से अन्त तक प्रतीकवादी कहा जा सकता है। उनकी रचनाओं के शीर्षक भी प्रतीकात्मक हैं, जैसे – 'नीहार' निराशापूर्ण वेदना का, 'रश्मि' अज्ञात से मिलन की आशा का, 'सान्ध्यगीत' सुख-दुःखमय शान्त वेदना का, 'नीरजा' अनुभूति के प्रस्फुटन का और 'दीपशिखा' निष्काम साधना का प्रतीक है।

डॉ० विमल ने महादेवी वर्मा के प्रतीकों के चार भेद स्वीकार किए हैं –

i. वेद और उपनिषद् के प्राचीन प्रतीक – सूर्य, दिवा, शतदल, निशि, उषा, संध्या, अमा, सम्पुट, शंख, मुरली आदि।
ii. सन्त साहित्य के प्रतीक – अभिसार, पिंजरा, पंछी, सेज, नदी, नाव आदि।
iii. छायावाद के अतिपरिचित प्रतीक – कली, भ्रमर, पवन, वीणा, झंकार, मेघ, वर्षा, क्षितिज, यामिनी आदि।
iv. अप्रस्तुतों के आवर्तक प्रयोग से बनाए गए (स्वनिर्मित) प्रतीक – वेदना जल, दीप, तारा, इन्द्रधनुष, सांध्य गगन नीहार, धूम लेखा आदि।

महादेवी की कविता में वेदना और रहस्य की प्रधानता है, उन्होंने अपनी अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है। प्रतीकात्मक भाषा का प्रयोग कर महादेवी ने एक ओर सूक्ष्म भावों और व्यापारों को अभिव्यक्ति दी है, वहीं दूसरी ओर कला का अपूर्व चमत्कार भी समाविष्ट कर दिया है । उन्होंने अपनी कविताओं में विभिन्न प्रकार के प्रतीकों का सफल प्रयोग किया है, इन प्रतीकों के मध्य दीपक का प्रतीक महादेवी को विशेष प्रिय है।

महादेवी ने अपनी काव्य-यात्रा के प्रथम चरण में ही दीपक के प्रति अपने प्रेम का सूत्रपात कर दिया था। 'प्रथम आयाम' में उनकी दीपक सम्बन्धी पाँच कविताएँ संगृहीत हैं, जो उनकी दीपक के प्रति आत्मीयता सिद्ध करती हैं –

जीवन की अग्नि कथा, धरती की मौन व्यथा,
सूरज जब किरणों की लिपि में लिखा जाता है।
पवन शिशु खेल ही में, पृष्ठों को चीर-चीर,
व्योम में उड़ाता कभी, धूल में मिलाता है।
दीपक इन खण्डों का लौ से नित चुन-चुनकर,
उज्ज्वल आलोक-ग्रन्थ इनका बनाता है।

डॉ० सुरेश गौतम के अनुसार – "दीपक सबसे महत्त्वपूर्ण और महादेवी का प्रिय प्रतीक है,जो इष्टदेव के चरणों में मूक, एकाकी, शनैः शनैः जलकर अपनी आत्मा का विस्तार कर अपने रंग में सबको रंगने की क्षमता पैदा करता है। दीप-लौ का यही भाव जब करुणा, सहानुभूति के तन्तुओं से कड़ी समान जुड़ जाता है, तब महादेवी हो जाता है। प्रिय ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए कवयित्री कठोर तपस्या में विश्वास रखती हैं, दीपक उसी एकान्त साधना का प्रतीक बन कर आया है।"

यह मन्दिर का दीप इसे नीरव जलने दो,

* * *

अब मन्दिर में इष्ट अकेला,
इसे अजिर का शून्य गलाने को गलने दो।

दीपक के प्रतीक के माध्यम से महादेवी ने प्रेम, वेदना, संघर्ष, आत्माभिव्यक्ति के मूल्यों का चित्रण किया है। उनकी 'दीपक' प्रतीकार्थ से युक्त कविताओं से यह स्पष्ट होता है कि उनकी कविताओं में केन्द्रीय चरित्र की नियति जलते रहना है और यह जलना आत्मबलिदान की भावना से युक्त हो दूसरों के मार्ग को आलोकित करना है। प्रणय-क्षेत्र में आत्मोत्सर्ग को प्रमुखता देती यह पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

मधुर-मधुर मेरे दीपक जल।
युग-युग प्रतिदिन प्रतिक्षण प्रतिपल,
प्रियतम का पथ आलोकित कर।

दीपक के प्रतीक को महादेवी ने अलौकिक प्रियतम के प्रति अपनी साधना और व्याकुलता को प्रकट करने का आधार बनाया है। उनकी रहस्यवादी और आध्यात्मिक भावनाओं को प्रकट करने के लिए भी दीपक अत्यधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। कई स्थानों पर तो महादेवी स्वयं ही दीपक बन गई हैं, जैसे –

धूप-सा तन दीप मैं।

* * *

मोम सा तन घुल चुका, अब दीप सा तन जल चुका है।

* * *

तम में बनकर दीप, सवेरा आँखों में भर बुझ जाऊँगी।

महादेवी की साधना रहस्यवाद से अनुप्राणित है अतः वे लौकिक संकेतों के माध्यम से अलौकिक सत्ता की ओर संकेत करती हैं। इसके लिए उन्होंने दीपक और उसके समस्त उपकरणों का प्रभावी प्रतीकों के रूप में प्रयोग किया है। देहरूपी दीपक में प्रेमरूपी तेल डालकर महादेवी साधना के पथ पर निरन्तर आगे बढ़ती हैं और अपने आराध्य के सम्मुख आकर परम आनन्द का अनुभव करती हैं–

लौ ने वर्ती को जाना है,
वर्ती ने यह स्नेह, स्नेह ने
रज का अंचल पहचाना है।

महादेवी की कविता में दीपक कभी मानवीय करुणा का संवाहक बना है तो कभी अध्यात्म और रहस्य का आलम्बन तथा कभी एकनिष्ठ उपासना का उदाहरण। डॉ॰ मेघाव्रत शर्मा के शब्दों में – "दीपक की प्रतीक योजना से महादेवी की रहस्यवादी चेतना की अभिव्यंजना शतगुण निखर आई है। इससे सशक्ततर अन्य कोई प्रतीक हो भी नहीं सकता था। महादेवी की रहस्यवादी काव्य-साधना में गहन आध्यात्मिक मर्म से समच्छ्वसित दीपक भावना का जैसा अपूर्व हृदयावर्जक अंकन है, वह निस्संदेह आधुनिक हिन्दी साहित्य की एक सर्वश्रेष्ठ, स्पृहणीय उपलब्धि है।"

2.4.6. पाठ-सार

छायावादी महाकवियों में महादेवी का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं में अपनी लेखनी चलाते हुए हिन्दी साहित्य भण्डार को सुसमृद्ध किया। उनके काव्य में विद्यमान अलौकिक प्रेम भावना, वेदना की गहनता और रहस्य की प्रचुरता के कारण उन्हें 'आधुनिक मीरा' कहा जाता है। उनकी काव्य-प्रतिभा के कारण उन्हें हिन्दी साहित्य जगत् के प्रायः सभी महत्त्वपूर्ण पुरस्कारों से सम्मानित किया गया। वह एक सफल कवयित्री होने के साथ ही एक सिद्धहस्त गद्यकारा भी थीं। उनका रचना-संसार अत्यन्त व्यापक है।

भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य की परम्परा अत्यन्त प्राचीन स्वीकार की जाती है। महादेवी ने अनेक गीत लिखकर इस परम्परा को समृद्ध किया है। आत्माभिव्यंजकता, रागात्मकता, काल्पनिकता, संगीतात्मकता,

भावगत एकरूपता, संक्षिप्तता, कोमलकान्त पदविन्यास आदि उनके गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषताएँ हैं। उनके अधिकांश गीतों में अज्ञात प्रियतम के प्रति विरह की अभिव्यक्ति हुई है। उनके सम्पूर्ण काव्य में करुणा और वेदना की धारा प्रवाहित हुई है। महादेवी के काव्य में वेदना, पीड़ा, विरह के अनेकानेक चित्र उपलब्ध होते हैं। उनकी विरहानुभूति में प्रेम वेदना की गहनता, करुणा की प्रधानता, भावोद्रेक की नैसर्गिकता, नारीसुलभ सात्त्विकता, विरह की आध्यात्मिकता, चिर-विरह की आकांक्षा जैसे गुण विद्यमान हैं।

महादेवी के काव्य में अध्यात्म और रहस्य की प्रधानता है, अतः इनकी अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों का प्रयोग सहज स्वाभाविक है। उन्होंने प्रतीकों के माध्यम से सूक्ष्म भाव व्यापार को अभिव्यक्ति देने के साथ ही कला का अपूर्व चमत्कार भी समाविष्ट कर दिया है। यद्यपि उन्होंने अपने काव्य में विविध प्रतीकों का प्रयोग किया है किन्तु 'दीपक' का प्रतीक उन्हें विशेष प्रिय है। दीपक उनकी कविताओं में मानव-आत्मा, प्रेम, जीवन, प्राण, तारे, आनन्द, तादात्म्य, आशा, निर्वाणोन्मुख भाव, वेदना तथा अज्ञात प्रिय के प्रतीक के रूप में प्रयुक्त हुआ है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि महादेवी एक सजग रचनाकार हैं, जिन्होंने साहित्य क्षेत्र के अलावा नारी चेतना, राष्ट्रीय आन्दोलन जैसे क्षेत्रों में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। महाप्राण निराला ने उन्हें 'हिन्दी के विशाल मन्दिर की सरस्वती' कहा है।

2.4.7. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. महादेवी के जीवन का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
2. महादेवी द्वारा रचित प्रमुख रचनाओं के नाम लिखिए।
3. गीतिकाव्य का अर्थ बताते हुए प्रमुख विशेषताएँ बताइए।
4. 'विरह को प्रेम की कसौटी' क्यों कहा जाता है ?
5. महादेवी को छायावाद का आधार स्तम्भ क्यों माना जाता है ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. महादेवी के जीवन और साहित्य का परिचय देते हुए उनमें से अपनी प्रिय रचना का विश्लेषण कीजिए।
2. महादेवी के गीति-सौष्ठव की विशेषताएँ बताइए।
3. महादेवी के साहित्य में अलौकिक प्रिय के प्रति विरह की अनुभूति पर प्रकाश डालिए।
4. प्रतीक का अर्थ बताते हुए महादेवी के प्रिय प्रतीक का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
5. पाठ्यक्रम में संकलित किसी एक कविता के आधार पर महादेवी की काव्यगत विशेषताएँ बताइए।

2.4.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. पाण्डेय, गंगाप्रसाद, महीयसी महादेवी, इलाहाबाद, लोकभारती प्रकाशन, ISBN : 978-81-8031-253-3.
2. डॉ॰ नगेन्द्र, डॉ॰ हरदयाल, (सं.) हिन्दी साहित्य का इतिहास, नयी दिल्ली, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, ISBN : 81-7198-036-8.
3. दीक्षित, रश्मि, महादेवी का काव्यकला और दर्शन : एक सम्यक् अनुशीलन, आगरा, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान।
4. शर्मा, डॉ॰ मनोरमा, महादेवी के काव्य में लालित्य विधान, कानपुर, साहित्य संस्थान।
5. गुर्टू, शचीरानी, (सं.) महादेवी वर्मा : काव्य कला और जीवन दर्शन, दिल्ली, आत्माराम एंड संस।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : छायावादोत्तर काव्य

इकाई – 1 : प्रगतिशीलता की अवधारणा, प्रगतिवाद का मूल भाव, प्रगतिवादी साहित्य का वैचारिक आधार

इकाई की रूपरेखा

3.1.1. प्रस्तावना
3.1.2. प्रगतिशीलता की अवधारणा
 3.1.2.1. प्रगतिवाद : अर्थ, अभिप्राय एवं विभिन्न पर्याय
 3.1.2.2. समसामयिकता : अर्थ और अभिप्राय
3.1.3. प्रगतिवाद का मूलभाव
 3.1.3.1. प्रगतिवाद बनाम प्रगतिशीलता
 3.1.3.2. राजनैतिक सन्दर्भ
3.1.4. प्रगतिवादी साहित्य का वैचारिक आधार
 3.1.4.1. प्रगतिवादी काव्य पर मार्क्सवादी चिन्तनधारा का प्रभाव
 3.1.4.2. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद
 3.1.4.3. फ्रायडवाद और मार्क्सवाद
 3.1.4.4. भारतीय पूँजीवाद का प्रादुर्भाव
 3.1.4.5. प्रगतिशील लेखक संघ
 3.1.4.6. प्रगतिवादी रचनाकार
 3.1.4.7. प्रगतिवादी काव्य में राजनैतिक सन्दर्भों की अभिव्यक्ति
3.1.5. पाठ-सार
3.1.6. बोध प्रश्न
3.1.7. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

3.1.1. प्रस्तावना

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास 19वीं शती में भारतेन्दु के आविर्भाव से शुरू होता है। विभिन्न कालखण्डों यथा – भारतेन्दु युग (1850 से 1900 ई.), द्विवेदी युग (1900 से 1918 ई.), छायावाद युग (1918 से 1936 ई.), छायावादोत्तर युग (1936 से अब तक) में साहित्य की धाराएँ प्रवाहित होती हुई दृष्टिगत होती हैं।

'प्रगतिवाद' समाज के वास्तविक रूप के नाम पर चलाया गया वह साहित्यिक अभियान है जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु सत्य को छायावादोत्तर काल में स्थान मिला और जिसने सबसे पहले यथार्थवाद की ओर समस्त साहित्यिक चेतना को अग्रसर होने की प्रेरणा दी। प्रगतिवाद का लक्ष्य था – साहित्य में उस सामाजिक यथार्थवाद को स्थापित करना जो छायावाद के ह्रासोन्मुखी काल की विरूपताओं को समाप्त करके एक नये साहित्य और एक नये मानव की स्थापना करे।

ऐतिहासिक दृष्टि से 1936 ई. में प्रेमचन्द के सभापतित्व में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई और धीरे-धीरे इसका संगठन समस्त देश और विभिन्न भाषाभाषी राज्यों में फैलाया गया। वास्तविक सन्दर्भ में देखने से प्रगतिवाद ने जो यथार्थोन्मुखी दृष्टि उत्तर छायावाद काल में विकसित की, उसका ऐतिहासिक महत्त्व अक्षुण्ण है।

'प्रगतिवाद' साहित्य की नवीन विचारधारा है। कला संघर्ष की जननी है और वह सामाजिक तत्त्व पाकर पल्लवित, पुष्पित और विकसित होती है। प्रगतिवाद की दृष्टि में प्राचीन कला-मान्यताओं को पूर्ण मानव का अवतरण करने में अक्षम रही है। जिस समाज की कला वह रही उसी की आशा-आकांक्षाओं का प्रतिबिम्ब बन सकी फलतः घोर वैयक्तिकता उत्पन्न हो गई। प्रगतिवाद कहता है कि पारस्पिरक विरुद्धताएँ या वर्ग-भेद मानवता को लील जाएँगी। प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि में आदर्श के निर्माण में सामाजिक तत्त्व अभिन्न रूप में विद्यमान रहते हैं। समसामयिक समाज अव्यवस्था, अन्याय, शोषण की घोर वैयक्तिकता से भी आक्रान्त है। सच्चा रचनाकार वही है जो शोषण-सत्ता का विरोध करता है और प्रगतिवादयुगीन आवश्यकताओं को अपनी रचनाओं में निरूपित करता है। अत्याधुनिक समाज पर अन्याय और दारिद्र्य का इतना बोझ है कि वह उनकी उपेक्षा कर अपना मार्ग प्रशस्त नहीं कर सकता। प्रगतिवादी विचारधारा के सशक्त कवि और आलोचक मुक्तिबोध की वाणी में कला सब समय के लिए और विश्वासात्मक होते हुए भी वह अपने समय और जन्म स्थान से विच्छिन्न नहीं हो सकती।[1]

'प्रगतिवाद' की गहरी साभिप्रायता को उजागर करते हुए पुनः वे कहते हैं – "प्रगतिवाद कला-मार्ग बनाना चाहता है। कला शरीर की नसों में नया रक्त और नव स्फूर्ति का संचार जनता के अथाह हृदय के सम्पर्क में आने से ही होगा। उससे अछूता रहने पर वह मर जाएगा। अतएव प्रत्येक सृजक कलाकार को जनता से चैतन्यमय सहानुभूति प्राप्त कर तेज प्राप्त करना होगा। कला या ईश्वर प्राप्त करने के लिए मन्दिरों या पुरानी श्रद्धेयताओं की ओर नहीं जाना होगा, बल्कि उस सैनिक तत्व, उस संग्रामशील धैर्य के अथाह आन्तरिक तेज और संतुलन के पास पहुँचना होगा। उसका ईश्वर सैनिक रूप में आ रहा है। विकराल मूर्तिभंजक के रूप में प्रकट हो रहा है।"[2] इस प्रकार प्रगतिवाद प्रधानतः युग की आवश्यकता को लेकर चलता है – वह आवश्यकता जिसकी पूर्त्ति से समाज वर्गहीन, भेदहीन और आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न हो सके। आज के जगत् की मुख्य चिन्ता शोषण-सत्ता की भयानकता है। इसके सन्दर्भ से जो स्थिति समाज में पैदा होती है उस स्थिति में परिवर्द्धित मानव समुदाय के मनोविश्लेषण का कार्य प्रगतिवादी कला करती है, और आगे के विकास की रूपरेखा निश्चित करती है।

राजनैतिक विचारधारा के तहत प्रगतिवाद प्रसार का पक्षधर है, वर्गविहीन समाज सत्ता का हिमायती है। दार्शनिक अर्थ में प्रगतिवाद विकासवाद में विश्वास रखता है, परन्तु वह डार्विन का विकासवाद नहीं है जो कार्य-कारणवाद को यान्त्रिक अर्थ देता है। यह द्वन्द्वात्मक गतिविधि से उत्पन्न है। मुक्तिबोध ने स्पष्ट रूप से इसको व्याख्यायित किया है। प्रगतिवादी एक निश्चित दार्शनिक 'एटीट्यूड' उत्पन्न करता है जो न 'स्व' से अधिक बाह्य है और न बाह्य से अधिक 'स्व' को महत्त्व देता है। यह कहता है कि इन दोनों की परस्पर क्रिया-प्रक्रिया से विकास होता आ रहा है। जीवन की दृष्टि से प्रगतिवाद आज तक की सबसे ऊँची मंजिल है और उसकी विशेषता इसमें है कि उसमें जीवन का अधिकतम मूर्त्त रूप में ग्रहण है।[3]

3.1.2. प्रगतिशीलता की अवधारणा

3.1.2.1. प्रगतिवाद : अर्थ, अभिप्राय एवं विभिन्न पर्याय

संस्कृत शब्द 'प्रगतिवादिन्' से व्युत्पन्न 'प्रगतिवाद' शब्द के हिन्दी शब्द-कोशों में निम्नलिखित अर्थ पाते हैं[4] – (i) प्रगतिवाद के सिद्धान्त पर चलने वाला, (ii) प्रगतिवाद सम्बन्धी, (iii) प्रगतिवाद के सिद्धान्त पर आधारित।

'प्रगतिवाद' संज्ञा पु. (सं.) : (i) वह सिद्धान्त जिसमें साहित्य को सामाजिक विकास का साधन माना जाता है। (ii) सामान्य जनजीवन को साहित्य में व्यक्त करने का सिद्धान्त प्रगत = वि. (सं.)।

प्रगति = संज्ञा स्त्री. (सं.) प्र+गति : (i) आगे की ओर बढ़ना, अग्रसर होना; (ii) उन्नति या विकास, (iii) सुधार।

हिन्दी शब्द-कोशों में 'प्रगतिशील' के निम्नलिखित अर्थ पाते हैं[5] –

प्रगतिशील = वि. (हि.) प्रगति + (सं.) शील : (i) बराबर आगे बढ़ने वाला उन्नतिशील, (ii) सुधारवादी, (iii) जो प्रगतिवाद का अनुयायी हो, (iv) प्रगतिवाद सम्बन्धी, (v) प्रगतिवाद के सिद्धान्त पर आधारित।

'प्रगतिवाद' अंग्रेजी प्रोग्रेसनिज़्म का हिन्दी रूपान्तर है । अंग्रेजी शब्द-कोशों में प्रगतिवाद के निम्नलिखित अर्थ पाते हैं[6] – (i) प्रगतिवादी, (ii) विकासवादी, (iii) उन्नतिवादी, (iv) प्रगति का समर्थक।

'प्रगतिशील' अंग्रेजी प्रोग्रेसिज़्म का हिन्दी रूपान्तर है। अंग्रेजी कोशकारों ने प्रगतिशील के निम्नलिखित अर्थ निर्दिष्ट किए हैं[7] – (i) प्रगामी कृत्रिम, (ii) उत्तरोत्तर बढ़ने वाला, (iii) प्रगतिशील कर्मवर्धमान अग्रगामी तथा नैतिक कार्यों में उन्नतिशील, (iv) प्रगतिशील दल का, प्रगतिशील विशेषण है । इसकी संज्ञा प्रगतिवाद एवं प्रगतिवादी है। (v) संज्ञा में प्रगतिवादी, प्रगतिशील दल का सदस्य।

3.1.2.2. समसामयिकता : अर्थ और अभिप्राय

"समसामयिकता से हमारा आशय है कि देश-काल के दायित्व के साथ-साथ उस क्षण की गहरी तीव्रानुभूति की ग्राह्यता, जो परिस्थितियों से उपजती है और बिना किसी पूर्वाग्रह के सामयिक औचित्य के साथ व्यक्त होती है।"[8]

साहित्य अध्ययन के सन्दर्भ में काल के खण्ड या प्रवाह के आधार पर युग-चेतना की अभिव्यक्ति को परिस्थिति के सत्य-अंश के रूप में चित्रित करने का नाम है, 'समसामयिकता'; पर रचनाकार को देश-काल की ससीमता में कालजयी होना पड़ता है। किन्तु कालजयी होने के लिए वह अपने परिवेश के प्रति बहुत गहरे रूप में

समर्पित होता है। वह अपनी सर्जनात्मक आकांक्षाओं और परिवेश के प्रतिकूल दबाव के अन्तर्विरोध से जूझता हुआ अपनी रचना और दृष्टि को अर्थवत्ता देता है। समसामयिक होने के लिए वह आधुनिक भाव-बोध से नहीं करता। समसामयिक और शाश्वत परस्पर विरोधी नहीं हैं। उनमें 'है' और 'होना चाहिए' का अन्तर मात्र है। अनेक समसामयिक अतीत बनकर ही शाश्वत का सृजन करते हैं। एक इतिवृत्त है और दूसरा अनेक इतिवृत्तों के अनुभव-संधान से निर्मित भावनात्मक लक्ष्य है। कोई भी व्यापक लक्ष्य स्वयं तक पहुँचाने वाले साधनों का विरोध नहीं करता और साधनों का अस्तित्व समसामयिक परिस्थितियों में रहता है।[9]

जब रचनाकार समसामयिकता को निरूपित करता हुआ स्थितियों की समझ को खोलता है, उसके भीतर छिपे अर्थ को उद्रिक्त करता है, उसमें अपनी दृष्टि से गहरी साभिप्रायता को उजागर करने का प्रयास करता है तब समसामयिकता सार्थकता और महत्त्व प्राप्त कर लेती है। किन्तु जब वह उसका चित्रण या निरूपण केवल बाह्य स्तर पर विवरणात्मकता, घटना-मूलकता के आधार पर करता है तब वह एक सन्दर्भित दस्तावेज भर बनकर रह जाती है। वस्तुतः यह रचनाकार की सामर्थ्य पर निर्भर है कि वह प्रलेखन (डॉक्यूमेंटेशन) को कितनी गहरी स्थापिता (मान्यूमेंटेशन) प्रदान करता है। आज अध्ययन के जितने अधिक अनुषंग हमारे सामने उपस्थित हो रहे हैं उनमें समसामयिकता की दृष्टि से साहित्य का अध्ययन और उसके महत्त्व मूल्यांकन को निश्चित ही अपनी साभिप्रायता और युगीन अपेक्षा है। नेमिचन्द जैन ने अपनी पुस्तक 'बदलते परिप्रेक्ष्य' में लिखा है – "अनुभूति और दृष्टि की मौलिकता और व्यक्तिमत्ता और उसकी अभिव्यक्ति के रूप और शिल्पगत तत्त्वों की नवीनता श्रेष्ठ साहित्य का सर्वथा अनिवार्य लक्षण है, चाहे वह नवीनता किसी भी युग के तथा लेखक के कृतित्व का बुनियादी मूल्य है जिसके बिना रचना नहीं होती, निरी पुनरावृत्ति, अनुकृति या केवल शब्द-जाल मात्र रह जाती है।"[10]

3.1.3. प्रगतिवाद का मूलभाव

3.1.3.1. प्रगतिवाद बनाम प्रगतिशीलता

'प्रगति' का साधारण अर्थ आगे बढ़ना या उन्नति करना है। परन्तु आज साहित्य में 'प्रगतिवाद' शब्द से केवल प्रगति का ही अर्थ न लेकर एक विशिष्ट राजनैतिक विचारधारा से प्रभावित साहित्य से लिया जाता है, जिसका मूलाधार मार्क्सवादी दृष्टिकोण है। पन्तजी के शब्दों में "छायावाद अब शून्य सूक्ष्म आकाश में अति काल्पनिक उड़ानें भरने वाली अथवा रहस्य के निर्जन अदृश्य शिखर पर विराम करने वाली कल्पना मात्र रह गया, तो उसके प्रतिक्रियास्वरूप जीवन और जगत् का सच्चा चित्र अंकित करने के लिए प्रगतिवाद का जन्म हुआ।"[11]

डॉ० भोलानाथ तिवारी ने अपने निबन्ध 'हिन्दी कविता में प्रगतिवाद' में 'प्रगतिवाद' के अर्थ के अभिप्राय को रेखांकित करते हुए कहा है कि 'प्रगति' का सामान्य अर्थ है किसी विशेष दिशा में विशेष ढंग से आगे बढ़ना किन्तु 'प्रगतिवाद' शब्द के अन्तर्गत प्रगति का एक विशेष अर्थ है और वह है, 'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद'।[12]

द्वन्द्ववाद में विश्वास रखने वाले भूतवादी के अनुसार विश्व का निर्माण लगभग सौ भौतिक तत्त्वों से हुआ है। मानव मस्तिष्क और चेतना भी, जिसे अध्यात्मवाद प्रकारान्तर से आत्मा कहता है, शरीर तथा अन्य भौतिक

चीजों की तरह इन भूतों से ही निर्मित है। आत्मा का इसके अतिरिक्त कोई मस्तिष्क नहीं है किन्तु उसे जड़वादी सिद्धान्त से अलग मानना चाहिए। भौतिकवाद में भूत या पदार्थ जड़ नहीं है। उनमें दो परस्पर विरोधी-तत्त्व हैं और इनका द्वन्द्व होता रहता है। यही स्थिति समाज में है। इन तत्त्वों में एक तो ह्रासोन्मुख होता है और दूसरा विकासोन्मुख। दोनों के परस्पर संघर्ष का नाम गति है। अतः द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद का दर्शन है जो जीवन को एक ऐसी प्रगतिशील भौतिक वास्तविकता मानता है जिसके मूल में परस्पर दो विरोधी शक्तियों का संघर्ष चल रहा है। इस दर्शन में विश्वास रखने वाला इन शक्तियों का ह्रासोन्मुख या विकासोन्मुख की गति देखकर ह्रासोन्मुख को ह्रास के पथ पर और विकासोन्मुख को विकास के पथ पर तेजी से अग्रसर होने में सहायता देता है। इसी कलागत या साहित्यक अभिव्यक्ति का नाम है 'प्रगतिवाद'। इस प्रकार दर्शन के क्षेत्र में जो मार्क्सवाद या द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, साहित्य के क्षेत्र में वह प्रगतिवाद है।

हिन्दी में विद्वानों का एक वर्ग प्रगतिवादी साहित्य और प्रगतिशील साहित्य में अन्तर मानता है। यथार्थतः प्रगतिवाद का सम्बन्ध मार्क्सवाद से है, किन्तु मार्क्सवाद के द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद या भौतिकवाद में विश्वास न रखता हुआ व्यक्ति भी प्रगति के पथ का पथिक हो सकता है। भक्तिकाल के सन्त कवि कबीर अपने युग के प्रतिनिधि कलाकार थे। उनका कलाकार युग की पुकार है। कबीर ने किसी वाद के घेरे में रहकर काव्य-रचना नहीं की है। फिर भी वे प्रगति के विरोधी रचनाकार नहीं माने जा सकते। इसके बावजूद आधुनिकता के सन्दर्भ में उन्हें प्रगतिवादी नहीं माना जा सकता। क्योंकि, वे भूतवादी न होकर अध्यात्मवादी थे। साहित्य के अध्ययन-विश्लेषण की पृष्ठभूमि में प्रगतिशील और प्रगतिवादी दो शब्दों को मान लेना अनुचित नहीं कहा जा सकता।

प्रगतिवाद युग की पुकार है। युग बदलता है, परिस्थितियाँ बदलती हैं, पुरानी मान्यताएँ बदलती हैं, साहित्य के आवेष्ठन के रूप-रंग बदलते हैं। साहित्यकार समाज को नवीन सन्देश देता है। वह समाज और इतिहास की लीक पर नहीं चलता। जो विचारधाराएँ देश और समाज की प्रगति के मार्ग को अवरुद्ध करती हैं, रचनाकार वैसे विचारों और मान्यताओं को मानने से स्पष्ट इनकार कर देता है। वस्तुतः रचनाकार अतीत की गलत मान्यताओं का विरोध करता है। वह व्यष्टि से समष्टि की ओर अग्रसर होता है। क्योंकि साहित्यकार अपने समय का स्रष्टा और द्रष्टा होता है। युग और समाज के अद्वितीय मार्गदर्शन के लिए कलाकार नये काव्य-रूपों की उद्‌भावना करता है। इन्हीं सुनहरे आदर्शों और स्वप्नों से चालित साहित्य का नाम 'प्रगतिशील साहित्य' है। इसी की एक निश्चित विचारधारा पर आश्रित साहित्य का नाम है, 'प्रगतिवादी साहित्य'।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि जब रचनाकार मार्क्सवादी विचारधारा पर आधारित कविताएँ लिखते हैं उस काव्य को 'प्रगतिवादी काव्य' कहा जाता है। जब रचनाकार किसी विचारक, चिन्तक या दार्शनिक मान्यताओं के तहत प्रतिबद्ध होकर साहित्य-सृजन करता है तो वह प्रतिबद्ध साहित्यकार माना जाता है। स्पष्ट है, मार्क्सवादी-लेनिनवादी को साहित्यिक रूप देने वाले कलाकार को प्रगतिवादी साहित्यकार माना जाता है। इसके विपरीत प्रगतिशील साहित्यकार अपनी मौलिक मान्यताओं के तहत रचना करता है। वह किसी वाद के प्रति प्रतिबद्ध नहीं रहता। वह निर्भीक और स्वतन्त्रतापूर्वक सामाजिक वैषम्य की कटु आलोचना करता है। देश और समाज के स्तर पर जो भी विसंगतियाँ होती हैं ऐसा साहित्यकार उनका विरोध करता है। यानी प्रगतिशील

साहित्यकार खुशहाल समाज के निर्माण के लिए किसी वाद का सहारा नहीं लेता वरन् वह वर्तमान की कुरूपता पर व्यंग्य करता है और वह समाज को नवीन सन्देश देता है। प्रगतिशील साहित्यकार की रचनाएँ अतीत, वर्तमान और भविष्य तीनों का संगम-स्थल होता है। वह अतीत का मंथन इसलिए करता है ताकि भविष्य के लिए निर्देश मिले।

3.1.3.2. राजनैतिक सन्दर्भ

(i) विचारधारा का सन्दर्भ : राजनैतिक सन्दर्भ में सबसे प्रमुख स्थान विचारधारा का है। आज किसी भी देश की राजनीति एक न एक विचारधारा को मानकर चलती है वा चलाई जाती है। कहीं विचारधारा का आधिपत्य दीखता है तो कहीं उसका स्पष्ट ध्रुवीकरण सामने आता है और कहीं-कहीं बीच की स्थिति भी प्राप्त होती है। यह सन्दर्भ सीधे ही व्यवस्था और समाज को प्रभावित करता है। प्रजातान्त्रिक देशों में चुनाव तक इस विचारधारा से प्रभावित होते हैं।

(ii) नेतृत्व का सन्दर्भ : देश के समाज का नैतिक उत्थान या नैतिक पतन नेतृत्व पर निर्भर करता है। सही नेतृत्व समाज को खुशहाली का सन्दर्भ देता है और गलत नेतृत्व समाज को भटकाता है, भ्रष्टाचार फैलाता है। साथ ही, अनेकानेक प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न करता है। आदर्श और यथार्थ के अलग-अलग कोणों के दर्शन यहाँ सहज सम्भव दीखते हैं। अतः राजनैतिक सन्दर्भों के घटकों में इस सन्दर्भ का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

(iii) प्रशासन का सन्दर्भ : प्रशासन समाज को चलाता है। समाज प्रशासन पर निर्भर है। जैसी सत्ता होती है, प्रशासन तदनुकूल होता है। प्रशासन आम जनता को सुख-सुविधा देता है। उनकी मुश्किलों को आसान करता है। जनजीवन में विधि-व्यवस्था ठीक रखना, लोगों में न्याय दिलाना उसी का धर्म है। प्रशासन से जुड़ी अनेक प्रकार की समस्याएँ उस घटक की रचना करती है। एक व्यापक सामाजिक सन्दर्भ इस सीमा में घिर आता है।

(iv) धार्मिक सन्दर्भ : धार्मिक सन्दर्भ के अन्तर्गत दो कोटि के लोग हैं। एक वर्ग धर्म और ईश्वर में विश्वास रखता है जबकि दूसरा वर्ग उसका विरोध करता है। प्रगतिवादी कवियों के काव्य में धार्मिक सन्दर्भ किस दृष्टि से निरूपित किया गया है, उसका मूल्यांकन और रेखांकन साहित्य के अध्ययन-विश्लेषण की पृष्ठभूमि में समीचीन प्रतीत होता है।

3.1.4. प्रगतिवादी साहित्य का वैचारिक आधार

3.1.4.1. प्रगतिवादी काव्य पर मार्क्सवादी चिन्तनधारा का प्रभाव

बाबू गुलाबराय की वाणी में "कवि या लेखक अपने समय का प्रतिनिधि होता है। उसको जैसा मानसिक खाद मिल जाता है वैसी ही उसकी कृति होती है। वह अपने समय के वायुमण्डल में घूमते हुए विचारों को मुखरित

कर देता है। कवि वह बात कहता है जिसका सब लोग अनुभव करते हैं, किन्तु जिसको सब लोग कह नहीं सकते। सहृदयता के कारण उसकी अनुभव-शक्ति औरों से बढ़ी-चढ़ी रहती है।"[13]

यदि रचनाकार केवल कला का ही चित्रण करना चाहेगा तो वह अपने समाज से अस्पृष्ट कैसे रहता है ? वह अपनी सामयिक परिस्थितियों से गम्भीर प्रेरणा ग्रहण करता है। यह सत्य है कि साहित्य समाज का दर्पण होता है। कुछ आलोचक साहित्य को मनोरंजन का साधन मानते हैं जो उचित प्रतीत नहीं होता है। साहित्य-प्रेमी रसिकों की भर्त्सना करते हुए डॉ॰ रामविलास शर्मा ने ठीक ही कहा है कि "यदि रसिकगण दर्पण में अपना ही प्रतिबिम्ब देखना चाहते हैं तो उन्हें साहित्य की परिभाषा बदल देनी चाहिए। तब कहना चाहिए कि साहित्य वह दर्पण है जिसमें समाज के इन विशेष लोगों की ही शक्ल दिखाई देती है जो दुपल्ली टोपी लगाए, पान खाए, सुरमा रचाए इस दुनिया से दूर नायिका-भेद के संसार में विचरण करते हैं। इन साहित्य-मर्मज्ञों के हृदय इतने सहृदय हो गए हैं कि जिस बात से चालीस करोड़ जनता के हृदय को ठेस पहुँचती है, वह उनके मर्म को छू भी नहीं पाती। उनका कुसुम-कोमल हृदय नकली गर्मी से उगने वाले पौधे की तरह एक कृत्रिम साहित्य की उत्तेजना पाकर ही विकसित होता है। ये लोग कहें तो ठीक ही होगा कि लेखकों को जनता से दूर ही रहना चाहिए।[14]

इस प्रकार साहित्य और समाज एक-दूसरे को अविराम प्रभावित करते आ रहे हैं। संसार के समस्त परिवर्तनों के मूल में कोई न कोई चिन्तनधारा कार्यशील रही है। इस विचारधारा का वर्णन साहित्य द्वारा होता है। वही हमारे ज्ञान क्षेत्र को विस्तृत करता हुआ हमें मौजूदा व्यवस्था के प्रति असंतोष उत्पन्न करता है। फ्रांस की प्रसिद्ध राज्य-क्रान्ति में बाल्तेयर और रूसो के क्रान्तिकारी विचार ही प्रेरणा-स्रोत थे। रूसी लेखकों की उग्रवादी विचारधारा ने रूस की राज्य क्रान्ति को तीव्र किया। वस्तुतः तत्कालीन समाज साहित्य को प्रभावित करता है। साहित्यकार का सम्बन्ध वर्तमान से ही न होकर अतीत और भविष्य भी होता है।

हिन्दी साहित्य में छायावाद के युग के पतन के बाद नयी आशाएँ और अपेक्षाएँ लिए प्रगतिवाद युग का पदार्पण होता है। महादेवी वर्मा की वाणी में "वह व्यष्टि सत्य की समष्टिगत परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहा।"[15] साथ ही पन्त ने छायावाद के पतन और ह्रास को रेखांकित करते हुए लिखा है – "छायावाद के शून्य सूक्ष्म आकाश में अतिकाल्पनिक उड़ान भरने वाली अथवा रहस्य के निर्जन अदृश्य शिखर पर विराम करने वाली कल्पना को जनजीवन का सच्चा चित्र अंकित करने के लिए एक हरी-भरी ठोस जनपूर्ण धरती की आवश्यकता थी।"[16]

3.1.4.2. द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद

'द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद' मार्क्स-चीन पर आधारित है। लेखक सहल के शब्दों में "यूनान में पहले 'डायलेक्टिक' शब्द का प्रयोग सत्य पर पहुँचने की उस पद्धत्ति के लिए होता था जिसमें दो विरोधी दल वाद-विवाद और खण्डन-मण्डन द्वारा अपने-अपने पक्ष का समर्थन करते थे।"[17] हीगेल की दृष्टि में 'डायलेक्टिक' पद्धत्ति द्वारा परिवर्तन और विकास के सिद्धान्त को समझा जा सकता है। परिवर्तन में विकास के बीज सन्निहित रहते हैं। इस परिवर्तन से विकास का एक नवीन सजीव रूप प्रकट होता है। हीगेल ने निरपेक्ष ब्रह्म की कल्पना की

और हीगेल विचार को मुख्य मानकर बाह्य संसार को उसी का रूप मानता था । मार्क्स ने हीगेल के उत्पत्ति, परिवर्त्तन और विकास के सिद्धान्त को तो स्वीकार कर लिया परन्तु उसकी निरपेक्ष ब्रह्म की कल्पना को मानने से इनकार कर दिया । मार्क्स के अनुसार जगत् के इतिहास की व्याख्या आर्थिक आधार को ही लेकर की जा सकती है निरपेक्ष ब्रह्म के अनुसार नहीं । एक अन्य जर्मन दार्शनिक फायर बाख (1804-72) हीगेल के मत का खण्डन कर भौतिकवाद को जन्म दे चुका था । फायर बाख की मान्यता थी कि किसी वस्तु के बिना उसका बोध नहीं हो सकता । हीगेल के अनुसार मनुष्य प्राकृतिक विकास की एक कड़ी है, परन्तु मार्क्स ने मनुष्य को यन्त्र मात्र न मानकर उसे चेतना माना है । उसकी सम्मति में मनुष्य वातावरण की उपज नहीं है बल्कि वह वातावरण बदल देने की आधार-क्षमता रखता है । मार्क्स ने उपर्युक्त दोनों सिद्धान्तों का समन्वय कर अपने मत का आधार भौतिकवाद को बनाया और निरूपण की प्रणाली द्वन्द्वात्मक रखी ।

हीगेल और फायर बाख, दोनों ने वर्ग-संघर्ष का उल्लेख नहीं किया । वर्ग-संघर्ष की व्याख्या सर्वप्रथम चार्ल्स हाक नामक एक अंग्रेज ने की थी । उनकी राय में युद्धादि पूँजीपतियों के आर्थिक स्वार्थों की पूर्त्ति के लिए होते हैं । अगर देश में शासन के घोड़े पर गरीब सवार हो जाए तो युद्ध स्वतः समाप्त हो जाएगा ।

संक्षेप में मार्क्स ने हीगल की द्वन्द्वात्मक पद्धत्ति ली, फायरबाख से भौतिकवाद लिया और हाक से वर्ग-संघर्ष ग्रहण किया । मार्क्स की दृष्टि में सृष्टि में दो तत्त्व प्रधान हैं – स्वीकारात्मक (पॉजिटिव) और नकारात्मक (निगेटिव) । इन दोनों तत्त्वों के संघर्षों का नाम ही 'जीवन' है । इन्हीं के संघर्ष से चेतना पैदा होती है । इस चेतना का मूलाधार पदार्थ है । उपरोक्त दोनों विरोधी तत्त्व पदार्थ में स्थित रहकर संघर्ष करते रहते हैं जिससे उसमें चेतना उत्पन्न होती है, यह चेतना द्वन्द्व का परिणाम है । इसी कारण इसे द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद कहा जाता है ।

इस प्रकार हम पाते हैं कि मार्क्स के पहले किसी ने भी सबल स्वर में जगत् की विशेषता का मूल कारण अर्थ का असमान विभाजन नहीं बताया था और न ऐतिहासिक आधार पर रेखांकित और व्याख्यायित किया था ।

3.1.4.3. फ्रायडवाद और मार्क्सवाद

कार्ल मार्क्स के साम्यवादी दर्शन, फ्रायड के प्रकृतिवादी या अतियोनवादी दर्शन और डार्विन के विकासवादी दर्शन ने आधुनिक युग को प्रभावित कर प्राचीन न्याय-संगत मान्यताओं का उन्मूलन कर दिया है । विचारकों ने डार्विन के विकासवाद का खण्डन कर दिया है, परन्तु फ्रायड के 'प्रकृतिवादी दर्शन' का संसार के आधुनिक साहित्य पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है । फ्रायडवादियों का मत है कि वास्तविक जगत् में जो वस्तु हमें प्राप्त नहीं होती, उसकी पूर्त्ति स्वप्न में होती है । इसीलिए कला भी एक स्वप्न ही है । कुछ आलोचकों के अनुसार काम-भावना ही भौतिक भावना है । मार्क्सवादी दर्शन भौतिकवादी है । इसलिए उनके अनुसार फ्रायड-दर्शन कुण्ठावाद को जन्म देता है । मार्क्सवाद समाज को महत्त्व देता है । वही फ्रायड और वैयक्ति संवेदन की एकमात्र अभिव्यक्ति है । फ्रायडवाद कला में दमित भावनाओं का विस्फोट मात्र मान समाज-पक्ष को नगण्य बना देता है जबकि

मार्क्सवाद जनता, धरती और श्रम के प्रति प्रतिबद्ध है। मार्क्स-दर्शन में लोक-कल्याण की भावना प्रस्फुटित होती है इसलिए यह प्रगतिवादी है। हिन्दी साहित्य में फ्रायड का यह सिद्धान्त 'कुण्ठावाद' के नाम से जाना जाता है।

3.1.4.4. भारतीय पूँजीवाद का प्रादुर्भाव

सन् 1917 की सर्वहारा वर्ग की क्रान्ति ने रूस में पूँजीवाद तथा साम्राज्यवाद का उन्मूलन किया। भारत में भी उस समय पूँजीवाद पनप रहा था। टाटा-बिड़ला जैसे पूँजीपति अपने उद्योगों का विस्तार कर रहे थे। विदेशी व्यापार की प्रतिद्वन्द्विता के कारण उन्हें राष्ट्र का समर्थन प्राप्त था। इसके बावजूद साहित्यकार दीन जनों की समस्याओं और उनके चीत्कारों का चित्रण कर रहे थे। आभिजात्य वर्ग और ज़मींदार किसानों पर अत्याचार कर रहे थे। इन अत्याचारों की ओर साहित्यकार का ध्यान गया। जनकवि नागार्जुन भूख के सन्दर्भ को रेखांकित करते हैं –

मरो भूख से, फौरन आ धमकेगा थानेदार
लिखवा लेगा घर वालों से वह तो था बीमार
अगर भूख की बातों से तुम कर न सके इनकार,
फिर तो खायेंगे घर वाले हाकिम की फटकार।

* * *

मरी भूख को मारेंगे फिर सर्जन के औजार
जो चाहेगी लिखवा लेगी, डॉक्टर से सरकार।[18]

'दोन-बोल्गा यमुना आज हो रही एक' जैसी कविताओं में भी नागार्जुन ने भूख की समस्या को उपसन्दर्भ के रूप में वाणी प्रदान की है – "गली-गली में रोता मानव[19] माँग रहा है भीख।"

पन्त, निराला, नागार्जुन, सुमन, मुक्तिबोध कवियों ने काव्य के क्षेत्र में जनता की आवाज़ को उठाया। निराला ने 'भिक्षुक' शीर्षक कविता में सर्वहारा की पीड़ा को वाणी प्रदान की तो नागार्जुन ने 'जया' शीर्षक कविता में चिकित्सा और बुभुक्षा के सन्दर्भ को चरम सीमा पर पहुँचाया। नागार्जुन आर्थिक अभाव रेखांकित करते हुए कहते हैं –

माँ-बाप गरीब न कर सकते प्रतिकार बहरापन का

* * *

कैसा असह्य कितना बर्बर
यह मध्य वर्ग का निचला स्तर।[20]

3.1.4.5. प्रगतिशील लेखक संघ

प्रेमचन्द की अध्यक्षता में सन् 1936 में लखनऊ में प्रगतिशील लेखक संघ की बैठक हुई। कवीन्द्र रवीन्द्र और शरच्चन्द्र जैसे महान् साहित्यकार इस संघ के सहयोगी रहे। संघ के प्रथम अधिवेशन के सभापति पद से

भाषण देते हुए प्रेमचन्द ने कहा था कि – "हमारी कसौटी पर वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो – जो सबमें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं क्योंकि अधिक सोना मृत्यु का लक्षण है।" प्रेमचन्द के स्वप्नों को प्रगतिवादी रचनाकारों ने बहुलांश में साकार किया है।

3.1.4.6. प्रगतिवादी रचनाकार

प्रेमचन्द के उपरान्त इस धारा की सबसे बड़ी प्रेरणा और बल निराला, नागार्जुन, सुमन, मुक्तिबोध, केदारनाथ अग्रवाल, धूमिल आदि कवियों से मिला। निराला के काव्य में 'कुकुरमुत्ता', 'नये पत्ते' आदि संग्रह तथा अनेक फुटकर कविताओं में प्रगतिवादी विचारधारा का अत्यन्त सुन्दर चित्रण हुआ है। नागार्जुन के काव्य 'तालाब की मछलियाँ', 'प्यासी पथराई आँखें', 'सतरंगे पंखों वालीं' और 'हजार-हजार बाँहों वाली' आदि संग्रहों में प्रगतिवादी विचारधारा का मनोरम चित्रांकन हुआ है। पन्त ने 'रूपाभ' नामक मासिक पत्र द्वारा प्रगतिवादी-आन्दोलन को मजबूत और दृढ़ बनाया। वे 'युगवाणी', 'ग्राम्या' (युगान्त) आदि की रचना कर प्रगतिवाद के प्रबल समर्थक बन गए। प्रेमचन्द द्वारा सम्पादित 'हंस' ने कुछ समय तक प्रगतिवाद का नेतृत्व किया। 'हंस' पत्रिका में नागार्जुन की कई कविताएँ प्रकाश में आईं। अनेक प्रगतिवादी रचनाकार इस पत्रिका से प्रभावित हुए। इन साहित्यकारों ने 'प्रगतिवाद' को एक दर्शन के रूप में अपनाया। इसमें नागार्जुन, धूमिल, मुक्तिबोध, सुमन आदि प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार प्रगतिवाद की आयु अत्यन्त अल्प अर्थात् सन् 1936 से 1943 तक सात-आठ वर्ष की रही है। उनके इस भ्रम के भूल में प्रयोगवाद है। क्योंकि प्रयोगवाद का जन्म 1943 में हो गया था। प्रयोगवाद का जन्म हो चुका था इसलिए प्रगतिवाद को समाप्त हो जाना चाहिए था। परन्तु इस तथ्य को इनकार नहीं किया जा सकता कि प्रगतिवाद के स्वर में तीव्रता द्वितीय महायुद्ध के बाद ही आई थी। द्वितीय महायुद्ध में प्रतिक्रियावादी शक्तियों पर जनवादी और जनतान्त्रिक शक्तियों की विजय हुई थी। देश में सन् 1942 में भयंकर आन्दोलन उठ चुका था। देश में स्वतन्त्रता संग्राम का भी आन्दोलन तीव्र हो उठा था। 'आजाद हिन्द फौज' के कारण जागरण का अभियान प्रबल हो चुका था। जिस समय देश में व्यवस्था-परिवर्तन, सत्ता-परिवर्तन की खातिर जनता सक्रिय हो गई थी, उस समय प्रयोगवादी रचनाकार 'शेखर : एक जीवनी' जैसी कुण्ठाग्रस्त रचनाएँ रचने में दत्तचित्त थे। इस गलाघोंट वातावरण में हमारे प्रगतिवादी रचनाकार ने तत्कालीन कुव्यवस्था का विरोध किया और जनचेतना को वाणी प्रदान की।

3.1.4.7. प्रगतिवादी काव्य में समसामयिक राजनैतिक सन्दर्भों की अभिव्यक्ति

'प्रगतिवाद' आधुनिक हिन्दी साहित्य की सर्वाधिक जीवन्त एवं सशक्त काव्यधारा है। प्रगतिवादी काव्यधारा के श्रेष्ठ रचनाकारों ने घोर वैयक्तिकता का विरोध कर समसामयिक राजनीति के परिप्रेक्ष्य में साहित्य का सृजन किया है। यह काव्यधारा युग की समसामयिक परिस्थितियों के अनुरूप निरन्तर आगे बढ़ती रही है तथा आज भी अन्तःसलिला सदृश भारतीय जनता के मन-प्राण में अविराम प्रवाहित हो रही है। प्रगतिवादी कवियों में 'मुक्तिबोध' प्रगतिवादी काव्ययात्रा के तृतीय चरण (62-64 के बाद) तक नहीं आ पाते। 11 सितम्बर 1964 को

नयी दिल्ली में उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए। तृतीय चरण के रचनाकार प्रमुखतः केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन और शमशेर बहादुर सिंह हैं। इस साहित्य के सन्दर्भ में डॉ॰ रमाकान्त श्रीवास्तव की कविताओं का भी उल्लेख करना समीचीन प्रतीत होता है। प्रगतिवादी साहित्य को नयी ऊर्जा प्रदान करने वाली मुक्तिबोध की कविता अपनी कविता यात्रा के द्वितीय चरण तक आते-आते अत्यधिक राजनैतिक हो जाती है। उन्होंने 'अँधेरे में' कविता में युगीन संघर्षों और जटिल संवेदनाओं को काव्यात्मक बिम्बों में स्थापित किया है। प्रगतिशील विचारधारा के इस प्रतिभासम्पन्न कवि ने अपनी कविता में आततायी सत्ता के खोखलेपन की निष्क्रियता, भ्रष्टता तथा अनाचार के व्यापक सन्दर्भ को पूरी सघनता से उजागर किया है। इस दृष्टि से मुक्तिबोध हिन्दी के थोड़े से श्रेष्ठ कवियों में हैं। इस प्रकार मुक्तिबोध में प्रथम कोटि की सर्जनात्मक प्रतिभा विद्यमान है। वस्तुतः यह रचनाकार की क्षमता पर निर्भर करता है कि वह प्रलेखन को कितने गहरे आख्यापक स्तर पर स्थापित करता है। निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध प्रगतिवादी कवियों में प्रथम कोटि के कवि के रूप में उपस्थित होते हैं। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर और रमाकान्त श्रीवास्तव की कविता अपनी काव्ययात्रा के तृतीय चरण तक आते-आते अत्यधिक राजनैतिक हो जाती है जिसका स्तर राज्य से राष्ट्र और राष्ट्र से अन्तर्राष्ट्रीय हो जाता है।

विपक्ष के एकमात्र प्रवक्ता

समसामयिक राजनैतिक सन्दर्भों की खोज के क्रम में कविवर डॉ॰ रमाकान्त श्रीवास्तव की श्रेष्ठ काव्यकृति 'साँझ का आकाश', 'जीवन दर्पण', 'अग्नि-पखेरू', 'प्यासा बनपाखी', 'बीसवीं सदी तथा अन्य कविताएँ' और 'सुनहरा पन्ना साँझ का' भी विचारणीय है। ये काव्य-कृतियाँ सत्ता की कटु आलोचना करती हैं। कवि मानता है कि सत्ता का उद्देश्य भ्रमजाल तक सीमित है। सत्ता जनता के लिए और जनता कविता के लिए है। इस प्रकार श्रीवास्तव की कविता राजनैतिक चेतना को जाग्रत् करती है। कवि कहता है कि सत्ता सिर्फ़ लोगों को गुमराह करती है, क्योंकि नेताओं के पास कोई चरित्र ही नहीं बचा है। धर्म में धार्मिकों का, राजनीति में प्रशासकों का सलूक जिस तरह हो रहा है उससे समाज का विकास सम्भव नहीं है; बल्कि मानवता के लिए दर्दनाक है। आज समाज में धर्म और राजनीति के नाम पर माफिया विकसित हो रहा है। कवि इसके दर्दनाक उभार की अभिव्यक्ति इस प्रकार करता है –

माफिया कृत
विकृत राजनीति
देश व्यथित

– जीवन दर्पण (हाइकु संकलन) पृष्ठ 29

अपकीर्ति में
जो है वही अब
राजनीति में

– जीवन दर्पण (हाइकु संकलन) पृष्ठ 30

सत्ता लोलुप
वोटों की राजनीति
देश त्रस्त है

– अग्नि पखेरू (हाइकु संकलन) पृष्ठ 32

द्विजिह्व प्राणी
बना राजनीतिज्ञ
सर्प सदृश

– अग्नि पखेरू (हाइकु संकलन) पृष्ठ 26

भारतीय लोकतंत्रात्मक शासन प्रणाली की मर्यादा पर आघात पहुँचते देखकर कवि विक्षुब्ध हो जाता है। धोखाधड़ी और शैतानी की राजनीति पर आक्रोश व्यक्त करता हुआ कवि कहता है–

कक्ष में जनदेवता हैं
द्वार पर पहरे लगे।
खो गए जो दूरियों में
वे रहे कितने सगे
पत्थरों के देवता खाते तरस कब घूरते
क्लेश के कंटक बिछे पथ पर कहाँ कितने गिनाऊँ क्या ?

– 'साँझ का आकाश' (काव्य-संकलन), पृ.सं. 35

* * *

असेंबली में
जूता चप्पल चले
ज्यों गली में।

– अग्नि पखेरू (हाइकु संकलन) पृष्ठ 29

रमाकान्त श्रीवास्तव की राजनैतिक सन्दर्भों की कविता हमें बेचैन ही नहीं करती अपितु सोचने की शक्ति भी देती है। इनके काव्य में विद्रोह के साथ सर्जनात्ममकता भी है।

'सुनहरा पन्ना साँझ का' शीर्षक कविता संकलन में प्रगतिशील काव्यधारा के कवि डॉ॰ श्रीवास्तव ने देश की राजनीति की विकृति को उजागर किया है। अनुपम भाषा-शिल्प के साथ कवि ने देश और समाज की राजनीति पर तीव्र कटाक्षपूर्ण और मर्मस्पर्शी व्यंग्य किया है –

खोज रहा हूँ अपना भारत
कहीं नहीं वह मुझे दिख रहा
राजनीति की विकृति
पुती उसके चेहरे पर
विकृत हो गया

अता-पता खो गया
हाय ।
लापता हो गया ।

– (सुनहरा पन्ना साँझ का – डॉ॰ रमाकान्त श्रीवास्तव)

राजनैतिक कविताओं में ये सारे कवि विपक्ष के कवि हैं । नागार्जुन ने स्वयं अपने को अगणित बार अपनी कविताओं में 'जनकवि' के नाम से विभूषित किया है । 'प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है' शीर्षक कविता में कवि अपना परिचय देते हुए कहता है –

प्रतिहिंसा स्थायीभाव है मेरे कवि का
जन जन में जो ऊर्जा भर दे
मैं उद्गाता हूँ उस रवि का ।[21]

विपक्ष का पक्षधर होने के नाते वे सत्ता की कटु आलोचनाएँ करते हैं, उसके किसी वैशिष्ट्य का उद्गीत गाते दीख नहीं पड़ते । पर इस प्रकार की कविता में नागार्जुन प्रायः संयमित मर्यादित और न्यायमुक्त नहीं रह गए हैं ।

3.1.5. पाठ-सार

सभी प्रगतिवादी रचनाकार युगधर्मी साहित्यकार हैं । मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, शमशेर बहादुर सिंह, डॉ॰ रमाकान्त श्रीवास्तव की बहुमुखी प्रतिभा जीवन्त और सशक्त है । पर इन कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर का प्रभूत सृजन है और इनमें प्रथम कोटि के रचनाकार की समर्थ संभावनाएँ हैं, जिन्हें प्रतिबद्ध रचनाकार की हैसियत से सस्ते निरूपण के प्रबल आग्रह के कारण उन्होंने कुण्ठित किया ।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि समसामयिक सामाजिक-राजनैतिक चेतना की एक-एक धड़कन को सुनने और इसे साहित्य की समग्र विधाओं में रूपान्तरित करने वाले केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, शमशेर और रमाकान्त श्रीवास्तव जैसे रचनाकार पूरी क्षमता के साथ आज मुखर हैं । निःसन्देह कहा जा सकता है कि हिन्दी साहित्य जगत् में इन रचनाकारों की आक्षरिक तपस्चर्या समुज्ज्खल ज्योति स्फुलिंग की तरह स्मरणीय और देदीप्यमान रहेगी ।

3.1.6. बोध प्रश्न

1. प्रगतिवाद का सामान्य परिचय दीजिए ।
2. 'प्रगतिशील लेखक संघ' के उद्देश्य पर प्रकाश डालिए ।
3. प्रगतिवादी साहित्य पर मार्क्सवादी चिन्तनधारा के प्रभाव का वर्णन कीजिए ।
4. प्रगतिवादी रचनाकार का संक्षिप्त परिचय दीजिए ।

5. प्रगतिवादी साहित्य में निरूपित राजनैतिक सन्दर्भों की अभिव्यक्ति पर प्रकाश डालिए।
6. प्रगतिवाद बनाम प्रगतिशीलता पर टिप्पणी लिखिए।

3.1.7. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. मुक्तिबोध रचनावली – 5, सं. : नेमिचन्द जैन, पृष्ठ 119
02. वही, पृष्ठ 29-30
03. वही, पृष्ठ 30
04. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर, सं. : रामचन्द्र वर्मा, पृष्ठ 659
05. वही
06. नालन्दा करेंट डिक्शनरी, पृष्ठ 893
07. वही, पृष्ठ 893
08. लक्ष्मीकान्त वर्मा, नयी कविता के प्रतिमान, पृष्ठ 263
09. महदेवी वर्मा, साहित्यकार की आस्था तथा अन्य निबन्ध, पृष्ठ 28
10. नेमिचन्द जैन, बदलते परिप्रेक्ष्य, पृष्ठ 79
11. सुषमारानी गुप्ता, साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ 103
12. वही, पृष्ठ 103
13. राजनाथ शर्मा, साहित्यिक निबन्ध, पृष्ठ 357
14. वही, पृष्ठ 358
15. वही, पृष्ठ 474
16. वही, पृष्ठ 476
17. वही, पृष्ठ 475
18. नागार्जुन, हजार-हजार बाँहों वाली, पृष्ठ 132
19. वही, पृष्ठ 66
20. नागार्जुन, तालाब की मछलियाँ, पृष्ठ 11
21. नागार्जुन, हजार-हजार बाँहों वाली, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृष्ठ 11

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : छायावादोत्तर काव्य

इकाई – 2 : प्रगतिशील कवियों की जनवादी चेतना, सामाजिक चेतना

इकाई की रूपरेखा

3.2.00. उद्देश्य
3.2.01. प्रस्तावना
3.2.02. प्रगतिशील कविता का संक्षिप्त परिचय
3.2.03. प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि
3.2.04. हिन्दी की प्रगतिशील काव्य-परम्परा
    3.2.04.1. प्रारम्भिक दौर
    3.2.04.2. दूसरा दौर
    3.2.04.3. तीसरा दौर
3.2.05. प्रगतिशील कवियों की जनवादी एवं सामाजिक चेतना
    3.2.05.1. नागार्जुन
    3.2.05.2. त्रिलोचन
    3.2.05.3. केदारनाथ अग्रवाल
3.2.06. प्रगतिशील कविता की भाषा और शिल्प-पक्ष
3.2.07. प्रगतिशील कवियों की शक्ति और सीमाएँ
    3.2.07.1. शक्ति
    3.2.07.2. सीमाएँ
3.2.08. पाठ-सार
3.2.09. बोध प्रश्न
3.2.10. व्यवहार
3.2.11. कठिन शब्दावली
3.2.12. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

3.2.00. उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ 'आधुनिककालीन हिन्दी काव्य' शीर्षक पाठ्यचर्या के खण्ड-3 'छायावादोत्तर काव्य' की दूसरी इकाई 'प्रगतिशील कवियों की जनवादी चेतना, सामाजिक चेतना' विषय पर केन्द्रित है। इस पाठ्यचर्या में आप हिन्दी साहित्य के इतिहास के आधुनिककाल का अध्ययन कर रहे हैं। आप इस बात से अवश्य परिचित होंगे कि हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल में छायावाद के उपरान्त जिस काव्यधारा का आरम्भ होता है उसे प्रगतिशील कविता कहते हैं। आपने पिछले अध्याय में इस काव्यधारा के नामकरण और काल-निर्धारण से जुड़े अनेक पक्षों का विश्लेषण एवं विभिन्न विद्वानों के विचारों का अध्ययन किया। इस अध्याय में हम इस काव्य-आन्दोलन से सम्बद्ध कवियों के रचनात्मकता धरातल और उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त जीवन के विविध स्तरों का अध्ययन

करेंगे। हिन्दी साहित्य के इतिहास में विभिन्न कालखण्डों के विभाजन और नामकरण की अलग-अलग पद्धत्तियाँ रही हैं और उनके अपने-अपने तर्क भी हैं, किन्तु यहाँ हम साहित्य के अध्ययन की सुविधा को ध्यान में रखकर उपर्युक्त काव्यधारा को प्रगतिशील काव्य के रूप में ग्रहण कर रहे हैं। प्रगतिशील काव्य इस साहित्य-यात्रा का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव है। प्रगतिशील कवियों की काव्यगत विशेषताओं के मूल्यांकन से सम्बद्ध इस इकाई को प्रस्तुत करने का मुख्य उद्देश्य यह है कि इसके अध्ययन के उपरान्त आप इस काव्यधारा से जुड़े कम से कम निम्नलिखित बिन्दुओं को जान सकेंगे –

i. छायावादोत्तर कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि क्या है ?
ii. प्रगतिशील कवियों की रचनात्मकता और उनकी प्रगतिशील चेतना के प्रतिमान क्या हैं ?
iii. प्रगतिशील कवियों की रचनाओं के सरोकार क्या हैं ?
iv. प्रगतिशील कविता में विद्यमान जनवादी तेवर और उसकी सामाजिक उपादेयता क्या है ?
v. आधुनिक हिन्दी कविता में प्रगतिशील कवियों का क्या योगदान है ?

3.2.01. प्रस्तावना

प्यारे विद्यार्थियों, आप आधुनिककालीन हिन्दी काव्य के अध्ययन के क्रम में समय के उस पड़ाव पर रचित रचनाओं के वैशिष्ट्य को अवश्य जानना चाहते होंगे, जिस पड़ाव पर स्वतन्त्रता संग्राम निर्णयात्मक चरण से गुजर रहा था। इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि प्रगतिशील साहित्य आन्दोलन अपने पूर्ववर्ती साहित्य आन्दोलनों से कई अर्थों में भिन्न था। आधुनिककाल से पहले रचनाकारों द्वारा वीरता, भक्ति और शृंगार को साहित्य के विषय के रूप में प्रधानतः अपनाया जाता था। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि साहित्य के केन्द्र में ईश्वर, शासक, योद्धा आदि ही होते थे और सामान्य जन के जीवन का बहुलांश साहित्य की परिधि से बाहर छूट गया था। लेकिन आधुनिक्काल में विज्ञान के आविष्कारों एवं औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप उत्पादन में उत्तरोत्तर वृद्धि ने लोगों के जीवन में बुनियादी बदलाव किये। इसके अतिरिक्त जीवन और जगत् के सन्दर्भ में वैज्ञानिक सिद्धान्तों के हस्तक्षेप से मनुष्य के सोचने की दिशा बदली।

वैश्विक स्तर पर हो रहे इन परिवर्तनों की बयार धीरे-धीरे ब्रिटेन के औपनिवेशिक कब्जे वाले देशों में भी छन-छनकर पहुँची। भारत भी इन परिवर्तनों की आहट को सुन रहा था। सामाजिक-राजनैतिक स्तर पर बदलाव का बिगुल बजाने के लिए कई महापुरुषसामने आए और अपने-अपने विचारों से लोगों को जगाने का महती कार्य करने लगे। सामाजिक-धार्मिक सुधार आन्दोलनों के समानान्तर हिन्दी साहित्य के उन्नयन के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालकृष्ण भट्ट जैसे कई रचनाकारों ने बहुमूल्य योगदान दिया। भारतेन्दुकाल के नाम से अभिहित, वस्तुतः हिन्दी साहित्य के लिए यह पुनर्जागरण का काल था, जिसमें आत्म-गौरव के साथ-साथ भारतीय संस्कृति के उदात्त स्वरूप में अटूट आस्था का भाव निहित था, वहीं जड़ और निरर्थक रूढ़ी-मान्यताओं से मुक्ति की प्रबल आकांक्षा भी विद्यमानथी। हिन्दी साहित्य की विविध विधाओं की दृष्टि से देखा जाए तो काव्य के अतिरिक्त गद्य-विधाओं का लेखन भी बड़े पैमाने पर होने लगा था। एक तरफ लगभग सभी चर्चित लेखक संस्कृत

के नाटकों का अनुवाद कर रहे थे, वहीं दूसरी तरफ उनके द्वारा समसामयिक ज्वलन्त विषयों पर मौलिक नाटकों का सृजन भी बड़े मनोयोग से किया जा रहा था। अभिज्ञानशाकुन्तलम्, मुद्राराक्षसम्, अन्धेर नगरी, भारत-दुर्दशा को इसी सन्दर्भ में देखा जा सकता है। इस काल में साहित्य की भाषा धीरे-धीरे करवट बदलने लगी थी। इस काल में कविता की भाषा तो ब्रज ही रही, किन्तु गद्य की भाषा हिन्दी हो गई थी। यद्यपि गद्य की भाषा हिन्दी पर स्थानीय आंचलिक भाषाओं का प्रभाव भी विद्यमान था, किन्तु शब्द-निर्माण और वाक्य-विन्यास के स्तर पर कई प्रयोग होते रहे, जिससे साहित्य की सशक्त भाषा के रूप में हिन्दी भाषा उतरोत्तर निखरती गई।

भारतेन्दुकाल के बाद द्विवेदी युग में यह कार्य योजना-बद्ध तरीके से हुआ, जिसमें सरस्वती पत्रिका की महती भूमिका रही। देश-दुनिया के मंच पर घटित बड़ी राजनैतिक घटनाओं के समानान्तर इस काल में राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-आन्दोलन की अनुगूँज स्पष्ट सुनी जा सकती है। इस काल में मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय ‘हरिऔध’, चन्द्रधर शर्मा ‘गुलेरी’ जैसे महान् रचनाकार काफी सक्रिय रहे। तदनन्तर युगीन सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तनों को साहित्य की विविध विधाओं में गहराई से धारण करने वाली छायावादी युग का सूत्रपात होता है। गौर से देखा जाए तो राष्ट्रीय स्तर पर यह काल गाँधी और भगतसिंह के त्याग और बलिदान के लिए याद किया जाता है। इस काल में जहाँ काव्य के क्षेत्र में जयशंकर प्रसाद, सूर्यकान्त त्रिपाठी ‘निराला’, सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा जैसे महान् रचनाकारों ने अपना योगदान दिया, वहीं कथासम्राट् प्रेमचंद ने भी अपनी कालजयी कृतियों की रचना इसी काल में की। रचनात्मक दृष्टि से यह आधुनिककाल का सबसे गहनतम काल माना जाता है, जिसमें काव्य के अतिरिक्त नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध, आलोचना सहित साहित्य की सभी विधाओं का न्यूनाधिक सृजन हुआ।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में मोटे तौर पर 1936 ई. से आरम्भ काव्यधारा को प्रगतिवाद या प्रगतिशील काव्य-आन्दोलन कहा जाता है। अगले अनुच्छेद में प्रगतिशील कविता पर विस्तार से चर्चा की जाएगी। लेकिन यहाँ इस बात का उल्लेख करना आवश्यक है कि साहित्य की युगान्तकारी रचनात्मक चेतना के रूप में प्रगतिशीलता की शुरुआत बहुत पहले हो चुकी थी। खुले मन से विचार किया जाए तो भारतेन्दु युग में इसके कुछ संकेत मिलने लगे थे, जहाँ प्रगतिशील चेतना परिवर्तनकारी शक्ति के रूप में प्रकट होने लगी थी। यह चेतना राष्ट्रीय स्तर पर मुखरित कई आन्दोलनों से जुड़कर नया तेवर धारण करने लगी थी, परिणामस्वरूप इस कालखण्ड का साहित्य-लेखन देश एवं समाज के बुनियादी सवालों की ओर मुड़ने लगा था और धीरे-धीरे वह हिन्दी साहित्य के बड़े फलक पर निबन्ध, आलोचना, नाटक एवं कथा-साहित्य के रूप में अभिव्यक्त होने लगा था। काव्य के क्षेत्र में भी इसकी अनुगूँज सुनाई देने लगी थी, पर प्रगतिशील कविता का वास्तविक उभार 1930 ई. के बाद में ही दिखाई देता है।

3.2.02. प्रगतिशील कविता का संक्षिप्त परिचय

सामान्यतः यह स्वीकार किया जाता है कि हिन्दी साहित्य के आधुनिककाल में छायावादी साहित्य आन्दोलन के बाद वस्तुपरक सामाजिक चेतना एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण से सम्पृक्त जिस सशक्त साहित्य

आन्दोलन की शुरुआत होती है, उसे प्रगतिवाद के नाम से जाना जाता है। साहित्य के क्षेत्र में प्रगतिवाद वस्तुतः एक विचारधारा का सूचक है, जिसका सीधा सम्बन्ध मार्क्सवादी विचारधारा से है। हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ में इसे प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के साथ जोड़कर देखा जाता है, जिसका पहला अधिवेशन लखनऊ में सन् 1936 ई. में हुआ था। प्रगतिशील लेखक संघ के उस ऐतिहासिक मंच से अपने अध्यक्षीय भाषण में मुंशी प्रेमचंद ने भारतीय लेखकों से साहित्य की सौन्दर्य-दृष्टि में आवश्यक रूप से बदलाव का आह्वान किया था। उनका आग्रह था कि "हमारी कसौटी पर केवल वही साहित्य खरा उतरेगा जिसमें उच्च चिन्तन हो, स्वाधीनता का भाव हो, सौन्दर्य का सार हो, सृजन की आत्मा हो, जीवन की सच्चाइयों का प्रकाश हो, जो हममें गति, संघर्ष और बेचैनी पैदा करे, सुलाए नहीं, क्योंकि अब और ज्यादा सोना मृत्यु का लक्षण है।" प्रगतिशील कवियों की पंक्ति में सदैव अग्रणी रहने वाले बाबा नागार्जुन को 25 सितंबर 1949 ई. को आयोजित 'प्रलेस' के इलाहाबाद सम्मेलन में अध्यक्ष बनाया गया था और उन्होंने देश के अलग-अलग हिस्सों से आये लेखकों को सम्बोधित करते हुए जनतान्त्रिक मूल्यों की रक्षा और जनता के हित में जुटे रहने का आह्वान किया था – "साथियो ! हम शासक-शोषक वर्ग के पिछलगुआ, जी-हुजूर, चाटुकार लेखक नहीं हैं। हम बिड़ला-टाटा-डालमिया के चाकर नहीं हैं। हम नेहरू और पटेल की थाप पर थिरकने-ठमकने वाले आर्टिस्ट नहीं हैं। सर्वसाधारण जनता को हम अपनी अधिस्वामिनी समझते हैं। हमारी सारी प्रेरणाओं और कल्पनाओं का मूल श्रोत वही है।" इन बारह-तेरह वर्षों में हिन्दी की प्रगतिशील कविता ने हिन्दी साहित्य को जनता के पक्ष में खड़े होने का अदम्य साहस से युक्त किया। तदनन्तर प्रगतिशील साहित्य और उसके स्वरूप पर गहन विचार-विमर्श प्रारम्भ होता है। उनमें से कुछ विद्वानों के विचार प्रस्तुत हैं –

प्रगतिशील आन्दोलन की शुरुआत के सन्दर्भ में डॉ॰ शिवकुमार मिश्र इसे न तो अचानक घटी घटना मानते हैं और न ही इसे विदेशी सिद्धान्तों का आयात या फिर प्रभाव मात्र स्वीकार करते हैं, बल्कि वे इस साहित्य आन्दोलन की पृष्ठभूमि में विद्यमान युग-जीवन की सत्यता को ज्यादा महत्त्व देते हैं। उनके अनुसार – "प्रगतिवाद कोई आकस्मिक अथवा अनहोनी घटना न थी, उसके पीछे वह सच्चाई थी, जिसका युगजीवन से सीधा सम्बन्ध था। बहुधा ही मार्क्सवादी-समाजवादी आधार को देखकर उसे विदेशी विचारधारा या आन्दोलन कहकर उससे छुट्टी पा लेने का उपक्रम किया जाता है, किन्तु तत्कालीन परिस्थितियों के सन्दर्भ में इस प्रकार के विचार की निस्सारता आप-से आप स्पष्ट हो जाती है।"

प्रेमचंद भी इस प्रकार के आरोप मढ़ने वालों की भर्त्सना करते थे – "यह सभ्यता अमुक देश की समाज-रचना अथवा धर्म-मजहब से मेल नहीं खाती या उस वातावरण के अनुकूल नहीं है – यह तर्क नितान्त असंगत है। छोटी-छोटी बातों में अन्तर हो सकता है, पर मूल स्वरूप की दृष्टि से सम्पूर्ण मानव जाति में कोई भेद नहीं है। जो शासन-विधान या समाज-व्यवस्था एक देश के लिए कल्याणकारी है, वह दूसरे देश के लिए भी हितकर होगी।" वे साम्राज्यवादी ताकतों के साथ-साथ देशी सामन्तवादी, शोषक एवं महाजनी सभ्यता के चतुर चालों को भी भली-भाँति समझते थे और कड़े शब्दों में उसकी निन्दा भी करते थे।

रामविलास शर्मा प्रगतिवादी साहित्य की आवश्यकता पर बल देते हुए कहते थे कि यह साहित्य इसलिए भी ज़रूरी था क्योंकि "हम अपने साहित्य को ऐसी विचारधारा के असर से बचाएँ, जो साम्राज्यवाद और सामन्तवाद से समझौता करना सिखाती है।"

प्रगतिशील साहित्य के फ़लक को अपेक्षाकृत विस्तृत करते हुए उन्हीं के समकालीन शिवदानसिंह चौहान यह मानते थे कि "प्रगतिशील साहित्य से मतलब उस साहित्य से है जो समाज को आगे बढ़ाता है, मनुष्य के विकास में सहायक होता है। प्रगतिशील साहित्य भारतीय जनता की सांस्कृतिक विरासत का ऐतिहासिक विकास है। यह स्वाधीनता, शान्ति और जनतन्त्र का साहित्य है।"

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में देखा जाए तो प्रगतिशील साहित्य मार्क्सवादी सिद्धान्तों से प्रेरित होते हुए भी मानवतावाद, समाजवाद और सामान्य जनों की पीड़ा को व्यक्त करने वाला साहित्य है, जिसका फ़लक इतना व्यापक है कि उसमें वैश्विक परिवर्तनों के साथ-साथ देश के प्रत्येक समाज, वर्ग, जाति और जन-जन को समाहित करने की क्षमता विद्यमान है। राष्ट्रीय स्तर पर हर प्रदेश, वर्ग, जाति जब गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्षरत था, तब उस समय साहित्य के सन्दर्भ में सफाई देने की ज़रूरत इसलिए भी थी, क्योंकि आलोचना के क्षेत्र में सबसे जोर-शोर से उठने वाला निर्णयात्मक प्रश्न था – "साहित्य किसके लिए !" अर्थात् मानव जीवन में उसकी क्या भूमिका है ? प्रगतिशील साहित्य का समर्थन करते हुए कथासम्राट् प्रेमचंद ने स्पष्ट शब्दों में यह कहा था कि "वह मानवता, दिव्यता और भद्रता का बाना बाँधे होता है। जो दलित है, पीड़ित है, वंचित है – चाहे वह व्यक्ति हो या समूह – उसकी हिमायत और वकालत करना उसका फर्ज है। उसकी अदालत समाज है और इसी अदालत के सामने वह अपना इस्तगाशा पेश करता है।" प्रगतिशील दृष्टि से किसी भी साहित्य की श्रेष्ठता का महत्त्वपूर्ण आधार यह है कि वह अपने समय की वास्तविकता को, उसकी सम्पूर्णता के साथ चित्रित कर पाया है या नहीं ? उसने समाज में संघर्षरत प्रगतिवादी और प्रतिक्रियावादी शक्तियों को पहचाना है या नहीं ? उसकी यथार्थ-दृष्टि वर्तमान तक ही सीमित है या वह इतनी व्यापक है कि वर्तमान को अतीत और भविष्य के साथ किसी तर्कसंगत पद्धत्ति से जोड़कर देख सकती है ? इन्हीं प्रश्नों के उत्तर में प्रगतिवादी साहित्यकारों ने 'साहित्य समाज के लिए', 'साहित्य जनता के लिए' जैसा लोक-कल्याणकारी नारा दिया।

कई बार प्रगतिवाद और प्रगतिशील साहित्य के बीच अन्तर का प्रश्न भी उठाया जाता है। प्रसिद्ध आलोचक शिवदानसिंह चौहान 'प्रगतिवाद' शब्द को 'मार्क्सवादी सौन्दर्य-सिद्धान्त' का पर्याय मानते हैं, जबकि प्रगतिशील कविता के पीछे वे किसी दार्शनिक विचारधारा की प्रबल आग्रह को स्वीकार नहीं करते। उनकी दृष्टि में "प्रगतिशील कवि गाँधीवादी भी हो सकता है, मार्क्सवादी भी और द्वैत-अद्वैतवादी भी। जो साहित्य पाठक (समाज) को स्वस्थ प्रेरणा देता है, व्यक्ति को असामाजिक और मानव द्रोही नहीं बनाता, जीवन-संग्राम में आगे बढ़ने का बल और साहस देता है और मनुष्य की चेतना को गहरा, व्यापक और मानवीय बनाता है, हिंसा और द्वेष को नहीं बढ़ाता, ... जिसमें कला-सौष्ठव और गहराई है, वह सब प्रगतिशील है।" लेकिन दूसरे आलोचक यह मानते हैं कि इनमें कोई बुनियादी अन्तर नहीं है। इस तथ्य को डॉ० नामवर सिंह ने बहुत अच्छी तरह रेखांकित किया है – "जिस तरह छायावादी कविता और छायावाद भिन्न नहीं है, उसी तरह प्रगतिवाद और प्रगतिशील

साहित्य भी भिन्न नहीं हैं। 'वाद' की अपेक्षा 'शील' को अधिक अच्छा और उदार समझकर इन दो में भेद करना कोरा बुद्धिविलास है।" इस पाठ-सामग्री के शीर्षक निर्धारण के क्रम में भी इस बात का ध्यान रखा गया है कि इनमें कोई भेद नहीं है। यहाँ हिन्दी की प्रगतिशील कविता उस रचनात्मक दायित्व-बोध से सम्बद्ध है, जो वर्गीय विषमता से ग्रस्त समाज में शोषित-उत्पीड़ित, मजदूर-किसान और अभावग्रस्त वर्गों को समाजिक, राजनैतिक, आर्थिक मुक्ति से लेकर अज्ञानता के अन्धकार से छुटकारा दिलाने का निरन्तर प्रयास करता है। इस दृष्टि से हिन्दी प्रगतिशील साहित्य एक ऐसा आन्दोलन है, जो समाज को सभी दृष्टियों से गतिशील, परिवर्तनशील और जीवन्त बनाए रखता है। मोटे तौर पर हिन्दी साहित्य में 1930-35 ई. से लेकर अब तक इस प्रगतिशील कविता की अविरल धारा निरन्तर प्रवाहित हो रही है एवं निसन्देह आगे भी जारी रहेगी।

यह बिल्कुल सच है कि आजादी के विगत छह दशकों में जागरूकता के तमाम हवा-हवाई घोषणाओं के बावजूद जनसामान्य के मूल जीवन में कोई खास बदलाव नहीं हुआ है। दम-घोटू बेरोजगारी के समानान्तर निरन्तर बढ़ती महँगाई ने आम लोगों की कमर तोड़ डाली है। गुलामी के समय जितनी बेचैनी और दुराशा लोगों में थी, उससे कहीं अधिक ये भावनाएँ आजादी के बाद प्रबल हुई हैं। गाँव-देहात से लेकर मेट्रो-शहरों तक के लोग सिर्फ़ सरकार और प्रशासन से अधिक अपेक्षाएँ रखते हैं और बाज़ार के कुचक्र एवं भ्रष्टाचार के दलदल में आकण्ठ फँसे प्रशासन से जब उन्हें राहत की उम्मीद नहीं दिखाई देती तब उनकी बेचैनी और भी उग्र हो उठती है। पूरे देश में असंतुलन और अघोषित शोषण का कहर जारी है, किन्तु अज्ञानता के कारण क्या करें, क्या न करें वाली स्थिति पैदा हो गई है। इस अज्ञानता का मूल कारण है लोगों में शिक्षा का अभाव। वस्तुतः अज्ञानता से गरीबी बढ़ती है और गरीबी से अशिक्षा निरन्तर बनी रहती है। भारतीय समाज का यह विषमचक्र टूट नहीं पा रहा है। अपने पूर्ववर्ती प्रगतिशील कवियों की तरह बाद के प्रगतिशील विचारधारा से अनुप्राणित रचनाकारों ने भी भारतीय समाज के इसी नितान्त जटिल एवं कड़वे सच को अपनी रचनाओं का उपजीव्य बनाया। उनकी रचनाओं में पिछड़े भारतीय सामन्ती-समाज का सड़ाँध और घुटन के समानान्तर निरन्तर बदलते घोर संघर्ष और धारदार होती नयी चेतना का संश्लिष्ट रूप तो व्यक्त हुआ ही है, साथ ही उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से अनपढ़ और नासमझ आम जनता को जड़ एवं अमानवीय व्यवस्थाओं पर जोरदार हमला करने का नया तेवर भी प्रदान किया। आज हम एक ऐसे दौर से गुजर रहे हैं जहाँ मानवीय संवेदनाएँ विरल होती जा रही हैं और आभासी दुनिया में ही सारे परिवर्तनों को सफल बना देने का कोरा ढोंग किया जा रहा है। सत्ता, बाज़ार और मीडिया को अपने अधीन करके फासीवादी शक्तियाँ अपेक्षाकृत ज्यादा प्रचण्ड रूप धारण कर चुकी हैं। जाहिर है चुनौती ज्यादा विकट है किन्तु ऐसे में प्रगतिशील विचारों की ज्यादा आवश्यकता महसूस की जा रही है।

3.2.03. प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि

जिस प्रकार द्विवेदी युग की इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता और स्थूलता के प्रति विद्रोह में छायावाद का जन्म हुआ, उसी प्रकार छायावाद की सूक्ष्मता, कल्पनात्मकता, व्यक्तिवादिता और समाज-विमुखता की प्रतिक्रिया में एक नयी साहित्यिक काव्यधारा का जन्म हुआ। इस धारा ने कविता को कल्पना-लोक से निकाल कर जीवन के वास्तविक धरातल पर खड़ा करने का प्रयत्न किया। जीवन का यथार्थ और वस्तुवादी दृष्टिकोण इस कविता का

आधार बना । मनुष्य की वास्तविक समस्याओं का चित्रण इस काव्यधारा का विषय बना । यह धारा साहित्य में 'प्रगतिवाद' के नाम से प्रतिष्ठित हुई ।

'प्रगति' का सामान्य अर्थ है – 'आगे बढ़ना' और 'वाद' का अर्थ है – 'सिद्धान्त' । इस प्रकार प्रगतिवाद का सामान्य अर्थ है 'आगे बढ़ने का सिद्धान्त ।' लेकिन प्रगतिवाद में इस आगे बढ़ने का एक विशेष ढंग है, विशेष दिशा है जो उसे विशिष्ट परिभाषा देता है । इस अर्थ में 'प्राचीन से नवीन की ओर', 'आदर्श से यथार्थ की ओर', 'पूँजीवाद से समाजवाद की ओर', 'रूढ़ियों से स्वच्छन्द जीवन की ओर', 'उच्चवर्ग से निम्नवर्ग की ओर' तथा 'शान्ति से क्रान्ति की ओर' बढ़ना ही प्रगतिवाद है । परन्तु हिन्दी साहित्य में प्रगतिवाद विशेष अर्थ में रूढ़ हो चुका है । जिसके अनुसार प्रगतिवाद को मार्क्सवाद का साहित्यिक रूप कहा जाता है । जो विचारधारा राजनीति में साम्यवाद है, दर्शन में द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद है, वही साहित्य में प्रगतिवाद है । इसी प्रगतिवाद को 'समाजवादी यथार्थवाद' (सोशेलिस्टरियलिज़्म) भी कहते हैं । उन दिनों यूरोप में मार्क्सवाद का प्रभाव निरन्तर बढ़ रहा था । 1919 ई. में रूस में क्रान्ति हुई । जारशाही का अन्त हुआ और मार्क्सवाद से प्रेरित बोल्शेविक पार्टी की सत्ता स्थापित हुई और साम्यवादी विचारधारा ने जोर पकड़ा । जिसने साहित्य में भी एक नवीन दृष्टिकोण को जन्म दिया । लोगों को यह समानतावादी / समतावादी विचार खूब जँच रहा था । सन् 1930 में भारतीय कम्यूनिस्ट पार्टी का जन्म हुआ और 1934 ई. में कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी का । धीरे-धीरे राजनीति में वामपंथी शक्तियों का जोर बढ़ा । कांग्रेस में गाँधी के अहिंसात्मक सिद्धान्त को न मानने वाले लोगों की संख्या बढ़ रही थी । मजदूरों के आन्दोलन हो रहे थे । इस प्रकार तत्कालीन परिस्थितियाँ वैचारिक उग्रता और समाजोन्मुखता को बढ़ावा दे रही थी । साहित्यकार समाज की ज्वलन्त समस्याओं से जूझ रहे थे ।

सन् 1935 ई. में ई.एम. फार्स्टर के सभापतित्व में 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोशियन' नामक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का पहला अधिवेशन पेरिस में हुआ । सन् 1936 ई. में डॉ० मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के प्रयत्नों से इस संस्था की एक शाखा भारत में खुली और प्रेमचंद की अध्यक्षता में लखनऊ में उसका प्रथम अधिवेशन हुआ और तभी से 'प्रोग्रेसिव लिटरेचर' के लिए हिन्दी में 'प्रगतिशील साहित्य' का प्रचलन शुरू हुआ । कालान्तर में यही प्रगतिवाद हो गया । प्रेमचंद, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जोश इलाहाबादी जैसे अग्रणी लेखकों और कवियों ने इस आन्दोलन का स्वागत किया । पन्त, निराला, दिनकर, नवीन ने इसमें सक्रिय योगदान दिया । बाद में केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, शमशेरबहादुरसिंह, धूमिल आदि कवियों ने इस काव्य-आन्दोलन से प्रेरित होकर साहित्य-सृजन किया एवं सामान्य जनता का व्यापक समर्थन प्राप्त किया ।

अर्थ की दृष्टि से प्रगतिवाद के दो अर्थ हैं – व्यापक और सीमित या साम्प्रदायिक । प्रगतिशील व्यापक और उदार अर्थ में प्रयुक्त होता है । जिसके अनुसार आदिकाल से लेकर अब तक समस्त साहित्य परम्परा प्रगतिशील है । लेकिन सीमित अर्थ में यह साहित्य प्रचारात्मक है जो मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है, जिसमें पिछले सम्पूर्ण साहित्य को सामन्तवादी और प्रतिक्रियावादी कहकर नकार दिया जाता है । हिन्दी साहित्य पर गौर किया जाए तो छायावाद ने जहाँ काव्य के क्षेत्र में ही सर्वोपरि स्थान बनाया, वहाँ प्रगतिवाद ने साहित्य की अन्य विधाओं – उपन्यास, कहानी, आलोचना, नाटक आदि के क्षेत्र में भी परिवर्तनकारी कार्य किये ।

प्रगतिशील कविता के बुनावट पर ध्यान दिया जाए तो यह सामाजिक यथार्थवाद पर आधारित एक ऐसा साहित्यिक आन्दोलन है, जिसमें जीवन और यथार्थ के वस्तु-सत्य को प्रश्रय मिला। प्रगतिवाद का मुख्य उद्देश्य था साहित्य में उस सामाजिक यथार्थवाद को प्रतिष्ठित करना, जिसमें साधारण मनुष्य को भिन्न एवं नये ढंग से स्थापित किया जा सके। यह वर्ग-संघर्ष की साम्यवादी विचारधारा द्वारा ही सम्भव था और इसकी मूल प्रेरणा मार्क्सवाद से प्रेरित थी। यहाँ प्रगतिवाद का अर्थ और उसकी मुख्य विशेषताओं को समझा जा सकता है। इस सन्दर्भ में पहली बात तो यह कि प्रगतिवाद में समाज के आगे बढ़ने पर बल दिया जाता है, उसकी उन्नति को सर्वोपरि माना जाता है। जैसे ठहरा हुआ पानी कुछ समय बाद दुर्गन्धयुक्त हो जाता है और प्रयोग करने योग्य नहीं रहता, किन्तु नदी का बहता पानी जहाँ-जहाँ से बहता है वहाँ की भौगोलिक स्थिति के अनुसार अपनी जगह बनाता हुआ, आस-पास के लोगों को आनन्द देता हुआ आगे बढ़ता जाता है। बहते पानी में गंदगी रुकती नहीं अतः उसका पानी प्रयोग में आने योग्य रहता है। ठीक वैसे ही, जो समाज अपने समय की आवश्यकताओं को नहीं समझता और वर्षों पहले निर्मित सिद्धान्तों, नियमों, मान्यताओं और विश्वासों में जकड़ा रहता है वह भी कभी आगे नहीं बढ़ता और रुके हुए पानी की भाँति सड़ जाता है। प्रगतिवाद उन रूढ़ियों, नियमों, मान्यताओं, पद्धत्तियों का विरोध करता है जो समाज की प्रगति में बाधक होते हैं। इसलिए वह उन नियमों-मान्यताओं को अपनाने पर बल देता है जो वर्तमान जीवन के अनुकूल होते हैं।

दूसरी बात है सामाजिक यथार्थ और जीवन एवं यथार्थ के वस्तु सत्य की अभिव्यक्ति का मामला। हम जिस समाज में रहते हैं, उसकी अच्छाइयों और बुराइयों से प्रभावित भी होते हैं। गुण-दोषों से भरपूर इस समाज में ही हमारे व्यक्तित्व का निर्माण होता है और अपनी मानवीय इच्छाओं, आकांक्षाओं के सहारे इस समाज को भी हम बनाते-बिगाड़ते हैं। समाज में व्याप्त अच्छाइयाँ-बुराइयाँ, असमता या विषमता, गरीबी-बदहाली आदि सामाजिक यथार्थ हैं। साहित्य में यदि केवल अच्छाइयों का ही चित्रण हो तो वह आदर्शवादी साहित्य कहलाता है और यदि केवल बुराइयों का ही चित्रण हो तो नग्न यथार्थवादी साहित्य। प्रसिद्ध कथाकार प्रेमचंद ने कहा था कि यथार्थ केवल प्रकाश या केवल अन्धकार नहीं है, बल्कि अन्धकार के पीछे छिपा प्रकाश और प्रकाश के पीछे छिपा अन्धकार है। प्रगतिवाद उन शक्तियों को पहचानने पर बल देता है जिनके कारण हमारा समाज अन्धकारग्रस्त है और उन ताकतों को पहचानने पर भी बल देता है जिनके बलबूते इस अन्धकार को हराया जा सकता है।

तीसरी बात है प्रगतिशील कविता का प्रेरक मार्क्सवादी सिद्धान्त है। यह सिद्धान्त शोषक-शक्तियों का विरोध करता है और शोषित समाज में चेतना जगाने, उन्हें अपने अधिकारों और सामूहिक वर्गीय एकता में पूर्ण विश्वास करने पर बल देता है। यह उस सामन्तवादी और पूँजीवादी मानसिकता और संस्कृति का विरोध करता है जो सत्ता और धन को कुछ मुट्ठी भर लोगों के हाथों में केन्द्रित कर देती है, जिससे वे स्वार्थी और दम्भी हो जाते हैं और अपनी शक्ति एवं धन का दुरूपयोग कर उन लोगों का शोषण करते हैं जिनके परिश्रम के बल पर वे अपार धन सुख प्राप्त करते हैं। प्रगतिशील कविता भी सामन्तवाद और पूँजीवाद का विरोध करती है जो समाज में व्याप्त

अन्धकार का कारण है और उन गरीबों मजदूरों-किसानों को प्रकाश-पुंज मानता है जिनके बल पर यह अन्धकार नष्ट हो सकेगा। प्रगतिवाद की दृष्टि में यही श्रमशील मानव साहित्य का 'नया हीरो' अथवा उपजीव्य है।

अपने रूढ़ अर्थ में प्रगतिवाद 1936 से 1943 ई. तक काव्य के शिखर पर रहा। उसके बाद हिन्दी साहित्य के ऐतिहासिक काल-क्रम में प्रयोगवाद, नयी कविता जैसी नयी काव्यधाराओं की स्थापना हुई। इन काव्य-आन्दोलनों के बावजूद प्रगतिशील कविता की ओजस्वी धारा तब से अब तक निरन्तर प्रवाहित हो रही है।

3.2.04. हिन्दी की प्रगतिशील काव्य-परम्परा

अब तक के विवेचन से आपने यह अनुभव किया होगा कि हिन्दी की प्रगतिशील कविता भारतीय सामाज के अन्तर्विरोधों, निरन्तर गतिशील और परिवर्तित राजनैतिक षड्यन्त्रों के घात-प्रतिघात के बीच से विकसित हुई है। अतः प्रगतिशील कविता की परम्परा एकरस या सपाट न होकर अनेक उतार-चढ़ावों की सूचक है। इस उतार-चढ़ाव के कार्य-कारण सम्बन्धों को गहराई से समझने के लिए इस काव्यधारा को विभिन्न काल-खण्डों में विभक्त किया जा सकता है। यद्यपि यह विभाजन कई बार यान्त्रिक भी प्रतीत होता है, क्योंकि साहित्य के काल-खण्ड निरपेक्ष न होकर परस्पर सम्बद्ध होते हैं। फिर भी प्रगतिशील कविता के सन्दर्भ में प्रतिरोध की शक्तियों की गुणात्मक भिन्नता से इनकार नहीं किया जा सकता। इसी विशेषता को ध्यान में रखकर यहाँ प्रगतिशील कविता के विकास क्रम को तीन काल-खण्डों में बाँटकर देखने का प्रयास किया जा रहा है।

3.2.04.1. प्रारम्भिक दौर (स्वतन्त्रता प्राप्ति से पूर्व तक)

आधुनिककाल के आरम्भिक काल में ही प्रगतिशील काव्य-चेतना के कुछ संकेत मिलने लगे थे और छायावाद के चरमकाल में पन्त जैसे कवि 'युगान्त' के माध्यम से बदलाव की घोषणा कर रहे थे। हिन्दी की राष्ट्रीय काव्यधारा छायावाद की प्रासंगिता पर प्रश्न-चिह्न लगा रहा था। माखनलाल चतुर्वेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', रामधारीसिंह 'दिनकर', सोहनलाल द्विवेदी आदि कवियों ने अहिंसावाद के विरुद्ध ऐसी कविताएँ लिखीं, जिनमें समाजवादी विचारधारा का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। यद्यपि ये कवि प्रगतिशील कवियों की सूची में सम्मिलित कवि नहीं थे। इनमें माखनलाल चतुर्वेदी की 1929-30 ई. में प्रकाशित 'मरण त्यौहार', 'कैदी और कोकिला' जैसी कविताएँ तो तत्कालीन राष्ट्रीय आन्दोलन के उग्रतम संघर्ष का प्रबल समर्थन करती प्रतीत होती हैं। दिनकर ने भी 1933 ई. में ही 'नयी दिल्ली के प्रति' कविता लिखकर अपना काव्य तेवर जाहिर कर दिया था। फिर प्रगतिशील कविता की औपचारिक शुरुआत की घोषणा होती है, जिसमें केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन, मुक्तिबोध, नरेन्द्र शर्मा, रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि कवि सम्मिलित होकर प्रगतिशील कविता की नयी ऊँचाइयों पर पहुँचाते हैं। प्रगतिशील कविता के आरम्भिक दौर की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता है – शोषित उत्पीड़ित, किसान-मजदूर वर्ग के जीवन संघर्षों के प्रति गहरी सहानुभूति का भाव और उन्हें इस जकड़बंदी से मुक्ति का आह्वान करना।

3.2.04.2. दूसरा दौर(स्वातन्त्र्योतर काल से सातवें दशक के मध्य तक)

आजादी के बाद बदले परिवेश में वामपंथी विचारधारा के समक्ष भिन्न प्रकार की चुनौतियाँ प्रकट हुईं क्योंकि सत्ता से सहयोग और विरोध के प्रश्न पर दो खेमे तैयार हो गए। इस मतभेद को 1947 ई. के प्रगतिशील लेखक संघ के इलाहाबाद अधिवेशन और 1949 ई. के भिवंडी में जारी घोषणा-पत्र के माध्यम से आसानी से समझा जा सकता है। 1953 ई. में प्रगतिशील लेखक संघ के दिल्ली अधिवेशन में संशोधनवादी-उदारतावादी लोगों के हाथ में 'संघ' का नेतृत्व गया और उन्होंने जनता के पक्ष में लड़ने के संकल्प को छोड़कर सत्ता के साथ समझौता का रुख अपनाया। यहाँ से एक संगठित साहित्य-आन्दोलन के रूप में इसकी भूमिका समाप्त मानी जाने लगी और नयी कविता के मंच से प्रगतिवाद को मृत घोषित कर दिया गया। इसके बावजूद केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, मुक्तिबोध आदि कवियों ने इन परिस्थितियों से डटकर मुकाबला किया। यह वही दौर है जहाँ कला की स्वायत्तता, कलाकार की आजादी, जीवनानुभूति और सौन्दर्यानुभूति की समानान्तरता, अनुभव की प्रामाणिकता और प्रामाणिक अनुभव, काव्य का वस्तु एवं रूपतत्त्व आदि विवाद उठे, जिनसे इन साहित्यकारों ने रचना और आलोचना दोनों स्तर पर जमकर लोहा लिया। खास बात यह है कि रचना के स्तर पर प्रगतिशील काव्य की महत्तम उपलब्धियाँ इसी दौर में सामने आयीं। इस काल की प्रगतिशील कविता ने आजादी से मोहभंग, सरकारी योजनाओं की असफलता के साथ-साथ सत्ता-शासन के जन-विरोधी चरित्र और देशी पूँजीपतियों के सत्ता से नापाक गठजोड़ को उजागर किया।

3.2.04.3. तीसरा दौर (सातवें दशक के मध्य से अब तक)

प्रगतिशील कविता का यह दौर समेकित मूल्यांकन के लिए याद किया जाता है कि एक लम्बे अन्तराल के बाद परिवर्तनकारी शक्तियों की स्थिति क्या रही? यानी मेहनतकश किसान-मजदूर जनता कहाँ तक संगठित हो सकी है और जन-आन्दोलनों की जन-पक्षधरता का क्या हश्र हुआ? इन प्रश्नों के आलोक में विचार किया जाए तो 20-25 वर्षों की आजादी के बाद यह स्पष्ट हो चुका था कि सत्ता आन्दोलनों को दबाने में सक्षम है। 1970 ई. के बाद सत्ता ने कई पैंतरे बदले और उसमें अपेक्षाकृत अधिक आक्रामकता आई। आठवें दशक को इस दृष्टि से उथल-पुथल का युग माना जाता है। आपातकाल की घोषणा, जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति, देश-व्यापी कर्मचारियों की हड़ताल, गुजरात का छात्र-आन्दोलन आदि के समानान्तर प्रगतिशील कविता ने नयी ऊर्जा का अनुभव किया। पुराने कवियों में नागार्जुन की बूढ़ी हड्डियों में शोले धधक रहे थे, वहीं धूमिल, आलोक धन्वा, अरुण कमल, वेणु गोपाल, कुमार विकल, ज्ञानेन्द्रपति, पंकजसिंह, श्रीराम तिवारी जैसे ओजस्वी कवियों की एक लम्बी पंक्ति प्रगतिशील जनवादी कविता में नया स्वर भरने के लिए दृढ़ संकल्प ले चुका था। इस दौर की कविताएँ राजनैतिक-सामाजिक अन्याय को सिर्फ़ प्रति-ध्वनित ही नहीं करतीं बल्कि उसका प्रतिकार भी करती हैं। आठवें दशक को हिन्दी की प्रगतिशील कविता का जनवादी दौर माना जाता है, क्योंकि इसमें वामपंथी और जनवादी चेतना की विभिन्न छायाएँ दिखाई देती हैं। इस दौर में प्रगतिशील लेखक संघ के पुनरुद्धार के साथ ही 'जनवादी लेखक संघ' और 'नव जनवादी लेखक संघ' की स्थापना होती है। इन संगठनों के अपने विवाद भी प्रकट हुए,

किन्तु अधिकतर प्रगतिशील रचनाकारों का साहित्य के जनाभिमुखता में ही विश्वास था और आज भी प्रगतिशील कविता गरीब-मेहनकश के हित में वही कार्य कर रही है।

3.2.05. प्रगतिशील कवियों की जनवादी एवं सामाजिक चेतना

हिन्दी साहित्य के सुधी पाठकों, आप 'प्रगतिशील कवियों की जनवादी चेतना, सामाजिक चेतना' के सघन पक्ष की पड़ताल करना चाहते हैं। अब तक आप प्रगतिशीलता की अवधारणा, प्रगतिवाद का मूलभाव, प्रगतिवाद का वैचारिक आधार का अध्ययन कर चुके हैं। यहाँ प्रगतिशील कवियों की रचनाओं के माध्यम से उनका मूल्यांकन करने का प्रयास कियाजाएगा। किन्तु इस कार्य को सम्पन्न करने से पहले 'जनवादी चेतना' और 'सामाजिक चेतना' के आशय को समझना बहुत ज़रूरी है, उसके बाद प्रगतिशील कवियों और उनकी रचनाओं का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जाएगा।

यहाँ 'चेतना' शब्द केन्द्रीय स्थिति में है और व्यापक अर्थ में 'चेतना' का प्रयोग बोध, बुद्धि, सुधि, मनोवृति, स्मृति, होश, संज्ञा, जीवन्तता, ज्ञानात्मक मनोवृति आदि शब्दों के समान किया जाता है। इसे मनुष्य के मानस की प्रमुख विशेषता के रूप में ग्रहण किया जाता है और इसका सम्बन्ध जीवनगत विषयों एवं व्यवहारों के ज्ञान से है। चेतना सामाजिक संसर्ग से विकसित होती है और मनुष्य चेतना के कारण उत्पन्न प्रेरणा से ही किसी कार्य में संलग्न होता है। किसी मनुष्य की चेतना उसकी व्यक्तिगत सम्पत्ति न होकर सामाजिक उपक्रम का परिणाम होती है। चेतना के तीन स्तर माने जाते हैं – चेतन, अवचेतन और अचेतन। इनमें से चेतन सहज-सुलभ स्तर है, जिसके द्वारा मनुष्य सोचता, समझता और दैनिक कर्म में संलग्न होता है। सामाजिक दृष्टि से मनुष्य जड़ता और अपूर्ण चेतना से पूर्ण चेतना की दिशा में निरन्तर गतिशील रहता है। साहित्य और समाज के सन्दर्भ में यही चेतना स्वयं और अपने आस-पास के वातावरण और उससे सम्बद्ध जटिल जीवन को समझने और मूल्यांकन करने की शक्ति उत्पन्न करती है।

सामाजिक चेतना व्यक्तिमूलक और समाजमूलक दोनों रूपों में प्रकट होती है। इनमें से व्यक्तिमूलक सामाजिक चेतना मनुष्य के व्यक्तित्व के दो छोरों की सूचक है – एक छोर उसके क्षुद्र व्यक्तित्व को दर्शाता है, जबकि दूसरा छोर उसके विराट् व्यक्तित्व को। सजग व्यक्ति जितने बृहत्तर स्तर पर सामाजिक चेतना से जुड़ता जाता है उसका जीवन उतना ही समाज-सापेक्ष होता जाता है। बल्कि गौर से देखा जाए तो मनुष्य की सामाजिक चेतना और उसके बौद्धिक चिन्तन का स्वरूप समाज की भौतिक-आर्थिक परिस्थितियों द्वारा निर्मित होता है।

सामाजिक चेतना के समानान्तर साहित्य में जनवादी चेतना का भी उल्लेख किया जाता है। यहाँ जनवाद कला, साहित्य और जीवन के प्रति एक विशिष्ट दृष्टिकोण का सूचक है, जिसमें जन सामान्य को महत्त्व दिया जाता है और मानव-मंगल की भावना इसका केन्द्रीय विषय है। इसी कारण क्षुद्र व्यक्तिगत स्वार्थों से ऊपर उठकर बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय के आदर्श को प्राप्त करना इसका चरम लक्ष्य है। कल्पित स्वर्गिक आनन्द का आकांक्षी न होकर जनवाद भौतिक सुखों की प्राप्ति के लिए सतत प्रयत्नशील रहता है। जनवादी दर्शन के अनुसार संसार के

सुख-साधनों पर व्यक्ति या वर्ग-विशेष के एकाधिकार के परिणामस्वरूप अन्य व्यक्ति या वर्ग अपने नैसर्गिक अधिकारों से वंचित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में मनुष्य की सामूहिक प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। इसीलिए जनवाद सुख-साधनों के सम्यक् और समान वितरण की माँग करता है तथा राष्ट्र की पूँजी पर सबके बराबर अधिकार की वकालत करता है। इस विवेचन से जनवाद समाजवाद का समानार्थी प्रतीत होता है और हिन्दी की प्रगतिशील कविता में जनवादी स्वर स्वभाविक रूप से व्यक्त हुआ है। हिन्दी की प्रगतिशील कविता के सन्दर्भ में जनवादी चेतना वह इंकलाबी चेतना है जो मानव की व्यापक संभावनाओं के विकास के महान् भविष्य के प्रति गहरी आशा और दृढ़ विश्वास रखती है। साथ ही जो वर्तमान की सचेतन कसौटी पर आम-जन की जटिल शोषण प्रक्रिया को ध्वस्त करने का जोखिम लेती है। यह मानव समूह के अधिकार और आजादी की वकालत ही नहीं करती, बल्कि उसमें क्रान्तिशीलता और सामूहिक शक्ति में विश्वास का भाव भी भरती है। यह समाज के सन्दर्भ में ऐसी परिवर्तनकारी चेतना है जो शोषण व्यवस्था – सामन्तवादी, पूँजीवादी, साम्राज्यवादी, छद्म-समाजवादी – का खुलकर विरोध करती है और जन समुदाय को जाग्रत् कर विरोधियों के विनाश के लिए प्रेरित करती है। लल्लन राय के शब्दों में – "जनवादी चेतना निश्चित रूप से जन-चेतना है, जो अपने आधार, स्वरूप और मूल प्रकृति में वामपंथी वर्गीय चेतना है। वर्गीय विषमता से ग्रस्त समाज में यह वर्ग-चेतना रचनाकार को वास्तविक जन-गण के करीब ले जाती है, जनता से एकात्म करते हुए उसे यह समझा देती है कि जनता ही उसकी शक्ति और प्रेरणा का मूल स्रोत है। जनता की ज़िंदगी, उसकी भूख-प्यास, आशा-आकांक्षा आदि मात्र उसके लेखन का विषय नहीं वरन् वही उसकी अपनी वास्तविक आशा-आकांक्षाएँ भी हैं।"

सचमुच जनवादी कविता जन-जन की भावनाओं का दर्पण है। धूमिल की मानें तो "जनवादी कविता से हमारा तात्पर्य उस कविता से है, जो जनता के मानसिक परिष्कार, उसके आदर्श और मनोरंजन से लेकर क्रान्ति-पथ की तरफ मोड़ने वाला, प्राकृतिक शोभा और प्रेम शोषण और सत्ता के घमण्ड को चूर करने वाला, स्वतन्त्रता और मुक्ति गीतों को अभिव्यक्ति देने वाला, ये सभी कोटियाँ जनवादी काव्य की हो सकती हैं। बशर्ते वह मन को मानवीय, जन को व्यापक जन बना सके।" इन कथनों के आलोक में हिन्दी की प्रगतिशील कवियों की जनवादी और सामाजिक चेतना के निम्नलिखित आयाम निर्धारित किए जा सकते हैं – सामाजिक विसंगतियों का उद्घाटन, किसान एवं मजदूरों की दशा का चित्रण, शोषितों-उपेक्षितों के प्रति सहानुभूति, जातिवाद का खण्डन, मानवीय मूल्यों का प्रतिपादन, नारी की दासता का निरूपण, दलित जीवन की पीड़ा का वर्णन एवं उनके शोषण-मुक्ति का पथ-प्रदर्शन, आर्थिक विषमता का खण्डन, वर्गीय दृष्टिकोण का विश्लेषण, मार्क्सवादी-साम्यवादी एवं प्रगतिवादी चिन्तन, व्यवस्था के दमन और तानाशाही रवैये का पर्दाफाश करना, संघर्ष और क्रान्ति की शक्ति का निरूपण, सामन्ती मूल्यों, ईश्वरीय सत्ता, अन्धविश्वासों आदि के प्रति नकार भाव, राजनैतिक भ्रष्टाचार के विरुद्ध हल्ला बोल, स्वतन्त्रता, लोकतन्त्र, संविधान और कानून के खोखलेपन पर प्रहार, जन-विरोधी तत्त्वों के प्रति आक्रोश, जन-शक्ति में विश्वास, उत्कट जिजीविषा, संघर्षशीलता और क्रान्तिकारी तेवर, सहज और सरल भाषा, लोक-शैली, लोक-लय, लोक-धुन आदि। हिन्दी की प्रगतिशील कविता में इन विशेषताओं की खोज-ख़बर ली जा सकती है, ताकि इस विचारधारा से जुड़े कवियों का सही-सही मूल्यांकन किया जा सके।

चूँकि पिछली इकाई में प्रगतिवादी कविता की प्रवृत्तियों पर विस्तार से विचार किया गया था, इसलिए यहाँ फिर से प्रवृत्तिमूलक विवेचन नहीं किया जाएगा। इस इकाई का मूल विषय प्रगतिशील कवियों की जनवादी और सामाजिक चेतना है। अतः इस इकाई में प्रगतिशील कवियों में से तीन प्रमुख कवियों के रचनात्मक वैशिष्ट्य को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है।

3.2.05.1. नागार्जुन

नागार्जुन एक ऐसे रचनाकार के रूप में चर्चित हैं, जिन्होंने साहित्य के माध्यम से गणतन्त्र के असली सपने को सदैव साकार करने का प्रयास किया क्योंकि उनके साहित्य में वास्तविक जनतन्त्र की चिन्ता सदैव व्यक्त हुई है। नागार्जुन की रचनाओं को भारतीय समाज के सूक्ष्म अवलोकन के लिए याद किया जाता है एवं कुत्सित भारतीय राजनीति के विरुद्ध प्रबल हस्तक्षेप के रूप में भी जाना जाता है। हिन्दी साहित्य के ज्ञात स्रोतों पर विचार किया जाए तो बहुत कम रचनाकार ऐसे हैं, जिन्होंने भारतीय समाज के बहुजन को अपनी रचनाओं के माध्यम से सम्बोधित किया है। नागार्जुन की काव्य-चेतना उनके जीवन के संघर्षों के बीच से निर्मित हुई है और उनका रचनात्मक कौशल भारतीय किसान-मजदूर जीवन के समान ही अनगढ़ है। नागार्जुन की काव्य-चेतना को उनकी कविताओं के विषय-चयन से जोड़कर समझा जा सकता है। उन्होंने खुद लिखा भी है कि –

लेखनी ही है हमारा फार
धरा है पट, सिंधु है मसिपात्र
तुच्छ से अति तुच्छ जन की जीवनी हम लिखा करते,
कहानी, काव्य, रूपक, गीत
क्योंकि हमको स्वयं भी तो तुच्छता का भेद है मालूम।

– (युगधारा, पृष्ठ 65)

अपनी वेशभूषा और काया से बेहद सामान्य दिखने वाले नागार्जुन की कविताएँ विषय की दृष्टि से वैविध्यपूर्ण, सारगर्भित और अपने भाषिक विन्यास में बहुरंगी हैं। गरीब लोगों की जीवन-दशाओं और शोषक एवं अमानवीय व्यवस्थाओं को निर्मूल कर देने वाली कविताओं के साथ-साथ नागार्जुन ने कालिदास और विद्यापति के प्रेम-काव्यों का सरस अनुवाद भी प्रस्तुत किया। उन्हें एक रचनाकार के रूप में इस बात की कभी चिन्ता ही नहीं रही कि क्रान्ति-चेतना के वाहक और व्यवस्था-विरोध का नायक कवि, जब शृंगारपूर्ण-वृत्तान्तों का मनोयोगपूर्वक वर्णन करेगा तो आलोचक क्या कहेंगे ? अतः नागार्जुन के पक्ष या विपक्ष में लिखने वाले आलोचकों की एक लम्बी सूची बनाई जा सकती है। नागार्जुन उन गिने-चुने रचनाकारों में हैं जिन्हें लेखन के साथ-साथ मंचों पर भी लोगों ने बहुत पसंद किया। अपने जीवनकाल में लोगों के बीच बाबा बन जाना नागार्जुन के लिए इतना आसान नहीं था। इसके लिए उन्हें निरन्तर अपनी रचनात्मकता का बाबाई प्रमाण भी देना पड़ा। शायद इसी कारण कई आधुनिक आलोचकों ने उन्हें 'आधुनिक कबीर' माना है। वे कबीर की तरह प्रतिरोध को अपना हथियार समझते थे और प्रतिरोध को अपनी कविताओं का 'महाभाव' भी मानते थे। वस्तुतः उनका यह प्रतिरोध उन व्यक्तियों, वर्गों और व्यवस्थाओं के विरुद्ध है, जो सामान्य और अनपढ़ जनता का शोषण करते हैं। हो सकता है कि समाज

और सामान्य जीवन से अलग अपनी ही दुनिया में रहकर लिखने वाले लेखकों पर यह बात लागू न हों, किन्तु नागार्जुन पर चर्चा करते समय इन बातों की पड़ताल करना ज़रूरी हो जाता है, क्योंकि नागार्जुन किसान-मजदूर और देश की राजनीति जैसे महत्त्वपूर्ण मुद्दों पर सीधी प्रतिक्रिया देने वाले रचनाकार माने जाते हैं। वे सामान्य-जन के प्रति पक्षधरता के लिए लेखकों को प्रेरित भी करते हैं –

अजी आओ
इतर साधारण जनों से अलहदा होकर रहो मत;
कलाकार या रचयिता होना नहीं पर्याप्त है
पक्षधर की भूमिका धारण करो ...
विजयिनी जनवाहिनी का पक्षधर होना पड़ेगा
अगर तुम निर्माण करना चाहते हो,
शीर्ण संस्कृति को अगर सप्राण करना चाहते हो।

– (युगधारा, पृष्ठ 74)

नागार्जुन की रचनात्मकता की सबसे बड़ी सच्चाई तो यह है कि वह अपने समय और परिवेश की समस्याओं, चिन्ताओं एवं संघर्षों से रचनाकार के प्रत्यक्ष जुड़ाव को प्रमाणित करतीहै। नागार्जुन की रचनात्मकता उनकी लोक-संस्कृति एवं लोकहृदय की गहरी पहचान की द्योतकहै। उनके रचना कर्म के स्वरूप का अंदाजा इसी बात से लगाया जा सकता है कि उन्होंने लगभग सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर लिखा और अपने जीवनकाल में मौजूद सभी साहित्यिक विधाओं को अपनाया। उनका रचना-संसार उनके जीवन की तरह ही विस्तृत और अनेकरूपा है। उसमें प्रकृति, प्रणय, भूख-गरीबी, बेरोजगारी-बदहाली, विद्यार्थी-लेखक की चिन्ताएँ, देशी-विदेशी राजनीति आदि सभी कुछ शामिल है। उन्होंने अपने समय के कड़वे यथार्थ को स्वयं जीया और झेला है। अपने जीवन में कवि-कर्म को उन्होंने आधार बनाया, इसलिए उनकी कविता श्रमजीवी और जनवादी कविता है। लोगों से जुड़ाव के लिए वे जीवन भर 'यात्रा' करते हैं। उनके लिए घुमक्कड़पन भारतीय मानस एवं विषय-वस्तु को समग्र और सच्चे रूप में समझने का साधन रहा है। इसमें कोई दो राय नहीं है कि नागार्जुन ने ज्यादातर रचनाएँ तात्कालिक सामाजिक और राजनैतिक परिदृश्य को लेकर लिखी हैं, लेकिन उन्होंने ऐसी कविताएँ भी पर्याप्त गम्भीरता से लिखी हैं, जिनमें निजी ज़िंदगी के हर्ष-विषाद, सघन संवेदनात्मक अनुभूति और रचनात्मक ऐन्द्रिकता बेहद सुघड़ता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। नागार्जुन की प्रेम और प्रकृति से जुड़ी कविताएँ एक ऐसा मानवीय संसार रचती हैं जो बाकी रचनाकारों से कई मायने में बिल्कुल अलग हैं। उनकी प्रेमसम्बन्धी कविताओं में अगर सघन संवेदनात्मक अनुभूति है, तो प्रकृतिसम्बन्धी कविताओं में रचनात्मक परिप्रेक्ष्य भी मौजूद है। प्रकृति और प्रणय की अनुभूतियों से जुड़ी कविताओं के अलावा नागार्जुन ने कुछ ऐसी कविताएँ भी लिखी हैं, जिनमें उनका तरउनी गाँव और वहाँ के तालाब, मखाने, मछली, आम, तिलकोड़े आदि भी मौजूद हैं। इसके अतिरिक्त गाँव के विभिन्न पहलुओं से अन्तरंग रिश्ते के कारण गाँव में दिखने वाली विपन्नता के बावजूद, वहाँ की हवा में तैरती मिट्टी की सोंधी खुशबू उनकी रचनाओं में स्वतः ही महकती है। वैसे भी जिस प्रकार "पूँजीवादी व्यवस्था श्रमिक जनता का आर्थिक रूप से ही शोषण नहीं करती, बल्कि वह उसके सौन्दर्यबोध को कुण्ठित करती है, उसके जीवन को घृणित

और कुरूप भी बनाती है। ... क्या भारत में और क्या यूरोप में, कहीं भी अब तक कोई बड़ा मानव-प्रेमी कवि नहीं हुआ, जो प्रकृति का प्रेमी न रहा हो।" (नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृष्ठ-149) जाहिर है नागार्जुन जैसे रचनाकार प्रकृति से अलग रहकर अपनी रचनात्मकता का विकास भला कैसे करते ? वे प्रकृति के मानव निरपेक्ष सौन्दर्य का वर्णन नहीं करते, बल्कि प्रकृति का जो सबसे सुन्दर रूप है उसे वे मनुष्य से प्रकृति के रिश्ते के रूप में देखते हैं। उदाहरण के लिए 'मेरी भी आभा है इसमें' कविता की कुछ पंक्तियाँ देखी जा सकती हैं –

नये गगन में नया सूर्य जो चमक रहा है
यह विशाल भूखण्ड आज जो दमक रहा है
मेरी भी आभा है उसमें।

यहाँ प्रकृति की सत्ता सर्वशक्तिमान् है, लेकिन मनुष्य सापेक्ष है। इस अन्तर्विरोध के पीछे मूलतः सहअस्तित्व का भाव है, जिसे कवि प्रकृति और मनुष्य के सम्बन्धों के माध्यम से घटित होते हुए देखना चाहता है। कई बार प्रकृति के अति सामान्य विषय को भी कवि अपनी काव्य प्रतिभा से नया अर्थ प्रदान कर देता है। यथा –

कैसे ये नीले उजास के / अच्छत छींट रहे जंगल में,
लगता है ये ही जीतेंगे / शक्ति प्रदर्शन के दंगल में
मिल-जुल कर दिप-दिप करते हैं / कौन कहेगा जल मरते हैं,
जुगनू हैं ये स्वयंप्रकाशी/ पल-पल भास्वर, पल-पल नाशी
इनकी विजय सुनिश्चित ही है / तिमिर तीर्थ वाले दंगल में,
इन्हें न तुम बेचारे कहना / अजी यही तो जोति कीट हैं।

कवि यहाँ जुगनुओं को अन्धकार के विरुद्ध योद्धाओं की तरह लड़ते देखता है। "लगता है ये ही जीतेंगे ..." के माध्यम से कवि अपनी इच्छा व्यक्त कर देता है कि आन्तरिक शक्ति से चमकने वाले तुच्छ किन्तु ये स्वाभिमानी जुगनू अन्धकार पर जीत अवश्य हासिल करेंगे।

प्रकृति के प्रति नागार्जुन में विशेष प्रकार का आकर्षण भाव भी है। प्रकृति उनकी प्रज्ञा को जगाती भी है। किसान कवि होने के कारण प्रकृति उनके लिए उत्तेजना का वाहक नहीं, बल्कि प्रकृति प्रेम उनकी रचनात्मक ऊर्जा में ताज़गी भी प्रदान करती है। चूँकि जीवनभर उन्होंने उबड़-खाबड़, वन-बीहड़, पर्वत-पठार, रेत-चट्टान सभी के सौन्दर्य से आत्मीय सम्बन्ध बनाए रखा, इसलिए उनका प्रकृति प्रेम कृत्रिम नहीं है बल्कि सहज और नैसर्गिक है। वे रोम-रोम में प्रकृति की आभा को घुलते महसूस करते हैं –

यह कपूर धूप
शिशिर की यह सुनहरी, यह प्रकृति का उल्लास
रोम रोम बुझा लेना ताज़गी की प्यास।

अपने जनपद और देश की प्रकृति सौरभ से नागार्जुन की कविता सदैव नया अर्क ग्रहण करती है। ऋतुओं के राजा वसन्त को कवि ने विशेष ललक के साथ देखा है। इसी तरह 'शरद पूर्णिमा', 'अब के इस मौसम में', 'झुक आए कजरारे मेघ' आदि कविताओं में नागार्जुन का सहज प्रकृति-चित्रण देखा जा सकता है। चाँद का एक चित्र देखिए, जिसमें कवि ने अपनी चिन्ताओं को चाँद की विवशता और धुँधलेपन के रूप में देखा है –

काली सप्तमी का चाँद / पावस की नमी का चाँद
तिक्त स्मृतियों का विकृत विष वाष्प जैसे सूँघता है चाँद
जागता था, विवश था अब धुँधला है चाँद।

इसके अतिरिक्त नागार्जुन ने ग्रामीण परिवेश का एकदम सजीव और मनोरम चित्रण किया है। ग्रामीण परिवेश के सौन्दर्य चित्रों को कवि ने जिस प्रकार नदी, तालाब, अमराई, खेत-खलिहान आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया है, वे अपनी स्वाभाविक और गँवई छवि से पाठकों को सीधे भारतीय जनपदों के मूल रस-गन्ध से जोड़ते हैं। वर्षा ऋतु में उठती मिट्टी की सोंधी महक, कजरारे मेघों की घुमड़न, मोर-पपीहे की गूँजती स्वर-लहरियों और रह-रह कर चमकती बिजली की आँख-मिचौली आदि कई रूप-छवियाँ नागार्जुन के काव्य में दिखाई पड़ते हैं। प्रकृति का वर्णन करते हुए कभी-कभी वे इन वर्णनों में भावुक भी हो उठते हैं। इसे आत्मीयता भी कहा जा सकता है, जिसके तहत वे जन-जीवन में हरियाली भरने वाले पावस को बारम्बार प्रणाम भेजने लगते हैं –

लोचन अंजन, मानस रंजन / पावस तुम्हें प्रणाम
ऋतुओं के प्रतिपालक ऋतुवर / पावस तुम्हें प्रणाम
अतुल अमित अंकुरित बीजधर / पावस तुम्हें प्रणाम

कवि नागार्जुन प्रकृति को सहज रूप में देखते हैं। नागार्जुन की प्रकृति जनसाधारण के सुख-दुःख में अपनी भागीदारी निभाती है और यह तभी हो सकता है जब कवि का भी उसके साथ सहज और आत्मीय सम्बन्ध हो। यह आत्मीयता बाबा नागार्जुन की रचनात्मक चेतना में गहराई तक विद्यमान है।

नागार्जुन के जीवन का अधिकतर समय पत्नी-बच्चे से दूर प्रवास में ही बीता। फिर भी अपनी पत्नी के साथ उनका अगाध प्रेम था। कभी कभी अपनी पत्नी अथवा प्रेयसी का बिछोह कवि के मन को व्याकुल कर देता है। 'सिन्दूर तिलकित भाल', 'वह तुम थी', 'तन गई रीढ़' और 'वह दंतुरित मुस्कान' जैसी कविताओं में उनका यह प्रेम और करुण-विछोह उभर कर स्पष्ट व्यक्त हुआ है –

झुकी पीठ को मिला / किसी हथेली का स्पर्श
तन गई रीढ़ / महसूस हुई कन्धों को / पीछे से
किसी नाक की सहज उष्ण निराकुल साँसें
कौंधी कहीं चितवन / रंग गए कहीं किसी के होठ
निगाहों के ज़रिये जादू घुसा अन्दर / तन गई रीढ़।

पत्नी-प्रेम से जुड़ी कविताओं में इस कविता की श्रेष्ठता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि यह कविता एक तरफ जहाँ 'झुकी पीठ' जैसे बिम्ब के माध्यम से एक-दूसरे की ज़रूरत की ओर संकेत करती है, वहीं 'रंग गए कहीं किसी के होठ' के माध्यम से सहज आकर्षण की अनुभूति को भी व्यक्त करती है। आधुनिक जीवन की भागम-भाग में पति-पत्नी को एक-दूसरे का सम्बल बनना कितना ज़रूरी है, यह कविता इस भाव को सहज ही प्रकट करती है। नागार्जुन का प्रणय-वर्णन सामाजिकता, शालीनता और गरिमा से युक्त है। यह प्रेम स्वस्थ प्रेम है, यह प्रेरणादायी है, जिसमें मांसलता की गन्ध दूर-दूर तक नहीं है। यह प्रेम पूर्ण समर्पण का प्रतीक है।

यह बहुत हद तक खुद नागार्जुन के द्वारा भी घोषित तथ्य है कि उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से मूलतः जन-जीवन को वाणी देने का प्रयास किया है। सन् 1965 ई. में देश और जनता के प्रति अपनी भूमिका को स्पष्ट करते हुए उन्होंने स्वयं कहा कि–

जनता मुझसे पूछ रही है क्या बतलाऊँ?
जनकवि हूँ, मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाऊँ?

– (हजार हजार बाहों वाली, पृष्ठ 142)

जाहिर है नागार्जुन की वाणी में दूर-दूर तक खोजने पर भी हकलाहट नहीं मिलती। आधुनिक हिन्दी आलोचना के सभी आलोचक उन्हें जनकवि मानते हैं। लेकिन जनकवि होना इतना आसान नहीं है, जनता के प्रति जवाबदेही इसकी कसौटी है, नागार्जुन इस शर्त को जीवनभर निभाते हैं। वे किसी राजनैतिक दल के काम नहीं करते, इसलिए जब वे साफ ढंग से सच कहते हैं, तो कई बार वामपंथी दलों के राजनैतिक और साहित्यिक नेताओं को भी नाराज करते हैं। "जो लोग राजनीति और साहित्य में सुविधा के सहारे जीते हैं वे दुविधा की भाषा बोलते हैं। नागार्जुन की दृष्टि में कोई दुविधा नहीं है .... यही कारण है कि खतरनाक सच साफ बोलने का वे खतरा उठाते हैं।" अपनी एक कविता 'प्रतिबद्ध हूँ' में उन्होंने दो टूक लहजे में अपनी दृष्टि को स्पष्ट किया है –

प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, प्रतिबद्ध हूँ –
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त –
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की 'भेड़िया-धसान' के खिलाफ
अन्ध-बधिर 'व्यक्तियों' को सही राह बतलाने के लिए
अपने आप को भी 'व्यामोह' से बारम्बार उबारने की खातिर
प्रतिबद्ध हूँ, जी हाँ, शतधा प्रतिबद्ध हूँ!

उनकी कविताओं में प्रतिगामी मूल्यों के प्रति तिरस्कार भाव है। उनमें स्वभावतः शोषण के विरुद्ध आक्रोश, घृणा, मोहभंग तो है ही, साथ ही जीवट और जुझारूपन से उपजा आशावादी स्वर भी है, जिसके कारण वे दीन-हीन जनता से सहानुभूति रखते हैं और उन्हें सत्ताधारियों एवं शोषकों के विरुद्ध प्रतिरोध के लिए आह्वान करते हैं। शोषक चाहे जिस वर्ग का हो, वे उसे नहीं माफ नहीं करते। इस प्रकार कबीर की तरह वे किसी प्रकार के भी अत्याचार पर करारी चोट करते हैं –

तुमसे क्या झगड़ा है / हमने तो रगड़ा है,
इनको भी, उनको भी !

– (हजार हजार बाहों वाली, पृष्ठ 189)

इस बात का प्रमाण उन्होंने जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में हुए आन्दोलन के समय भी प्रस्तुत किया। सभी महत्त्वपूर्ण लोगों की तरह उन्होंने भी इंदिरा गाँधी के अपातकाल की कड़ी भर्तस्ना की, लेकिन जब उन्हें यह आभास हो गया कि इंदिरा शासन के विरुद्ध एक जुट हुई अधिकांश शक्तियों की नीयत ठीक नहीं है तो उन्होंने उन्होंने उन्हें भी नहीं छोड़ा। वस्तुतः जेल में रहते हुए उन्होंने देखा कि यहाँ समान नीति वाले दलों का मेल नहीं है, सिर्फ़ "इंदिरा हटाओ – सत्ता हथियाओ" के लिए की गई साठ-गाँठ है, जिसमें मार्क्सवादी भी हैं, जनसंघी भी हैं, समाजवादी भी हैं, दक्षिणपंथी भी हैं, जात बिरादरी पर आधारित दल भी हैं और सर्वोदयी भी हैं। इस साठ-गाँठ पर उन्होंने तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त की –

मिला क्रान्ति में भ्रान्ति विलास
मिला भ्रान्ति में शान्ति विलास
मिला शान्ति में क्रान्ति विलास ...
टूटे सींगों वाले सांड़ों का यह कैसा टक्कर था!

– (खिचड़ी विप्लव देखा हमने, पृष्ठ 29)

जयप्रकाश आन्दोलन की विसंगतियों को चौराहे पर लाने के बाद वे कांग्रेसी शासन के समर्थक नहीं बन जाते। ये वही कवि हैं जिन्होंने कांग्रेस और इंदिरा गाँधी दोनों को सदैव अपने व्यंग्य बाणों का निशाना बनाए रखा –

जाने, तुम कैसी डायन हो ! ...
जय हो जय हो, हिटलर की नानी की जय हो ! ...
किस चुड़ैल का मुँह फैला है!
संविधान का पोथा, देखो पूरा का पूरा ही लील रही है ! ...
देशी तानाशाही का पूर्णावतार है
महाकुबेरों की रखैल है ...
लोकतन्त्र के मानचित्र को रौंद रही है, कील रही है
सत्तामद की बेहोशी में हाँफ रही है
आँय-बाँय बकती है कैसे, देखो कैसे काँप रही है।

– (वही, पृष्ठ 28)

सचमुच नागार्जुन जनकवि हैं, वे किसी विशेष प्रकार की काव्य सिद्धि की अपेक्षा नहीं करते सीधे-सीधे शब्दों में जनता को सम्बोधित करते हैं। शासन की ताकत से वे बिल्कुल नहीं डरते और ललकारते भी हैं –

जनकवि हूँ, क्यों चाटूँगा मैं थूक तुम्हारी
श्रमिकों पर क्यों चलने दूँ, बंदूक तुम्हारी

– (वही, पृष्ठ-83)

इसके अतिरिक्त 'इंदुजी इंदुजी क्या हुआ आपको', 'शासन की बंदूक', 'बापू के तीन बंदर', 'चंदू मैंने सपना देखा' जैसी कई चर्चित कविताएँ हैं, जिनमें तत्कालीन राजनीति की असंगतियों और भ्रष्टाचार पर कड़ा ऐतराज जताया गया है। 'अब बंद करो हे देवी यह चुनाव का प्रहसन' शीर्षक कविता में व्यंग्य के कई टुकड़े एक साथ रखे गए है, जैसे – सुस्त प्रतिपक्षी, शेर-साँप, वीराने में मुखर ठूँठ, दिन में खिलती रजनीगंधा, महँगाई की सूपनखा, सोशलिज़्म की नयी ऋचाएँ, दस बाँहों वाली देवी, कार्तूसों की माला, मतवाले पंडों की थिरकन आदि। ध्यान से देखें तो नागार्जुन का व्यंग्य इतना सपाट नहीं है, वह गहराई में उतरकर अर्थ छवियों की पड़ताल करते हैं। नेताओं के टिकट पाने का दृश्य तो रसलीन के प्रसिद्ध मुहावरे को नया सन्दर्भ देता प्रतीत होता है –

श्वेत-स्याम-रतनार अँखिया निहार के
सिंडकेटी प्रभुओं की पग-धूर झार के
लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के
खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के
आये दिन बहार के

यहाँ व्यंग्य के माध्यम से वे सामाजिक-राजनैतिक विद्रूपता का पर्दाफाश करते हैं, उनके मुखौटे उतारते हैं। इसी प्रकार 'शासन की बंदूक' शीर्षक कविता में वे सच्चाई को प्रकट करने के साथ-साथ सत्ता को चुनौती भी देते हैं –

जली ठूँठ पर बैठकर गायी कोकिला कूक
बाल न बाँका कर सकी शासन की बंदूक

इस प्रकार की मुँहफट कविता में स्पष्टवादिता के लिए नागार्जुन को सदा याद किया जाएगा। नागार्जुन की इन सीधी-सपाट कविताओं की सबसे बड़ी खासियत यह है कि सामान्य जनता से मुखातिब पोस्टर की तरह हैं, जिन्हें समझने के लिए किसी अतिरिक्त अर्हता की ज़रूरत नहीं होती।

नागार्जुन का व्यंग्य और आक्रोश सिर्फ़ देश के नेता और शोषकों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि विश्व की महाशक्ति अमेरिका पर भी वे निशाना साधने से नहीं चूकते। वैसे शोषक कहीं का भी हो, निन्दनीय ही माना जाएगा, इसलिए नैतिक साहस के बल पर वे अमेरिका-वियतनाम युद्ध के मुद्दे को उठाते हैं, जिसमें वियतनामी जनता के स्वतन्त्रता संग्राम ने अमेरिका के सारे शान्ति-प्रतीकों के मुँह पर कालिख पोत दिया था। वे 'देवी लिबर्टी को लानत है सौ बार' जैसी कविताओं के माध्यम से अमेरिकी दम्भ पर करारा प्रहार करते हैं –

पिछली रात सपने में देखा तुमने
लिंकन का दिव्य प्रेत लिपटा पड़ा है
देवी लिबर्टी की प्रतिमा से ... ।

– (हजार हजार बाँहों वाली, पृष्ठ 155)

अमेरिका सहित सभी साम्राजवादी ताकतों की तथाकथित शान्ति की चालों में अन्तर्निहित उनके स्वार्थों को वे देश के नेताओं के सामने प्रकट करते हैं और सचेत रहने के लिए कहते हैं –

पेटी में पिस्तौल सँभाले, अमन चैन के बोल अधर पर
अब भी बाइबिल बाँट रहे हैं, गोरी चमड़ी वाले बर्बर ...
कोरिया को विरान बनाने वाले
राजघाट में बापूजी की समाधि पर ...
हमें शान्ति की सीख दे रहे चील गीध के चचे भतीजे
हमें शील का पाठ पढ़ाते
टाइ कालर सूट बूट से लैस अद्यतन बाघ भेड़िये ?

– (तालाब की मछलियाँ, पृष्ठ 163)

वे देश के प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू को भी सावधान करते हुए कहते हैं कि –

सावधान ओ पण्डित नेहरू !
पैर तुम्हारे धँसे जा रहे डालर की दलदल में प्रतिपल ।

– (हजार हजार बाँहों वाली ,पृष्ठ 44)

बाबा ने अपनी कविताओं का भाव-धरातल सदा सहज और प्रत्यक्ष यथार्थ रखा, वह यथार्थ जिससे समाज का आम आदमी रोज जूझता है । यह भाव-धरातल एक ऐसा धरातल है जो नाना प्रकार के काव्य-आन्दोलनों से उपजते भाव-बोधों के अस्थिर धरातल की तुलना में स्थायी और अधिक महत्त्वपूर्ण है । नागार्जुन ने सही मायने में शोषित, प्रताड़ित, गरीब लोगों को वाणी दी । किसान, मजदूर और निम्न-मध्यमवर्ग का शोषण करने वाली ताकतों के वे हमेशा विरोधी रहे और व्यवस्था में परिवर्तन लाने के लिए क्रान्ति का आह्वान करते रहे । विश्वम्भर मानव के शब्दों में कहें तो, “व्यक्तिगत दुःख पर न रुककर वे व्यापक दुःख पर प्रकाश डालते हैं और यही सच्चे कवि की पहचान है ।”

नागार्जुन की कविता सिर्फ़ यथार्थ का निरूपण ही नहीं करती है, बल्कि उन जन-शक्तियों की खोज का मार्ग भी दिखाती है जिसके द्वारा मुक्त और शोषणमुक्त समाज की स्थापना की जा सकती है । नागार्जुन के जन रचनाकार होने की गवाह है, उनकी कविता ‘हरिजन गाथा’ । यह कविता उन्होंने 1977 ई. में पटना से क़रीब चालीस किलोमीटर दूर स्थित बेलछी गाँव में हुए दलितों के नरसंहार के आक्रोश में लिखी थी । उस नरसंहार में तेरह दलितों को ज़िंदा जला दिया गया था और उस अमानवीय कुकृत्य ने पूरे राष्ट्रीय मानस व मीडियावर्ग को झकझोर दिया था । बाद में 1977 में ही सम्पन्न हुए आम चुनाव में इस घटना का राजनैतिक लाभ उठाने के लिए

इंदिरा गाँधी उस गाँव तक हाथी पर चढ़कर पहुँची थीं और वहीं से अपने चुनावी अभियान की शुरुआत की थी। पूरी कविता दलितों की मर्मान्तक पीड़ा और प्रतिशोध भावना से भरी हुई है। आजादी के इतने दिनों के बाद भी देश की बड़ी आबादी कहे जाने वाले दलितों के साथ हो रहे अमानुषिक उत्पीड़न को यह कविता व्यक्त करती है। कविता प्रबन्ध काव्य के लयपूर्ण कथात्मक विन्यास में रचित है। कविता के भीतर कथा चलती है जो कविता का आख्यान में बदल देती है। कथा में नरसंहार के कुछ समय बाद दलित स्त्री के गर्भ से बच्चा पैदा होता है। उसके पिता की भी हत्या कर दी गई है। वह पितृहीन संतान संसार में पैदा तो जाती है, पर उसके दुर्भाग्य के बारे में दलित वर्ग का हर व्यक्ति चिन्तित है। उसके भावी जीवन के बारे में जानने के लिए एक रैदासी सन्त को बुलाया जाता है जो बच्चे की हाथ की रेखाओं को पढ़कर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। वह भविष्यवाणी करता है कि बच्चा दलितों और शोषितों का नायक बनेगा और उन्हें हर प्रकार की ज़ुल्म और ज़्यादती से मुक्त कराएगा। उसके नाम से चोर-उचक्के और गुण्डे थर-थर काँपेंगे और वह सर्वहारा की मुक्ति के लिए सशस्त्र संघर्ष की राह ग्रहण करेगा। इस कथा-आख्यान से कंस-कृष्ण के पौराणिक द्वन्द्व का आभास भी मिलता है, पर उससे यह इस मायने में भिन्न है कि इसमें नायक को सवर्ण के स्थान पर दलित जाति के घर पैदा होते दर्शाया गया है। यथा –

दिल ने कहा – अरे यह बालक
निम्न वर्ग का नायक होगा
... होंगे इसके सौ सहयोद्धा
लाख-लाख जन अनुचर होंगे

नागार्जुन यह कविता उस समय लिख रहे हैं, जब पूरा भोजपुर दहक रहा था। गाँवों में ज़मींदार और किसान आमने-सामने थे। विकल्प सिर्फ़ यह थे कि या तो हिंसा का जवाब प्रतिहिंसा से दिया जाए या फिर खुद को अहिंसक बनाये रखकर सब कुछ सह लिया जाए। नागार्जुन ने हिंसा के बदले प्रतिहिंसा को प्रस्तावितकिया। नागार्जुन कई बार साक्षात्कार में यह स्वीकार भी किया है कि प्रतिहिंसा मेरी कविता का स्थायी भाव है।

इसके अतिरिक्त इस कविता में पारलौकिक शक्तियों के बल पर किसी दुष्ट आततायी के वध के स्थान पर व्यवस्था परिवर्तन करने वाले सामूहिक प्रयत्न की ओर संकेत दिये गए हैं। इस कविता में भी वे राजनैतिक रूपान्तरण के लिए पौराणिक चेतना का प्रयोग करते प्रतीत होते हैं पर उसका उद्देश्य धार्मिक वर्ण-व्यवस्था की क्रूरता का उद्घाटन हो जाता है। वे वर्ण-व्यवस्था की बीभत्स हिंसा को घटित होते इस प्रकार दिखाते हैं –

ऐसा तो कभी नहीं हुआ था कि
एक नहीं, दो नहीं, तीन नहीं
तेरह के तेरह अभागे
अकिंचन मनुपुत्र/ ज़िंदा झोंक दिये गए हों
अग्नि की विकराल लपटों में
साधन-सम्पन्न ऊँची जातियों वाले
सौ-सौ-मनुपुत्रों द्वारा

समाज की इस बीभत्सता को दिखाने में नागार्जुन बेहद संवेदनशीलता का परिचय देते हैं। प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने उनकी इस काव्य-प्रवृत्ति के प्रसंग में ठीक ही लिखा है – "संस्कृत काव्यशास्त्र में नौ रसों के अन्तर्गत बीभत्स की भी गणना की गई है और खानापूरी के लिए थोड़ी-बहुत बीभत्स रस की रचनाएँ भी हुई हैं। किन्तु नागार्जुन पहले कवि हैं जिन्होंने सामाजिक-राजनैतिक सन्दर्भ में बीभत्स को नयी शक्ति प्रदान की है।" नागार्जुन की कविताएँ केवल ख़बर की कविताएँ नहीं बल्कि दख़ल की कविताएँ हैं। सहजानन्द सरस्वती, राहुल सांकृत्यायन, जे.पी. और नक्सल आन्दोलनों में भागीदारी के कारण जनता से उनका सीधा जुड़ाव था। वे अपने समय की तमाम विसंगतियों को पूरी तरह समझते हैं और समाज में परिवर्तन के लिए जनता केराजनैतिक हस्तक्षेप को आवश्यक मानते हैं। वे स्वयं में कविता के माध्यम से अपनी प्रतिबद्धता व्यक्त करते हैं। नागार्जुन के लिए लिखना भी राजनैतिक कर्म था और जीना भी। उनकी कविताएँ भी इसीलिए राजनैतिक घटनाओं व परिवर्तन के संघर्षों के प्रति संवेदनशील हैं और सबसे प्रामाणिक ढंग से जनजीवन से लगाव को व्यक्त करती हैं। "उनकी रचनाएँ उनकी नज़र में विद्वता का प्रतिबिम्बन नहीं बल्कि उनके आत्मविस्तार का साधन हैं। लोक उनके लिए किताबी तथ्य नहीं बल्कि रोजमर्रा का जीवनानुभव है।" 'हरिजन-गाथा' कविता में भी वह जिस प्रकार राक्षसी काण्ड के बारे में लिखते हैं, वह समूची भारतीय कविता के सामने अदभुत एक उदाहरण बनकर उपस्थित होता है। उत्पीड़न की वेदना को वह बग़ावत में ढलते देखते हैं और उसमें केवल किसी तबके या वर्ग की तक़दीर नहीं बल्कि पूरे भारत के राष्ट्रीय-सामाजिक चरित्र में युगान्तरकारी परिवर्तन का आह्वान सुनते हैं, लिखते हैं –

दिल ने कहा – दलित माओं के सब बच्चे
अब बाग़ी होंगे अग्निपुत्रा होंगे,
वे अन्तिम विप्लव के सहभागी होंगे

यह पूरी कविता क्रूर प्रशासन और सामन्ती ताक़तों के निर्लज्ज गठजोड़ पर चोट करती है। भारत में आज़ादी के बाद भी लम्बे समय तक राज्य की भूमिका पर प्रश्न करना ईश्वर और समाज से द्रोह करने जैसा माना जाता रहा है। सदैव लोकतन्त्र को राजतन्त्र की तरह चलाने के प्रयास होते रहे हैं। "ऐसे समय नागार्जुन की निगाह केवल नेहरूवादी शहरी भारत पर नहीं थी जहाँ आधुनिक मध्यमवर्ग विकसित हो रहा था और पूरे भारत की किस्मत बदलने के लिए यह मध्यमवर्ग अपनी किसी बड़ी भूमिका की कल्पना कर रहा था। वह किसी ऐसे शहरी भारत पर भी बहुत विश्वास करने के लिए तैयार नहीं थे जो ग्रामीण दरिद्रता व विस्थापन से पैदा श्रम के दोहन के बल पर टिका होता है।" देश की सामाजिक और राजनीति बदलाव की ऐसी प्रवृत्ति का नागार्जुन ने भरपूर विरोध किया। नागार्जुन परिवर्तन के उभार का मुख्य केन्द्र गाँवों को मानते थे और गाँवों के दलित-निम्नवर्ग को परिवर्तनकामी चेतना का वाहक घोषित करते हैं। उन्हें संगठित प्रतिरोध के बल पर नया इतिहास रचने वाली ताक़तें गाँवों में ही दिखती थीं और गाँव छोड़कर दिल्ली-पटना जाना उनके लिए ग़लत समझौते जैसा था।

चूँकि किसान केवल भूमि से ही नहीं बल्कि शोषक वर्ग से पुश्तैनी सम्बन्धों में बँधा रहता है इसलिए वह विद्रोह करने की स्थिति में कम रहता है। एक ही गाँव में कई पुश्तों से रह रहा किसान ज़मींदार-शोषक वर्ग से पुश्तैनी रिश्तों में ख़ुद को बँधा पाता है और वह लड़ने के लिए तैयार नहीं रहता। वह पीढ़ियों से चले आ रहे

उत्पीड़न को भी स्वीकार कर लेता है। पर किसी नये औद्योगिक वातावरण में जहाँ मज़दूरों का नया वर्ग अस्तित्व में आ रहा हो, वहाँ वह विरोध व विद्रोह की राजनीति के लिए शीघ्र तैयार हो जाता है। इसलिए नागार्जुन कविता में दलित शिशु का कर्मक्षेत्र व राजनीति झरिया, गिरिडीह व बोकारो होने की कल्पना करते है जहाँ कोयला व लोहे की खदानें हैं और जहाँ वह –

खान खोदने वाले सौ-सौ
मज़दूरों के बीच पलेगा
युग की आँचों में फौलादी
साँचे-सा यह वहीं ढलेगा।

नागार्जुन के यहाँ हिंसा और प्रतिहिंसा ऐसे भाव हैं जिनसे उनका अच्छा-खासा लगाव है। उन्होंने लिखा भी है कि –

प्रतिहिंसा ही स्थायीभाव है मेरे कवि का
जन-जन में जो ऊर्जा भर दे
मैं उद्‌गाता हूँ उस रवि का।

– (खिचड़ी विप्लव देखा मैंने, पृष्ठ 87)

प्रतिहिंसा का यह भाव जन-भावनाओं की ऊँचाई से अपनी उदात्त चेतना अर्जित करता है। प्रतिहिंसा का यह पूरा दर्शन मूलतः राज्य के खिलाफ़ खड़े हिंसक आन्दोलनों के निर्मम दमन और विश्व साम्यवाद से प्रेरित था। इसलिए उनकी कविता में 1947 ई. के बाद के भारत के बारे में तीखी आलोचनाएँ उपस्थित हैं। ये आलोचनाएँ उस व्यवस्था पर चोट करती हैं जो नौकरशाहों की फाइलों और राजनेताओं के स्वार्थों की गुलाम हो गई है।

3.2.05.2. त्रिलोचन

जनकवि त्रिलोचन को 'पोएट ऑफ़ पब्लिक' कहा जाता है और उनके लिए यह उपाधि बहुत सार्थक भी है। वे कविता में सीधे जनता की आवाज़ को मुखरित करते हैं, उस जनता की आवाज़ को जो अपनी आवाज़ ख़ुद नहीं उठा सकती; जो शोषण की चक्की में पिस रही है। त्रिलोचन इस जन की आवाज़ का माध्यम अपनी कविता को बनाकर अपने कवि होने को सार्थक करते हैं। यही काम जनकवि नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल और शमशेरबहादुर सिंह ने किया। जनकवियों की यह चौकड़ी प्रगतिशील जनवादी कविता का आधार है। बाक़ी का प्रगतिशील जनवादी कविता साहित्य इसके ऊपर बने हुए भवन हैं। अपने देश की जनपीड़ा को कविता में दर्ज़ करना और प्रतिरोध में आवाज़ बुलंदकरना इन कवियों ने अपनी अगली पीढ़ी को सिखाया है। ये जनकविता की बृहत् पाठशालाएँ हैं।

'खुले हृदय के द्वार' कविता में त्रिलोचन अपने हृदय के द्वार समग्र मनुष्यता के लिए खोलकर सारे अपरिचय को ही समाप्त कर देते हैं। वे भ्रम के कुहासे को छाँटकर फूल की तरह खिलना सिखाते हैं और किसी भी

आधार पर अलगाव को ख़ारिज करते हैं। अपनी एक अन्य कविता 'हाथों के दिन' में त्रिलोचन का सपना है कि जो हाथ देश के नवनिर्माण में श्रमपूर्वक निरन्तर संलग्न हैं और छले जा रहे हैं, उन हाथों के दिन भी अवश्य फिरेंगे। पर उनके मन में जन हाथों की दुर्दशा देखकर पीड़ा से उपजा प्रश्न भी है कि आखिर जनता के हाथों के दिन कब फिरेंगे ? कब उनके न्याय संगत दिन आयेंगे ? कब किसानों, मज़दूरों का शोषण बंद होगा ? दुखद है कि 'हाथों के दिन' आज तक नहीं आए और इस गम्भीर संकट की पहचान त्रिलोचन ने अपने समकाल में कर ली थी।

त्रिलोचन की कविता 'जनपद का कवि' उनकी प्रतिनिधि कविताओं में से एक है। यह कविता उनके काव्य-संकलन 'जनपद का कवि' की शीर्षक कविता भी है। यहाँ वह उल्लेख करते हैं कि मैं उस ग्रामीण जनपद का कवि हूँ जहाँ की जनता भूखी और नंगी है। जहाँ पीड़ा और दर्द चारों ओर बिखरे हैं। जहाँ दुःख का सन्नाटा है। वहाँ की जनता न कला जानती और न ही सौन्दर्यबोध की कोई परिभाषा ही। वहाँ तो भूख सबसे बड़ा सवाल है। इस कविता के माध्यम से त्रिलोचन भारतीय ग्रामीण समाज की ग़रीबी और दयनीय हालातों का उल्लेख करते हैं और वे यह भी कहना नहीं भूलते कि ग्रामीण जन अपने हक़ की लड़ाई लड़ने के बजाय भजन करने में लगे हैं। राजनीति ने उसे लड़ना नहीं, भजन करना सिखाया है और उसका यही भोलापन उसके शोषण का जनक है। आज भी यही हो रहा है जिसका ज़िक्र सात दशक पहले किया गया था। व्यवस्था के लिए कितना अच्छा फार्मूला है कि भजन करो और सो जाओ। कोई भी चिल्लाचोंट जब नहीं होती है तभी सरकारों को खूब निर्विघ्न सुख की नींद आती है। इसलिए भगतों आप लोग भजन करो और हमें देश को लूटने दो। 'भीख माँगते उसी त्रिलोचन को देखा कल' कविता जनता के दुखों की दैन्यता की पराकाष्ठा है। दाता / अन्नदाता ही भिखारी बना दिया गया ? कवि की इस पीड़ा को बड़ी आसानी से समझा जा सकता है। हक़ की भीख नहीं माँगी जाती, हक़ की लड़ाई लड़ी जाती है। इसलिए अब माँगो नहीं, लड़ो दोस्तों !

त्रिलोचन की एक प्रसिद्ध कविता 'चम्पा काले-काले अक्षर नहीं चीन्हती' बेहद उल्लेखनीय कविता है। इसमें शिक्षा को लेकर तत्कालीन ग्रामीण स्त्री समाज की दुर्दशा का ज़िक्र उसकी समग्रता में है। यहाँ ग्रामीण स्त्री का भोलापन, प्रेम, समर्पण, सरलता और तरलता कवि को अपने रिश्ते में बाँध देती है। त्रिलोचन के 'सॉनेट' (Sonnet) हिन्दी में एक प्रकार के प्रयोग हैं, इसे उन्होंने अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ से ग्रहण किया था। त्रिलोचन अपनी काव्य-भाषा के माध्यम से ग्राम्य चेतना का आंचलिक और वैश्विक संसार एक साथ रचते हैं। वे प्रेम, विद्रोह, जागरण और आंचलिक सरलता के दुर्लभ और बड़े कवि हैं। जन-चेतना की धारा त्रिलोचन की कविता की नदी की खासियत है। त्रिलोचन ने अपने समय और समाज के ज्वलन्त मुद्दों को अपनी कविता में प्रमुखता से उठाया और उसके साथ खड़े हो गए। इसलिए वे जनपक्षधरता के संवेदनशील जनकवि हैं।

3.2.05.3. केदारनाथ अग्रवाल

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील कविता के प्रखर रचनाकार हैं। वे उत्तरप्रदेश के अति पिछड़े, अभावग्रस्त, सूद-खोरों की बस्ती बाँदा में वर्षों तक रहे। वहाँ का विषमतामयी जीवन, उसकी विद्रूपता उनकी कविताओं में सहज ही झलक उठती है, तो वहीं बुंदेलखंड का सुरमयी रंगों से युक्त प्रकृति-वर्णन संघर्ष से भरे जीवन को एक नयी

दिशा देती दिखाई देती है। केदारजी की काव्य संवेदना का मजबूत पक्ष उनकी जनवादी सामाजिक-यथार्थवादी चेतना है और इनका विश्लेषण किए बिना उनका सही मूल्यांकन नहीं किया जा सकता। वे कहते हैं – "कविता केवल व्यक्ति की मानसिकता या चेतना की इकाई मात्र नहीं होती। वह वस्तुसत्ता से निरूपित हुई एक नितान्त नयी संश्लिष्ट इकाई होती है। यह संश्लिष्ट इकाई मानवीय बोध की इकाई होकर दूसरों के मानवीय बोध की इकाई बन जाती है। ऐसा ही क्रम बराबर चलता रहा है और आदमी ऐसे क्रम के द्वारा ही अपने को, अपने समाज को, अपने परिवेश को और देशकाल के घटनाक्रम को और उसके विभिन्न आयामों को और तदनुरूप कविता को रचता रहा है।"

'युग की गंगा' काव्य-संकलन में केदारजी की यथार्थवादी विचारधारा से ओत-प्रोत कविताएँ संकलित हैं। इसकी भूमिका में वे स्वयं लिखते हैं कि "हिन्दी का यह युग समाजवाद, यथार्थवाद, प्रगतिवाद और मार्क्सवाद का युग है। जनता ने साम्राज्यवादी मोर्चे के विरोध में अपना नया बलवान मोर्चा बनाया है और साम्राज्यवादी अर्थनीति का अन्तकाल आ गया है ... हिन्दी की कविता अब न रस की प्यासी है, न अलंकार की इच्छुक है और न संगीत की तुकान्त पदावली की भूखी है। भगवान् अब उसके लिए व्यर्थ है ... अब वह चाहती है किसान की वाणी, मजदूर की वाणी और जन-जन की वाणी।"

केदारजी को जब हम प्रगतिवादी आन्दोलन के साथ जुड़े हुए देखते हैं तो हम यही मानते हैं कि वे प्रगतिशील धारा के ही कवि है। मगर सत्तर साल के उनके विराट् काव्य-सृजन को परखने पर यह तथ्य उजागर हो जाता है कि उनका काव्य-संसार काफ़ी व्यापक है, जिसमें अनन्त सृष्टि समाविष्ट है। उनकी कविता की अन्तर्वस्तु को यदि हम सूक्ष्मता से देखेंगे तो पाएँगे कि प्रेम और प्रकृति सौन्दर्य की कविताओं से रचनात्मक जीवन आरम्भ करके उन्होंने आगे जनवादी चेतना को अपनाया और शोषित पीड़ित मानवता के उद्धार के लिए अपनी कविताओं के दायरे को मानवीय समाज के उपेक्षित वर्गों तक फैलाने का विनम्र प्रयास किया है। उनके काव्य में अभिव्यक्त प्रेम की भावना का विस्तार पत्नी-प्रेम, प्रकृति के प्रति अनुराग और श्रमिक वर्ग के साथ उनकी संवेदना जुड़ जाने से श्रम-सौन्दर्य के प्रति अमिट श्रद्धा भी उत्पन्न हुई है। केदारजी के काव्य के विभिन्न आयामों को परखते समय हमें उनके काव्य की इन्द्रधनुषीय आभा से गुजरने का मौका मिलेगा।

केदारनाथ अग्रवाल की रचनाओं में प्राकृतिक तत्त्वों की संख्या भी असीमित है – धरती-आसमान, सूरज-चन्द्रमा-तारे, प्रभात-संध्या, दिन-रात, हवा-पानी, नदी-नाले, खेत-खलिहान, पशु-पक्षी, ईंट-पत्थर, स्त्री-पुरुष, बच्चे-बड़े-बूढ़े हर कोई उनकी विस्तृत सूची में शामिल हैं। इनके अलावा उनकी समूची कविता-साधना पर हम नज़र डालें तो स्पष्ट होता है कि लोकतन्त्र, राजतन्त्र-तानाशाही, हर किसी चीज़, हर कोई तत्त्व, हर कोई तन्त्र पर उन्होंने लेखनी चलाई है। मानवता के महान् पुजारी के रूप में उन्होंने मानव के श्रेष्ठतम स्वरूप को पेश करने का प्रयास किया है। श्रम-शक्ति को श्रेष्ठतम साबित करने के क्रम में उन्होंने सभी क्षेत्रों के श्रमिकों का राष्ट्र के उद्धार के लिए विराट् योगदान को अंकित करने के साथ-साथ उनमें अटूट आस्था भरने की विराट् चेष्टा की है।

ज़िंदगी को वह गढ़ेंगे जो शिलाएँ तोड़ते हैं,
जो भगीरथ नीर की निर्भय शिराएँ मोड़ते हैं।
यज्ञ को इस शक्ति-श्रम के
श्रेष्ठतम मैं मानता हूँ।

शोषितों-पीड़ितों का पक्ष लेते हुए उन्होंने तमाम वर्गों को समेटा और पूँजीपतियों और महाजनों को आड़े हाथों लिया। अपनी लेखनी से उन्होंने किसान की अनन्य आराधना की है।

मैं तो तुमको मान मुहब्बत सब देता हूँ
मैं तुम पर कविता लिखता हूँ
कवियों में तुमको लेकर आगे बढ़ता हूँ
असली भारत पुत्र तुम्हीं हो।

केदारनाथ अग्रवाल ने मार्क्सवादी दर्शन को जीवन का आधार मानकर जनसाधारण के जीवन की गहरी व व्यापक संवेदना को अपने कवियों में मुखरित किया है। कवि केदार की जनवादी लेखनी पूर्णरूपेण भारत की सोंधी मिट्टी की देन है। इसीलिए इनकी कविताओं में भारत की धरती की सुगन्ध और आस्था का स्वर मिलता है।

3.2.06. प्रगतिशील कविता की भाषा और शिल्प-पक्ष

कोई भी कृति कथ्य और कथन-पद्धत्ति के स्वभाविक संश्लेष के साथ प्रकट होती है। सजग और सतर्क रचनाकार भी रचना-प्रक्रिया के क्रम में उसे समग्रता में हासिल करता है। इसके बावजूद साहित्य आलोचना में अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्ष का अलग-अलग विश्लेषण किया जाता है। भाषा-शिल्प के अन्तर्गत अभिव्यक्ति के उन सभी प्रतिमानों एवं उपकरणों पर विचार किया जाता है जो रचना के सौन्दर्य को निर्मित करते हैं। कविता के सन्दर्भ में सौन्दर्य के प्रमुख उपकरण हैं – भाषा, काव्य-रूप या शैली, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार छन्द और लय। सामान्यतः प्रगतिशील कविता में इन सौन्दर्य-मूल्यों के प्रति अतिशय लोभ नहीं दिखता, फिर भी हिन्दी कविता की मान्य कसौटी पर प्रगतिशील कविता बिल्कुल खरी साबित होती है।

प्रगतिशील कविता की भाषा-शैली पर विचार करने से पूर्व यह ध्यान देने योग्य मुद्दा है कि नागार्जुन, त्रिलोचन, केदारनाथ अग्रवाल आदि के काव्य-शिल्प को यदि शमशेर, मुक्तिबोध आदि के काव्य-शिल्प से मिलाकर देखा जाएगा तो बिल्कुल भिन्न परिणाम उपलब्ध होंगे, क्योंकि इन सबकी शिल्पगत प्रवृतियों में गुणात्मक अन्तर है। जहाँ नागार्जुन, केदार और त्रिलोचन की कविता लोक-शिल्प के ताने-बाने में गुँथी सामान्य जनों को सम्बोधित है, वहीं मुक्तिबोध और शमशेर की कविता भाववादी शिल्प के तहत शिक्षित मध्यमवर्ग के सम्मुख प्रस्तुत हुई है। अतः इस अन्तर को समझते हुए यहाँ प्रगतिशील कविता की शिल्पगत विशेषताओं को समेकित करके प्रस्तुत किया जा रहा है।

प्रगतिशील कविता की भाषा पर विचार करते हुए जो सवाल सबसे पहले हमारे सामने उपस्थित होते हैं, वे हैं – साहित्य किसके लिए है ? और साहित्य की उपयोगिता क्या है ? अगर साहित्य सामान्य लोगों के लिए है और रोटी की तरह साहित्य में भी सबका बराबर हिस्सा शामिल है तो निश्चित रूप से साहित्य की भाषा वही होगी, जो प्रगतिशील कवियों की है । इसी प्रकार, अगर कविता की कोई तात्कालिक उपयोगिता होती है और कविता वैज्ञानिक दर्शन की तरह 'कार्य का निर्देशक' है तो वह वैसे ही लिखी जाएगी, जैसा प्रगतिशील कवियों ने लिखा है । आज अपनी साहित्यिक चर्चाओं में जब यह विचार हम बड़े पुरजोर ढंग से रखते हैं कि साहित्य सिर्फ़ थोड़े से लोगों के लिए नहीं है, बल्कि सबके लिए है, तो प्रगतिशील रचनाएँ और भी महत्त्वपूर्ण हो उठती हैं, क्योंकि अपने साहित्य को इन्होंने सदैव जनाभिमुख बनाए रखा । प्रगतिशील कवियों में से एक नागार्जुन ने खुद ही कहा था कि "मौलिकता किताबी ज्ञान में निहित नहीं रहती, वह कवि के व्यापक जीवन-अनुभव और उससे पैदा होने वाले साहस के भीतर से जन्म लेती है । मेरी कविता का सम्बन्ध आम जनता से है और आम जनता से मेरा मतलब बौद्धिक-स्तर पर दर्जा चार तक पढ़ी हुई जनता से है । आर्थिक-स्तर पर जो दो जून की रोटी खा लेती है ।" (– मेरे साक्षात्कार – नागार्जुन, पृष्ठ 116) इस प्रकार नागार्जुन के भाषा-चिन्तन से यह स्पष्ट हो जाता है कि साहित्य में ऐसी भाषा का संयोजन करना चाहिए जो लोक सामान्य के नजदीक पहुँचकर सीधे उनसे संवाद कायम करे । फिर भी यह कार्य इतना सहज नहीं कहा जा सकता, क्योंकि भाषा को साधारण जनता के निकट लाकर कविता को लोक-निर्णय के लिए प्रस्तावित कर देना अत्यन्त क्रान्तिकारी और नैतिक साहस का काम है । यह एक प्रकार से अध्यात्मवादी, रूढ़िवादी और कुलीनतावादी भाषा संस्कारों को निर्णायक चुनौती देना भी है । प्रगतिशील कवियों ने अपने साहित्य में उस भाषा को महत्त्व दिया जिस भाषा ने साहित्य को रोमांटिकता की परिधि से निकालकर उसे गाँव की गलियों एवं शहर के सड़कों और पगडंडियों पर चलना सिखाया ।

प्रगतिशील रचनाकार साहित्य की भाषा को गहन सकर्मक दायित्व-बोध से जोड़कर देखने के पक्ष में हैं । उनकी स्पष्ट मान्यता है कि साहित्य की भाषा बोलचाल के निकट हो और भाषा का निर्माण जीवन से सीधे सम्पर्क के द्वारा हो । हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि भाषा की सरलता और उसकी जनपक्षधरता के मूल में रचनाकार की रचनाधर्मिता महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है । "यथार्थ के प्रखर दबावों और जीवन के प्रामाणिक स्पन्दनों को व्यक्त करने वाली लय को और जनता के जीवन्त आन्तरिक छन्दों को पकड़े बिना काव्य-भाषा को जन-मन में कवि के विचार-वहन करने का विश्वसनीय साधन नहीं बनाया जा सकता । कवि अपनी कविता में जो दुनिया रचता है अथवा जीवन का जो पुनःसृजन करता है, उसे दुनिया से, संवेद वस्तुजगत् से तटस्थ रह कर नहीं, बल्कि उसमें सक्रिय हिस्सेदारी अदा करते हुए सम्पन्न करता है ।" (– प्रगतिशील कविता के सौन्दर्य-मूल्य – अजय तिवारी, पृष्ठ 239)

चूँकि साहित्य की भाषा पर एक तरफ तो समाज का ऐतिहासिक दबाव होता है, वहीं दूसरी तरह कथ्य की अनिवार्यता का दबाव भी होता है । इस कारण भाव और भाषा के अन्तस्सम्बन्ध को लेकर एक गहरी चुनौती का सामना रचनाकार को करना पड़ता है । भाव और भाषा के सामंजस्य की इस दोहरी चुनौती को स्वीकार करते हुए प्रगतिशील कवियों ने अपनी काव्य-भाषा के द्वारा उसके जन-चरित्र को सृजनात्मक स्वरूप प्रदान किया, ताकि

कविता की शक्ति और पाठक से उसका जुड़ाव दोनों सुरक्षित रह सके । "कविता में कथ्य महत्त्वपूर्ण है, परन्तु कथन-पद्धत्ति कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं । यदि तीव्र आवेग कभी-कभी मुक्त छन्द में आएगा तो हम उसे रोकेंगे नहीं, किन्तु छन्द, लय आदि बहुत ज़रूरी हैं और उसे पकड़ने के लिए हमें जनता के बीच जाना पड़ेगा, सब वहीं से लेने होंगे । मुक्त छन्द की कविता भी अगर नाटकीय ढंग से सम्पन्न हो तो लोगों की जुबान पर चढ़ जाएगी ।" (– मेरे साक्षात्कार – नागार्जुन, पृष्ठ 116)

प्रगतिशील कविता की भाषा में भारत की सामान्य जनता की धड़कनों को आसानी से सुना जा सकता है । हर वर्ग के साथ उनका गहरा जुड़ाव है । बच्चे, बूढ़े, महिलाएँ, साहित्यकार, बुद्धिजीवी, गृहस्थ, व्यवसायी, नौकरी-पेशा वाले – सबके साथ उनका उठना-बैठना, खाना-पीना रहा है । इन्हीं लोगों के जीवन रस से इन कवियों की सच्ची-खरी कविता उपजी है । जन-साधारण से इस जुड़ाव के कारण इनकी कविता में एक नितान्त भिन्न जीवन्त कलात्मक सौन्दर्य सृजित हुआ है, जो जीवन के स्पन्दनों के समान ही वास्तविक और तेजस्वी है । इन कवियों की भाषा की सबसे खास विशेषता यह है कि वह शास्त्रीय अथवा पुराने मानदण्डों के अनुरूप नहीं है, बल्कि इसके लिए जन-कविता के प्रतिमान तलाशने पड़ेंगे जिसमें भारतीय गरीब जनता का सुख-दुःख, उसकी पीड़ा और उसका अनवरत संघर्ष मूलाधार है । उदाहरण के लिए केदारनाथ अग्रवाल की एक छोटी-सी कविता विचारणीय है –

देह में देशी / देश में विदेशी है,
शहर में आया / गाँव में गणेशी है ।

इस कविता का बहुत सामान्य अर्थ है – गाँव का गणेशी अपने देशी वेश-भूषा के कारण अपने ही देश के शहर में परदेशी या विदेशी बन जाता है । लेकिन इस कविता के माध्यम से कवि गाँव और शहर की विषमता को सहज ही स्पष्ट कर देता है । इस तरह के उदाहरण त्रिलोचन की कविता में भी मौजूद हैं –

कहा उन्होंने – मैंने काशीवास किया है
काशी बड़ी भली नगरी है
वहाँ पवित्र लोग रहते हैं
फेरु भी सुनाता रहता है ।

गाँव की ठकुराइन फेरु कहार के साथ एक वर्ष कलकत्ता बिताकर आयी है, लेकिन गाँव वालों से वह काशीवास की बात कर रही है । प्रगतिशील कविता में सीधे-सीधे कहने की अद्भुत ताकत है और इसी के बल पर जनता के बीच खड़े होकर वह अपनी बात बिना किसी झिझक के रखते हैं –

जनता मुझसे पुछ रही है, क्या बतलाउँ !
जनकवि हूँ मैं साफ कहूँगा, क्यों हकलाउँ !

प्रगतिशील कविता में बोलचाल की भाषा इस प्रकार घुली हुई है, जैसे कि शर्बत में चीनी। इससे उनकी कविता में मिठास तो पैदा होती ही है, साथ ही वह सहज ही ग्राह्य हो जाती है। यथा –

घुन-खाए शहतीरों पर की, बाराखड़ी विधाता बाँचे,
फटी भीत है, छत चुती है, आले पर बिसतुइया नाचे
बरसाकर बेबस बच्चों पर, मिनट-मिनट में पाँच तमाचे
दुखरन मास्टर गढ़ते हैं, किसी तरह आदम के साँचे।

कविता की प्रत्येक पंक्ति मानों पाठकों को पहले से ही पता है, कवि सिर्फ़ उनको अन्विति भर प्रदान कर रहा है। वैसे भी प्रत्येक व्यक्ति को अपने दुःख-दर्द का अहसास तो पहले से होता ही है, किन्तु यदि कोई उसके दर्द में भागीदार हो जाए तो बात ही कुछ और हो जाती है। इसी भागीदारी के कारण प्रगतिशील कविता सामान्य-जनों के दुखों का थाह लेती प्रतीत होती है। सच कहा जाए तो यह सपाटबयानी इन कवियों की कविता की अद्‌भुत शक्ति है, जिसमें शोषित-पीड़ित जनता का चित्र काँपता-कौंधता है। वे जनपक्षधरता को अपनी रचनाओं का मूल उत्स स्वीकार करते हैं। यही कारण है कि प्रगतिशील कवि समाज और राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार के प्रत्येक रूप को हिकारत की नज़र से देखते हैं और अपनी तात्कालिक प्रतिक्रियाओं के कारण प्रतिपक्ष की भूमिका निभाते हैं।

प्रगतिशील कविता की भाषा को समझने का एक अन्य महत्त्वपूर्ण पक्ष है उनकी कविता में विद्यमान गहरी स्थानीयता की भावना। यह स्थानीयता की भावना बहुत कुछ लोककाव्य में पायी जाने वाली 'स्थानीयता' की तरह है, जिसके दृश्य और रंग सम्प्रेष्य भाव को एक आकार देकर और विश्वसनीयता प्रदान करके चुपचाप तिरोहित हो जाते हैं।

प्रगतिशील कवियों को तीखे धारदार व्यंग्य के लिए भी याद किया जाता है, क्योंकि व्यंग्य के माध्यम से वे सामाजिक-राजनैतिक विसंगतियों और विद्रूपताओं पर जोरदार हमला करते हैं। इस व्यंग्य में क्रोध अधिक सजग और लक्ष्यबद्ध होता है। भूदान के असली स्वरूप को प्रकट करते नागार्जुन कड़वी बात करते हैं –

बाँझ गाय बाभन को दान हरगंगे
मन ही मन खुश हैं जजमान हरगंगे
ऊसर बंजर और श्मशान हरगंगे
सन्त विनोबा पावैं दान हरगंगे।

– (हरगंगे, नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृष्ठ 227)

इस कविता को ध्यान से देखने पर यह विदित हो जाता है कि ऊपर से तथ्यात्मक विवरण सी लगने वाली पक्तियों के अन्दर व्यंग्य का मजबूत अन्तःसूत्र विद्यमान है, जो उनकी कविता को कोरा नारेबाज़ी होने से बचा लेता है। साथ की कार्यपद्धत्ति में निहित स्वप्न और वास्तविकता का अन्तर्विरोध भी पूरी तरह उजागर हो जाता है। व्यंग्य के सहारे बात कहने वाले नागार्जुन की यह सबसे बड़ी खासियत है कि वे यह खतरा बार-बार उठाते हैं,

जिसमें कविता मात्र प्रतिक्रिया न बनकर रह जाए। जाहिर है इस प्रकार की व्यंग्य-कविताओं में निष्क्रिय क्षोभ नहीं है, बल्कि करुणा से पैदा हुआ आक्रोश है, जिसे आक्रामक क्षोभ कहा जाता है।

प्रगतिशील कवियों में ज्यादातर जनकवि हैं और उनके पास वह ठेठ निगाह है जो ताड़ने में अचूक है। समाज की कौन-सी नस, और कैसे फड़क रही है ? वे इस बात को भली-भाँति जानते हैं। समाज में व्याप्त विसंगतियों के समानान्तर स्थानीय नेताओं के राजनैतिक चालों की कलई वे बड़ी सतर्कता से खोलते हैं –

लौटे हैं दिल्ली से कल टिकट मार के
खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के
आये दिन बहार के।

– (आये दिन बहार के – नागार्जुन रचनावली, भाग-1, पृष्ठ 423)

'टिकट मार के' जैसा प्रयोग कोई लोकवादी कवि ही कर सकता है। यहाँ दाँतों की तुलना अनार से की गई है। यद्यपि यह रूढ़ उपमान है, लेकिन 'खिले हैं दाँत' नेता के मुखमण्डल के काइयाँ रूप को दर्शाता है, जो अभद्र है। साथ ही अनियन्त्रित प्रकार से पान चबाने के बाद गन्दे दाँतों को जो कुरूप बिम्ब उभरता है,उसे कवि उजागर करना चाहता है। यह कवि के गहरे जीवन अनुभव को प्रकट करता है। निष्कर्ष रूप में कहा जाए तो "पारम्परिक रूपों में,अपनी भाषा के ठेठ मुहावरे में, हिन्दी और उसकी बोलियों की लय में आधुनिक अन्तर्वस्तु कैसे व्यक्त की जा सकती है, यह प्रगतिशील कवियों से सीखा जा सकता है। (– परम्परा और प्रयोग, विश्वनाथ त्रिपाठी, आजकल, जून 1996, पृष्ठ 9) लोकधुनों को राजनैतिक कविता का माध्यम बना देना यह आसान काम नहीं है, किन्तु प्रगतिशील कवियों ने इसका भरपूर उपयोग किया है। 'चना जोर गरम, 'हरगंगे', 'ओं' आदि मूलतः लोकधुन ही हैं। यथा –

चना खाएँ कांग्रेसी लोग
कि जिनमें दुनिया-भर के रोग
साधते सत्य-अहिंसा-योग
लगाते फिर भी सब कुछ भोग।

प्रगतिशील कविता में भिन्न प्रकार के उपमानों को लिया गया है जो सामान्य जन जीवन से ग्रहण किये गए हैं –

कोयल की खान की मजदूरिनी सी रात।
बोझ ढोती तिमिर का विश्रान्त सी अवदात॥

मशाल, जोंक, रक्त, ताण्डव, विप्लव, प्रलय आदि नये प्रतीक प्रगतिवादी साहित्य की अपनी सृष्टि हैं। प्रगतिशील कवि का कला सम्बन्धी दृष्टिकोण में कला को स्वान्तःसुखाय या कला कला के लिए नहीं, बल्कि जीवन के लिए, बहुजन के लिए अपनाया गया है।

छन्दों के क्षेत्र में भी प्रगतिशील कवियों की कविता में विविधता दिखती है। एक तरफ निराला के मुक्त छन्दों की परम्परा का चरमोत्कर्ष है तो दूसरी तरफ तुकान्त कविता का सफल उपयोग भी विद्यमान है। लोक-जीवन और लोक-संस्कृति से जुड़े होने के कारण इस धारा की कवियों में लोक-गीतों और विशिष्ट ग्रामीण धुन की ओर सहज झुकाव रहा है। रामविलास शर्मा ने इस तरह के कई प्रयोग किए, जिनमें 'हाथी घोड़ा पालकी, जय कन्हैया लाल की', 'चोट पड़ी है फिर डंके पर', 'यारों फ़ौज होय तैयार', 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' आदि उल्लेखनीय हैं। केदारनाथ अग्रवाल ने 'माझी न बजाओ वंशी मेरा मन डोलता', 'नव मेरी पुरइन के पात की', 'हमको न मारो नजरिया', 'पंचों सुनौ खबरिया', 'खेतों के नर्तन उत्सव में' आदि लोक आश्रित गीत हैं। इसी प्रकार के उदाहरण नरेन्द्र शर्मा, शंकर शैलेन्द्र, शिवमंगलसिंह 'सुमन' आदि कवियों में भी देखे जा सकते हैं। परम्परागत छन्दों में दोहा, सवैया, कुण्डलिया के अलावा ग़ज़ल, सॉनेट, बैलेड, रुबाई भी इन कवियों ने रचे। कुल मिलाकर प्रगतिशील कवियों ने तुकान्त, अतुकान्त, मुक्त-छन्द, लोकगीत आदि सभी स्वीकृत छन्दों की बिना किसी अतिरेक के अपनाया।

3.2.07. प्रगतिशील कवियों की शक्ति और सीमाएँ

3.2.07.1. शक्ति

आधुनिक साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है उसका मनुष्य की सम्वेदनाओं, उसके सामाजिक सम्बन्धों एवं जीवनगत-संघर्षों से जुड़ा होना, लेकिन भारतेन्दुकालीन, द्विवेदीकालीन, छायावादी, प्रयोगवादी एवं नयी कविताएँ इन मानदण्डों पर खरे साबित नहीं होते। वहीं प्रगतिशील काव्य-आन्दोलन इन सबसे भिन्न एक ऐसा काव्यान्दोलन है, जो मनुष्य समाज के बीच से उसकी जीवनगत ठोस समस्याओं को लेकर पैदा हुआ है और एक सुसंगत वैचारिक दर्शन के सहारे सामाजिक बदलाव में साहित्य की भूमिका की बात करताहै। भारतीय सन्दर्भ में देखा जाए तो इस काव्य-आन्दोलन के सामने कई बड़ी चुनौतियाँ थीं। मसलन कविता की शिष्ट परम्परा में इस प्रकार की खुरदरी कविताओं का विरोध कथ्य और अभिव्यक्ति दोनों स्तरों पर होना स्वभाविक था। इस कविता ने काव्य-सौन्दर्य के स्थापित प्रतिमानों को गैरज़रूरी साबित कर दिया था, इससे सम्भ्रान्त रुचि और दृष्टि वालों को धुर आघात लगा था। इस काव्य-आन्दोलन का वैशिष्ट्य इस बात में निहित है कि विरोधी परिस्थितियों के होते हुए भी इसने लीक से हटकर साहित्य रचना का बिल्कुल भिन्न मार्ग चुना। किसानी क्रिया-कर्म, जैसे – हल जोतना, सिंचाई करना, कटाई-पिसाई, फिर गरीबी, शोषण, उत्पीड़न आदि कविता के विषय कभी नहीं थे, किन्तु इन रचनाकारों ने जीवन के इन अछूते प्रसंगों को अपने रचना-संसार का आधार बनाया। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि प्रगतिशील कविता की सर्वप्रमुख विशेषता है मानव जीवन का व्यापक चित्रण। इस कविता में तत्कालीन भारतीय समाज, इतिहास, भूगोल, राजनीति, अर्थनीति आदि सभी पक्षों का व्यापक स्तर पर रूपायित किया गया है।

साहित्य रचना के इतिहास में कभी भी साधारण मनुष्य को काव्य-सिंहासन पर इतने सम्मान के साथ नहीं बैठाया गया था, जिस आदर और गरिमा के साथ प्रगतिशील कविता ने उन्हें बैठाया। इसी सन्दर्भ में यह निष्कर्ष

निकाला जाता है कि यह कविता भावना पर कम, चेतना पर अधिक आधारित है। मानवीय कष्टों पर आँसू नहीं बहाता, बल्कि आक्रोश व्यक्त करता है। गरीब, वंचित और दलित के प्रति सहानुभूति नहीं दिखाता, उनके अधिकारों के लिए लड़ता है। इस कविता में कल्पनाओं, भावनाओं और आदर्शों के विपरीत यथार्थ की प्रतिष्ठा की गई है। सामाजिक, मानसिक और प्राकृतिक – तीनों क्षेत्रों में प्रगतिशील कविता यथार्थ को प्रतिबिम्बित करती है। इसके यथार्थ चित्रण में एक गहराई है, क्योंकि उसमें वर्ग-विश्लेषण और सामाजिक अन्तर्विरोधों की वैज्ञानिक दृष्टि विद्यमान है। यह यथार्थ चित्रण गत्यात्मक है, इसलिए जहाँ पर उसमें वर्तमान जीवन की विषमताओं और विरूपताओं को अभिव्यक्ति दी गई है, वहीं उनके खिलाफ जूझती हुई शक्तियों की एकता को भी बल प्रदान किया गया है। यही कारण है कि यह यथार्थ चित्रण निराशाजनक नहीं है।

प्रगतिशील कविता की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता है – इसकी स्वस्थ प्रणय-भावना। प्रगतिशील कविता की प्रेम विषयक कविताओं में न तो रीतिकाल के समान अति शृंगारिकता, घोर ऐन्द्रिकता एवं वासना है और न ही छायावादी प्रेम कविताओं के समान रूमानीपन, वायवीयता एवं अशरीरीपन। यहाँ द्विवेदीयुगीन कविता का नैतिकतावाद, प्रयोगवादी कविता का एंटीरोमांटिस्ज़्म और नयी कविता की कुत्सित यौन-आकांक्षा भी नहीं है। इनसे इतर प्रगतिशील कविता धरती से जुड़े प्रणय की सहज कामना को चुनती है, जिसमें स्वस्थ सामाजिकता और दाम्पत्य जीवन की सहज ऊष्मा विद्यमान है। यहाँ प्रणय के रूप में सख्य भाव से अनुप्राणित निर्विशेष मानवीय प्रेम की मधुर अभिव्यक्ति हुई है।

भाषा-शिल्प के क्षेत्र में प्रगतिशील कविता में दोनों प्रकार के उदाहरण मिलते हैं – परम्परागत और नवीन भाषा-शैली। फिर भी ज्यादातर रचनाकारों ने जनवादी मार्ग को अपनाया। जहाँ आमजन के जीवन से जुड़ी बोलचाल की भाषा या फिर लोक-भाषा को प्रधानता दी गई है। वहीं शिल्प भी लोक लय, लोक-धुन में रची बसी है। एक साथ कई प्रकार के ग्रामीण बिम्ब और दृश्य भी विद्यमान हैं, वहीं नगर-शहरों का बदहाल कृत्रिम चित्र भी। शैली-शिल्प की दृष्टि से यह काव्यधारा बेहद सम्पन्न और बहुरंगी है।

3.2.07.2. सीमाएँ

कुछ आलोचक प्रगतिशील कविता की सबसे बड़ी सीमा इसकी संकीर्णता को मानते हैं, जो कई रूपों में व्यक्त हुई है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण रूप है – जीवन और जगत् को परखने की एकांगी दृष्टि। समाज को वर्ग-संघर्ष से आवश्यक रूप से जोड़ देने और वामपंथी राजनीति को असंतुलित महत्त्व दे दिए जाने के कारण जीवन के अन्यान्य विषयों की घोर उपेक्षा की गई है। इस काव्य-आन्दोलन की दूसरी बड़ी सीमा है – वैचारिक अनुदारता। इस सीमा का परिणाम यह हुआ कि भिन्न विचारधारा वाले साहित्यकारों की ईमानदारी पर अविश्वास व्यक्त करते हुए उन्हें बेईमान और गद्दार घोषित करना। समाज के सबसे संवेदनशील प्राणी होने के नाते कम से कम रचनाकारों से ऐसी वैचारिक वैमनस्य की भावना की उम्मीद नहीं की जा सकती। प्रगतिशील कविता का एक अन्य संकीर्ण पक्ष है – सामायिक घटनाओं पर तात्कालिक प्रतिक्रिया देते हुए उस पर अत्यधिक जोर देना। प्रगतिशील कवियों ने तात्कालिक सामाजिक-राजनैतिक आन्दोलनों एवं घटनाओं पर सबसे अधिक रचनात्मक कार्य किया। कई

रचनाओं में तो उन्हें शाश्वत प्रवृति की तरह प्रस्तुत किया गया, जबकि सामाजिक-राजनैतिक बदलाव के क्रम में उन समस्याओं के निराकरण के बाद उन रचनाओं की प्रासंगिकता पर सवाल करना बड़ा आसान है । जाहिर है ज़मींदारी-सामन्तवादी शोषण के विरुद्ध लिखी गई उनकी कई रचनाओं को अब उतना महत्त्व नहीं दिया जा सकता। यही नहीं समाज के सन्दर्भ में जब 'किसान-मजदूरों' पर बल दिया जाने लगा तो कुछ मध्यमवर्गीय लेखक भड़क गए। उनमें से अज्ञेय का विरोध इस बात से था कि किसान-मजदूरों की तरह निम्न मध्यम-वर्ग भी पीड़ित है, बल्कि वे यह मानते थे कि इस समाज-व्यवस्था में छोटे-बड़े सभी लोग परेशान हैं, इसलिए साहित्य सबके लिए, सम्पूर्ण मानव जाति के लिए है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जीवन में राजनीति का अपना महत्त्व होता है, किन्तु साहित्य राजनीति का 'साहित्यिक संस्करण' मात्र नहीं है। यह ध्यान देने योग्य तथ्य है कि राजनीति में कट्टरता की संभावना मानी जा सकती है, पर साहित्य में संकीर्णता और कट्टरता के लिए कोई स्थान नहीं होता। भाषा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से प्रगतिशील कविता की सबसे बड़ी सीमा उसकी सपाट बयानी है। इस सीधी और सपाट कथन पद्धत्ति के क्रम में ज्यादातर रचनाकारों में यह अधीरता स्पष्ट देखी जा सकती है, जहाँ रचनाकार जीवन और राजनीति के सच्चाई से झटपट पाठक को परिचित करा देना चाहता है। केवल राजनीति ही कविता नहीं है। कविता के अपने कुछ मौलिक तत्त्व होते हैं जो उसे लोक की जमीनी संवेदनाओं से जोड़ते हैं। अतिराजनैतिक सक्रियता किसी भी कविता को काव्य-सौन्दर्य से रहित कर बैनरबाज़ी और पोस्टरबाज़ी की कोटि में खड़ा कर देती है। प्रगतिशील कवियों पर अक्सर विरोधियों द्वारा यह तंज कसा जाता है कि उन्होंने कविता कम लिखीं है, पोस्टर अधिक बनाए हैं। उनकी कविताएँ पोस्टरबाज़ी के कारण शुष्क और अनगढ़ हो जाती है और कहीं-कहीं मिथ्याचार व भावुक प्रलाप भी दिख जाता है। ऐसा प्रतीत होने लगता कि जैसे कवि ने घटना को देख लिया और तुरंत घर पहुँचकर भाषा का फर्जी वितंडा रच बैठा। संवेदना की कमी और अति भावुकता की थोथी पोस्टरिंग कविता को यथार्थ से दूर हटाकर मिथकीय गल्प के रूप मे ढाल देती है। उसमें आवश्यक कलात्मक कौशल और संयम का अक्सर अभाव दिखता है। यही कारण है कि यथातथ्य वर्णन या चित्रण के दबाव में कई बार रचनाएँ कविताएँ बनने से रह जाती हैं।

3.2.08. पाठ-सार

इस पाठ में आपने प्रगतिशील साहित्य के उन सभी पक्षों का अध्ययन किया, जिनके माध्यम से हिन्दी साहित्य के इस उर्वर एवं परिवर्तनकारी साहित्य का परिचय प्राप्त किया जा सकता है। पाठ के आरम्भ में 'प्रगति', 'प्रगतिवाद', 'प्रगतिशील' आदि विशिष्ट शब्दों के तात्पर्य को स्पष्ट किया गया है। फिर प्रगतिवाद और मार्क्सवादी सिद्धान्त के बीच के सम्बन्धों की पड़ताल की गई है। वस्तुतः मार्क्सवाद को समझे बिना प्रगतिवादी कविता को समझना सम्भव नहीं है, इसलिए इस विषय पर विस्तार से बातचीत की गई है। चूँकि मार्क्स की समाजसम्बन्धी व्याख्या सामाजिक बदलाव की दिशा निर्देशित करती है। मार्क्स की विचारधारा से प्रेरित होकर रची गई प्रगतिवादी कविता जनता को अपने समाज और जीवन के प्रति जाग्रत् कर समाज के प्रति उनके दायित्वों को नये सिरे से रेखांकित करती है। यही कारण है कि प्रगतिवादी कविता को जनता की भावनाओं, आकांक्षाओं और सपनों से जुड़ा साहित्य माना जाता है।

पाठ के अगले हिस्से में प्रगतिशील कविता के उभार के कारणों पर विचार किया गया है। हिन्दी कविता में प्रगतिशीलता के लक्षण 1930 ई. के बाद की कविताओं में देखा जाने लगा था, किन्तु इसकी औपचारिक शुरुआत 1936 ई. में लखनऊ के प्रगतिशील लेखक संघ के प्रथम अधिवेशन के साथ माना जाता है। यह वही काल है जब वैश्विक स्तर पर द्वितीय विश्वयुद्ध की आहट सुनाई दे रही थी, वहीं भारत में स्वतन्त्रता-आन्दोलन अपने अन्तिम चरण में प्रवेश करने के साथ-साथ अखिल भारतीय स्तर पर जनता का आन्दोलन बनकर उभर रहा था। किसान-मजदूरों की बड़ी भागीदारी के साथ विविध प्रकार के क्रान्तिधर्मी आन्दोलन शोषण और दमन के सभी चेहरों को बेनकाब कर देना चाहते थे। अंग्रेजों के साथ-साथ सामन्तवादी शक्तियों का भी पुरजोर विरोध होने लगा था। इन परिवर्तनों के पीछे वामपंथी विचारों का स्पष्ट प्रभाव था। साहित्य के स्तर पर कविता का तेवर भी इन प्रतिगामी शक्तियों के विरुद्ध था।

इस पाठ का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रसंग है – प्रगतिशील कविता की वैचारिक पृष्ठभूमि। इसके अन्तर्गत प्रगतिशील कविता के कथ्य और उसकी संरचना को समझाने का प्रयास किया गया है। प्रगतिशील कविता वस्तुतः किसान-मजदूर और सामान्यजन की पीड़ा एवं उनके कठिन संघर्षों से जुडी कविता है। अतः इस हिस्से में प्रगतिशील कवियों की रचनाओं से उदाहरणों को उद्धृत करके उनके काव्य-उद्देश्य को प्रमाणित किया गया है। इसमें उनकी जनवादी और सामाजिक दृष्टियों के विविध पक्ष सम्मिलित किये गए हैं।

अब तक आप जान चुके हैं कि प्रगतिशील कवियों ने कविता के कथ्य की तुलना में कला पक्ष को कम महत्त्व दिया है, क्योंकि वे लोक-भाषा और लोक-शिल्प के पक्षधर थे। उनकी इकाई के इस भाग में प्रगतिशील कवियों की कविता के अभिव्यक्ति पक्ष पर संक्षेप में विचार किया गया है। इस पाठ के अन्तिम हिस्से में प्रगतिशील कविता की शक्ति और सीमाओं पर विचार किया गया है। चूँकि प्रगतिशील कविता पर अति वैचारिक और प्रचारात्मक होने का आरोप लगाया जाता है। इसके अतिरिक्त उन पर आयातित मार्क्सवादी विचार के जबरन साहित्यिक उपयोग के कारण साहित्य के सौन्दर्य-पक्ष को नकारने आरोप भी है। यहाँ इन मुद्दों पर भी विचार किया गया है।

3.2.09. बोध प्रश्न

1. प्रगतिवाद के उदय के ऐतिहासिक एवं वैचारिक कारणों का विवेचन कीजिए।
2. प्रगतिशील कवियों की जनवादी चेतना का विश्लेषण एवं मूल्यांकन कीजिए।
3. प्रगतिशील कवियों की सामाजिक चेतना की शक्ति और सीमाओं पर विचार कीजिए।
4. आधुनिक हिन्दी काव्य-परम्परा में प्रगतिशील कविता के योगदान पर प्रकाश डालिए।
5. प्रगतिशील कविता के भाषा-शिल्प को स्पष्ट कीजिए।

3.2.10. व्यवहार

1. प्रगतिशील कविता के अतिरिक्त स्वतन्त्रता संग्राम के समानान्तर देश के विभिन्न हिस्सों में होने वाले सामाजिक एवं किसान-मजदूरों के आन्दोलनों का अध्ययन कीजिए।
2. प्रगतिशील कवियों के काव्य-संकलनों के साथ-साथ विभिन्न विषयों से सम्बन्धित उनके कथा-साहित्य, निबन्धों, आलोचनात्मक लेखों आदि को भी पढ़ने का प्रयास कीजिए।
3. प्रगतिशील कविता के समानान्तर दूसरे अन्य कवियों की रचनाओं का अध्ययन कीजिए। तदनन्तर प्रगतिशील कवियों की रचनाशीलता का मूल्यांकन कीजिए।

3.2.11. कठिन शब्दावली

(i) मार्क्सवाद : सामाजिक राजनैतिक दर्शन के रूप में मार्क्सवाद (Marxism) उत्पादन के साधनों पर सामाजिक स्वामित्व द्वारा वर्गविहीन समाज की स्थापना के संकल्प की साम्यवादी विचारधारा है। वस्तुतः, मार्क्सवाद उन आर्थिक-राजनैतिक सिद्धान्तों का समुच्चय है, जिन्हें उन्नीसवीं-बीसवीं सदी में कार्ल मार्क्स ने समाजवाद के वैज्ञानिक आधार की पुष्टि के लिए प्रस्तुत किया था।

(ii) द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद : यह मार्क्सवादी अवधारणा है और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के अनुसार परिवर्तन ही परम सत्य है। उसके लिए देश काल से परे किसी भी अमर सत्ता का कोई महत्त्व नहीं है।

(iii) सर्वहारा (Proletariat) : समाजशास्त्र, राजनीति और अर्थशास्त्र में समाज के नीचे वाली श्रेणियों को सर्वहारा वर्ग कहा जाता है, जो अक्सर शारीरिक श्रम से जीवनी चलाते हैं। औद्योगिक समाजों में अक्सर कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों को 'प्रोलिटेरियट' कहा जाता था लेकिन कभी-कभी कृषकों और अन्य ग़रीब मेहनत करने वाले लोगों को भी इसमें शामिल किया जाता है।

(iv) वर्ग-संघर्ष : मार्क्स ने आर्थिक नियतिवाद की सबसे महत्त्वपूर्ण अभिव्यक्ति इस बात में देखी कि समाज मे सदैव ही विरोधी आर्थिक वर्गों का अस्तित्व रहता है। एक वर्ग वह है जिसके पास उत्पादन के साधनों का स्वामित्व है, वहीं दूसरा वह जो केवल शारीरिक श्रम करता है। पहला वर्ग सदैव ही दूसरे वर्ग का शोषण करता है। मार्क्स के अनुसार समाज के शोषक ओर शोषित – ये दो वर्ग सदा ही आपस में संघर्षरत रहे हैं और इनमें समझौता कभी सम्भव नहीं है।

(v) साम्राज्यवाद : साम्राज्यवाद (Imperialism) वह दृष्टिकोण है जिसके अनुसार कोई महत्त्वाकांक्षी राष्ट्र अपनी शक्ति और गौरव को बढ़ाने के लिए अन्य देशों के प्राकृतिक और मानवीय संसाधनों पर अपना नियन्त्रण स्थापित कर लेता है। यह हस्तक्षेप राजनैतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक या अन्य किसी भी प्रकार का हो सकता है। इसका सबसे प्रत्यक्ष रूप किसी क्षेत्र को अपने राजनैतिक अधिकार में ले लेना एवं उस क्षेत्र के निवासियों को विविध अधिकारों से वंचित करना है। देश के नियन्त्रित क्षेत्रों को साम्राज्य कहा जाता है। साम्राज्यवादी नीति के अन्तर्गत एक राष्ट्र-राज्य (Nation State) अपनी सीमाओं के बाहर जाकर दूसरे देशों और राज्यों मे हस्तक्षेप करता है।

(vi) सामन्तवाद (Feudalism) : यह मध्यकालीन युग में यूरोप की एक ऐसी व्यवस्था थी, जिसमें भूमि पर अधिकार को विशेष महत्त्व दिया गया था। इन सामन्तों की कई श्रेणियाँ थीं जिनके शीर्ष स्थान पर राजा होता था। उसके नीचे विभिन्न कोटि के सामन्त होते थे और सबसे निम्न स्तर में किसान या दास होते थे। यह रक्षक और अधीनस्थ लोगों का संगठन था। राजा समस्त भूमि का स्वामी माना जाता था। सामन्तगण राजा के प्रति स्वामीभक्ति बरतते थे, उसकी रक्षा के लिए सेना सुसज्जित करते थे और बदले में राजा से भूमि पाते थे। सामन्तवादी समाज की प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें ऐसे लोग अधिक शक्तिशाली होते हैं जो ज़मीन पर बिना काम किए उस पर अधिकार रखते हैं।

3.2.12. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. राय, डॉ॰ लल्लन (1989), हिन्दी की प्रगतिशील कविता, चंडीगढ़, हरियाणा साहित्य अकादेमी
2. डॉ॰ रणजीत, (1971), हिन्दी की प्रगतिशील कविता, दिल्ली-6, हिन्दी साहित्य संसार, प्रगतिशील प्रकाशन
3. अवस्थी, रेखा, (2012), प्रगतिवाद और समानान्तर साहित्य, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, 978-81-267-2200-6
4. उपाध्याय, डॉ॰ मृत्युंजय, (2000), हिन्दी की प्रगतिशील कविता : स्वरूप और प्रतिमान, दिल्ली-32, अमर प्रकाशन
5. सिंह, चन्द्रबली, (2003) आलोचना का जनपक्ष, दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 81-8143-006-9
6. चौहान, शिवदानसिंह, (2002, द्वितीय संस्करण), साहित्य की समस्याएँ, दिल्ली, स्वराज प्रकाशन, 81-85999-38-4
7. श्रीवास्तव, परमानन्द, (2008), कविता का अर्थात्, नयी दिल्ली, वाणी प्रकाशन, 978-81-8143-926-0
8. राय, प्रो॰ लल्लन, सं., (2008) प्रगतिशील काव्य, MHD-2, पुस्तिका-4, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मानविकी विद्यापीठ, 81-7605-657-X
9. जैन, प्रो॰ निर्मला, (सं.) (2001) आधुनिक साहित्य-II, MHD-6, पुस्तिका-5, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, मानविकी विद्यापीठ, 81-0266-0208-2

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : छायावादोत्तर काव्य

इकाई – 3 : रामधारीसिंह 'दिनकर' के काव्य में निहित राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना

इकाई की रूपरेखा

3.3.0. प्रस्तावना
3.3.1. राष्ट्रीय चेतना
 3.3.1.1. राष्ट्रीयता से तात्पर्य
 3.3.1.2. क्रान्ति की कविता
 3.3.1.3. निरंकुश राज-व्यवस्था का विरोध
 3.3.1.4. पूँजीवाद का विरोध
3.3.2. सांकृतिक चेतना
 3.3.2.1. संस्कृति से तात्पर्य
 3.3.2.2. प्राचीन और नवीन संस्कृतियों का समन्वय
 3.3.2.3. सामासिक संस्कृति का निर्माण
 3.3.2.4. समाजबोध
 3.3.2.4.1. ग्राम्य-जीवन
 3.3.2.4.2. नगरीय बोध
 3.3.2.5. नारी भावना
 3.3.2.6. धर्म
3.3.3. पाठ-सार
3.3.4. उपयोगी ग्रन्थ-सूची
3.3.5. बोध प्रश्न

3.3.0. प्रस्तावना

राष्ट्रीय भावधारा के प्रमुख कवि रामधारीसिंह 'दिनकर' का जन्म 23 सितंबर 1908 को बिहार के बेगूसराय जिले में हुआ। दिनकर ने हिन्दी साहित्य में न सिर्फ़ वीर रस के काव्य को एक नयी ऊँचाई दी, बल्कि अपनी रचनाओं के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का भी सृजन किया। दिनकर का पहला काव्य-संग्रह 'विजय सन्देश' वर्ष 1928 में प्रकाशित हुआ। उनकी प्रमुख रचनाएँ 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'हुंकार' और 'उर्वशी' हैं। वर्ष 1959 में उन्हें साहित्य अकादेमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। पद्मभूषण से सम्मानित दिनकर राज्यसभा के सदस्य भी रहे। वर्ष 1972 में उन्हें ज्ञानपीठ सम्मान भी दिया गया। दिनकर उर्दू, संस्कृत, मैथिली और अंग्रेजी भाषा के भी जानकार थे। वर्ष 1999 में उनके नाम से भारत सरकार ने डाक टिकट जारी किया। 24 अप्रैल, 1974 को उनका देहावसान हो गया।

राष्ट्रकवि दिनकर ने अपनी अधिकांश रचनाएँ 'वीर रस' में कीं। भूषण के बाद दिनकर ही एकमात्र ऐसे कवि रहे, जिन्होंने वीर रस से सिक्त काव्य-रचनाएँ कीं। दिनकर ने भारतीयों की राष्ट्रभक्ति की भावना को अपनी कविताओं के माध्यम से आगे बढ़ाया। वे जनकवि थे इसीलिए उन्हें राष्ट्रकवि भी कहा गया। देश की आजादी की लड़ाई में भी दिनकर ने अपना योगदान दिया।

रामधारीसिंह 'दिनकर' की रचनाओं का अधिकांश भाग राष्ट्रीय भावनाओं से ओत-प्रोत है। उनकी रचनाओं में क्रान्ति का उद्‌घोष है, हृदय की ज्वाला है, दासता की पीड़ा और उसके विरुद्ध विद्रोह की भावना है। पीड़ित मानवता और दलित समाज के प्रति सहानुभूति है। साथ ही उनके काव्य में विश्व-कल्याण की महती भावना भी अभिव्यक्त हुई है। भारत की विषम परिस्थितियों के समान ही वे विश्व की विषम परिस्थितियों से भी उतने ही उद्वेलित हैं।

दिनकरजी ने भारत के राष्ट्रीय व्यक्तित्व के निर्माण के लिये महाभारतकालीन शौर्यसम्पन्न स्फूर्त व्यक्तित्वों को नये कलेवर में प्रस्तुत किया। अतीत के उन जीवन्त पात्रों के जीवन में दिनकर ने जागरण का दृढ़ संकल्प भर दिया। इतना ही नहीं दिनकर ने भारतीय समाज को नये सांस्कृतिक मूल्यों के साथ एक राष्ट्र के रूप में स्थापित करने का भरसक प्रयास किया।

राष्ट्रीयता दिनकर के व्यक्तित्व का अभिन्न अंग है। अपनी सृजनशीलता में राष्ट्रीय भावना के सम्बन्ध में दिनकर ने स्वयं लिखा है – "संस्कारों से मैं कला के सामाजिक पक्ष का प्रेमी अवश्य बन गया था, किन्तु मेरा मन भी चाहता था कि गर्जन तर्जन से दूर रहूँ और केवल ऐसी ही कविताएँ लिखूँ जिनमें कोमलता और कल्पना का उभार हो। ... और सुयश तो मुझे हुंकार से ही मिला, किन्तु आत्मा अब भी 'रसवंती' में बसती है। ... राष्ट्रीयता मेरे व्यक्तित्व के भीतर से नहीं जाती। उसने बाहर से आकर मुझे आक्रान्त किया है।"

3.3.1. राष्ट्रीय चेतना

3.3.1.1. राष्ट्रीयता से तात्पर्य

'राष्ट्र' शब्द एक विशिष्ट देश या जाति से पृथक् होता है। किसी देश या जाति का इतिहास उसका उत्थान-पतन और उसकी संस्कृति, सभ्यता सभी राष्ट्रीय सम्पत्ति के रूप में प्रतिष्ठित होती है और एक स्थानीय विशेषता को लिए होती है जो मानव-मात्र को सामान्य भूमि से इस सम्पत्ति से अलग करती है। इसी विशेषता के आधार पर जातिगत एकता का सूत्र मान्य रहता है। इस एकता का सूत्र के साथ रागात्मक सम्बन्ध और उसकी सुरक्षा के प्रति कर्त्तव्य सामान्य रूप से राष्ट्रीयता के अन्तर्गत आते हैं। राष्ट्रीयता के इस व्यापक अर्थ के साथ एक विशेष अर्थ भी मान्य है। जब एक देश या जाति वर्ग अपने अन्धकार, अपनी दुर्बलता या एकता की शिथिलता के कारण अपने अधिकारों से वंचित हो जाता है तथा एक विजेता उसके श्रम एवं सम्पत्ति का शोषण करता है, तब असंतोष जन्म लेता है। निरन्तर बढ़ता यह असंतोष थोड़ा-थोड़ा एकत्रित हो एक ज्वालामुखी में परिवर्तित हो जाता है। विच्छिन्न एकता का सूत्र इस वातावरण में क्रान्ति के रूप में जन्म लेता है। सभी पहले के वैभव और

अधिकारों को पुनः प्राप्ति के लिए जो क्रान्तिशील प्रयत्न करती है, सीमित रूप में इसी अन्तर्बाह्य संघर्ष को राष्ट्रीयता के नाम से चिह्नित किया जाता है। जब हम भृत्य राष्ट्रीयता की बात करते हैं तो सामान्यतः अपने इतिहास की समस्त शक्तियों का सबल लेकर और एकता सूत्र में दृढ़ आस्था रखते हुए किये गए प्रयत्नों से ही हमारा अभिप्राय होता है। कोई भी जागरूक कलाकार इन प्रयत्नों के प्रति अन्यमनस्क नहीं रह सकता। दिनकर इसी राष्ट्रीय क्रान्ति की भूमिका को लेकर उपस्थित हुए।

3.3.1.2. क्रान्ति की कविता

रामधारीसिंह 'दिनकर' का काव्य-साहित्य एक व्यापक रूप लिए है। उनके विशाल काव्य-साहित्य में उनकी राष्ट्रीय चेतना का एक विकासगामी रूप दिखाई देता है। स्वतन्त्रता से पहले उनकी राष्ट्रीयता में 'हुंकार' है, विद्रोह से युक्त क्रान्तिकारी स्वर है। किन्तु स्वतन्त्रता के बाद उनकी राष्ट्रीय चेतना पंचशील से युक्त और अन्तर्राष्ट्रीयता से विश्व मानवतावाद की ओर उन्मुख होती हुई, भारत-चीन युद्ध तक आते-आते पुनः एक नये मार्ग की ओर अग्रसर होती दिखाई देती है, जिसमें विद्रोह, आक्रोश और आतंक का भाव है।

गुलाम भारत में जो राजनैतिक पराधीनता, सामाजिक अवनति और आर्थिक विपन्नता आई, उसी के प्रतिरोध में दिनकर की कविता रची गई। परिवर्तन जब बहुत तीव्र गति से आता है तब उसे क्रान्ति कहते हैं। कवि युवावस्था के सहज आकर्षण को त्याग कर क्रान्ति के पाठ का अनुसरण करता है । दिनकर की राष्ट्रीयता गाँधीवादी चेतना की देन नहीं है बल्कि उस समय जो क्रान्तिकारी अंग्रेजों से लड़ रहे थे, वे ही दिनकर की राष्ट्रीयता और तज्जन्य क्रान्तिकारी कविताओं की जड़ है। स्वाधीनता के इच्छुक कवि को लगता है कि गाँधीवाद के युधिष्ठिरपन से देश को स्वाधीनता नहीं मिलेगी, बल्कि स्वाधीनता का मार्ग सशत्र संघर्ष का ही मार्ग है। इसी कारण 'हिमालय' कविता में कवि कहते हैं–

रे रोक युधिष्ठिर को न यहाँ, जाने दे उसको स्वर्ग धीर
पर, फिरा हमें गांडीव गदा, लौटा दे अर्जुन भीम वीर।

यह वह रास्ता है जिस पर भगतसिंह तथा चन्द्रशेखर आज़ाद जैसे क्रान्तिकारी चल रहे थे।

क्रान्ति के पथ को कवि 'विपथगा' कहता है। यह विपथागामिनी है, किस रोज किधर से आ जाएगी, यह कोई नहीं जनता। कवि चण्डी के पौराणिक रूप का नवीनीकरण 'विपथगा' में करता है। काल-सर्पिनी के फेन उसके मस्तक के मुकुट हैं। वह चिरकुमारी है जिसके ललाट पर नित्य नवीन रुधिर का चन्दन लगाया जाता है। दृग में चिता के धूम का तिमिर अनजान संहार लपट का चीर पहन वह झूम नाचा करती है। उसकी अँगराई में भूचाल आता है और साँस लेते ही लंका के उनचास पवन चलने लगते हैं। क्रान्ति की यह विरत कल्पना पूरे भारतीय पौराणिक कल्पना की चण्डी और भी कराल बन क्रान्ति कुमारी बन गई है। यही 'चिर कुमारी' उनकी अन्य कविताओं में भी कुमारी कहकर सम्बोधित की गई है –

खलिहानों में यह मचा करता है हाहाकार कुमारी।

'विपथगा' के वाहक हैं युवा। ये आशिक होने वाले युवा अपने भाल पर 'अनल-किरीट' धारण करते हैं। जवानी अल्हड़ और दुस्साहसी होती है। वह रक्तों से खेलती है। 'अनल-किरीट' कविता में कवि इसी अल्हड़ दुस्साहसी जवानी का वर्णन कुछ इस तरह करता है –

धकर चरण विजित शृंगों पर झण्डा वही उड़ाते हैं
अपनी ही उंगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते है।
* * *
नींद कहाँ उनकी आँखों में जो धुन के मतवाले हैं,
गति की तृषा और बढ़ती, पड़ते पद में जब छाले हैं।

'अनल-किरीट' अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्षशील चेतना की प्रबल कविता है। 'सामधेनी' में संकलित जवानियाँ इसी युवा वेग की कविता है। युवा उमंग की व्याप्ति समस्त ब्रह्माण्ड में हो जाता है। कवि इस प्रकार का कॉस्मिक रूप का वर्णन 'जवानियाँ' में कुछ इस प्रकार करते हैं –

समस्त सूर्यलोक एक हाथ में लिए हुए,
दबा के पाँव चन्द्रभाल पर दिए हुए,
खगोल में धुन बिखेरती प्राप्त श्वास से,
भविष्य को पुकारती हुई प्रचण्ड हास से,
उद्दात्त देवलोक को मही से तोलती हुई,
विरत रूप विश्व को दिखा रही जवानियाँ।

यह जवानी जब उमंग और उदातत्ता में आती है तब कवि कुछ इस प्रकार से उद्धृत करता है–

भुजंग दिग्गजों से, कूर्मराज त्रस्त कोल से,
धारा उछल-उछल के बात पूछती खगोल से।
कि क्या हुआ है सृष्टि को, न एक अंग शान्त है,
प्रकोप रूद्र का ? कि कल्पनाश है, युगान्त है ?

इस प्रकार से जवानी ही क्रान्ति की राह पर जाति है। इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि दिनकर स्थान-स्थान पर वय और यौवन की श्रेष्ठता स्थापित करते हैं।

3.3.1.3. निरंकुश राज्-व्यवस्था का विरोध

निरंकुश राज्य-व्यवस्था से कवि को वैर है। निरंकुश राजाओं की स्वेच्छाचारिता और सामन्ती भोगविलास से जनता त्रस्त हो गई। इस निरंकुश स्वेच्छाचारिता और निर्बन्ध भोग-विलास पर कवि ने 'हुंकार' काव्य-संग्रह के 'विपथगा' कविता के अन्तर्गत अपने रोष को प्रकट किया है –

पौरुष को बेड़ी डाल पाप का अभ्यास जब होता है,
ले जगदीश्वर का नाम खड्ग कोई दिल्लीश्वर धोता है,
धन के विलास का बोझ दुखी, दुर्बल दरिद्र जब ढोता है,
दुनिया को भूखों मार भूप जब सुखी महल में सोता है,
सहती, सब कुछ मन मार प्रजा, कसमस करता मेरा यौवन।

समाज में व्याप्त असमानता के प्रति कवि का विरोध एक-दूसरे के विरोधी मित्रों से स्पष्ट हो जाता है और मुखर भी। एक ओर राय बहादुरों के कुत्ते भी दूध पीते थे और दूसरी ओर निर्धनों के छोटे बच्चे जाड़े की रात में ठिठुरते हुए भूखे पेट माँ की हड्डी से चिपक कर सोते हैं –

श्वानों को मिलता दूध-वस्त्र, भूखे बालक अकुलाते हैं,
माँ की हड्डी से चिपक, ठिठुर जाड़ों की रात बिताते हैं,
युवती के लज्जा वसन बेच जब ब्याज चुकाए जाते हैं,
मालिक जब तेल-फुलेलों पर पानी सा द्रव्य बहाते हैं,

दिनकर सामन्तवाद के पतन का सीधा आह्वान 'रेणुका' संग्रह के 'ताण्डव' कविता में करते हैं। उनके अनुसार –

गिरे भवन का दर्प चूर्ण हो आग लगे इस आडम्वर में।

इसी प्रकार 'हुंकार' संग्रह की 'स्वर्ग-दहन' नामक कविता एक प्रतीक के रूप में सामने आती है। यह प्रतीक है सामन्तवाद की समाप्ति का। यह प्रतीक उनकी कविताओं में बार-बार आता है। स्वर्ग और सुर सामन्त और पूँजीपति के प्रतीक हैं। यह प्रतीक उस समय के साहित्यिक परिवेश में उभर रहा था। मुक्तिबोध ने कामायनी की देव सभ्यता को सामन्तवाद का प्रतीक कहा है। दिनकर सामन्ती समाज को पूरी तरह ध्वस्त कर देना चाहते हैं। उनकी कविताओं में स्वर्ग बराबर सामन्ती प्रभों के प्रतीक के रूप में उभरा है। 'हाहाकार' कविता में वे स्वर्ग लूटने की बात करते हैं और 'सामधेनी' की एक कविता में स्वर्ग के सम्राट् को खबरदार करते हैं। जनता धरती-पुत्र है। इस स्वर्ग की पौराणिक कल्पना उपनिवेशी सामन्ती शोषण का प्रतीक बनकर उभरती है।

'रेणुका' संग्रह की 'बागी', 'बोधिसत्व' आदि कविताओं में किसान आन्दोलन, अछूतोद्धार, किसान आन्दोलन, साम्प्रदायिकता और आर्थिक शोषण के चित्र हैं। ये समस्याएँ समाज और राष्ट्र दोनों की थी इसलिए दिनकर ने आदिकवि की वाणी को युगवाणी में परिवर्तित करने का आग्रह किया है–

लाखों क्रौंच कराह रहे हैं,
जाग आदिकवि की कल्याणी
फूट-फूट तू कवि कण्ठों से
बन व्यापक निज युग की वाणी।

3.3.1.4. पूँजीवाद का विरोध

अंग्रेजी शासन-व्यवस्था के साथ जो सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था आयी, उसे पूँजीवाद कहा गया। इसमें धन का वर्चस्व होता है। पूँजीवाद का साम्राज्यवाद से गठबन्धन हो गया। लेनिन ने कहा है – "साम्राज्यवाद पूँजीवाद की ही एक विकसित अमानुषिक व्यवस्था का नाम है।" इस साम्राज्यवादी पूँजीवाद का विस्तार तलवार के बल पर होता है। पुराना मनुष्य भाव के सहारे जीता था, वह कब न मर गया। अब जो आदमी है, वह पैसे का गुलाम है। 'नीलकुसुम' में कवि लिखता है –

वह मनुष्य मर गया,
शेष जो है लक्ष्मी का नया जार है।
गीत उसे क्या
जो कुबेरपद पाने का उम्मीदवार है।

कवि का विश्वास है कि सामाजिक क्रान्ति होगी और कवि को भरोसा है कि पूँजीपतियों की सम्पदा जल्द ही छीन जाएगी। 'बोधिसत्व' में कवि कहता है –

उसी तरह ये नोट तुम्हारे
पापी उड़ जाने वाले हैं,
तप भी मारा गया, माल भी
और लोग पाने वाले हैं।

यह आने वाले समाज की समतामूलकता की झाँकी है। कवि धन की सभ्यता का विरोध करता है –

धन पिशाच की विजय,
धर्म की पवन ज्योति अदृश्य हुई।

इसी 'बोधिसत्व' कविता में कवि सम्पदा की नैतिकता और शील का विरोध करते हुए कहता है–

शबरी के जूठे बेरों से आज राम को प्रेम नहीं,
मेवा छोड़ शाक खाने का आज पुरातन नेम नहीं।

पैसे के शील के विरोध में ही विवेकानन्द ने 'दरिद्र-नारायण' की कल्पना की थी इसमें नारायण की परिभाषा है। जल में जो रहता है, वह नारायण है। यह जल है गरीब के अश्रु। इसी में बसने से 'नारायण' नाम की सार्थकता सिद्ध होती है। पूँजीपति मनुष्य का वध करने वाले दानव हैं। 'बोधिसत्व' कविता पूँजीवाद के विरोध का भावशास्त्र है।

दिनकर उग्र विचारों के राष्ट्रीय कवि हैं । उनका मानना है कि आर्थिक विपन्नता उपनिवेशवाद और सामन्तवाद के गठबन्धन से और अधिक भयानक हुई है। दिनकर को न केवल राजनैतिक पराधीनता का एहसास हुआ, बल्कि राष्ट्रीय अस्मिता के लोप होने का बोध भी हुआ । उनके विरोधी मन की वास्तविक रचना स्वाधीनता-संग्राम के बीच हुई। उनकी कविताओं में आवेगमयी राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना मिलती है।

3.3.2. सांकृतिक चेतना

3.3.2.1. संस्कृति से तात्पर्य

मानव जीवन जिजीविषा को निर्धारित करने वाले कारक को संस्कृति कहते हैं। इसके अन्तर्गत मानव समाज, धर्म, राजनीति, अर्थ तथा भूत, भविष्य और वर्तमान के साथ चलने वाले आदर्श होते हैं। इन आदर्शों का सामूहिक नाम है, 'संस्कृति' । रीति-रिवाज और सामाजिक संस्थाएँ भी इसके अन्तर्गत आती हैं । डॉ॰ द्वारिकाप्रसाद ने 'कामायनी में काव्य संस्कृति और दर्शन' नामक पुस्तक में संस्कृति के व्यापक रूप पर प्रकाश डालते हुए लिखा है – "संस्कृति का सम्बन्ध मानव के भौतिक, आध्यात्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, दार्शनिक, साहित्यिक, कलात्मक आदि सभी प्रकार के महत्त्वपूर्ण विकासों एवं जीवन के विविध पहलों से है। मानव के इन विकासों में परम्परागत संस्कृतियों का सदा हाथ रहता है। इसलिए संस्कृति और संस्कारों का घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त इन विकासों द्वारा ही किसी देश की समस्त चेष्टाएँ रूप हैं और संस्कृति उसका आन्तरिक रूप है। अतः देश की संस्कृति से उस देश के रहन-सहन, आचार-विचार, रीति-रिवाज, ज्ञान-विज्ञान, परम्परागत अनुभव, जीवन यापन के ढंग, कला, प्रेम, रुचि आदि का बोध होता है।" इस आधार पर कहा जा सकता है कि संस्कृति मानव जीवन का एक विशाल चित्रपट्ट है और कविता उसी की आलोचना, उसी की व्यवस्था है। यही कारण है कि प्रत्येक देश के काव्य-साहित्य में उस देश की संस्कृति सम्पदा रूप में सुरक्षित रहती है। संस्कृति मानव जीवन की सम्यक् व्यवस्था है और कविता मानव जीवन की मूलतः आलोचना। इस तरह से प्रत्येक युग की कविता में तत्कालीन सांस्कृतिक मान्यताओं की झलक मिलती है। संस्कृति जीवन, जाति, समाज और युग को सम्यक् रूप से देखती है और उसकी सम्यक् व्याख्या भी करती है जबकि कविता मंगलकारिणी होती हुई भी जीवन के किसी पहलू विशेष को ही अभिव्यक्ति देती है।

3.3.2.2. प्राचीन और नवीन संस्कृतियों का समन्वय

दिनकर की सांस्कृतिक चेतना युग की माँगों की पूर्ति का ही एक प्रयास है । मानवतावादी धर्म और संस्कृति का विकास आधुनिक युग की देन है। दिनकर ने भारत की प्राचीन संस्कृति को बहुत श्रद्धा से पूजा है किन्तु जब वह युग के साथ मेल नहीं खाती तब दिनकर बड़े ही निःसंकोच भाव से उससे विदा ले लेते हैं । परम्पराओं और रूढ़ियों का अवरोध उनको सह्य नहीं है । प्राचीनता के वे वहीं तक समर्थक हैं जहाँ तक वह वर्तमान के साथ चलकर उपयोगी हो सके । 'नये सुभाषित' नामक कविता में दिनकर ने प्राचीन और नवीन संस्कृतियों तथा देशी और विदेशी संस्कृतियोंके समन्वय की चाह को अभिव्यक्त किया है। यथा –

खींचते हैं जो तुम्हें दाँए की बाँए मूर्ख हैं,
ठीक वह बिन्दु दोनों का विलय होता जहाँ है।
ठीक है वह बिन्दु जिससे फटता है पथ का भविष्य,
ठीक है वह मार्ग जो स्वमेव बँटा जा रहा है।
नूतन और पुरातन,
प्राच्य और प्रतिचय के संघर्ष से।

किन्तु इन बदलते हुए मूल्यों के बीच दिनकर भारत की गरिमा को नहीं भूलना चाहते। वह विदेशी वस्तुओं को अपने में मिलकर भारतीय बना लेना चाहते हैं। आधुनिक शिक्षण और यूरोप के प्रभाव से जब भारत का सांस्कृतिक स्तर बदला तो लोगों ने उनकी निन्दा प्रारम्भ की। भारतीयों ने भारतीय संस्कृति को अनुपयोगी कहकर यूरोप की संस्कृति को अपनाया। इस पर दिनकर को दुःख हुआ और 'नये सुभाषित' में वे कहते हैं –

जब चलो आगे
ज़रा-सा देख लो मुड़कर चिरन्तन रूप वह अपना।
अखिल परिवर्तनों में जो अपरिवर्तित रहा है,
करो मत अनुकरण ऐसे।
कि अपने आप से ही दूर हो जाओ,
न बदलो यों कि भारत को
कभी पहचान ही पाए नहीं इतिहास भारत का।

कवि बदली हुई सांस्कृतिक चेतना के समर्थक होकर भी कवि ने भारतीय प्राचीन संस्कृति की गरिमा को भुलाया नहीं है। उन्होंने दोनों का समन्वय किया है।

प्रत्येक संस्कृति का निर्माण धर्म, दर्शन, राजनीति, सामाजिक अर्थ व्यवस्था आदि के साथ होता है। कला भी इसमें योगदान करती है। मानव जीवन के इन्हीं आवश्यक पक्षों को व्यवस्थित और पूर्ण बनाने के लिए जिन आचार-व्यवहारों का प्रयोग किया जाता है उसी का नाम संस्कृति है।

3.3.2.3. सामासिक संस्कृति का निर्माण

दिनकर की सांस्कृतिक चेतना की प्रमुख विशेषता है, 'भारत की बहुलतावादी राष्ट्रीयता में सामासिक संस्कृति की रचना।' दिनकर के अनुसार हिन्दू धर्म की विशेषता यह है कि वह बाहर से आयी हुई संस्कृतियों से मिलकर जाग्रत् और नवीन हो उठती है। ऐसी बात नहीं है कि सामासिक संस्कृति का निर्माण केवल इस्लाम के साथ हिन्दुत्व की टकराहट और सामंजस्य से हुआ है। इसका प्रारम्भ प्रागैतिहासिक काल (कम-से-कम आर्य और द्रविड़ के मिश्रण के समय) से ही आरम्भ हो गई थी। 'संस्कृति के चार अध्याय' में दिनकर लिखते हैं – "इतिहास की अटल गहराइओं में जाने पर भी हम यही देखते हैं कि आर्य और द्रविड़ नाम से अभिहित किये जाने वाले

भारतीयों का धर्म एक है, संस्कार एक है, भाव और विचार एक है, तथा जीवन के विषय में उनका दृष्टिकोण भी एक ही है। शैव, शाक्त, वैष्णव, जैन और बौद्ध, ये आर्य भी थे और द्रविड़ भी।"

भारत में शताब्दियों तक हिन्दू और मुसलमान झगड़ते रहे। यह स्पष्ट है कि भारत में इस्लाम का अत्याचार इतना भयानक रहा कि अन्य कहीं इसके दृष्टान्त नहीं मिलते। परन्तु धीरे-धीरे मुसलमान और हिन्दू दोनों फिर कहीं-न-कहीं एक हुए और उनके मिलन से बहुत-से रीति-रिवाज, तहजीब एक नये तरीके से विकसित हुए। दोनों संस्कृतियों के मिलन से एक सामासिक संस्कृति की रचना हुई। हिन्दू और मुसलमानों के बीच इस सामासिक संस्कृति के निर्माण की भूमिका सूफी आन्दोलन ने तैयार की।

दिनकर ने अपने ग्रन्थ 'संस्कृति के चार अध्याय' के तीसरे अध्याय में हिन्दू और मुसलमानों के मध्य सामासिक संस्कृति की रचना के अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं यथा – "हिन्दुओं के बीच अन्धविश्वास और रूढ़ियाँ बहुत अधिक प्रचलित थीं। इनके प्रभाव से मुस्लिम समाज में भी कुछ रूढ़ियाँ उत्पन्न हो गईं और हिन्दुओं की देखा-देखी मुसलमान जनता भी गाजी मियाँ, पाँच पीर, पीर बदर, ख्वाजा खिजिर आदि कल्पित देवताओं की पूजा करने लगी। मुसलमाओं के ये पीर अक्सर ग्राम देवता बन बैठे और हिन्दू-मुस्लिम सब दरगाह पर माथा टेकने लगे ... हिन्दुओं के बहुत से रिवाज़ ऊँचे तबकों के मुसलमानों में आप से आप चल पड़े। नज़र लगने से बचने के लिए न्योछावर उतारने की परिपाटी बादशाहों की हवेलियों में भी थी। शहजादे भी यात्रा पर निकलने से पहले बाँहों पर मन्त्रसिद्ध यन्त्र बँधवाते थे।"

3.3.2.4. समाजबोध

व्यक्ति की अलग-अलग इकाइयों का नाम ही समाज है। आधुनिक समाज के दो पक्ष हैं – ग्राम और नगर। दिनकर के काव्य में दोनों ही पक्षों का सर्वांग निरूपण हुआ है। दिनकर का जन्म गाँव में हुआ था। उनका बचपन और लड़कपन गाँव में जबकि शेष जीवन वैभवनगरी दिल्ली में व्यतीत हुआ। समाज के दोनों ही पक्षों को उन्होंने बहुत नजदीक से देखा किंवा जीया है। तात्पर्य यह है कि कवि का ग्राम्यबोध और नगरीयबोध दोनों ही अनुभूतिजन्य है, काल्पनिक नहीं। दिनकर में धरती के प्रति आकर्षण है, स्वर्ग के प्रति नहीं। उसकी काव्य-चेतना ही नहीं, मानवीय चेतना का भी निर्माण इसी धरती पर, अपने गाँव घर के वातावरण में हुआ है। उनमें स्वर्ग के प्रति कोई आकर्षण नहीं है। धरती के प्रति आकर्षण और स्वर्ग के प्रति विकर्षण की अभिव्यक्ति कवि करता रहा है।

3.3.2.4.1. ग्राम्य-जीवन

ग्रामीण संस्कृति के आधार कृषकों से कवि का परिचय अच्छा था। वे स्वयं भी कृषकपुत्र थे। इसी कारण उन्होंने कृषकों के दैनिक जीवन में कई सजीव चित्र अंकित किए हैं। गोधूलि की वेला में सारा ग्राम्य जीवन कैसा सुन्दर प्रतीत होता है इसका सजीव चित्रण 'रेणुका' में कवि इस प्रकार करता है –

स्वर्ण चला अहा ! खेतों में उतरी संध्या श्याम परी,
रोमंथन करती गायें आ रहीं रौंदती घास हरी।
घर-घर से उठ रहा धुआँ, जलते चूल्हे बारी-बारी,
चौपालों में कृषक बैठ गाते "कहँ अटके बनवारी ?"
पनघट से आ रही पीतवसना युवती सुकुमार,
किसी भाँति ढोती गागर-यौवन का दुर्वह भार।
बनूँगी मैं कवि ! इसकी माँग, कलश, काजल, सिन्दूर, सुहाग।

वन-तुलसी की गन्ध लिये हलकी पुरवैया आती है,
मन्दिर की घण्टा-ध्वनि युग-युग का सन्देश सुनाती है।
टिमटिम दीपक के प्रकाश में पढ़ते निज पोथी शिशुगण,
परदेशी की प्रिया बैठ गाती यह विरह-गीत उन्मन,

दिनकर की कविता 'चलो कवि वन फूलों की ओर' में तो ग्राम्यजीवन का ही दृश्य साकार हुआ है। 'कविता की पुरकार' शीर्षक कविता में कवि ने ग्राम्यजीवन में रम जाने की जो कामना की है उसमें उनका ग्राम्यबोध ही उद्घाटित हुआ है।

'रेणुका' में कवि ने ग्राम्य संस्कृति की पृष्ठभूमि में कविता की कामना का शिवपक्ष भी कवि ने प्रस्तुत किया है। कविता कामना करती है कि कृषकों की प्यास वह गंगाजल बनाकर बुझाएगी। स्वेदकण बनकर अनाज के दाने उगाएगी –

सूखी रोटी खायेगा जब कृषक खेत में धर कर हल,
तब दूँगी मैं तृप्ति उसे बनकर लोटे का गंगाजल।
उसके तन का दिव्य स्वेदकण बनकर गिरती जाऊँगी,
और खेत में उन्हीं कणों-से मैं मोती उपजाऊँगी।

ग्रामीण कृषक के श्रमसाध्य जीवन का यह बड़ा ही यथार्थ चित्र है। दिनकर के काव्य में एक ओर जहाँ भारतीय ग्राम्यजीवन के सुन्दर और रमणीक चित्र उकेरे गए हैं वहीं दुःख-दारिद्र्य, करुणा, विवशता का भी यथार्थ चित्रण हुआ है। ग्रामीण कृषक अपने पाले हुए पशुओं का दूध भी अपने बच्चों को नहीं पिला पाता। ऋण को चुकाने के लिए दूध-घी का एक-एक बूँद बेच देता है।

ग्राम्य जीवन की कारुणिक दशा के चित्रण के साथ-साथ कवि ने 'रसवंती' में ग्रामीण नारी के सौन्दर्य और अल्हड़पन का सौन्दर्य भी खींचा है। उसमें जो सहजता और सरलता विद्यमान है वह कवि के ग्रामबोध को भली-भाँति व्यक्त करती है। ग्राम्य-प्रणय के निरूपण में ग्रामीण प्रेमिका की मनोदशा तो प्रकट होती ही है साथ ही ग्रामीण जीवन का इतिहास भी। यथा –

दो प्रेमी हैं यहाँ एक जन बड़े साँझ आल्हा गाता है,
पहला स्वर उसकी राधा को घर से खींच लाता है।
हुई न मैं क्यों बड़ी गीत की,
विधना यों मन में गिनती है।

ठीक इसी प्रकार 'ग्राम्य वधू' शीर्षक कविता में ग्रामीणों की सरलता, सहजता और उसके लावण्य का मनोहारी चित्रण कवि ने किया है।

दिनकर की कविताओं में ग्राम्य चित्रों के निरूपण में ग्रामीण जीवन की सादगी, सहजता, ग्रामीणों की जीवन-विधि, उनका आचार-व्यवहार का कुशलतापूर्वक निर्वहन हुआ है। ग्राम्य संस्कृति के इन समस्त उपादान कारकों के प्रति दिनकर की तीव्र अनुभूतियाँ अभिव्यक्त होती हैं।

3.3.2.4.2. नगरीय बोध

पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव से भारतीय संस्कृति में विकृति आने से जिस मिलावटी संस्कृति का जन्म हुआ उसका प्रतिनिधित्व नगरीय जीवन करता है। दिनकर ने भारतीय संस्कृति में आगत इस विकृति को क्षोभ से देखा है और स्थान-स्थान पर उन विसंगतियों पर कटाक्ष किया है। संकर संस्कृति के प्रभाव से घृणा, द्वेष आदि की प्रवृत्ति बढ़ी है। 'इतिहास के आँसू' नामक कविता में कई आश्चर्य व्यक्त करते हुए दिनकर कहते हैं –

आह ! सभ्यता के प्रांगण में आज गरल-वर्षण कैसा !
घृणा सिखा, निर्वाण दिलाने वाला यह दर्शन कैसा !

'इन्द्रधनुष' और 'हस्तिनापुर' प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक रहे हैं लेकिन आज संकर संस्कृति दिल्ली के रूप में बदल चुके हैं। दिल्ली का जनजीवन आज भारतीय जनजीवन का आदर्श बना हुआ है लेकिन वस्तुस्थिति तो यह है कि दिल्ली की नगर-संस्कृति भारतीय संस्कृति की ह्रासोन्मुख दिशा का अन्तिम छोर है। दिनकर इससे परिचित हैं। इसलिए 'दिल्ली' शीर्षक कविता में नगर-संस्कृति की प्रतीक दिल्ली को व्यंग्य अंदाज में देखते हैं।

आज का नगर आधुनिकता के नाम पर कृत्रिमता में फँसता जा रहा है। ऊपरी चकाचौंध में उसका सहज और स्वाभाविक आन्तरिक सौन्दर्य नष्ट होता जा रहा है। नगरोद्यान में बेला, चमेली की जगह कैक्टस लग रहे हैं। सभ्यता की सृष्टि करने वाले मोटे सूती वस्त्रों की जगह नायलोन के झीने पारदर्शी वस्त्र प्रयुक्त हो रहे हैं। इस तरह प्राचीन भारत के नगरीय जीवन का सौम्य आज कृत्रिमता और दिखावे में उलझता जा रहा है। दिनकर ने इस नगरीय जीवन के इस दृश्य को प्रस्तुत करते हुए कहते हैं –

आधुनिकता का वही पर नाम अब तो चढ़ा दो
नायलोन का कोट हम सिलवा चुके हैं।
और जड़ से नोचकर बेली चमेली के द्रुमों को,
कैक्टसों से भर चुके हैं बाग हम अपना।

'कुरुक्षेत्र', 'द्वन्द्वगीत' और अन्य कविताओं में मानव मन की द्वन्द्वात्मक स्थिति का कवि ने बखूबी चित्रण किया है। वस्तुतः मानवीय मन में द्वन्द्वात्मक स्थिति का जन्म नगरीय परिवेश में ही हुआ है। अतः कवि का खिन्न मन द्वन्द्व, कृत्रिमता, एकाकीपन, संत्रास आदि आधुनिकता के परिणामों से उबकर गाँवों की ओर जाना चाहता है। 'रसवंती' में कवि ने आधुनिकता का जो चित्र खींचा है, वह सभ्य कही जाने वाली तथाकथित नगरीय आधुनिकता पर व्यंग्य ही है।

3.3.2.5. नारी भावना

दिनकर ने नारी के मातृ रूप, पत्नी रूप, प्रेमिका रूप तथा आधुनिकता से प्रभावित नारी के रूप पर विचार किया है। भारतीय संस्कृति में नारी के मातृ रूप की ही गरिमा सर्वाधिक है। दिनकर ने नारी के इस रूप को 'रसवंती' और 'उर्वशी' दोनों में सँवारा है। 'उर्वशी' में माता के रूप का विकास दिखाई देता है जब उर्वशी पुरुरवा के प्रणय सूत्र में बँधना चाहती है तो अप्सराएँ उर्वशी पर व्यंग्य करती हैं। उसके मातृ स्वरूप की भावी कल्पना पर व्यंग्य करती हैं। इसी उपहास का उत्तर देती हुई मेनका ने जो कुछ भी कहा है उसमें नारी के मातृत्व स्वरूप की विस्तृत गरिमा उदात्त हो उठी है। यथा –

माँ बनते ही प्रिया कहाँ से कहाँ पहुँच जाती है ?
गलती है हिमशिला सत्य है गठन देह की खोकर
पर हो जाती है वह असीम कितनी पयस्वनी होकर।

नारी के इस स्वरूप में जो गरिमा और शान्ति है, उसकी तुलना नारी के किसी अन्य रूप में सम्भव कहाँ ! दिनकर ने 'उर्वशी' में नारी के इसी रूप को सबसे अधिक सुन्दर कहा है –

युवा जननि को देख शान्ति कैसी मन में जाती है
रूपमती भी सखी ! मुझे तो वही प्रिया लगती है
जो गोदी में लिये क्षीर मुख शिशु को सुला रही हो
अथवा खड़ी प्रसन्न पुत्र का पालना झूला रही हो।

नारी के पत्नी रूप की झाँकी 'रसवंती' में देखी जा सकती है जहाँ प्रिया रूप में नारी अधरामृत दान कर जीवन की सारी शुष्कता को हर लेती है। 'पुरुष प्रिया' कविता में नारी के इसी रूप का विकास दिखाई देता है जहाँ नारी अजेय नर को जीतने आती है। जब-जब पुरुष प्रिया के सान्निध्य में आता है उसका सारा शैथिल्य दूर हो जाता है। फिर उसकी होठों पर प्रिया के नाम के सिवाय और कुछ नहीं आता। यथा –

जब-जब फिर आता पुरुष श्रान्त तब तुम करती रसमान प्रिया
मिलती न उसे फिर बात नयी मुख से कढ़ते दो वर्ण प्रिया।

ध्यातव्य है कि भारतीय संस्कृति में 'प्रिया' शब्द केवल 'पत्नी' के लिए प्रयुक्त होता है। प्रिया बनने का सौभाग्य प्रेमिका को विरले ही हो पाता है।

3.3.2.6. धर्म

भारतीय संस्कृति में पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना गया है। खेद है कि इसकी गलत व्याख्या की गई और अल्पज्ञान के परिणामस्वरूप धर्म के ठेकेदारों ने इसे मिथ्याडम्बर और अन्धविश्वासों के दलदल में झोंक दिया। दिनकर धार्मिक मिथ्याडम्बरों और अन्धविश्वासों के कटु आलोचक रहे हैं। धर्म की निर्जीव कल्पनाएँ जीवन को हताश करती हैं। इसलिए हताश-निराश मानव को भीष्म के माध्यम से दिनकर सन्देश देत हुए 'परशुराम की प्रतीक्षा' में लिखते हैं –

जीवन उनका नहीं युधिष्ठिर जो उससे डरते हैं
वह उनका जो चरण रोप निर्भय होकर लड़ते हैं।

युगधर्म की प्रतिष्ठा के लिए संन्यास, त्याग और एकान्त की आवश्यकता नहीं है। कर्मक्षेत्र में प्रवृत्त होकर धर्म को व्यावहारिक बनना ही युग धर्म है। इसी विचार को प्रकट करते हुए 'कुरुक्षेत्र' कविता में दिनकर लिखते हैं –

पहले नर अमरत्व चाहता था मरने पर
पर अब खोजता दीर्घायु सुयश है
यद्यपि है यह भेद अमरता के अन्वेषी
आत्मदेवता से कुछ भी न छिपा सकते थे
कीर्ति कमियों को पर साधन सभी सुलभ हैं
निज न अकीर्तियाँ छिपा कीर्ति उत्तम पाने की
क्योंकि दृश्य है सत्य झूठ जो कुछ अदृश्य है।

दिनकर ने धर्म की व्यावहारिकता पर बल दिया है और युगधर्म के अनुरूप चलने की सलाह दी है। दिनकर ने अपने काव्य में इसी युगधर्म को प्रश्रय दिया है।

3.3.3. पाठ-सार

रामधारीसिंह 'दिनकर' भारतीय संस्कृति के उन्नायक कवि हैं। अपने काव्य में वे युगीन चेतनाओं को भी समाहित करते हैं। दिनकर की यह धारणा है कि भारतीय संस्कृति अपने में महान् है लेकिन समय सापेक्ष होने पर ही उसे ख्याति मिलेगी। संस्कृति युगानुरूप परिवर्तित होती रहती है और इसी के फलस्वरूप वह मूल रूप में

प्राचीन रहकर भी युगानुकूल होती रहती है । दिनकर की सांस्कृतिक चेतना इसी स्वरूप की पोषक है। दिनकर भारतीय सांस्कृतिक चेतना के समन्वयकारी स्वरूप के ही उपासक हैं। जिस प्रकार प्राचीनकाल से भारतीय संस्कृति ने विभिन्न विदेशी संस्कृतियों को अपने में समाहित कर अपने स्वरूप का दायरा विस्तृत किया है उसी प्रकार आज भी उसे समाज, युग और समय की अपेक्षानुसार परिवर्धित और परिवर्तित होना होगा तभी भारतीय सांकृतिक चेतना का समन्वयकारी स्वरूप सार्थक सिद्ध हो सकेगा।

3.3.4. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. शर्मा, डॉ० सत्यकाम, जनकवि दिनकर
2. सिंह, डॉ० सावित्री, युगचारण दिनकर
3. सिंह, विजेन्द्र नारायण, दिनकर : एक पुनर्मूल्यांकन
4. कौल, गोपाल कृष्ण, दिनकर : सृष्टि और दृष्टि
5. शर्मा, शिवचन्द्र, दिनकर और उनकी काव्य-कृतियाँ
6. गोस्वामी, डॉ० शिवकान्त, दिनकर के काव्य में राष्ट्रीय भावना
7. श्रीवास्तव, मुरलीधर, दिनकर की काव्य-साधना
8. दिनकर, रामधारीसिंह, संस्कृति के चार अध्याय

3.3.5. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. राष्ट्रीयता से क्या तात्पर्य है ?
2. संस्कृति से क्या आशय है ?
3. निरंकुश राज्य-व्यवस्था से आप क्या समझते हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. दिनकर की राष्ट्रीय चेतना पर विचार कीजिए।
2. दिनकर की सांस्कृतिक चेतना का विस्तार से वर्णन कीजिए।
3. दिनकर के काव्य में प्राचीन और नवीन संस्कृतियों का समन्वय हुआ है। सोदाहरण विश्लेषित कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'आह सभ्यता के प्रांगण में आज गरल वर्षण कैसा' प्रस्तुत पंक्ति दिनकर की किस कविता से उद्धृत है ?

(क) हस्तिनापुर

(ख) इतिहास के आँसू

(ग) इन्द्रप्रस्थ

(घ) रसवंती

सही उत्तर (ख)

2. 'सूखी रोटी खाएगा जब कृषक खेत में धर कर हल' किस कविता की पंक्ति है ?

(क) कविता की पुकार

(ख) रेणुका

(ग) रसवंती

(घ) इन्द्रप्रस्थ

सही उत्तर (ख)

3. 'खींचते हैं जो तुम्हें दाँए कि बाँए मूर्ख हैं ...' किस कविता की पंक्ति है ?

(क) इन्द्रप्रस्थ

(ख) रेणुका

(ग) नये सुभाषित

(घ) रसवंती

सही उत्तर (ग)

4. 'शबरी के झूठे बेरों से आज राम को प्रेम नहीं' किस कविता की पंक्ति है ?

(क) रेणुका

(ख) इन्द्रप्रस्थ

(ग) बोधिसत्व

(घ) रसवंती

सही उत्तर (ग)

5. 'धरकर चरण विजित शृंगों पर झण्डा वही उड़ाते हैं' किस कविता की पंक्ति है ?

(क) जवानियाँ

(ख) हुंकार

(ग) रेणुका

(घ) अनल-किरीट

सही उत्तर (घ)

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : छायावादोत्तर काव्य

इकाई – 4 : केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में अभिव्यक्त किसान संवेदना, काव्य-शिल्प

इकाई की रूपरेखा

3.4.0. उद्देश्य कथन
3.4.1. प्रस्तावना
3.4.2. केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में किसान संवेदना
  3.4.2.1. प्रगतिशील आन्दोलन और किसान जीवन
  3.4.2.2. बुंदेलखंडी परिवेश का प्रभाव
  3.4.2.3. खेती-किसानी से सम्बन्धित कविताएँ
3.4.3. केदारनाथ अग्रवाल की कविता का शिल्प
  3.4.3.1. लय-विधान
  3.4.3.2. बिम्ब-विधान
  3.4.3.3. स्थापत्य कला और कविता
3.4.4. पाठ-सार
3.4.5. बोध प्रश्न
3.4.6. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य
3.4.7. कठिन शब्दावली
3.4.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

3.4.0. उद्देश्य कथन

आधुनिककालीन हिन्दी काव्य की पाठ्यचर्या के अन्तर्गत छायावादोत्तर काव्य की चौथी इकाई में आप केदारनाथ अग्रवाल की कविता के बारे में पढ़ेंगे । उनकी कविता की विशेषताओं के साथ-साथ आप हिन्दी कविता के प्रगतिशील आन्दोलन से भी परिचित हो सकेंगे । इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

i. केदारनाथ अग्रवाल की कविता की मूल संवेदनासे परिचित हो सकेंगे ।
ii. उनकी कविता के शिल्प की विशेषताओं के बारे में जान सकेंगे ।
iii. उनकी कविता पर बुंदेली अंचल के प्रभाव को समझ सकेंगे ।
iv. प्रगतिशील आन्दोलन की वैचारिक पृष्ठभूमि से परिचित हो सकेंगे ।

3.4.1. प्रस्तावना

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील हिन्दी कविता के प्रमुख स्तम्भ हैं । नागार्जुन और त्रिलोचन शास्त्री के साथ केदारनाथ अग्रवाल भी छायावादोत्तर काव्य के प्रगतिवादी धारा के प्रमुख कवियों में से एक हैं । उनकी

काव्यभूमि को निर्मित करने में किसान-मजदूर की हालत, खेत-खलिहान की रंगत, सूदखोरी-कर्ज-महाजन तथा गरीबों के शोषण जैसे विषयों की प्रमुख भूमिका रही है। उनकी कविता पर बुंदेलखंड के खेत-खलिहान, पहाड़, जंगल तथा केन नदी के भूगोल और इनसे निर्मित परिवेश की गहरी छाप है। केदारजी की कविता इन्हीं प्राकृतिक उपादानों से अपना जीवन रस ग्रहण करती है। अतः उनकी कविता में मौजूद आंचलिकता की गहरी छाया को भी पहचाना जा सकता है।

3.4.2. केदारनाथ अग्रवाल के काव्य में किसान संवेदना

हम बाहर के वस्तु-जगत् को अपने इन्द्रियों के माध्यम से जानते-समझते और महसूस करते हैं। इस वस्तु जगत् का हमारे मन पर जो प्रभाव पड़ता है, उसकी घटनाओं की जो हमारे हृदय पर प्रतिक्रिया होती है उसे ही संवेदना कहते हैं। किसी के दुःख को देखकर जब हमारा मन द्रवित होता है तो उससे हमारी संवेदनशीलता का पता चलता है। किसान संवेदना का तात्पर्य है कि किसान जीवन के दृश्यों और घटनाओं का कवि के हृदय पर कैसा प्रभाव पड़ता है ? किसान जीवन से सम्बन्धित किन विशेषताओं से उसका कवि हृदय प्रभावित होता है और कविता करने को उत्सुक होता है ? लेकिन हिन्दी कविता के किसान जीवन की ओर आकर्षित होने की एक वैचारिक पृष्ठभूमि भी है जिसे जानना आवश्यक है। इस पाठ में विभिन्न उपशीर्षकों के माध्यम से इस किसान संवेदना की वैचारिक पृष्ठभूमि और उसकी विशेषताओं का विश्लेषण किया जाएगा।

3.4.2.1. प्रगतिशील आन्दोलन और किसान जीवन

मार्क्सवादी दर्शन और चेतना के आधार पर लिखे गए काव्य को प्रगतिशील काव्य के नाम से अभिहित किया जाता है। इस दर्शन के अनुसार मानव जाति का इतिहास मुख्य रूप से वर्ग-संघर्ष का परिणाम है। यह संघर्ष दो वर्गों में होता है जो आर्थिक हितों में परस्पर टकराहट के कारण एक दूसरे के विरोधी होते हैं। पहला वर्ग शोषकों का है और दूसरा शोषितों का। समाज की अवस्था और उत्पादन की प्रक्रिया के बदलने से इन दोनों वर्गों के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहता है। जैसे सामन्तवादी समाज में मुख्य संघर्ष ज़मींदार और किसान के बीच में होता है जबकि उत्पादन प्रणाली के बदलने से जब पूँजीवादी समाज का विकास होता है तो वहाँ मुख्य संघर्ष मजदूर और पूँजीपति में होता है। सन 1940 के आस-पास जब हिन्दी कविता में प्रगतिशील आन्दोलन अपने परवान पर था; उस समय भारतीय समाज संक्रमण के दौर से गुजर रहा था। वह एक सामन्तवादी समाज तो था लेकिन वहाँ पूँजीवाद का विकास भी हो रहा था। यानी वह एक अर्द्धसामन्ती और अर्द्धपूँजीवादी समाज था। ऐसे में उस समय भारत में ज़मींदार-किसान तथा पूँजीपति-मजदूर में अपने आर्थिक हितों के लिए संघर्ष हो रहा था। प्रगतिशील कवियों ने इस वर्ग-संघर्ष को पहचाना और किसान तथा मजदूर के पक्ष में अपनी लेखनी उठा ली। हिन्दी कविता के इतिहास में पहली बार कवियों ने किसान-मजदूर के जीवन पर दृष्टिपात किया। इसके पहले द्विवेदी युग के कवियों ने किसानों की दुर्दशा पर कविताएँ लिखी थीं लेकिन वे छिटपुट ही थीं और उस दुर्दशा पर कवि की निगाह वर्ग-चेतना की वजह से नहीं गई थी। किसान उस दौर की कविता के केन्द्र में नहीं थे। लेकिन इस बार स्थिति बिल्कुल अलग थी। मार्क्सवादी विचारों की पृष्ठभूमि में किसान, मजदूर और गरीब इस बार कविता के

केन्द्र में थे और उनका जीवन, उनका संघर्ष, उनके शोषण का विरोध, उनकी जिजीविषा, उनका उल्लास और उत्साह ही हिन्दी कविता के प्रमुख विषय बन गए। हिन्दी कविता में इसे प्रगतिवाद अथवा प्रगतिशील आन्दोलन कहा गया। केदारनाथ अग्रवाल जैसे कवियों का उदय इसी प्रगतिशील आन्दोलन की पृष्ठभूमि में हुआ और इसी से उनकी पहचान भी बनी। केदार की राजनैतिक कविताओं में इसे आसानी से पहचाना जा सकता है। उनकी कविता में ज़मींदारों, साहूकारों और पूँजीपतियों के प्रति जो घृणा और विरोध का भाव है वह इस मार्क्सवादी चेतना का ही प्रभाव है। उन्हें किसानों और मजदूरों की शक्ति पर भरोसा है और वे इनके विकास के रास्ते में पड़े पत्थर को ध्वस्त कर देना चाहते हैं –

पत्थर के सर पर दे मारो अपना लोहा
वह पत्थर जो राह रोककर पड़ा हुआ है,
जो न टूटने के घमण्ड में अड़ा हुआ है,
जो महान् फैले पहाड़ की
अन्धकार से भरी गुफा का,
एक भारी टुकड़ा है।

कहना उचित है कि यह पत्थर और कुछ नहीं बल्कि पूँजीवाद और सामन्तवाद का नापाक गठजोड़ है जो किसान और मजदूर के विकास का सबसे बड़ा रोड़ा है। इस नापाक गठजोड़ ने भारतीय किसानों और मजदूरों के जीवन में अभाव और दरिद्रता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं छोड़ा है। केदारनाथ अग्रवाल इस अभाव और दरिद्रता का विस्तार से वर्णन करते हैं। सामन्तवाद ने अन्नदाता कहे जाने वाले किसान का इतना शोषण किया है कि आज वह अन्न के दाने के लिए भी तरस गया है। आपके पाठ्यक्रम में लगी कविता 'पैतृक सम्पत्ति' किसान की इस करुण स्थिति का बखूबी वर्णन करती है –

जब बाप मरा तब यह पाया
भूखे किसान के बेटे ने :
घर का मालवा, टूटी खटिया,
कुछ हाथ भूमि – वह भी परती.
... यही नहीं, जो भूख मिली,
सौ गुनी बाप से अधिक मिली।
अब पेट खलाये फिरता है
चौड़ा मुँह बाए फिरता है।
वह क्या जाने आजादी क्या ?
आजाद देश की बातें क्या ?

अन्नदाता का बेटा भूखा-दुखा है। यह बात कवि को सहन नहीं होती और इस गुस्से में ही वह आजादी पर भी प्रश्न उठाने लगता है। वे आजादी का मूल्यांकन किसान, मजदूर, गरीब और फटेहाल की स्थिति की कसौटी पर करते हैं। इस कसौटी के निर्माण में प्रगतिशील चेतना का बहुत बड़ा योगदान है। केदारनाथ अग्रवाल किसान

की इस करुण हालत के कारणों की खोज करते हैं और इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भारत में किसानों के शोषण का सबसे बड़ा जरिया सूदखोरी है। अनेक बुद्धिजीवियों, कथाकारों और कवियों ने सूदखोरी की प्रथा को भारतीय किसान के शोषण का सबसे बड़ा हथियार माना है। केदारनाथ अग्रवाल सूदखोरी और सूदखोरों का विरोध करते हुए लिखते हैं –

वह समाज के त्रस्त क्षेत्र का मस्त महाजन,
गौरव के गोबर गणेश सा मारे आसन,
नारिकेल से सिर पर बाँधे धर्म-मुरैठा,
ग्राम बधूटी की गौरी गोदी पर बैठा,
नागमुखी पैतृक सम्पत्ति का मुख खोले,
जीभ निकाले, बात बनाता करुणा घोले,
ब्याज स्तुति से बाँट रहा है रुपया पैसा,
सदियों पहले से होता आया है ऐसा !!

सूदखोरों के साथ ज़मींदार भी किसानों के शोषण में सामान रूप से भागीदार रहे हैं। बेगार और खेत पर मालिकाना हक़ का प्रश्न सदियों से किसान और ज़मींदार के बीच संघर्ष का कारण रहा है। मार्क्सवादी होने के कारण केदार के लिए श्रम का बहुत महत्त्व है। वे ज़मींदार और किसान के संघर्ष में श्रम का साथ देते हैं। उनकी निगाह में ज़मीन उसकी है जो उस पर अपने खून-पसीने से फसल उगाता है। तभी वे 'धरती' शीर्षक कविता में स्पष्ट रूप से घोषणा करते हैं –

यह धरती है उस किसान की
जो बैले के कन्धों पर
बरसात घाम में,
जुआ भाग्य का रख देता है,
खून चाटती हुई वायु में,
पैनी कुसी खेत के भीतर,
दूर कलेजे तक ले जाकर,
जोत डालता है मिट्टी को,
पाँस डाल कर,
और बीज फिर बो देता है
नये वर्ष में नयी फसल के.
ढेर अन्न का लग जाता है।
यह धरती है उस किसान की।

इस तरह केदार ज़मींदारी और सूदखोरी को किसानों के शोषण का सबसे बड़ा कारण मानते हैं। उनके लेखक को कोई दुविधा नहीं है। वे श्रमशील और मेहनतकश जनता के पक्ष में अपनी लेखनी की तुला को झुकाए

रखते हैं। कहना उचित होगा कि श्रमशील जन के प्रति कवि की यह पक्षधरता उसकी मार्क्सवादी चेतना की अभिव्यक्ति है।

3.4.2.2. बुंदेलखंडी परिवेश का प्रभाव

यूँ तो प्रगतिशील कवि मार्क्सवादी विचारों के आलोक में कविता की रचना करते हैं लेकिन सिर्फ़ विचार से ही कविता की रचना सम्भव नहीं है। सिर्फ़ विचारों के आधार पर रची गई कविता को कविता की संज्ञा देना उचित भी नहीं है। अच्छी और सच्ची कविता पदार्थमय होती है। उसमें उसके आस-पास के जीवन और वस्तु जगत् के रूप-रस-गन्ध-ध्वनि आदि की अनुगूँज और स्मृति होती है। इस रूप-रंग-गन्ध और ध्वनि के गुणों की विशिष्टता के कारण वस्तुजगत् में विशिष्टता आती है। किसी क्षेत्रविशेष में वस्तुजगत् की विशिष्टता से ही स्थानीयता और आंचलिकता की धारणा का विकास होता है। इस विशिष्ट वस्तुजगत् के अनुकरण के कारण कविता में स्थानीयता का समावेश होता है। केदारनाथ अग्रवाल की कविता में भी यह गुण विद्यमान है। उनकी कविता पर बुंदेलखंड की प्रकृति और संस्कृति का गहरा प्रभाव लक्षित होता है। उनकी कविता में रचित किसान दरअसल बुंदेलखंड का किसान है जिसका जीवन वहाँ के जंगल, पहाड़ और केन नदी के प्रवाह से स्पन्दित होता है। बुंदेली संस्कृति के लिए पहाड़ और नदी से सजी इस प्रकृति के महत्त्व को स्वीकार हुए केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं –

अधिष्ठित है
नगर का परम पुरुष पहाड़
नवागत चाँदनी के कौमार्य में;
आसक्ति को अनासक्ति से साधे,
भोग को योग से बाँधे,
समय में ही
समयातीत हुआ,
पास ही
प्रवाहित है
अतीत से निकल आयी,
वर्तमान को उच्छल जीती,
भविष्य की भूमि की ओर
संक्रमण करती नदी,
गतिशील निरन्तरता की जैसे वही हो
एकमात्र सांस्कृतिक
चेतन अभिव्यक्ति।

चाँदनी के कौमार्य में पर्वत की विशालता और उसके पास ही अतीत से निकलकर भविष्य की ओर बहती नदी का सौन्दर्य ही कवि के लिए महत्त्वपूर्ण नहीं है बल्कि वह संस्कृति भी महत्त्व वाली है जो इस परिवेश में फली-

फूली है। पर्वत की कठोरता और नदी की मृदुलता बुंदेली संस्कृति को योग और भोग का सामंजस्य प्रदान करती है। वह बुंदेलों को मर्यादित भोग का पाठ पढ़ाती है। पहाड़ आसक्ति और भोग को मर्यादित करता है जबकि नदी की गतिशीलता मर्यादित भोग वाली और अतीत से निकलकर भविष्य की ओर जाने वाली बुंदेलखंडी संस्कृति का रूपक है। इन पंक्तियों के माध्यम से केदारनाथ अग्रवाल यह भी इशारा करना चाहते हैं कि मानव सभ्यता और संस्कृति को बनाने ओर सँवारने में नदियों की बड़ी भूमिका रही है। ऐसी ही भूमिका वे बुंदेलखंड में बहने वाली नदी केन की भी देखते हैं –

केन मनुष्यों के जीवन की है पथगामी
बूँद-बूँद है रक्त-स्वेद-सा इसका नामी
भूरा गढ़ का किला सुनाता है यह गाथा
ऊँचे सूरज से ऊँचा है जन का माथा
दोनों और हरे खेतों का दाना-दाना
आशा का बुनता रहता है ताना-बाना
दूर खड़ा टुनटुनिया पत्थर पास बुलाता
केन नदी की बाँह पकड़ने को ललचाता

नदी मनुष्य के जीवन-पथ की सहगामी है। वह अपने पानी से सिर्फ़ उनके फसलों को ही नहीं सींचती बल्कि उनके जीवन और संस्कृति को भी सींचती है। केदारनाथ अग्रवाल इस बात को समझते हैं और अपनी कविता में प्रकारान्तर से कहते भी हैं। इस केन नदी की पानी से अपना जीवनरस खींचने वाली और उसके कछार में पैदा होने वाली और खेत में ठसक के साथ खड़ी हरी फसल का एक बिम्ब देखिए जिसे केदारजी बहुत आत्मीयता से चित्रित करते हैं –

एक बीते के बराबर
यह हरा ठिगना चना,
बाँधे मुरैठा शीश पर
छोटे गुलाबी फूल का,
सज कर खड़ा है।

खेती-किसानी को जानने वाले अच्छी तरह बता सकते हैं की चना की उपज नदी के कछार में ही सम्भव होती है। प्राकृतिक परिवेश का सीधा असर वहाँ के फसल और जनजीवन पर होता है। पर्वत और नदी के परिवेश का असर वहाँ के किसानों पर भी है। उनकी कद-काठी से लेकर उनके आचार-विचार तक में नदी और पर्वत के असर को देखा सकता है। बुंदेली किसान का एक बिम्ब खींचते हुए केदारनाथ अग्रवाल कहते हैं –

हट्टे कट्टे हाड़ों वाले
चौड़ी, चकली काठी वाले
थोड़ी खेती बाड़ी रक्खे

केवल खाते पीते जीते !
कत्था चूना लौंग सुपारी
तम्बाकू खा पीक उगलते,
चलते फिरते, बैठे ठाढ़े
गंदे यश से धरती रंगते !

बुंदेली परिवेश की यह कठोरता बुंदेलों को सिर्फ़ शारीरिक रूप से ही मजबूत नहीं बनाती है अपितु उनके मन को भी साहसी और कर्मठ बनाती है। बुंदेलखंड की धरती अपनी वीरता के लिए प्रसिद्ध है। केदारनाथ अग्रवाल बुंदेलों की धरती पर पैदा हुए, वे वीर बुंदेलों के वंशज हैं। वहाँ की मिट्टी और हवा में आल्हा-ऊदल जैसे वीरों और लक्ष्मीबाई, झलकारीबाई जैसी वीरांगनाओं की वीरता की कहानियाँ समायी हुई हैं। बुंदेली मानस का विकास इन वीरतापूर्ण कहानियों को सुनते हुए ही होता है। आल्हा जैसे वीरकाव्य की पंक्तियाँ वहाँ की फिजाओं में तैरती हैं और बच्चा-बच्चा उनसे परिचित है। इस जातीय संस्कृति का असर केदारनाथ अग्रवाल की कविता पर भी खूब पड़ा है। खेत में गेहूँ की खड़ी फसल को देखकर शायद ही किसी कवि को ऐसा दृश्य सूझे जैसा केदार के कवि को सूझता है –

आर-पार चौड़े खेतों में
चारों ओर दिशाएँ घेरे
लाखों की अगणित संख्या में
ऊँचा गेहूँ डटा खड़ा है।
ताक़त से मुट्ठी बँधे है;
नुकीले भाले ताने है;
हिम्मत वाली लाल फ़ौज सा
मर मिटने को झूम रहा है।

खेत में खड़ी फसल को देखकर भालों और अगणित संख्या में हिम्मत वाली लाल फ़ौज के रूप में वही रूपायित कर सकता है जिसके दिल और दिमाग में वीरता की कहानियाँ भरी पड़ी हों, जिसकी जातीय संस्कृति में महान् वीरों और वीरांगनाओं की कहानियाँ बिखरी पड़ी हों। निश्चित तौर पर लाल फ़ौज में मार्क्सवादी संकेत छुपा हुआ है लेकिन उस दौर के किसी दूसरे मार्क्सवादी कवि ने ऐसी पंक्तियाँ नहीं रची हैं। कर्मठता, कठोरता, जिजीविषा और साहस के अनेक चित्र केदार की कविताओं में भरे पड़े हैं और वे सब उनकी कविता में बुंदेली प्रकृति व संस्कृति के प्रभाव के कारण हैं।

इस तरह बुंदेली परिवेश केदारनाथ अग्रवाल की किसान संवेदना को एक विशिष्टता प्रदान करती है। बुंदेलखंड के पर्वत, पठार, जंगल और केन नदी के बहाव का असर वहाँ के फसल चक्र और लोगों की मनोवृति पर पड़ता है। केदार प्रकारान्तर से वहाँ के किसानों के रहन-सहन और संस्कृति को प्रभावित करते हैं – उनकी कविताएँ इस बात की साक्षी हैं।

3.4.2.3. खेती-किसानी से सम्बन्धित कविताएँ

केदारनाथ अग्रवाल की कविता में सिर्फ़ किसानों के दुःख-दर्द का ही वर्णन नहीं है। किसान जीवन के दूसरे आयामों पर भी उनकी नज़र रहती है। भारतीय किसान की एक विशेषता यह है कि उसे अपने गाँव और घर से बहुत प्रेम होता है। वह अपने गाँव की मिट्टी, प्रकृति, फसल आदि से बहुत लगाव रखता है। केदार की कविता किसान के इस मनोवृति को खूब समझती है। वे अपनी एक कविता में अपने गाँव की मिट्टी और धूल के बारे में आत्मीयता से कहते हैं –

लिपट गई जो धूल पाँव से
वह गोरी है इसी गाँव की
जिसे उठाया नहीं किसी ने
इस कुंठाव से।

केदारनाथ अग्रवाल की इस कविता को देखकर नागार्जुन के गाँव की 'चन्दनवर्णी धूल' की याद आ जाती है। लेकिन गाँव की धूल ही नहीं किसान को तो अपने खेतों से भी बहुत प्यार होता है। वह अपने खेत को अपनी जान से ज्यादा प्यार करता है। अपने खेत के लिए वह मरने-मारने को भी तैयार रहता है। यहाँ तक कि मरने के बाद भी वह अपने खेत में ही जल जाना चाहता है ताकि राख बनकर अपने खेत की मिट्टी में मिल जाए। खेत के प्रति किसान के इस लगाव और जुड़ाव को देखकर केदार के मन में बिम्बमय संवेदना जगती है –

हम न रहेंगे –
तब भी तो यह खेत रहेंगे;
इन खेतों पर घन घहराते
शेष रहेंगे;
जीवन देते,
प्यास बुझाते
माटी को मदमस्त बनाते,
श्याम बदरिया के
लहराते केश रहेंगे

भारतीय किसान का जीवन नीरस नहीं होता है। वह अपने कृषि-कर्म के दौरान अपनी संस्कृति का भी विकास करता है। उसके जीवन में श्रम और सौन्दर्य ध्रुवान्त नहीं हैं बल्कि साथ-साथ कदमताल करते हैं। इसीलिए जुताई, बोआई, निराई, कटाई आदि के अवसर पर वह विशेष तरह के गीत गाता है। इन गीतों में निहित सौन्दर्य के कारण केदारजी इन अवसरों की ओर आकर्षित होते हैं। वे किसान जीवन से सम्बन्धित इन अवसरों के लिए अनेक गीतों की रचना करते हैं। अपनी एक कविता में किसान के संकल्प को गीत में पिरोते हुए वे कहते हैं –

हमारे हाथ में हल है,
हमारे हाथ में बल है,
कि हम बंजर को तोड़ेंगे –
बिना तोड़े न छोड़ेंगे.
कड़ी धरती इधर भी है,
कड़ी धरती उधर भी है,
कि हम उसको विदारेंगे –
न चूकेंगे, न चूकेंगे।

इसी तरह खेत की जुताई होते हुए देख कर उनका कवि मन मचल उठता है और वे एक जुताई का गीत रचते हैं –

मेरे खेत में हल चलता है
नाहर बैल जुता कँधियाये
ऊँचे ऊँचे शृंग उठाये
धौलागिरि से हैं मन भाए
मेरे खेत में हल चलता है
फाड़ कलेजा गड़ जाता है
तड़-तड़ धरती तड़काता है
राह बनाता बढ़ जाता है,
मेरे खेत में हल चलता है

खेत की जुताई के बाद उसमे फसल की रोपाई होती है। रोपाई के कुछ समय बाद जब फसल तैयार होने लगाती है तो उसे देखकर केदार का मन फिर मचल जाता है। खेत में उस लहलहाती फसल को देखकर किसान को वैसी ही ख़ुशी होती है जैसी एक पिता को अपने पुत्र की लहलहाती जवानी देखकर होती है। केदार लहलहाती फसल को देखकर एक किसान की तरह ही खुश होते हैं और अपनी ख़ुशी और उल्लास को बिम्बमयी भाषा में अभिव्यक्त करते हैं –

आसमान की ओढ़नी ओढ़े
धानी पहने
फसल घघरिया
राधा बनकर धरती नाची,
नाचा हँसमुख
कृषक साँवरिया।

लहलहाती फसल की देख कर कवि इतना उल्लसित है कि उसे महसूस होता है मानों धरती राधा बनकर नाच रही है और उसकी छबि और नाच से उल्लसित होकर किसान भी कृष्ण की तरह नाच रहे हैं। खेत में खड़ी

पकी फसल का शृंगार, हवा के साथ उसका झूमना और लहराना, फसल के साथ हवा की टकराहट और बालियों की आपसी टकराहट से सांगीतिक सरसराहट का उत्पन्न होना किसान के हृदय को अलौकिक आनन्द से भर देता है। ऐसी ध्वनि और दृश्यमिश्रित संश्लिष्टता और आनन्द को अभिव्यक्त करने के लिए नाच जैसी संश्लिष्ट कला का रूपक ही उचित हो सकता है। कहना उचित होगा कि केदारनाथ अग्रवाल का कविकर्म किसान के मन में उठने वाले आनन्द को समुचित रूप में सम्प्रेषित करने में सफल हुआ है। लेकिन केदार सिर्फ़ नाच के दृश्य नहीं रचते हैं। फसल के पकने पर जब उसकी कटाई होती है तो वह भी एक उत्सव की तरह किसानों के मन में उमंग और उत्साह का संचार करती है। फसल की कटाई के समय कृषक-स्त्रियाँ कटनी का गीत गाती हैं। ऐसा ही दृश्य फसल की कटाई का भी है। केदारनाथ अग्रवाल भी फसल की कटाई को देखकर गीत लिखते हैं –

काटो काटो काटो करबी
साइत और कुसाइत क्या है
जीवन से बढ़कर साइत क्या है
काटो काटो काटो करबी
मारो मारो मारो हँसिया
हिंसा और अहिंसा क्या है
जीवन से बढ़ हिंसा क्या है

रेखांकित उचित होगा कि यह कटाई सिर्फ़ फसलों की ही नहीं है। इस कटाई में जो गुस्सा व्यक्त हुआ है वह इस बात की ओर इशारा कर रहा है कि यह कटाई किसानों के दुश्मनों यानी सामन्तवादियों की भी है। बहरहाल ! केदारनाथ अग्रवाल की कविता सिर्फ़ किसानों के दुःख-दर्द का ही वर्णन नहीं करती बल्कि वह किसान जीवन के अनेक पहलुओं को अपने दायरे में समेटती है। उनकी कविता किसान के उत्साह व उमंग में भी भागीदार बनती है। वे खेती से सम्बन्धित विविध पहलुओं से अपनी किसान संवेदना को समृद्ध करते हैं।

3.4.3. केदारनाथ अग्रवाल की कविता का शिल्प

केदारनाथ अग्रवाल की कविता का शिल्प भी उनकी किसान संवेदना से ही संचालित होता है। उनकी कविता के शब्द, लय, बिम्ब आदि पर ग्राम्यजीवन और खेत-खलिहान के के प्रभाव को आसानी से देखा जा सकता है। उनके गीतों में लोकगीत और ग्राम्यगीतों की प्रतिध्वनि को सुना जा सकता है। उनकी कविता के शिल्प की विशेषताओं को निम्नलिखित उपशीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है –

3.4.3.1. लय-विधान

केदारनाथ अग्रवाल ने छन्दबद्ध और छन्दमुक्त दोनों तरह की कविताओं की रचना की है। उनकी बहुत सी कविताएँ गद्यात्मक भी हैं। लेकिन उल्लेखनीय यह है कि उन्होंने आधुनिक युग में भी दोहा छन्द में कुछ कविताएँ लिखी हैं। उनके द्वारा रचित एक दोहे का उदाहरण देखें –

झूठ मूठ ऐसी चली, साँच मरयो मुँह बाय।
न्याय करि पावे नहीं, देहरी दीपक न्याय॥

ऐसा लगता है मानों अपने दोहों के माध्यम से केदारनाथ अग्रवाल हिन्दी कविता के भूले-बिसरे छन्दों का पुनराविष्कार कर रहे हों।

केदारनाथ अग्रवाल की किसान संवेदना का प्रभाव उनकी कविता के लयाधार पर भी पड़ा है। केदारनाथ अग्रवाल की अनेक कविताओं का लय लोकधुन या लोकगीतों के लय पर आधारित है। नागार्जुन की तरह लोकधुन पर आधारित इनकी कविताएँ भी खूब लोकप्रिय हुई हैं। उदाहरण के लिए उनकी एक प्रसिद्ध कविता को देखा जा सकता है –

माँझी ! न बजाओ वंशी मेरा मन डोलता
मेरा मन डोलता है जैसे जल डोलता
जल का जहाज जैसे पल-पल डोलता
माँझी ! न बजाओ वंशी मेरा तृण टूटता
तृण का निवास जैसे बन-बन टूटता
माँझी ! न बजाओ वंशी मेरा मन झूमता
मेरा मन झूमता है तेरा तन एक बन झूमता।

ऐसा नहीं है कि केदारनाथ अग्रवाल सिर्फ़ लोकधुन पर आधारित कविताओं तक ही सीमित हैं, काव्य-विषय और अन्तर्वस्तु के हिसाब से वे कविता की लय में परिवर्तन भी करते हैं। किसी भी समर्थ कवि की एक पहचान यह भी है कि वह कविता की अन्तर्वस्तु और उसके लय में सामंजस्य बिठा पता है अथवा नहीं। केदारजी की कविता इस कसौटी पर खरा उतरती है। 'बसंती हवा' शीर्षक कविता में उनके इस काव्य-कौशल को देखा जा सकता है। वसन्त ऋतु में चलने वाली हवा में त्वरा होती है, उसकी गति थोड़ी तेज होती है। उस गति से एक तरह की मस्ती और मादकता का बोध होता है। केदार उस मस्ती और मादकता को लय में पिरोने के लिए अपनी कविता के लय को भी त्वरा से भर देते हैं। फिर कविता की लय उसके अन्तर्वस्तु का अनुसरण करते हुए चलती है –

हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ।

सुनो बात मेरी –
अनोखी हवा हूँ।
बड़ी बावली हूँ,
बड़ी मस्तमौला।
नहीं कुछ फिकर है,
बड़ी ही निडर हूँ।

जिधर चाहती हूँ,
उधर घूमती हूँ,
मुसाफिर अजब हूँ।

न घर-बार मेरा,
न उद्देश्य मेरा,
न इच्छा किसी की,
न आशा किसी की,
न प्रेमी न दुश्मन,
जिधर चाहती हूँ
उधर घूमती हूँ।
हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ!

लय में गति और त्वरा के अतिरिक्त इस कविता की ध्वन्यात्मकता भी प्रभावित करती है। समान ध्वनि वाले वर्णों की आवृति से इस कविता के नाद सौन्दर्य में वृद्धि हो रही है। कहते हैं कि नाद के प्रभाव से कविता की उम्र बढ़ जाती है। अनायास नहीं है कि आज भी यह कविता काव्य-प्रेमियों का कण्ठहार बनी हुई है। इस कविता की लोकप्रियता का राज इसके लय और नाद के सौन्दर्य में छुपा हुआ है।

3.4.3.2. बिम्ब-विधान

केदारनाथ अग्रवाल की कविता के शिल्प की दूसरी विशेषता उसकी बिम्बात्मकता है। केदारजी की कविता अनेक बिम्बों से सजी हुई है। छायावादियों की तरह इन्हें भी प्राकृतिक बिम्बों की रचना में विशेष रुचि है। लेकिन छायावादी बिम्बों से केदारजी के प्राकृतिक बिम्ब इस मायने में अलग हैं कि वे मानवीय परिवेश के अंग हैं जबकि छायावादी प्राकृतिक बिम्ब मानवीय परिवेश से स्वायत। केदारजी की रचनाओं में खेती-किसानी और गाँव-ज्वार से सम्बन्धित बिम्बों की बहुलता है। ये बिम्ब छायावादियों के बिम्ब की तरह भव्य न होकर छोटे-छोटे और लोक-परिचित हैं। खेत में पकी हुई लहलहाती फसल का बिम्ब खींचते हुए वे अपनी एक कविता में कहते हैं –

आसमान की ओढ़नी ओढ़े
धानी पहने
फसल घघरिया
राधा बनकर धरती नाची,
नाचा हँसमुख
कृषक साँवरिया।

यह तो हुआ दृश्य बिम्ब का उदाहरण जो एक चित्र रूप में हमारे सामने आता है। लेकिन केदारजी की कविता में बिम्बों के अनेक प्रयोग हुए हैं। उनकी ऊपर उद्धृत 'बसंती हवा' कविता में से गत्वर बिम्ब का एक उदाहरण देखें –

हवा हूँ, हवा मैं
बसंती हवा हूँ
चढ़ी पेड़ महुवा
थपाथप मचाया
गिरी धम्म से फिर,
चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा,
किया कान में कू।

कहना उचित होगा कि केदारनाथ अग्रवाल के बिम्ब मानवीय परिवेश से निर्मित होने और लोक-परिचित होने के कारण सौन्दर्य के साथ-साथ सार्थकता की सृष्टि भी करते हैं। ग्राम्यजीवन से सम्बन्धित होने के कारण वे किसान जीवन की संवेदना को सम्प्रेषित करने में भी सफल होते हैं।

3.4.3.3. स्थापत्य कला और कविता

ऊपर हमने चर्चा की है कि उनकी कविता पर बुंदेलखंड की प्रकृति और संस्कृति का बहुत गहरा प्रभाव रहा है। उनकी कविता का शिल्प भी इस प्रभाव से अछूता नहीं है। खजुराहो के मन्दिर बुंदेली संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। केदारजी उस मन्दिर और उसके स्थापत्य से इतने प्रभावित होते हैं कि उस पर एक कविता ही लिख देते हैं। किसी कवि के लिए कविता लिखना महत्त्वपूर्ण बात नहीं है। महत्त्व की बात है उस कविता के शिल्प का मन्दिर और उसकी मूर्तियों के शिल्प के अनुरूप होना। एक उदाहरण देखें –

नर हैं तो आजानुबाहु उन्नत ललाट–
रागानुराग-रंजित शरीर हैं,
अधर-पान, कुच-ग्रहण,
और आलिंगन में आसक्त लीन हैं।

तिय हैं तो आकुलित केश-पट-नदी-वेश,
कामातुर-मद विह्वल अधीर हैं,
सदियों से पुरुषों की जाँघों पर बैठी करती विहार हैं।

इन्हें नहीं संकोच-शील है;
यह मनोज के मन लोक के नर-नारी हैं,
आदिकाल से इसी मोद के अधिकारी हैं;

चाहे हम-तुम कहें इन्हें, ये व्याभिचारी हैं !

'खजुराहो के मन्दिर' शीर्षक कविता के इस अंश के विशेषणों और क्रियाओं पर ध्यान दीजिए। आपको खजुराहो के मन्दिर और उसकी मूर्तियों के शिल्प और संरचना की स्मृति कौंध जाएगी। शब्दों पर ध्यान दीजिए। तत्सम पद और उनका समासीकरण करना केदारजी की प्रवृति नहीं है। लेकिन इस कविता में खजुराहो के मूर्तियों के आलिंगन और परस्पर संश्लिष्टता को दिखाने के लिए, उनकी शारीरिक बलिष्ठता और कामातुरता को कविता में दिखाने के लिए ऐसी संश्लिष्ट भाषा की आवश्यकता थी। इसीलिए केदारजी तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हैं और उनसे सामासिक पद निर्मित करते हैं।

3.4.4. पाठ-सार

केदारनाथ अग्रवाल प्रगतिशील चेतना के कवि हैं। उनकी मार्क्सवादी चेतना उनको किसान-मजदूर और शोषित-पीड़ित के जीवन पर कविता लिखने के लिए प्रेरित करती है। वे अपनी कविता में किसानों और मजदूरों का पक्ष लेकर सामन्तों और पूँजीपतियों का मुखर विरोध करते हैं। लेकिन उनकी किसान संवेदना यहीं तक सीमित नहीं है। वे किसान जीवन के विविध पक्षों के चितेरे हैं। उनके काव्य कलन में जुताई, बोआई, निराई तथा कटाई जैसे कृषि-कर्म पर अनेक गीत मिलते हैं। उनकी किसान संवेदना से सम्बन्धित कविताएँ बुंदेली प्रकृति और संस्कृति से बहुत गहराई से प्रभावित है। इस प्रभाव को उनकी कविता के शिल्प और रूप पर भी आसानी से परखा जा सकता है। उनकी कविता में प्रयुक्त ग्राम्य जीवन से सम्बन्धित बिम्ब और लोकधुन की लय उनकी किसान संवेदना को विश्वसनीय बनाते हैं।

3.4.5. बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. केदारनाथ अग्रवाल छायावादोत्तर काव्य की किस धारा के कवि हैं –

(क) छायावादी
(ख) प्रयोगवादी
(ग) प्रगतिवादी
(घ) नयी कविता

2. केदारनाथ अग्रवाल की कविता पर किस अंचल का प्रभाव है –

(क) मिथिला
(ख) भोजपुरी
(ग) रूहेलखंड
(घ) बुंदेलखंड

3. केदारनाथ अग्रवाल पर किन विचारों का प्रभाव अधिक है –

(क) मार्क्सवादी

(ख) रूपवादी

(ग) मनोविश्लेषणवादी

(घ) अस्तित्ववादी

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. केदारनाथ अग्रवाल की कविता के लय-विधान पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।
2. आंचलिकता की दृष्टि से केदारनाथ अग्रवाल की कविता की विवेचना कीजिए।
3. "केदारनाथ अग्रवाल की किसान संवेदना का गहरा प्रभाव उनके काव्य-शिल्प पर है।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. संवेदना का अर्थ स्पष्ट करते हुए केदारनाथ अग्रवाल की किसान संवेदना का विश्लेषण कीजिए।
2. केदारनाथ अग्रवाल की कविता के शिल्प की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. प्रगतिशीलता का आशय स्पष्ट करते हुए केदारनाथ अग्रवाल की कविता पर उसके प्रभाव की विवेचना कीजिए।

3.4.6. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य

1. केदारनाथ अग्रवाल की कविता में किसान जीवन से सम्बन्धित बिम्बों की एक सूची बनाइए और बिम्ब के विविध प्रकार के आधार पर उनका वर्गीकरण कीजिए।
2. केदारनाथ अग्रवाल की लोकधुन पर आधारित कविताओं और गीतों की सूची तैयार कीजिए।

3.4.7. कठिन शब्दावली

अभिहित	:	नामित करना
काव्य कलन	:	कविता का संकलन
जुताई	:	खेत में हल चलाना
निराई	:	खेत से खर-पतवार हटाना
बोआई	:	खेत में बीज डालना
कटाई	:	खेत में लगी फसल को काटना
सामन्तवाद	:	ज़मींदारी प्रथा

पूँजीवाद : ऐसी व्यवस्था जिसमें उद्योग-धंधे सरकार के न होकर व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति हों

3.4.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. संचयिता केदारनाथ अग्रवाल, सं. : अशोक त्रिपाठी, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद.
2. नयी कविता और अस्तित्ववाद, रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली.
3. केदारनाथ अग्रवाल, अजय तिवारी, साहित्य अकादेमी, दिल्ली.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 3 : छायावादोत्तर काव्य

इकाई – 5 : नागार्जुन की कविता में अभिव्यक्त लोकदृष्टि, नागार्जुन के काव्य का रचना-विधान, संवेदना के रूप

इकाई की रूपरेखा

3.5.1. प्रस्तावना
3.5.2. नागार्जुन की कविता में अभिव्यक्त लोकदृष्टि
 3.5.2.1. सामाजिक दृष्टि
  3.5.2.1.1. भूख का सन्दर्भ
  3.5.2.1.2. लज्जा वसन का सन्दर्भ
  3.5.2.1.3. रुग्णता और चिकित्सा का सन्दर्भ
  3.5.2.1.4. शिक्षा की आवश्यकता और उसके अभाव का सन्दर्भ
 3.5.2.2. राजनैतिक दृष्टि
3.5.3. नागार्जुन के काव्य का रचना-विधान
 3.5.3.1. यथार्थ की ग्रहणशीलता व काव्य में वस्तु का महत्त्व
 3.5.3.1. व्यंग्य
3.5.4. संवेदना के रूप
 3.5.4.1. व्यष्टिपरक संवेदना
 3.5.4.2. समष्टिपरक संवेदना
3.5.5. पाठ-सार
3.5.6. बोध प्रश्न
3.5.7. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

3.5.1. प्रस्तावना

हिन्दी की प्रगतिवादी काव्यधारा के विश्वविख्यात रचनाकार बाबा नागार्जुन एवं मैथिली में 'यात्री' नाम से विख्यात, बहुचर्चित एवं जनप्रिय कवि, कथाकार एवं रचनाकार श्री वैद्यनाथ मिश्र 'यात्री' का आविर्भाव बिहार प्रान्त के अन्तर्गत मधुबनी जिला के सतलखा (ननिहाल) गाँव में सन् 1911 के ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को हुआ था। इनकी योग्यता, विद्वता, लोकप्रियता, व्यवहारकुशलता एवं साधुता से प्रभावित होकर लोग इन्हें प्यार से 'बाबा' कहते हैं। नागार्जुन हिन्दी साहित्य जगत् में कबीर, भारतेन्दु, प्रेमचन्द और निराला की परम्परा के विशिष्ट हस्ताक्षर हैं। ये लोकजीवन के सफल सिद्धहस्त एवं सक्षम रचनाकार हैं। इनकी कविताओं और गद्य रचनाओं में सम्प्रेषणीयता की विलक्षण प्रतिभा है और नहीं कलावाद है। कबीर की सुप्रसिद्ध पंक्ति "तू कहता कागद लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी" की तरह जनकवि नागार्जुन ने भी जीवन और साहित्य को देखा। समसामयिक

सामाजिक राजनैतिक चेतना के महान् रचनाकार नागार्जुन का जीवन अत्यन्त कष्टप्रद और अभावग्रस्त रहा है। उन्होंने अपने जीवन के बारे में कितनी मार्मिक बातें लिखी हैं –

पैदा हुआ था
मैं दीन-हीन अपठित किसी कृषक कुल में
आ रहा हूँ पीता अभाव का आसव
ठेठ बचपन से
कवि मैं रूपक हूँ दबी हुई दूब का
हरा हुआ नहीं कि चरने को दौड़ते
जीवन गुजरता प्रतिपल संघर्ष में।[1]

युग की दुर्दशा के सफल चित्रकार बाबा नागार्जुन का मूल पैतृक वास स्थान ग्राम तरुणी है जो बिहार प्रान्त के दरभंगा जिला में पड़ता है। इनके पिता का नाम गोकुल मिश्र था। पिता लापरवाह, मूर्ख, गरीब और संस्कारहीन थे। इनकी माँ उमा देवी सरल हृदय की महिला थी। भविष्य की ओर से दुर्भाग्य विहँस रहा था। जब ये छह वर्ष के थे तब ही उनकी माँ का साया इनके सर से उठ गया। जीवन में एक गहरा अभाव घर कर गया जिसकी पूर्त्ति जीवनपर्यन्त नहीं हो सकी। यह महान् कलाकार निरन्तर संघर्ष से जूझते रहा।

इनके गाँव में संस्कृत अध्ययन की परम्परा थी। इसलिए इनकी शिक्षा का आरम्भ संस्कृत पाठशाला से हुआ। उन्होंने तेरह वर्ष की उम्र में संस्कृत से प्रथमा की परीक्षा पास की। तत्पश्चात् गाँव के ही विद्वान् अध्यापक अनिरुद्ध मिश्र से संस्कृत के कुछ छन्दों का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त किया। प्रथमा के बाद मधुबनी जिला के गनौली और सहरसा जिला के पचगछिया गाँव में भी ज्ञानार्जन के लिए गये। अध्ययन के क्रम में उन्हें सुप्रसिद्ध मैथिली रचनाकार कविवर पण्डित सीताराम झा का सान्निध्य प्राप्त हुआ। उनके साहचर्य से उन्होंने भाषा, छन्द, अलंकार आदि की ऊँची जानकारी प्राप्त की। बनारस में ही युवा नागार्जुन की काव्य-सृष्टि की साधना प्रारम्भ हुई।

वे संस्कृत के साथ-साथ मैथिली में भी रचना करने लगे। वहीं रहते हुए उनका व्यक्तित्व ओजस्वी होने लगा। पुरोहितवादी सामाजिक व्यवस्था से उनका मन विद्रोही हो उठा। आर्य समाज के संस्कार से प्रभावित होने लगा। उनके मन में बौद्धदर्शन को अपनाने की भी प्रबल कामना जाग्रत् हो उठी। बनारस की पढ़ाई छोड़कर बौद्ध-दर्शन में ऊँची जानकारी हेतु भारत के अनेक क्षेत्रों का भ्रमण करते हुए सन् 1936 ई. में लंका के विख्यात बौद्ध शिक्षण संस्थान विद्यालंकार परिवेण जा पहुँचे। वहीं उन्होंने कई भाषाएँ सीखीं। इस प्रकार वे मातृभाषा मैथिली, पैतृक भाषा संस्कृत, पालि, अर्द्धमागधी, अपभ्रंश, सिंहली, तिब्बती, मराठी, गुजराती, बांग्ला, पंजाबी, सिन्धी और अंग्रेजी सिर्फ़ जानते ही नहीं थे बल्कि भावशाली वक्ता की तरह धाराप्रवाह बोलते और पढ़ लेते थे। इन भाषाओं के नित्य नवीनतम काव्य-शैलियों से वे अपने आपको परिचित कराते रहे। पर नागार्जुन गुरु-भाइयों की इस टोली में कुछ वर्ष ही रह पाए। जननी-जन्मभूमि की याद उनके मन-प्राण को उन्मथित करती रहती थी। भारतीय किसानों के नेता स्वामी सहजानन्द सरस्वती से भी पत्राचार चला और उन्हीं के आग्रह पर महान् कलाकार नागार्जुन स्वदेश लौट आए। 1938 ई. में वे बिहार सरकार की ओर से एक अनुसंधान दल के साथ तिब्बत यात्रा पर निकल पड़े।

तिब्बत से वापस होते ही राजनैतिक आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। उस समय बिहार में किसानों की दयनीय स्थिति थी। बिहार में किसान-आन्दोलन जोरों पर था।

बिहार के अत्याचारी भूस्वामी के खिलाफ नागार्जुन के बड़े गुरु भाई राहुल सांकृत्यायन नेतृत्व कर रहे थे। नागार्जुन की पहली गिरफ्तारी अमबारी के किसान सत्याग्रह के सिलसिले में हुई थी। इस समय अंग्रेज सरकार ने काफी कष्ट दिया था। इन्हें पाखण्डियों और पूँजीपतियों द्वारा भी दुःख पहुँचाया गया। पर शोषक समाज के खिलाफ, पाखण्ड और साम्राज्यवाद के विरोध में जीवनपर्यन्त जूझते रहने वाले नागार्जुन निर्भीक एवं निष्पक्ष कवि थे। इन्हें कवि-हृदय प्राप्त था और ये प्रगतिवादी काव्यधारा में एक समर्थ व्यक्तित्व थे।

1940 में नागार्जुन की दूसरी गिरफ्तारी तब हुई जब ये अंडरग्राउंड थे। इस बार फारवर्ड ब्लॉक की ओर से छपने वाले एक युद्ध विरोधी परिपत्र के सिलसिले में हुई। भागलपुर जेल में आठ महीने रहे। इन दिनों जेल जीवन के दरम्यान उन्होंने समाजवादी जनवादी विचारधारा पर गहन अध्ययन किया। पुनः नागार्जुन 1941 में गृहस्थ बने। 19 वर्ष में यानी 1931 ई. में इनका विवाह हो चुका था। पर अध्ययन, यायावरी और राजनीति के कारण परिवार से नाता टूट-सा गया था। पुनः गृहस्थाश्रम वापस होने पर उन्हें ग्रामीणों द्वारा अपमानित लांछित होना पड़ा। घर वापस होते ही उन पर परिवार का दायित्व आ गया। पर नागार्जुन स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति थे। अतः स्वाभिमान का मूल्य चुकाकर रोजगार पकड़ना उनके स्वभाव के प्रतिकूल था। इसी समय उन्होंने मैथिली में कुछ कितबिया लिखकर आठ-आठ पेज की लोकप्रिय शैली में छपवायी। ये स्वयं ट्रेन में मुसाफिरों के बीच बेचने लगे। नागार्जुन ने जनता के अनुरूप कविता लिखना प्रारम्भ कर दिया। इससे परिवार की जीविका का समाधान नहीं निकला। लुधियाना जाकर वहाँ जैनमुनि उपाध्याय आत्माराम के साथ साहित्यिक कार्य करने लगे। कई उत्तम पुस्तकों और श्रेष्ठ सभ्य, सज्जन एवं सद्व्यवहारशील व्यक्ति के सम्पर्क से उनकी लोक-चेतना परिपक्व हुई। पर भ्रमणशील प्रवृत्ति के कारण पत्नी को घर वापस छोड़ आए और खुद तिब्बत के थोलिंग बिहार जा पहुँचे। अन्तर्राष्ट्रीय व्यक्तित्व के रूप में कवि की छवि बनने लगी। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व की सुरभि से दिगन्त सुरभित होने लगा। पर वहाँ भी वे ज्यादा दिन तक ठहर नहीं सके और शीघ्र ही वापस आ गये। सन् 1943 ई. में किसान पिता की मृत्यु हो जाने पर घर-पत्नी का पूरा भार आ गया। इसके बावजूद ये साहित्यसाधना-पथ पर निरन्तर आगे बढ़ते रहे। येन केन प्रकारेण पारिवारिक निर्वाह के लिए अर्थोपार्जन की योजना बनाई। सानन्द सुखमय एवं श्रेष्ठ जीवन के लिए ये सदा बिहार से बाहर की यात्रा करते रहे। दम्मा की बीमारी के कारण बिहार में रहना इन्हें पसन्द नहीं आया। झूठी शान-शौकत और व्यर्थ के पाखण्ड और प्रभुता के दिखावे से ये कोसों दूर रहे। 'नागार्जुन' नाम को सार्थक करने का इन्हें यह समय अनुकूल मिला। 'नागार्जुन' का एक साहित्यिक अर्थ 'सरलतम व्यक्ति' भी हो सकता है। यायावरी बौद्ध-दर्शन या राजनीति को उन्होंने पेशे के रूप में नहीं अपनाया। प्रतिकूल परिस्थिति में ये कविता, लघु निबन्ध और यात्रा प्रसंग लिखते ही रहते थे। यद्यपि परेशानियों, अभावों और कष्टों से इनका जीवन घिरा रहा तथापि ये अपने पथ से विचलित नहीं हुए। सामान्य स्थिति में रहते हुए ये जीवन और साहित्य में ऊँचा उठने का हरसम्भव प्रयास करते रहे। इनका साहित्य का दीपक प्रबल प्रभंजन में भी अहर्निश जलता रहा। ये

जीवन में भी साहसी रहे और साहित्य क्षेत्र में भी अपनी कृतियों से भारत ही नहीं सम्पूर्ण विश्व को चकाचौंध करते रहे।

1935 ई. से ही इनकी काव्य-प्रतिभा की रश्मि फूटने लगी। कलमजीवी साहित्यकार ने जीविकोपार्जन के लिए लेखन को ही पेशा बना लिया। प्रखर बुद्धि, विलक्षण सूझ-बूझ तथा उर्वर मस्तिष्क के रचनाकार ने बांग्ला और गुजराती के उपन्यास के अनुवाद में अपने को लगाया। सन् 1946 ई. में 'पारो' नामक मैथिली उपन्यास लिखकर उपन्यासकार के रूप में उन्होंने पहचान बनाई। उसके बाद से अब तक उनके चौदह उपन्यास हिन्दी और मैथिली में प्रकाशित हो गए हैं। हिन्दी में उनका पहला उपन्यास 'रतिनाथ की चाची' है जो 1948 में प्रकाशित हुआ। 1952 में 'बलचनमा' नामक उपन्यास का प्रकाशन हुआ। उनकी रचनाएँ देश-विदेश की पत्रिकाओं में छपती रहीं। 'हंस', 'सरस्वती', 'नया साहित्य', 'विशाल भारत', 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आदि में कविताएँ छपती रहीं। 'गाँधी-हत्या' पर लिखी नागार्जुन की तीन कविताएँ जब्त कर ली गईं। फलतः इन्हें जेल यात्रा करनी पड़ी। सन् 1949 ई. में मैथिली काव्य-संग्रह 'चित्रा' का प्रकाशन हुआ। सन् 1953 में मैथिली उपन्यास 'नवतुरिया' प्रकाशित होने के बाद ये मैथिली के शीर्षस्थ रचनाकारों की पंक्ति में आ गए। सन् 1935 ई. में हिन्दी का पहला काव्य-संग्रह 'युग-धारा' छपा। इसके बाद से ये हिन्दी कविता के अभिन्न अंग बन गए। वाणी प्रकाशन तथा राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली से बाबा के लगभग बारह से अधिक काव्य-संग्रह छप चुकेहैं।

आज़ादी के बाद नागार्जुन भारत में समाजवादी विचारधारा के विकास और इसकी प्रगति, समृद्धि और खुशहाली के लिए निरन्तर लेखनी चलाते रहे। राष्ट्रीय हो या अन्तर्राष्ट्रीय कोई भी महत्त्वपूर्ण घटना उनकी कविता का विषय बन जाती थी। सन् 1975 ई. में जे.पी. की सम्पूर्ण क्रान्ति के समय उनकी कविता ने अहम भूमिका निभायी है। इस समय उग्र इन्दिरा और काँग्रेस विरोधी कविताएँ लिखने के कारण उन्हें जेल-जीवन बिताना पड़ा। लगातार यात्रा करने की प्रवृत्ति और आर्थिक विपन्नता ने इनकी लेखनी को जनजीवन के प्रति समर्पित रखा है। किशोरावस्था से लेकर जीवनपर्यन्त यह साहित्यकार हृदय से निष्कपट परन्तु वाणी में स्पष्टवादी रहा तथा एक यायावर की तरह जीवन जीया। ये अन्धभक्ति और अन्धविश्वास से ग्रस्त नहीं रहे। ये नवीनता के आग्रही तथा प्राचीन असंगत मान्यताओं के विरोधी रहे। उनकी कविता समय की आवश्यकता को उद्घाटित करती रहती है। इनकी कविता में बादलों की अमृत वर्षा के साथ सूर्य की उष्णता भी है। ये लीक तोड़कर चलने वाले कवि हैं। इसलिए इन्हें रूढ़ियों और विषमताओं से काफी नफरत है। कबीर, निराला की तरह ये विद्रोही प्रवृत्ति के साहित्यकार हैं। अस्तु नागार्जुन सामाजिक विषमताओं के खिलाफ अन्ततः लगने वाले साहसी निर्भीक योद्धा हैं। ये सामर्थ्यवान् रचनाकार हैं। इन्होंने अपने सम्पूर्ण साहित्य में व्यापक मानवीय संवेदना को समावेशित कर दिया है। हिन्दी कविता में कबीर, निराला की तरह नागार्जुन व्यंग्य के धनी साहित्यकार हैं। साधना और संघर्ष का जितना लौकिक धरातल कबीर का था उतना ही नागार्जुन का भी। नागार्जुन के व्यंग्य का कर्कश आघात धर्म और अध्यात्म की अन्धी नीति, पारम्परिक धार्मिक मान्यताओं के निषेध में सड़े-गले नियमों के ठेकेदारों की खुली चुनौती ही नहीं परास्त कर देने की अपार क्षमता भी है। 'कल्पना के पुत्र हे भगवान्', 'विजयादशमी', 'मंत्र कविता', 'मन करता है' आदि कविताएँ धर्म और अध्यात्म की कटु आलोचना करती हैं। इनकी कविताओं में

जीवन-मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता और कल्पना में निहित यथार्थता है। जनकवि की प्रतिबद्धता बहुजन समाज की प्रगति के साथ है। 'स्व' की स्थापना हेतु संकुचित आपाधापी इन दिनों किस तरह विकसित हो रही है, यह हमारे देश की जनता अच्छी तरह समझती और पहचानती है। सामाजिक सन्दर्भ से प्रतिबद्ध कवि कहता है–

प्रतिबद्ध हूँ
जी हाँ प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त
संकुचित 'स्व' की आपाधापी के निषेधार्थ
अविवेकी भीड़ की भेड़ियाधसान के खिलाफ
अन्धबधिर व्यक्तियों को सही राह बतलाने के लिए
अपने-आपको भी व्यामोह से बार-बार उबारने की खातिर
प्रतिबद्ध हूँ
जी जाँ शतशः प्रतिबद्ध हूँ।

3.5.2. नागार्जुन की कविता में अभिव्यक्त लोकदृष्टि

नागार्जुन की कविताओं को समसामयिकता मूलक अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित सन्दर्भों में विभक्त किया जा सकता है – समसामयिक सामाजिक दृष्टि और समसामयिक राजनैतिक दृष्टि।

3.5.2.1. सामाजिक दृष्टि

नागार्जुन की कविताओं में प्रमुख रूप में निम्नलिखित समसामयिक सामाजिक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं – भूख का सन्दर्भ, लज्जा वसन का सन्दर्भ, रुग्णता और चिकित्सा का सन्दर्भ तथा शिक्षा की आवश्यकता और उसके अभाव का सन्दर्भ।

समसामयिक सामाजिक लोकदृष्टि को नागार्जुन अपने सर्जक व्यक्तित्व के द्वारा समस्याओं को सही समय की दृष्टि से खोलने और व्याख्यायित करने का प्रयास करते हैं। कहीं तो इस प्रक्रिया में वे रोष, आक्रोश और विरोध का तेवर उपस्थित करते हैं, तो कहीं निरुपायता और विवशता का निरूपण करते हुए व्यंग्य का कशाघात प्रस्तुत कर जाते हैं। उनके काव्य-संसार में इन विभिन्न समसामयिक सामाजिक लोकदृष्टि का चयन व्यापक मानवतावादी मूल्य की दृष्टि से किया जाता है। तभी उनकी ऐसी कविताओं में निरूपित सभी सामाजिक लोकदृष्टि के बीच मूल्य का प्रश्न अत्यन्त ज्वलन्त रूप में उपस्थित हुआ है। इस दृष्टि से वे यथार्थ के सृजन के सन्दर्भ में मूल्य की अपेक्षा पर विचार करते हुए अपना निर्णय प्रस्तुत कर बैठते हैं।

3.5.2.1.1. भूख का सन्दर्भ

यह सन्दर्भ प्रकट रूप में एक बालक के भूख का सन्दर्भ है, वहाँ सामाजिक विषमता के क्रूर चक्र में फँसे, भूख से बिलखते हुए एक मासूम बच्चे का हृदय-द्रावक चित्र उपस्थित किया गया है।

'नयी पौध'[2] शीर्षक कविता से इस सन्दर्भ को उपस्थित करती है। इसमें उन्होंने एक ऐसे अस्वस्थ एवं कुरूप चेहरे को उपस्थित किया है, जिसकी आँत में भोजन न मिलने के कारण मरोड़ उठ रही है। भोजनाभाव में उसकी टाँगें तीलियों की तरह सूखी हैं। उसकी चाल अटपटी है। माता-पिता की असामर्थ्य में खाना न मिलने के कारण यह लड़का पीपल की फली के गिरने का इन्तजार में उसके नीचे खड़ा है। ऊपर की गिरी फलियों से जिस किसी तरह पेट भरने के बाद वह चुपचाप झोपड़े के अन्दर अपनी भूखी माँ के पेट से सटकर सो जाएगा। जाहिर है कि उसकी माँ भी झोपड़े के अन्दर भूखी पड़ी है।

इस प्रकार, नागार्जुन बच्चे को अग्रप्रस्तुत कर उसकी माँ और उसके पूरे परिवार की भूख का सन्दर्भ और इस रूप में एक पूरे तबके की भूख का सन्दर्भ उपस्थित करते हैं। इस सन्दर्भ में यहाँ यथार्थ निरूपण वर्णनात्मकता के स्तर पर हुआ है, वो अपनी प्रभावोत्पादकता में अत्यन्त करुण हो उठा है। व्यंजित रूप में उसके मूल में वर्गगत शोषण विद्यमान है। भूख का सन्दर्भ वृत्ति के स्पष्ट अभाव को रेखांकित करता है। सामाजिक मूल्य की दृष्टि से मनुष्य के बच्चे का पीपल जैसे पेड़ के निकृष्ट फल पर आश्रित रहकर भूख का जैसे-तैसे शमन करना समाज के अत्यन्त शोचनीय रूप में उपस्थित होता है।

'प्रेत का बयान' शीर्षक कविता भी भूख के सन्दर्भ को निरूपित करती है। यहाँ भूख के सन्दर्भ को अत्यन्त व्यंग्यात्मक स्तर पर उपस्थित किया गया है। यह भूख सामान्य नहीं है, बल्कि मृत्यु तक पहुँचाने वाली भूख है। प्रायः समसामयिक व्यवस्था मूल से उत्पन्न होने वाली सामान्य जनता की मृत्यु को रोग आदि दूसरे कारणों से होने वाली मृत्यु में तब्दील कर देती है। यहाँ इस सन्दर्भ को अद्‌भुत मिथकीयता और नाटकीयता प्रदान की गई है।

इस कविता में भूख से मृत एक प्राईमरी स्कूल के शिक्षक का प्रेत यमराज के सामने अपना बयान दे रहा है। वह सरकार व्यवस्थापकों की आवाज़ में आवाज़ मिलाता हुआ लगातार इस तथ्य का निषेध कर रहा है कि उसकी मृत्यु भूख से हुई है। यमराज जब उससे कड़ककर पूछता है[3] –

कैसे मरा तू ?
भूख से, अकाल से,
बुखार या कालाजार से ?

तब शिक्षक का प्रेत भूख से मरने के तथ्य का सरासर इनकार कर बैठता है।

अविश्वास की हँसी हँसा दण्डपाणि महाकाल
बड़े अच्छे मास्टर हो,
आये हो मुझको भी पढ़ाने
मैं भी तो बच्चा हूँ
वाह भाई वाह रे
तो तुम भूख से नहीं मरे?

प्रेत उत्तर देता है –

साक्षी है धरती, साक्षी है आकाश
और और और भले व्याधियाँ हों भारत में किन्तु
उठाकर दोनों बाँह
किट-किट करने लगा जोरों से प्रेत
किन्तु भूख या क्षुधा नाम हो जिसका
ऐसी किसी व्याधि का पता नहीं हमको
सावधान महाराज
नाम नहीं लीजिएगा
हमारे सामने कभी भूख का।

इस प्रकार भुखमरे स्वाभिमानी सुशिक्षित प्रेत की इस दहाड़ के सामने यमराज, महामहिम नरकेश्वर निरुत्तर रह जाते हैं। यहाँ कवि ने भूख का एक पूरा परिवेश ही उत्सृजित कर दिया है। भूख के इस आत्मनिषेध में उसकी व्यंग्यात्मक सत्यता बड़ी घनीभूतता में उजागर हो उठी है।

नागार्जुन की 'अकाल और उसके बाद' शीर्षक कविता उनकी एक अत्यन्त प्रसिद्ध कविता है। इस कविता के एक भाग में कवि ने भूख के सन्दर्भ का रेखांकन यथार्थता के धरातल पर किया है। काव्यांश अवलोक्य है[4] –

कई दिनों तक चूल्हा रोया, चक्की रही उदास
कई दिनों तक कानी कुतिया सोई उनके पास
कई दिनों तक लगी भीत पर छिपकलियों की गश्त
कई दिनों तक चूहों की भी हालत रही शिकस्त

इस कविता में भूख का दायी अकाल का समय है। पर व्यवस्था की ओर से इस त्रासद स्थिति से निदान का कहीं कोई प्रबन्ध नहीं है कि दुर्भिक्ष में अन्नाभाव के कारण कई दिनों तक चूल्हा रोता रहा, चक्की उदास पड़ी रही। कई दिनों तक कानी कुतिया भी उसके पास सोयी पड़ी रही। कई दिनों तक अन्नाभाव के कारण चूहों की हालत भी दयनीय बनी रही। इस प्रकार यहाँ संकेत-रूप में घर में अन्न के एक-एक दाने का अभाव निरूपित कर दिया गया है। सरकारी ओर से किसी प्रकार की सुविधा या राहत कार्य का उल्लेख नहीं मिलता।

3.5.2.1.2. लज्जा वसन का सन्दर्भ

नागार्जुन की काव्य-रचना में समसामयिक लोकदृष्टि के अन्तर्गत लज्जा वसन के सन्दर्भ को कवि ने 'मन करता है' शीर्षक कविता में रेखांकित किया है। कवि ने वस्त्र के अभाव के सन्दर्भ को कई भाव-रिंगणों (मूड्स) में उपस्थित किया है। प्रथमतः, वह इस अभावात्मकता को वैयक्तिक निर्लज्जता में सन्दर्भित करता है। वाचक निपट नंगा होकर समुद्र तट पर खड़ा रहना चाहता है। पूँजीपति समाज और व्यवस्था ने कपड़ों का यह वास्तविक अभाव पैदा किया है। इसलिए वह कहता है[5] –

यों भी क्या कपड़ा मिलता है ?
धनपतियों की ऐसी लीला !

यहाँ धनपतियों में व्यावसायिक, उच्चतम प्रशासक सभी सम्मिलित हैं। यह नग्नता वस्तुः वस्त्रहीन स्थिति के विरोधी स्वीकार में कवि के द्वारा चिन्त्य सामाजिक मार्यादा का सहन अतिक्रमण करने वाली है। वस्त्र के अभाव में वाचक नंगा रह लेगा। वह अपने शरीर के यत्किंचित शेष वस्त्र को भी आग लगा कर नष्ट कर देने की बात करता है। वह तो अपने वस्त्रहीन निर्लज्ज जीवन से कहीं हितकर कालकूट अथवा विष पी लेने की स्थिति का संवरण करना मानता है। उस अभाव में वह दिगम्बर भोला बन जाना चाहता है।

वह सागर-तट पर नंगा खड़ा होकर जीवन गुजार देना चाहता है, क्योंकि उसने समसामयिक परिस्थितियों से सीखा है कि समाज में कपड़ा पाना आसान नहीं है और जब कपड़ा नहीं मिलता तो थोड़ी-थोड़ी लाज ढकने से बेहतर नंगा हो जाना ही है। इसलिए वह कहता है[6] –

मन करता है:
नंगा होकर खड़ा रहूँ सागर-तट पर
कुछ घंटों तक क्या, जीवन-भर
नंगा होकर –
यों भी क्या कपड़ा मिलता है।

यहाँ द्रष्टव्य है कि वस्त्र के अभाव में कवि सामाजिकता का परित्याग कर एकाकी हो जाना चाहता है। वह नग्नता को स्वीकार तो करता है, किन्तु भीड़ और समाज के बीच नहीं। गिसवर्गो वीटनिकों की तरह वह सामाजिक मर्यादा का अतिक्रमण भीड़ और सभागृहों में नहीं करता, बल्कि प्रकृति के एकान्त सागर तट पर नग्न होकर जीवन बसर कर लेना चाहता है। वह विष पीकर आत्महत्या की भी बात सोचता है, किन्तु वाचक से यह भी सम्भव नहीं हो पाता, क्योंकि कहीं भी विष नहीं मिल पाता है।

कवि हिन्दू धर्म के देवताओं पर भी चोट करता है वह क्षीर सागर में शेषनाग की सेज पर सोने वाले विष्णु के प्रति, जिन्हें त्रिदेव में पालनकर्त्ता माना जाता है, वस्त्राभाव नहीं दूर कर पाने की स्थिति में वाणी से प्रताड़ित करता है। वह मान लेता है कि यदि पालनकर्त्ता हमें वस्त्र नहीं दे पाता है तो वह मर चुका है। इस प्रकार वह

पीताम्बरधारी विष्णु को महामृतक मानकर उसे नंगा कर उसकी अन्त्येष्टि सम्पन्न करना चाहता है। वह अन्य सारे देवताओं को भी निर्लज्ज कहता है और उन्हें सलाह देता है कि विष्णु को नग्न रूप में दफना देने के बाद उसका अनमोल रेशमी पीताम्बर सभी सुरेश, कुबेर आदि छिप-छिप कर क्रम-क्रम से पहनें। कवि मान लेता है कि जब सामाजिकों को वस्त्र नहीं मिलते तो निश्चय ही देवताओं के यहाँ भी वस्त्र की कमी होगी। इसलिए वह सबसे बड़े पालक देवता को नंगा जलाकर उसके वस्त्र को ही पहनने का ताना अन्य देवताओं को देता है।

कवि मार्क्सवादी चेतना से प्रेरित होकर इस कविता की रचना करता है। जो ईश्वर सामाजिकों की अनिवार्य भौतिक ज़रूरतों को मुहय्या नहीं कर सकता, सामाजिकों और कवि की दृष्टि में उसे जीने का अधिकार नहीं है। इन सबके लिए वह मर चुका है। इसलिए वह उसकी अन्त्येष्टि सम्पन्न कराना चाहता है।

कहना न होगा कि नागार्जुन की समसामयिकता में कपड़े पर कई बार कंट्रोल हुआ है। इस विवशता और अभाव को नागार्जुन ने निकट से देखा है। जहाँ हिन्दी के दूसरे कवि की दृष्टि ऐसे सन्दर्भों की ओर नहीं गयी है वहाँ समसामयिक समस्या के प्रति जागरूक होने के कारण नागार्जुन की संवेदना ने काव्य-रचना के लिए ऐसे सन्दर्भ का सार्थक और उपयुक्त चयन किया है, साथ ही अपनी प्रतिक्रियाएँ भी व्यक्त की हैं। यहाँ धर्म की मिथकें टूट गई हैं और कवि आक्रोश और व्यंग्य को एक ही साथ वाणी देने में समर्थ हो गया है।

नागार्जुन की ऐसी सन्दर्भित कविता की विशेषता यह है कि अन्य उपसन्दर्भों से जुड़ जाने के कारण कालांकित होकर भी सन्दर्भ को शाश्वत बनाने की क्षमता से सम्पन्न हो उठती है।

3.5.2.1.3. रुग्णता और चिकित्सा का सन्दर्भ

नागार्जुन के यहाँ रुग्णता और चिकित्सा के अभाव का सन्दर्भ भी प्राप्त होता है। 'जया' और 'नयी पौध' इस सन्दर्भ को उजागर करने वाली कविताएँ हैं।

जया एक बहरी-गूँगी लड़की है। वह एक साधारण मास्टर की बेटी है। जया का जन्म निम्न मध्यमवर्गीय कुल में हुआ है। वह चार साल की है। उसका पिता अर्थाभाव के कारण अपनी लड़की के बहरेपन की चिकित्सा नहीं करवा पाता है। चिकित्सा एवं प्रतीकार-विषयक उस गरीब पिता की असमर्थता के बारे में कवि कहता है[7] –

माँ-बाप गरीब न कर सकते प्रतीकार बहरापन का।

स्पष्ट है कि कवि ने प्रकारान्तर से यहाँ चिकित्सा की समस्या को उपस्थित किया है। पर ऐसी महँगी चिकित्सा का दरवाजा निम्न मध्यम वर्ग के व्यक्तियों के लिए बन्द है। अपने केस में चिकित्सा शत-प्रतिशत अर्थ पर आधारित है और जया जिस परिवार की पुत्री है उसकी सामर्थ्य से यह बाहर है कि तभी कवि कहता है[8] –

कैसा असह्य, कितना जर्जर यह मध्य वर्ग का निचला स्तर।

इस प्रकार नागार्जुन की यह कविता अपने समाज के एक उदाहरण को निर्दिष्ट करती हुई एक व्यापक समस्या की ओर हमारा ध्यान खींचती है, जिसमें उसके अभिभावक की अशक्ति, असमर्थता और विवशता निहित है। वस्तुस्थिति यह है कि ऐसी रुग्णता के उपचार के लिए आज भी देश के स्वतन्त्र हो जाने पर कोई सार्थक पहल नहीं की जा सकी है।

'नयी पौध' शीर्षक कविता में नागार्जुन ने निम्नतम सामाजिक वर्ग के एक बच्चे की रुग्णता का चित्र प्रस्तुत किया है, जो कुपोषण के कारण कई रोगों की एक साथ मार सह रहा है। बढ़ा हुआ पेट उसके यकृत-विकार का सूचक है, तो धँसी-धँसी आँखें और फूले-फूले गाल उसकी रक्तहीनता का, तीलियों की तरह टाँग उसके सूखा रोग को घोषित करती हैं। मवाद उसके शरीर में उभरे फोड़ों और व्रणों को सूचित कर रहा है। इस तरह की रुग्णता से ग्रस्त वह लड़का जब भूख मिटाने के लिए ही तड़प रहा है और उसी का प्रबन्ध सम्भव नहीं हो पा रहा है। तब उसकी चिकित्सा और उपचार की बात तो अधर में ही टँगी रह जाती है। स्पष्ट है कि समाज में बाल-रोग की समस्या और निम्नतम वर्ग में रुग्णता तथा उपचार की अभावात्मकता की समस्या इस कविता में अच्छी तरह व्यक्त हुई है। यहाँ कवि का यथार्थ वर्णन ही इसे अच्छी तरह उपस्थित कर देता है। समाज में एक ओर निम्नतम वर्ग की यह शोचनीय स्थिति है, दूसरी ओर उच्च वर्ग सारी सुख-सुविधाओं से लैस है। इस प्रकार यह कविता एक भयानक सामाजिक यथार्थ से हमारा साक्षात्कार करा पाती है।

3.5.2.1.4. शिक्षा की आवश्यकता और उसके अभाव का सन्दर्भ

नागार्जुन ने समाज के अर्थ-पीड़ित वर्ग को रेखांकित करते हुए शिक्षा की आवश्यकता, अपेक्षा और उसके अभाव को भी सन्दर्भित किया है। प्रत्यक्ष रूप में उनके प्रथम चरण की कविताओं में 'जया' में यह सन्दर्भ खुलकर निरूपित हुआ है और व्यंजित रूप में 'नयी पौध' में भी यह सन्दर्भ आद्यन्त विद्यमान है।

इस कविता में कवि ने अपनी आत्मीयता चार साल की चपल चतुर और बहरी गूँगी जया नामक लड़की के प्रति व्यक्त की है। कवि के लिए उसका नाम सुन्दर नयनाभिराम है। जब कवि उसे स्नेह-सुधा से तृप्त कर देता है तब वह कृतज्ञ-सी हाथ जोड़कर उन्हें प्रणाम करती है। जया के माँ-बाप गरीब हैं। इसलिए उसमें काफी सूझ-बूझ के रहते हुए भी उसकी शिक्षा की व्यवस्था करने में वह असमर्थ रह जाते हैं।

कवि कहता है कि जया चित्रकार बन सकती है। वह नर्तकी बन सकती है। उसमें बुद्धि और प्रतिभा दोनों है। लेकिन अर्थाभाव के कारण उसके सपनों पर पानी फिर जाता है। पिता उसके जीवन-यापन का भविष्य-पथ गरीबी के कारण नहीं पकड़वा पाता है[9] –

बन सकती है वह चित्रकार
हो सकती है वह नाच सीख
जिससे न किसी पर पड़े भार
जिससे न माँगनी पड़े भीख

पर एक स्कूल मास्टर के लिए यह नितान्त आवश्यक है। कवि इस यथार्थता को वाणी देता है[10] –

स्कूली जीवन के मास्टर का हो जिसमें लेखा।
मैंने झाँका तो देखा
बाहर सफेद अन्दर धुँधला
क्या कर सकता वह बाप भला
बहरी गूँगी उस बच्ची को शिक्षा-दीक्षा का इन्तजाम।

इस प्रकार यह कविता समाज की एक यथार्थ समस्या से हमारा परिचय कराती है। यहाँ शिक्षा एक अनिवार्यता के रूप में आवश्यक है, जिससे विकलांगता की मारी लड़की अपने भविष्य-जीवन को अपने पैरों पर सँभालने में समर्थ हो सके।

3.5.2.2. राजनैतिक दृष्टि

राजनैतिक सन्दर्भ में नागार्जुन विपक्ष के एकमात्र प्रवक्ता कवि हैं। अपने काव्य-विकास के अन्तिम चरण तक आते-आते नागार्जुन की कविता अत्यधिक राजनैतिक हो जाती है, जिसका स्तर राज्य से राष्ट्र, राष्ट्रीय से अन्तर्राष्ट्रीय हो जाता है। राजनैतिक कविताओं में नागार्जुन विपक्ष के कवि के रूप में उपस्थित होते हैं। उन्होंने स्वयं अपने को अनगिनत बार अपनी कविताओं में 'जन-कवि' के अभियान से विभूषित किया है। विपक्ष के पक्षधर होने के नाते वे सत्ता की कटु आलोचनाएँ करते हैं, उसके किसी वैशिष्ट्य का उद्‌गीत गाते नहीं दीख पड़ते, पर इस प्रकार कविताओं में नागार्जुन प्रायः संयमित, मर्यादित और न्यायमुक्त नहीं रह पाए हैं। ब्रिटेन की मल्लिका के भारत आने पर नागार्जुन उसके लिए किये जा रहे भव्य स्वागत को उद्‌धृत करते हुए अपने देश की गरीबी का रोना रोते हैं और तत्कालीन देश की नीति तथा मल्लिका पर व्यंग्य करते हुए लिखते हैं[11] –

आओ रानी हम ढोयेंगे पालकी यही हुई है राय जवाहर लाल की।

किन्तु वहीं नागार्जुन, बुल्गानिन, ख्रुश्चेव के भारत आने पर उनके भव्य स्वागत में खर्च होने वाली विपुल राशि को देख नहीं पाते और उनके स्वागत की प्रशंसा मैत्री मुदिता में कविता रचते हैं। यह भी विचारणीय है कि उन्होंने हाल की रचनाओं में खाए-पीए-अघाए समाजवादियों पर भी प्रहार किया है जिनका समाजवाद मात्र पाखण्ड है। ये उन समाजवादियों का सम्मान करते हैं जो चरित्र की परिधि में रहकर दुनिया के जन-जन में वैचारिक क्रान्ति करते हैं।

राजनैतिक सन्दर्भ के अन्तर्गत नागार्जुन ने व्यक्तित्वपरक आलोचना की कविताएँ भी अधिकाधिक लिखी हैं। जहाँ सामाजिक सन्दर्भ में कलाकार और साहित्यकार के प्रति निवेदित वैयक्तिक कविताओं में नागार्जुन प्रशंसा का गान करते हैं, वहीं राजनैतिक व्यक्तित्वों की अधिकाधिक कटु आलोचना करते हैं। ऐसी कविताओं में सर्वाधिक कटु आलोचनापरक कविताएँ इन्दिरा गाँधी के व्यक्तित्व पर लिखी गई हैं जिनमें उन्हें कभी बाघिन तो कभी भेड़िया, कभी डायन तो कभी कालीमाई के रूप में उपस्थित किया गया है। ऐसे स्थलों पर नागार्जुन ने

भारतीय पौराणिक मिथकों का भी उपयोग किया है। नागार्जुन यद्यपि यहाँ विद्रोह के कवि हैं, पर उनके विद्रोह में सर्जनात्मकता नहीं है, उनमें प्रतिशोध और प्रतिकार के रूप में अपमानित-लांछित करने की भावना अधिक है। वे शब्दों से आहत करते हैं और बहुतेरे स्थलों पर अराजकता का संपोषण करते भी दीखते हैं। राजनैतिक व्यक्तित्वपरक कविता लिखते हुए कई बार वे स्वयं उलझाव के शिकार भी होते हैं। उदाहरण के लिए जयप्रकाश के व्यक्तित्व को लेकर 75 की एक कविता में वे उनकी प्रशंसा करते हैं। पर 75 की ही एक और कविता में वे उनकी भर्त्सना भी करते हैं। इस प्रकार उनमें ध्रुवान्तिक अन्तर्विरोध उपस्थित हुआ है। डॉ॰ हरदयाल के शब्दों में, "वे जे.पी. के प्रति प्रशंसा का भाव भी रखते हैं और निन्दात्मक भाव भी। वे सम्पूर्ण क्रान्ति का समर्थन भी करते हैं और उसका विरोध भी। वे जनता का स्वागत भी करते हैं और उनका विरोध भी।"

3.5.3. नागार्जुन के काव्य का रचना-विधान

3.5.3.1. यथार्थ की ग्रहणशीलता व काव्य में वस्तु का महत्त्व

नागार्जुन के काव्य का रचना-विधान यथार्थ की ग्रहणशीलता में प्राप्त होता है। काव्य-कला के साहित्यिक सामाजिक सन्दर्भ से आशय है काव्य-सृजन के क्रम में काव्य की वस्तु पर उसकी सामाजिकता पर ध्यान देने का सन्दर्भ और वस्तु की अपेक्षा रूप, शिल्प की उपेक्षा करने का सन्दर्भ। नागार्जुन के लिए काव्य में वस्तु ही महत्त्वपूर्ण है, शिल्प भाषा और अभिव्यंजना उसके सामने निस्सार हैं। वस्तु में काल्पनिकता व्यर्थ और त्याज्य है तथा यथार्थता वरेण्य है, आकाश उपेक्षणीय है और धरती ग्राह्य है।

'मनुष्य हूँ'[12] नागार्जुन की ऐसी ही कविता है, जिसमें उनकी काव्य-कला का साहित्यिक-सामाजिक सन्दर्भ कल्पना की अपेक्षा यथार्थ की और आदर्श की अपेक्षा यथार्थ की ग्रहणशीलता में प्राप्त होता है।

इस कविता में कवि कहता है कि मुझे सात घोड़ों का आकाशगामी रथ नहीं चाहिए। मेरे लिए पृथ्वी ही मेरी माता है। इस धरती पर नाना प्रकार के जीव-जन्तु और लता-गुल्म-तरु हैं। चन्द्र, सूर्य तथा धरती अमृत और विष की खान है। उनके शब्दों में 'नीली ग्रीवा वाले मृत्युंजय का बाप' भी यही है।

'विवशता'[13] शीर्षक कविता में नागार्जुन ने सामाजिक सन्दर्भ को रूपायन देने वाले कवि-कलाकार के वैसे विवश लेखन को स्पष्ट किया है, जिसमें उसके निजी प्रतिबद्ध समाज ने एक कवि को उपेक्षित कर दिया है।

कवि कहता है कि उसकी स्थिति 'परभृत पिकशावक' की तरह है, कौवे के घोंसले में पलने वाले पिक-शिशु की तरह है। अपने समाज द्वारा कवि के नहीं अपनाये जाने की स्थिति को उद्घाटित करता वह लिखता है –

तृषित क्षुधित हो
रुदित क्षुधित हो
इधर उधर वह आये जाये
तुम्हीं न उसको अपना पाये।

नागार्जुन की 'रवि ठाकुर'[14] शीर्षक कविता में भी साहित्य के सामाजिक सन्दर्भ को महत्त्व प्राप्त हुआ है। कवि रवि ठाकुर के प्रति इसलिए अवनत है कि उन्होंने पीड़ित मनुष्यता के लिए निम्न स्तर को भी वाणी प्रदान की है। उच्च वर्ग में उत्पन्न होने पर भी उन्होंने अपवादस्वरूप यह महान् संवेदन प्राप्त किया पर सामान्य स्थितियों में ऐसा नहीं हुआ करता है। दूसरी ओर इस कविता में कवि कहता है कि उसका क्षुद्र व्यक्तित्व यद्यपि आटा-दाल, नमक, लकड़ी के जुगाड़ में, पत्नी-पुत्र सेठ के हुकुम में रुद्ध और सीमित है, प्रति पल संघर्ष में गुजरता है, फिर भी वह अपना रुख़ प्रलोभन में पड़कर बदलना नहीं चाहता है। वह अपनी जीविका को ही अपना हल और कुदाल मानता है। वह कवि-गुरु से आशीष चाहता है कि प्रलोभनों में भी उसका मन नहीं डोले और वह सबके साथ सामान्य सामाजिक जीवन का सुख-दुःख भोगता रहे।

3.5.3.1. व्यंग्य

'माँजो और माँजो'[15] इस सन्दर्भ को निरूपित करने वाली नागार्जुन की श्रेष्ठ कविता है। इसमें काव्य-कला के सामाजिक सन्दर्भ को नागार्जुन ने कथ्य के आग्रह और रूप में तिरस्कार के बतौर उपस्थित किया है।

कवि कहता है कि काव्य माँजने से ऊँचा नहीं उठता, बल्कि कथ्य की सही तलाश से ऊँचा उठता है, सामाजिक सन्दर्भ में उपयुक्त तथ्य चयन से ऊँचा बनता है। कवि कथ्य रूप की तुलना करते हुए कहता है–

माँजो और माँजो, माँजते जाओ
लय करो ठीक, फिर-फिर गुनगुनाओ
मत करो पर्वाह, क्या है कहना
कैसे कहोगे इसी पर ध्यान रहे
चुस्त हो सेंटेंस, दुरुस्त हो कड़ियाँ
पके इत्मीनान से गीत की बड़ियाँ

इस प्रकार कवि सम्बोधन-शैली की बेबाकी के सहारे यहाँ अनायास ही व्यंग्य की सृष्टि कर उठता है। वस्तुतः यह काव्य-रचना में रूप का विशद् गान करने वालों के प्रति बड़ा ही करारा व्यंग्य है। तभी यह कहते हैं [16]–

वस्तु है भूसी, रूप है चमत्कार
ध्वनि और व्यंग्य पर मरता है संसार
वाच्य या आशय पर कौन देता ध्यान।

वास्तव में यहाँ नागार्जुन भारतीय काव्य-शास्त्र की ध्वनिवाद और अलंकारवादी पीठिका पर भी व्यंग्यकर जाते हैं। उन्हें महिमभट्ट की तरह अभिधा ही पसंद है, क्योंकि वह सामान्य जन की है।

3.5.4. संवेदना के रूप

3.5.4.1. व्यष्टिपरक संवेदना

निश्चय ही नागार्जुन एक समसामयिक सामाजिक-राजनैतिक चेतना के कवि हैं किन्तु उनकी व्यष्टि चेतना बिल्कुल ही सुषुप्त नहीं है। इससे मनोहर रूप में सम्बन्ध अनेक काव्य-सन्दर्भ उनकी हिन्दी कविताओं में प्राप्त होते हैं। हाँ ! इतना अवश्य है कि उनकी काव्य-विकास-प्रक्रिया में यह व्यष्टिमूलासंवेदनशीलता उनके यहाँ मन्द पड़ने लगती है। यदि हम मैथिली में लिखी उनकी कविताओं को देखें, विशेषतः उनकी साहित्य अकादेमी द्वारा पुरस्कृत 'पत्रहीन नग्न गाछ'[17] को, उस संकलन की अधिकांश कविताओं में रोमान का सूत्र फड़फड़ाता दिख पड़ेगा और उनकी व्यष्टि चेतना से विकसित उनके रोमान भरे सन्दर्भ उनके यहाँ मिल जायेंगे। रोमांस को केवल नारी सौन्दर्य के उद्दाम आकर्षण में देखना सही नहीं है। वस्तुतः "सच्चा रोमांस अतीत के प्रति विकास स्मरण में भी उजागर होता है। वह भावविह्वल उद्गारों के प्रस्फुटन में भी झाँकता है और गहरे रागात्मक सम्बन्ध के अभाव को तिलमिला देने वाली व्यथा से भी उद्भूत होता है। रोमान ही अमूर्त भावों को मूर्त्तता प्रदान करने का साधन भी बनता है।"[18]

'सिन्दूर तिलकित भाल'[19] कविता में कवि प्रवास के दिनों में प्रिया के सिन्दूर-तिलकित भाल की याद करता है। घोर निर्जन में अपनी प्रिया की यह स्मृति कवि की उस व्यष्टि चेतना को सम्यक् रूप से प्रतिबिम्बित करती है, जिससे काव्य-विषय के चयन के सिलसिले में या संवेदना के आग्रहण और उन्मेषीकरण के सिलसिले में कवि दाम्पत्य सन्दर्भ को उठाता है। कविता में नागार्जुन ने प्रेम को व्यक्त करने वाली 'ऋतु-सन्धि' कविता भी लिखी है, जिसमें प्रकृति उद्दीपन बनकर आती है और कवि के मन में पत्नी-प्रिया की स्मृति को जाग्रत् कर जाती है। नागार्जुन की 'तन गई रीढ़' भी इस सन्दर्भ की महत्त्वपूर्ण कविता है। इस कविता में प्रेमिका को महत्त्वपूर्ण प्रेरक शक्ति के रूप में निरूपित किया गया है। 'पातकी' नागार्जुन की प्रेमी-प्रेमिका सन्दर्भपरक की एक विशिष्ट कविता है। इस कविता में स्वाति नक्षत्र के बादल के प्रति पातकी की ओर से अनन्यासक्ति प्रदर्शित की गई है।

नागार्जुन की 'कालिदास सच सच बतलाना'[20] कविता भी प्रेमी-प्रेमिका प्रेमपरक सन्दर्भ को ही निरूपित करने वाली कविता है। इस कविता में 'अज' और 'इन्दुमती' के प्रेम, रति और कामदेव के प्रेम, यक्षिणी और यक्ष के प्रेम में उपस्थित विरह-संवेदना की घनीभूतता और उससे समानुभूतिक संवेदन प्राप्त करने वाले कवि का कालिदास के प्रेम-विह्वल चित्त की करुणा को रेखांकित किया गया है।

'गुलाबी चूड़ियाँ'[21] शीर्षक कविता पिता-पुत्री प्रेमपरक सन्दर्भ को अगाध स्नेयमयतायुक्त वाणी प्रदान करती है। कवि कहता है–

हाँ भाई, मैं भी पिता हूँ
वो तो बस यूँ ही पूछ लिया आपसे
वर्ना ये किसको नहीं भाएँगी
नन्हीं कलाइयों की गुलाबी चूड़ियाँ।

'बहुत दिनों के बाद' शीर्षक कविता कवि नागार्जुन की संवेदनशीलता को गहरे स्तर पर उपस्थित करने वाली कविता है। यह कवि की प्रगाढ़ आत्मीयता को व्यक्त करने वाली कविता है। कवि को बहुत दिनों तक ऐसी काम्य ऐन्द्रीय संवेदनशीलता का अभाव खटकता रहा, जो उसे बहुत-बहुत प्रिय है। आज बहुत दिनों के बाद इसी अभाव की पूर्ति हुई है, जो कवि के मानस को अनन्य ढंग से परितृप्त कर गई है। कवि का मन अलग-अलग वस्तुओं में रुचि रखता है। उसकी रुचि पकी सुनहली फसलों की मुस्कान को देखने में है, धान कूटती किशोरियों की कोकिल कण्ठी तान सुनने में है, मौलसिरी के ताजे टहके फूलों के सूँघने में है, गाँव की पगडंडी चंदनवर्णी धूलों के स्पर्श में है, तालमखाना खाने में है और गन्ने का रस जी भर चूसने में है। यहाँ वह चाक्षुष, श्रोत, घ्राण, त्वक और आस्वाद संवेदनशीलता की क्रुद्ध सार्थकता को व्यक्त करता है।

3.5.4.2. समष्टिपरक संवेदना

समष्टिपरक संवेदना को निरूपित करने वाली नागार्जुन की कविता संख्या में प्रभूत्व हैं। नागार्जुन समाज के विभिन्न सन्दर्भों को देखते हैं और अपनी कविता में उसका प्रलेखीकरण (डॉक्यूमेंटाइजेशन) कर देते हैं। उनकी कविताएँ सामाजिक दस्तावेज बन जाती हैं। उनकी काव्य-रचना के प्रथम और द्वितीय चरण में सामाजिक सन्दर्भ को निरूपित करने वाली कविताओं की प्रचुरता है। यहाँ वे द्वन्द्वात्मक-भौतिकवाद की चेतना से युक्त होकर समाज के वर्ग वैषम्य को देखते हैं और वृत्ति, वस्त्र, शिक्षा, आवास, चिकित्सा आदि के सन्दर्भ की विषमता को उजागर करने हेतु अपना स्वर मुखर करते हैं। यहाँ वे सामाजिक कुरीतियों और रूढ़ियों के आलोचक के रूप में उपस्थित होते हैं तथा सामाजिक भ्रष्टाचार की कटु आलोचना करते हैं। मूलतः वे समानता के आधार पर खुशहाल समाज के स्वरूप के समर्थक हैं। इसीलिए जो भी आड़ी-तिरछी क्रियात्मक रेखाएँ इस स्वरूप को खण्डित-विखण्डित करती हैं, नागार्जुन उनकी कटु आलोचना करते हैं। पर उनकी ऐसी रचनाओं की नाभि-केन्द्रीयता, अर्थ (पूँजी) की ही है जहाँ यथार्थ और वास्तव से हमारा साक्षात्कार होता है। अपनी ऐसी रचनात्मकता में नागार्जुन दो बड़े काम करते हैं – एक ओर ये स्थितियों की समझ को उजागर करते हैं, दूसरी ओर वे सामाजिक विसंगतियों का रेखांकन करते हुए धारदार व्यंग्य करते हैं। उनकी ऐसी कविताएँ कला की दृष्टि से बहुत सपाट भी हो जाती हैं। पर सशक्त और दृढ़ वैचारिकता के कारण अधिक स्थलों पर उनका महत्त्व बना रहता है। यहाँ नागार्जुन के लिए रोजमर्रे की हर घटना कविता का विषय बन जाती है।

कहना पड़ेगा कि ऐसी कविताएँ भले ही एक व्यापक और गहन अनुभव से हमारा साक्षात्कार न करा पाएँ परन्तु उद्वेलित तथ्यांकन से हमें परिचित अवश्य करा पाती हैं। पर जहाँ कहीं नागार्जुन ने कला में कसाव लाने की कोशिश की हैं, वहीं उनकी कविता 'डाक्यूमेंटेशन' न होकर 'मोनूमेंट' बन गई हैं। ऐसी कविताओं में नागार्जुन आवृत्ति, उभार और समान्तरता के कलात्मक कौशल को प्रयुक्त करते दीख पड़ते हैं।

3.5.5. पाठ-सार

स्वतन्त्रता-पूर्व नागार्जुन की कविता में मार्क्सवादी विचारधारा का प्रभाव नहीं मिलता है बल्कि राजनैतिक चेतना का परिचय मिल जाता है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद नागार्जुन के काव्य-विकास के राजनैतिक सन्दर्भ में कवि की राष्ट्रीय राजनैतिक चेतना का परिचय प्राप्त होता है। आजादी के बाद नागार्जुन के काव्य-विकास के राजनैतिक सन्दर्भ में इन्दिरा गाँधी की आलोचना का सन्दर्भ, विदेशनीति बनाम गृहनीति का सन्दर्भ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। उनके व्यंग्य से केवल महात्मा गाँधी और लालबहादुर शास्त्री ही बचे हैं। प्रायः उन्होंने विशिष्ट राजनेताओं की निन्दा और आलोचना की है। कहना न होगा कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के तुरंत बाद का यह काल इस दृष्टि से अत्यन्त उर्वर और संभावनापूर्ण था। तत्कालीन भारतीय प्रधानमंत्री पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने भारत की विदेशी नीति को स्थिर करने और सँवारने में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। पर उनकी गृहनीति उतनी कुशल और व्यवस्थित नहीं हो पाई। तत्कालीन गृहमंत्री सरदार पटेल भी अधिक दिनों तक जीवित न रह सके। फलतः गृहनीति और विदेशनीति के बीच अपेक्षित संतुलन स्थिर नहीं हो पाया। ऐसी परिस्थिति में कवि का विक्षोभ अत्यन्त मुखर है। यहाँ नागार्जुन व्यंग्य के अद्वितीय रचनाकार प्रमाणित होते हैं। डॉ॰ नामवर सिंह के शब्दों में, "नागार्जुन सच्चे अर्थों में भारत के प्रतिनिधि जनकवि हैं।"[22]

हिन्दी साहित्य की सेवा के लिए इन्हें अनेक पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। सन् 1969 में उनकी मैथिली में लिखी कृति 'पत्रहीन नग्न गाछ' काव्य-संकलन पर 'साहित्य अकादेमी' पुरस्कार मिला। 1981 में उत्तरप्रदेश सरकार की ओर से दीर्घकालीन साहित्य सेवा के लिए 'विशिष्ट साहित्य सेवा सम्मान' दिया गया। उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान का सर्वोत्तम सम्मान 'भारतभारती सम्मान' से भी उन्हें अलंकृत किया गया। साहित्य सेवा के लिए बाबा नागार्जुन को सन् 1994 में 'डॉ॰ राजेन्द्र शिखर सम्मान' से सम्मानित किया गया।

नागार्जुन कोमलता और पौरुष के अमर गायक कवि हैं। अपनी कृति से दुनिया को प्रकाशित करने वाला हिन्दी-मैथिली साहित्य-जगत् का यह जाज्वल्यमान् रवि दिनांक 5 नवम्बर, 1998 को सहसा तिमिर में खो गया, परन्तु उनकी कालजयी सुकृतियाँ हिन्दी के सशक्त संवर्द्धन में महनीय योगदान देती रहेंगी।

3.5.6. बोध प्रश्न

1. नागार्जुन का कवि परिचय दीजिए।
2. नागार्जुन की कविता में अभिव्यक्त लोकदृष्टि का विस्तृत विवरण दीजिए।
3. नागार्जुन की कविता संवेदना भावानुभूति और अभिव्यंजन की दृष्टि से उत्कृष्ट है ? सिद्ध कीजिए।
4. नागार्जुन की कविता में समसामयिक सन्दर्भ को रेखांकित और व्याख्यायित कीजिए।
5. नागार्जुन की कविताओं में वैयक्तिक संवेदना का अभिव्यंजन प्रकट होता है ? सिद्ध कीजिए।

3.5.7. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, अनामिका प्रकाशन, पटना, पृष्ठ 20
02. वही, पृष्ठ 87
03. वही, पृष्ठ 144
04. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, सं. : डॉ० प्रभाकर माचवे, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, पृष्ठ 51
05. हजार-हजार बाँहों वाली, नागार्जुन, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, पृष्ठ 31
06. वही, पृष्ठ 32
07. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, सं. : डॉ० प्रभाकर माचवे, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, पृष्ठ 28
08. वही, पृष्ठ 28
09. वही, पृष्ठ 28
10. वही, पृष्ठ 28
11. वही, पृष्ठ 67
12. तालाब की मछलियाँ, नागार्जुन, अनामिका प्रकाशन, पटना, पृष्ठ 71
13. वही, पृष्ठ 46
14. वही, पृष्ठ 45
15. वही, पृष्ठ 88
16. वही, पृष्ठ 88, 89
17. पत्रहीन नग्न गाछ, नागार्जुन संभावना प्रकाशन, हापुड़ - 245101
18. नागार्जुन की कविता, मूल्यांकन और परिव्याप्ति, डॉ० छेदी साह, मीनाक्षी प्रकाशन, दिल्ली-92, पृष्ठ 24
19. प्रतिनिधि कविताएँ, सं. : नामवर सिंह, राजकमल पेपरबैक्स , पृष्ठ 28
20. आज के लोकप्रिय हिन्दी कवि, सं. : डॉ० प्रभाकर माचवे, राजपाल एंड सन्ज, दिल्ली, पृष्ठ 25
21. प्रतिनिधि कविताएँ, सं. : नामवर सिंह, राजकमल पेपरबैक्स, पृष्ठ 33
22. वही, पृष्ठ 10

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता

इकाई – 1 : प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की काव्य-दृष्टि का अन्तर, नये पथ के अन्वेषण की भावना, नये शिल्प का प्रयोग, प्रयोगवाद और नकेनवाद का अन्तर, नयी कविता की काव्य-भाषा का नयापन, लघु मानव की प्रतिष्ठा

इकाई की रूपरेखा

4.1.00. उद्देश्य कथन
4.1.01. प्रस्तावना
4.1.02. प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की काव्य-दृष्टि का अन्तर
    4.1.02.1. प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि
    4.1.02.2. प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि
    4.1.02.3. प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में निहित अन्तर
4.1.03. नये पथ के अन्वेषण की भावना
4.1.04. नये शिल्प का प्रयोग
    4.1.04.1. बिम्ब का प्रयोग
    4.1.04.2. प्रतीकों का प्रयोग
    4.1.04.3. मिथक का प्रयोग
    4.1.04.4. भाषा, शैली एवं छन्द-प्रयोग
4.1.05. प्रयोगवाद और नकेनवाद का अन्तर
4.1.06. नयी कविता की काव्यभाषा का नयापन
    4.1.06.1. नयी कविता की प्रवृत्तियाँ
    4.1.06.2. नयी कविता : शिल्प एवं संवेदना पक्ष
4.1.07. लघुमानव की प्रतिष्ठा
4.1.08. पाठ-सार
4.1.09. बोध प्रश्न
4.1.10. व्यवहार
4.1.11. कठिन शब्दावली
4.1.12. सन्दर्भ सूची
4.1.13. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

4.1.00. उद्देश्य कथन

i. प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि की पड़ताल करना।
ii. प्रयोगवादी काव्य-दृष्टि की पड़ताल करना।
iii. प्रयोगवादी कवियों की प्रयोगधर्मिता का विवेचन करना।

iv. प्रयोगवाद एवं नकेनवाद के अन्तर्सम्बन्धों की पड़ताल करना।

v. प्रयोगवाद के संवेदना-पक्ष की जानकारी प्राप्त करना।

4.1.01. प्रस्तावना

छायावादोत्तर हिन्दी कविता अपने आप में कई परिस्थितियों का प्रतिबिम्ब समेटे हुए है। प्रगतिवाद हो या प्रयोगवाद, इनकी जड़ें छायावाद काल में ही दृष्टिगोचर होती हैं। प्रगतिवाद और प्रयोगवाद के अधिकांश प्रतिनिधि कवि अपने लेखन के आरम्भकाल में छायावादी कविता में पायी जाने वाली सूक्ष्म मनोवृत्तियों का चित्रण, आध्यात्मिकता, रहस्य-भावना, प्रेम तथा स्वच्छन्दता का चित्रण, नवीन भाव तथा भाषा का स्वीकार आदि कई विशेषताओं को अपना चुके थे। छायावाद से प्रेरणा पाकर लिखने के लिए उद्यत हुए कई कवि आगे चलकर प्रगतिवाद-प्रयोगवाद के शीर्ष कवि बन गए।

व्यक्तिगत सुख-दुःख के रोदन की अतिशयता, आत्मकेन्द्रीयता, पलायनवाद, बाधित सम्प्रेषणीयता आदि कई कमियों के कारण छायावाद अपनी ढलान पर पहुँचा और पश्चात् प्रगतिशीलता की दस्तक और युगीन परिस्थितियों की सम्मिलित परिणति के रूप में छायावाद पर पूर्णविराम लग गया। इस समय परिस्थितियाँ भी करवटें ले रही थीं। प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना, काँग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की स्थापना, बांग्ला में प्रकाशित 'प्रगति' पत्र, हिन्दी में प्रकाशित 'रूपाभ', 'उच्छृंखल', 'हंस' आदि पत्रों का योगदान, राजनीति के क्षेत्र मार्क्सवाद का प्रभाव आदि के कारण प्रगतिवाद ने जड़ें जमा दीं। प्रगतिवाद एक तरह से मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण रहा। अर्थाधारित विषमता का विरोध, लिंगाधारित विषमता का विरोध, पूँजीपतियों का धिक्कार, सर्वहारा वर्ग के प्रति सहानुभूति, सामाजिक क्रान्ति का खुला समर्थन, वर्गहीन समाज की स्थापना का स्वप्न आदि विशेषताओं को केन्द्र में रखकर साहित्य-निर्मिति करते प्रगतिवादी कवियों ने इस काव्य-प्रवृत्ति को अत्यधिक प्राणवान् बनाया। समय के साथ दो-दो विश्वयुद्ध झेलकर व्याकुल हो चुके मनुष्य को मात्र समाज की जयजयकार करता प्रगतिवाद खटकने लगा। विषयवस्तु पर बल देते हुए विचारधारा की नारेबाज़ी में लिप्त प्रगतिवाद का संकीर्ण दृष्टिकोण साहित्यिकों की आलोचना का विषय बन गया। विचारधारा को लेकर प्रतिबद्धता का जतन करते हुए कलापक्ष की घोर उपेक्षा करने वाले प्रगतिवाद से असंतुष्ट वर्ग के प्रतिनिधि बनकर उभरे अज्ञेय ने 'व्यक्ति स्वातन्त्र्य स्थापना' की मुहिम चलाते हुए प्रयोगवाद का शंखनाद किया।

हिन्दी कविता के महत्त्वपूर्ण वाद के रूप में उभरा प्रयोगवाद अपनी विशिष्ट काव्य-दृष्टि के चलते देखते ही देखते जड़ें जमाने लगा। आगामी सम्पूर्ण काव्य लेखन पर अपनी अमिट छाप छोड़ने वाले प्रयोगवाद और उसी की विशेषताएँ लेकर पनपी नयी हिन्दी कविता को व्यवस्थित रूप से समझने के लिए प्रयोगवाद का सूक्ष्म अध्ययन आवश्यक है।

4.1.02. प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की काव्य-दृष्टि का अन्तर

प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दोनों अलग-अलग समय में, अलग-अलग परिस्थितियों में, अलग-अलग विचारधाराओं और मानसिकताओं के कारण उपजे साहित्यिक वाद हैं। अतः बहुत स्वाभाविक बात है कि इनका काव्य की ओर देखने का दृष्टिकोण भिन्न-भिन्न है। इस भिन्नता की पड़ताल हिन्दी काव्य की विकास-यात्रा को समझने के लिए अत्यावश्यक है। इस पड़ताल से पहले अनिवार्यतः यह बात ध्यान में रखनी होगी कि समय चाहे जो हो, जब भी साहित्य में कोई नयी प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होने लगती है तो उसके मूल में विशिष्ट विचारधारा से व्युत्पन्न दृष्टि होती है। यह दृष्टि उस साहित्य में कमोबेश मात्रा में छाई रहती है। समयान्तर में जब जीवन और समाज की आवश्यकताओं के अनुसार नवीन विचारधारा अपनी जड़ें जमाने लगती है तो बहुत हद तक वह अपनी पूर्ववर्ती विचारधारा से भिन्न होती है। इस विचारधारा से प्रभावित साहित्य भी अपने पूर्ववर्ती साहित्य से भिन्न होता है। यहाँ दृष्टियों का अन्तर भिन्नता निर्माण करता है। यही कारण है कि प्रत्येक समय का साहित्य अपने पूर्ववर्ती साहित्य की प्रतिक्रिया कहलाता है।

काव्य-दृष्टियों में निहित अन्तर की पड़ताल करनी हो तो काव्य की पृष्ठभूमियों में कार्यरत विचारधाराओं की जानकारी अत्यावश्यक है। इन सभी मुद्दों पर विचार करते हुए सर्वप्रथम प्रगतिवादियों के लिए कविता क्या थी और किस विचारधारा से व्युत्पन्न थी, इस पर विचार करेंगे। पश्चात् प्रयोगवादियों ने कविता को किस अर्थ में ग्रहण किया और वह किस विचारधारा से अनुप्रेरित थी इसकी पड़ताल की जाएगी। इन दोनों काव्य-प्रवृत्तियों द्वारा अभिव्यक्त काव्य-दृष्टियों को समझने के पश्चात् इनमें निहित अन्तर स्वतः स्पष्ट हो जाएगा।

4.1.02.1. प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि

वैसे तो छायावादी कवि भी राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित होकर दीन-दलित, सर्वहारा, मजदूर, किसानों का वर्णन करते ही थे किन्तु उनमें इस बात के लिए प्रतिबद्धता नहीं थी। राजनीति में प्रवाहित साम्यवादी, मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित कवियों ने साहित्य को इन विचारों को सम्प्रेषित करने का साधन माना। प्रगतिशील लेखक संघ के घोषणापत्र में लेखकों को एक तरह से आदेशित किया गया था कि वे पतनशील अन्धविश्वासों की शरण में न आकर भारतीय समाज में तीव्रता के साथ घट रहे परिवर्तनों को अभिव्यक्ति प्रदान करें। भारतीय जनमानस के कण्ठहार बन चुके कहानीकार प्रेमचंद ने भी साहित्य को उपयोगिता की कसौटी पर तौलने की बात कही। पश्चात् हुए अधिवेशन में कविगुरु रवीन्द्र ने भी इसी बात पर बल दिया कि "प्रत्येक भारतीय लेखक को भारतीय जीवन में होने वाले परिवर्तनों को अभिव्यक्ति देनी चाहिए और क्रान्ति की भावना के विकास में सहायता पहुँचानी चाहिए। साहित्य तथा अन्य कलाओं को जीवन के यथार्थ का माध्यम और नये विश्व-निर्माण की शक्ति बनाना उसका कर्त्तव्य है।"[1]

मार्क्स के विचार तथा प्रेमचंद, रवीन्द्र आदि की मान्यताओं ने तत्कालीन लेखक-समाज की दिशा का निर्धारण किया। प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि को समझने के लिए उपर्युक्त पृष्ठभूमि को समझना आवश्यक है।

सर्वविदित है, प्रगतिवाद केवल भौतिक सत्ता को स्वीकृति प्रदान करता है। अतः प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि के अन्तर्गत आत्मा, ईश्वर, परलोक की कल्पना, धर्म जैसे तत्त्वों का निषेध स्पष्ट देखा जा सकता है। भाग्य में आस्था रखने वाला, कर्म-फल की मान्यता का स्वीकार करने वाला आध्यात्मिक हदय का व्यक्ति कभी शोषण के खिलाफ हिंसक क्रान्ति नहीं कर सकता, इस बात में मार्क्स का अटल विश्वास था। मार्क्स का यह विश्वास प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि में भी पनपा। परिणामतः पश्चिम में 'गॉड इज डेड' की घोषणा के समकक्ष भारत में कवि की लेखनी से निम्नलिखित भाव उतरा –

अरे चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को
उस दिन सोचा, क्यों न लगा दूँ आज आग इस दुनिया भर को
यह भी सोचा, क्यों न टेंटुआ घोंटा जाए स्वयं जगपति का
जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का[2]

पूँजीवादी शोषक के प्रति घृणात्मक आक्रोश प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि का अनिवार्य अंग बन गया।

पूँजीवाद ने महत्त्व नष्ट कर दिया सबका
जीवन का, जन का, समाज का, कला का
बिना पूँजीवाद को मिटाये किसी तरह भी
यह जीवन स्वस्थ नहीं हो सकता[3]

इसी की प्रतिक्रिया शोषितों के प्रति अत्यधिक सहानुभूतिपूर्ण रवैये के रूप में उभर आयी। सामाजिक विषमता, इसके लिए उत्तरदायी अर्थाधारित समाज रचना, इससे पनपते वर्ग-संघर्ष का यथार्थवादी वर्णन प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि को स्पष्ट करता है।

युग के ये नर कंकाल
हड्डियों के ताप से अशान्त हैं।
गालों की सूखी हड्ड़ियों में
धँसी हुई आँखों की, पुतलियों में
बसी है भावना विद्रोह की
बढ़ते हैं नरकंकाल, नवयुवक,
खड़ी है जहाँ सेना परतन्त्रता की, मृत्यु की
भूख की, दु:सह अपमान अत्याचार की[4]

प्रगतिवादी साहित्यकारों ने अपनी लेखनी का लक्ष्य निर्धारित कर लिया था। उनके लेखन का स्वर प्रचारात्मक था जिसमें मॉस्को, लाल रूस का बार-बार जयघोष दिखाई देता है। इस प्रचारवादी दृष्टिकोण के कारण प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि संकुचित वर्ण्य-विषयों के साथ बँध गई। निश्चित रूप से प्रगतिवादियों ने बंगाल का अकाल, देश-विभाजन, गाँधी-हत्या आदि ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण घटनाओं पर लिखा लेकिन प्रचारवादी दृष्टिकोण के कारण प्रगतिवादी काव्य एक खास किस्म का सपाटपन और सतहीपन लिये हुए है।

साम्यवादी विचारधारा और मार्क्स के नायकत्व में पूर्ण विश्वास करने वाले प्रगतिवादी कवियों की दृष्टि समाज, पूँजीविरोध, उपयोगितावाद, विद्रोह जैसी बातों के इर्द-गिर्द घूमती रही। उपर्युक्त जिन बातों को प्रगतिवाद की आधारभूमि कहा जाता है, उन बातों को सन् 1945 के आसपास 'असफल ईश्वर' अर्थात् 'दि गॉड दैट फेल्ड' की संज्ञा दी गई। दो-दो विश्वयुद्ध और इनमें हुए अमानुष नरसंहार ने मानवी संवेदनाओं को बुरी तरह झकझोर दिया। मानव की विचारशैली में इन दिनों अमूलाग्र परिवर्तन हुआ। शाश्वत तथा सामयिक मूल्यों पर से मनुष्य का विश्वास टूटने लगा। निर्माण और विनाश दोनों की सत्ता का स्वीकार किया जाने लगा। वास्तविक सत्य को बाह्य नहीं बल्कि आन्तरिक मानने की प्रवृत्ति बलवती होने लगी परिणामतः सामाजिक यथार्थ की संकल्पना चटकने लगी और मनुष्य की अपने अन्तर्जगत की ओर यात्रा आरम्भ हो गई।

इलियट, सार्त्र, एजरा पाउंड जैसे कवि मनोविश्लेषण का आधार लेकर युगीन स्थितियों में संकट-बोध की स्थिति को विश्लेषित करने लगे। एक ओर दो-दो विश्वयुद्ध और दूसरी ओर वैज्ञानिक उन्नति के फलस्वरूप हुए उद्योग विस्तार के कारण मनुष्य में व्यक्तिवादी प्रवृत्तियाँ बढ़ने लगीं। सांस्कृतिक मूल्यों का विघटन तीव्र गति से होने लगा। सांस्कृतिकता की सीमाओं के दरकने के पश्चात् प्रबल हुई व्यक्तिवादिता ने अहं को विस्तार प्रदान किया। परिणामस्वरूप बाह्य जगत् को महत्त्व देती वृत्तियाँ अन्तर्जगत को प्रधान माने लगीं। पहले परिवार, संस्कार, ईश्वरादि पारम्परिक मान्यताओं के दबाव के कारण मनुष्य कम से कम सामाजिक जीवन तो जी लेता था किन्तु इन मान्यताओं के साथ-साथ प्रतिबद्ध रखने वाली तमाम परम्पराओं के बन्धन जैसे-जैसे खुलने लगे, मनुष्य मुक्त कम और अकेला-असहाय अधिक महसूस करने लगा। इस स्थिति ने मनुष्य के लघुत्व को अधोरेखित किया और लघुमानव की संकल्पना प्रत्यक्ष होने लगी। प्राचीन के प्रति गहरा असंतोष उभरने लगा, नवीनता के प्रति आग्रह बढ़ने लगा। जीवन में अवसाद, निराशा, घुटन, अविश्वास, अकर्मण्यता का वर्चस्व बढ़ने लगा। आधुनिकता के दर्शन ने मनुष्य को अपनी नियति भोगने के लिए बाध्य किया।

4.1.02.2. प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि

चक्रव्यूह में फँसे अर्जुन की-सी स्थिति में जीने के लिए विवश मानव की व्यथा-कथा को साहित्यिक तीव्रता के साथ अनुभव करने लगे। स्थितियों में जकड़ा मनुष्य जीवन से हार चुका था किन्तु इस वास्तविकता को उसका अहं स्वीकार नहीं पा रहा था। अपने अस्तित्व को पा लेने की जद्द ओ जहद में फँसा मनुष्य मुक्ति की साँस लेने के लिए व्याकुल था किन्तु मुक्ति की मिथ्या संकल्पना में उसे मात्र प्रयोगजगत् ही एकमात्र सहारा था जहाँ मुक्ति की साँस ली जा सकती थी। अतः संकटग्रस्त मानव ने यथार्थ से मुख मोड़कर प्रयोगों का संसार अपना लिया।

भारत में भी नेहरू युग के आरम्भ के पश्चात् घटित देश-विभाजन, गाँधी-हत्या जैसी घटनाएँ कवियों को विचलित कर रही थीं। पश्चिम में पनपे अस्तित्ववाद, अन्तश्चेतनावाद, प्रतीकवाद, अतियथार्थवाद ने कवियों के विचलित मानस पर गहरा प्रभाव डाला। भारत में प्रयोगवाद के लिए अनुकूल भूमि तैयार होने लगी। एक बात तो निश्चित है कि जिस प्रकार प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि मार्क्सवाद ने तैयार की, उसी प्रकार प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि विविध

पश्चिमी वादों ने तैयार की। निःसन्देह दो-दो विश्वयुद्धों ने मनुष्य में विचित्र-सी उदासी और भय भर दिया था। युद्धों की विभिषिका का आतंक मनुष्य भूल नहीं पा रहा था। अस्तित्ववादी मनुष्य के जीवन को अवश, निरुपाय मानता है। प्रयोगवाद द्वारा स्वीकृत लघुमानव की संकल्पना के मूल में मनुष्य की यह अवश तथा निरुपाय स्थिति अवश्य ही कार्यरत रही होगी। सार्त्र ने अपनी एक कहानी 'इंटीमेसी' में लिखा है – "बाढ़ तुम्हें बहा ले जाती है। यही जीवन है। हम न समझते हैं, न निर्णय दे सकते हैं। केवल बह सकते हैं।"

सार्त्र का लेखन मनुष्य की दुर्बलताओं और विकृतियों का इतना तीव्र चित्रण करता है कि फ्रांसिसी समीक्षकों ने उनके साहित्य को 'कब्रिस्तान का साहित्य' कहा। इसी बोझिल मानसिकता की विचारधारा से प्रयोगवाद अनुप्रेरित है। प्रयोगवाद किन-किन तत्त्वों से प्रेरित है, इसकी चर्चा करते समय जब-जब यूँ बोझिल मानसिक उद्वेलन में धकेलकर उदासी को अधोरेखित करते हुए उदाहरण सामने आते हैं, तब-तब प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि और प्रयोगवादी काव्य-दृष्टि का अन्तर स्पष्ट होने लगता है।

एक ओर बाढ़ की-सी जीवनधारा में बहते जाने की मनुष्य की नियति की विवशता और दूसरी ओर इसकी पृष्ठभूमि में 'मनुष्य ही सर्वेसर्वा है, मनुष्य से परे कोई शक्ति नहीं' कहकर मनुष्य की असीम शक्ति में विश्वास करने वाली प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि को देखकर दोनों में स्थित अन्तर का अनुमान लगाना सहज सम्भव है। प्रगतिवाद ने जिन कई सारे कारणों के चलते ईश्वर, धर्म, भाग्य जैसी बातों को नकारा, उनमें से एक कारण यह भी रहा कि ईश्वर, धर्मादि बातें मनुष्य को अन्याश्रित बनाती हैं, कमजोर बनाती हैं। मनुष्य को कमजोर बनाने वाले हर तत्त्व का प्रगतिवादियों ने घोर विरोध किया और पश्चात् उभरे प्रयोगवाद ने मनुष्य की नियति और दुर्बलता से अपने लिए अन्न-जल पाया। अपनी संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों तथा इससे सम्बन्धित विविध शैलियों का आधार लेने वाले प्रतीकवाद ने प्रयोगवादी कवियों पर चिरप्रभाव छोड़ा। बोदलेयर द्वारा प्रणीत प्रतीकवाद मानता है कि भिन्न-भिन्न अनुभूतियों को रूपायित करने के लिए नयी-नयी शैलियों का आलम्बन लेना पड़ता है। प्रतीकवाद के महत्त्वपूर्ण कवि मलार्मे ने यह भी कहा कि अनुभूत विषय बहुत बार अकथनीय एवं त्वरित होने के कारण उनकी यथावत अभिव्यक्ति सम्भव नहीं हो पाती। अतः उन्हें संकेतपूर्ण पद्धत्ति से ही अभिव्यक्त करना पड़ता है अर्थात् यह अभिव्यक्ति, अभिव्यक्ति नहीं बल्कि व्यंजना के निकट की चीज है। प्रतीकवादियों के लिए सूक्ष्मतिसूक्ष्म संवेदनाएँ, रहस्यपूर्ण संकेत, ध्वनियाँ-प्रतिध्वनियाँ ही काव्य के उपादान बने। यही सारे संकेत, व्यंजनाएँ, जटिलता, अस्पष्टता जैसे तत्त्व प्रयोगवादियों ने अपनाए।

फ्रायड, एडलर और युंग के अन्तश्चेतनावाद को भी प्रयोगवादियों ने बहुत हद तक स्वीकार किया। जीवन की कुण्ठाएँ, दमित वासनाएँ, विशृंखलित मनोदशा और नग्न यौन इच्छाओं की अभिव्यक्ति उनके वर्ण्य-विषयों में शामिल हो गई।

बिम्बवाद, अतियथार्थवाद कुछ ऐसे ही पश्चिमी वाद हैं जिन्होंने प्रयोगवादियों को अत्यधिक प्रभावित किया। प्रयोगवादी इन पश्चिमी विचारों को स्वीकारने के लिए आकुल और अनुकूल थे। भारतीय जनों को अपनी संत्रास का निवारण इन वादों में प्राप्त हुआ था। प्रयोगवादी काव्य-दृष्टि पश्चिम के विचारों से अत्यधिक मात्रा में

प्रभावित रही। अस्तित्ववाद के अन्तर्गत जिस बेचैनी का उल्लेख है वह बेचैनी प्रयोगवादियों को आत्मपरिचित-सी लगी। मुक्तिबोध अपने भीतर की जिस गुप्त अशान्ति की बात करते हैं, उसकी अभिव्यक्ति लगभग हर प्रयोगवादी कवि ने की। जीवन की जटिलताओं ने उलझी हुई संवेदनाओं को जन्म दिया जिनकी अभिव्यक्ति प्रयोगवादियों ने बढ़-चढ़कर की। प्रचलित भाषा को अपर्याप्त जानकर अपनी भाषा के निर्माण पर बल दिया। पश्चिमी वादों का हुबहू अवतरण प्रयोगवाद में देख सकते हैं।

4.1.02.3. प्रगतिवाद एवं प्रयोगवाद में निहित अन्तर

प्रगतिवाद हो या प्रयोगवाद, दोनों ही काव्य-दृष्टियाँ हिन्दी साहित्य के इतिहास में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। एक के बाद एक उभरी इन काव्य-प्रवृत्तियों के स्वभाव में अत्यधिक अन्तर दिखाई देता है। यह अन्तर इतना अधिक है कि कई बार प्रयोगवाद प्रगतिवाद की केवल प्रतिक्रिया नहीं बल्कि विरोध में उभरा वाद प्रतीत होता है।

दोनों काव्य-दृष्टियों की पृष्ठभूमि, इनके पीछे कार्यरत विचारधाराओं को देखने के पश्चात् इन दो काव्य-दृष्टियों में निहित अन्तर स्वच्छ रूप से देखा जा सकता है। मूलतः प्रगतिवाद मार्क्सवादी दर्शन की ठोस ज़मीन पर उभरा वाद था। मार्क्स के विचारों के प्रति यह इतना अधिक प्रतिबद्ध था कि उसमें समाज से इतर अन्य किसी विषय को किंचित भी स्थान न था। इस अतिसामाजिकता और सार्वजनिकता में वैयक्तिकता लुप्त-सी हो गई। प्रगतिवादियों ने कला-समस्या पर कभी विचार नहीं किया। प्रचारीपन और विचारधारा का दबाव इतना अधिक था कि प्रगतिवाद में एक नीरस एकरसता आ गई और प्रयोगवाद का मार्ग स्वतः प्रशस्त हो गया। प्रगतिवादी काव्य-दृष्टि के ठीक विपरीत प्रयोगवाद अत्यधिक व्यक्तिवादी भूमि पर टिका था। विशेष बात यह कि लीक का विरोध करने वाले प्रयोगवादियों ने अपनी वैयक्तिकता में छायावादियों की-सी भावुकता शामिल नहीं होने दी। अपने व्यक्तिवाद को बौद्धिकता की आधारभूमि पर मजबूती के साथ खड़ा करनेवाले प्रयोगवादी इस मायने में भी प्रगतिवादियों से पूर्णतः भिन्न सिद्ध हुए।

प्रगतिवादियों ने अपनी अभिव्यक्तियों में ग्रामीण जीवन के शब्द, शिल्प और संवेदनाओं को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया। लोकगीतों की शैली और संवेदना को उन्होंने बड़ी सहजता के साथ अपना लिया। इसके ठीक विपरीत प्रयोगवादी कविता अधिकतर शहरी जीवन की जटिलताओं को बौद्धिकता के साथ व्यक्त करती थी।

प्रगतिवादी कविता जिस बेलौसपन के साथ आगे बढ़ती गई, उस बेलौस निश्चिन्तता का प्रयोगवादी कविता ने न केवल निषेध किया बल्कि वह अपनी सन्देह व आशंका को कविता में अधिकाधिक स्थान देने लगी। जहाँ स्पष्ट व स्थिर शैली प्रगतिवाद की विशेषता कहलायी वहीं संकेतपूर्ण शैली को प्रयोगवादी विशेषता माना गया।

भाव, भाषा, शिल्प-संवेदना के लगभग हर स्तर पर प्रयोगवाद अपने पूर्ववर्ती प्रगतिवाद से भिन्न सिद्ध होता है। बावजूद इसके, दोनों काव्य-दृष्टियों में स्थित इस भिन्नता को कहाँ तक उचित और अन्तिम माना जाए, यह भी एक विचारणीय प्रश्न है।

1943 में प्रकाशित तारसप्तक में मुक्तिबोध की सोलह, नेमिचन्द जैन की दस, भारतभूषण अग्रवाल की तेरह, प्रभाकर माचवे की तेईस, गिरिजाकुमार माथुर की बारह, रामविलास शर्मा की उन्नीस और अज्ञेय की सत्रह अर्थात् एक सौ दस कविताएँ शामिल थीं। 'हिन्दी कविता की प्रगतिशील भूमिका' (सं. प्रभाकर श्रोत्रिय) में डॉ० रणजीत इन कविताओं का विश्लेषण कर स्पष्ट करते हैं कि मुक्तिबोध की सोलह में से दस, नेमिचन्द जैन की दस में से छह, भारतभूषण अग्रवाल की तेरह में से आठ, प्रभाकर माचवे की तेईस में से नौ, गिरिजाकुमार माथुर की बारह में से एक, रामविलास शर्मा की उन्नीस में से चौदह और स्वयं अज्ञेय की सत्रह में से सोलह कविताएँ प्रगतिशील कविताएँ हैं। इस संख्या के आधार पर वे 'तारसप्तक' को प्रगतिशील कविताओं का संकलन मानते हैं।

इस आधार पर प्रयोगवादी कवि तथा काव्य-दृष्टि का विश्लेषण करें तो विशुद्ध प्रयोगवादी कवियों की संख्या अत्यधिक कम है। विशुद्ध प्रयोगवादी की तुलना में सामाजिकता की पृष्ठभूमि को बनाये रखते हुए नवनिर्माण के लिए उत्सुक प्रगतिशील प्रयोगवादियों की संख्या अधिक है। परिवेशगत विडम्बनाओं की बेचैनी को भीतर समेटते हुए, उलझी संवेदनाओं के साथ समाजहित के लिए प्रयासरत कवि भाषा और भाव को लेकर विविध प्रयोग करते पाए जाते हैं। इन्हें देखने के पश्चात् इस बात को स्वीकारना होगा कि प्रगतिवाद और प्रयोगवाद दो सिरों पर खड़े वाद लगते हैं लेकिन गहरा अध्ययन इनकी परस्पर उपकारकर्त्ता की भूमिका को अधोरेखित करता है। कविता को लेकर पश्चिमी विचारधाराओं के अधीन होकर सोचने की अपेक्षा स्वतन्त्र रूप से सोचें तो कुछेक बातें सामने आयेंगी।

भारतीय दृष्टि मूलतः परम्परा में विश्वास रखती है। समय के अन्तराल में प्राचीन तत्त्वों का क्षरण होता अवश्य है किन्तु यही तत्त्व नवीनता का मार्ग भी प्रशस्त करते हैं। इस दृष्टि से प्रगतिवाद हो या प्रयोगवाद, दो भिन्न काव्य-दृष्टियों में निहित अन्तर विषमता को नहीं बल्कि परम्परा और क्रमिक विकास के सिद्धान्त को ही अधोरेखित करता है।

4.1.03. नये पथ के अन्वेषण की भावना

प्रयोगवाद हिन्दी कविता की एक विवादास्पद काव्य-प्रवृत्ति है। कुछ तो अज्ञेय के विचारों का अनुगमन करते हुए और कुछ स्वयंस्फूर्ति के साथ प्रयोगवाद ने जिन लक्ष्यों का निर्धारण किया, उनमें पहला ही लक्ष्य प्रयोगवादी आस्थाओं के आधार पर नवीन कला-मूल्यों की स्थापना करना था। प्रगतिवादी काव्य का विरोध करने के मूल में भी कई बार प्रगतिवाद में निहित परिपाटी पर चलने का भाव, स्वच्छन्द वैयक्तिकता का अभाव, राजनीति से प्रतिबद्ध व संचलित होकर किया गया लेखन आदि मुद्दे कारणभूत रहे। प्रयोगवादियों में प्राचीन के प्रति घृणा और नवीनता के प्रति अत्यधिक मोह का भाव स्पष्ट दिखाई देता है।

रामधारीसिंह 'दिनकर' 'काव्य की भूमिका' में लिखते हैं – "प्रगतिवाद आन्दोलन अभी चल ही रहा था कि 'तारसप्तक' का पहला भाग प्रकाशित हुआ, जो इस बात की सूचना थी कि हिन्दी के नये कवि कविता की प्रचलित शैली से संतुष्ट नहीं थे।"[5]

स्पष्ट है, प्रयोगवाद के मूल में ही नये पथ के अन्वेषण की भावना प्रगाढ़ रूप से कार्यरत थी। इसी नवीनता की ललक ने स्वभाव, मत, विचार और मूल्यगत भिन्नता के कवियों को एक सूत्र में बाँधा। काव्य के प्रति अन्वेषी दृष्टिकोण सभी कवियों में दृष्टिगोचर होने वाला एकमात्र समान तत्त्व था। जिन कवियों में प्रयोग की प्रवृत्ति एवं नये पथ के अन्वेषण की भावना का अभाव था, उन्हें अज्ञेय ने 'तारसप्तक' में शामिल नहीं किया। इस सन्दर्भ में अज्ञेय के मतानुसार सप्तक के कवियों ने यहाँ तक कह दिया कि यदि अन्ततः 'तारसप्तक' के पाठक वे ही बचे तो भी उन्हें कोई पछतावा नहीं। अर्थात् उन्हें अपने कविता को मोर्चे में अकेला होना मान्य था किन्तु नवीन पथ के प्रति आग्रही भूमिका के साथ कोई समझौता मान्य नहीं था।

'तारसप्तक' का लगभग प्रत्येक कवि अपने पथ को ढूँढने के लिए बेचैन था। प्रगतिवाद पर आलोचनात्मक कटाक्ष करते हुए प्रयोगवादियों ने एक बात स्पष्ट कर दी थी कि नये प्रयोगों को अपनाकर ही काव्य-निर्माण से जुड़ी कई कमियों को दूर किया जा सकता है। अज्ञेय इस सन्दर्भ में कहते हैं – "नवोन्मेष से विस्फूर्जित और उत्सेकित कल्पना की हिन्दी कविता में कमी है। उसके लिए हमें अपना अलंकार-विधान आमूल बदलना होगा। उपमान माँजने होंगे, रूपकों की कलई खोलनी होगी, उत्प्रेक्षाएँ सचमुच भाव के उत्स से उत्प्रेरित है या नहीं यह देखना होगा।"[6] अज्ञेय के इस वक्तव्य से एक बात स्पष्ट होती है कि अज्ञेय स्वयं एवं उनके प्रयोगवादी कवि कमोबेश मात्रा में जिस नये पथ के अन्वेषण के आकांक्षी थे वह पथ अधिकतर कविता के शिल्प-पक्ष से जुड़ा हुआ था। कविता की वस्तु में नवीनता के लिए जो आग्रह किये गए वे शिल्प-पक्ष की तुलना में कम ही रहे।

प्रयोगवादी कवियों ने साधारणीकरण और सम्प्रेषण की समस्या पर विचार करते हुए पाया कि इन समस्याओं का निवारण भी नवीनता को अपनाकर ही किया जा सकता है। साधारणीकरण केवल नये प्रयोगों से सम्भव है। यदि पुरानी सामग्री से सम्प्रेषण की समस्या हल हो जाती तो प्रयोगों की ओर जाने का कोई प्रयोजन ही नहीं था। प्रयोगवादी कवियों ने इसी नयी दृष्टि से व्यक्ति और समाज को परखा है। संवेदनाओं के स्तर पर भी नयेपन के आकांक्षी कवि नये क्षेत्रों का अन्वेषण करते पाया जाते हैं – "प्रयोग सभी कालों के कवियों ने किए हैं ... किन्तु कवि क्रमशः अनुभव करता आया है कि जिन क्षेत्रों में प्रयोग हुए हैं, उनसे आगे बढ़कर अब उन क्षेत्रों का अन्वेषण करना चाहिए जिन्हें अभी नहीं छुआ गया, या जिनको अभेद्य मान लिया गया है"[7] तात्पर्य यह कि 'तारसप्तक' के लगभग सभी कवि कविता की पारम्परिक संवेदनाओं तथा शैलियों से असंतुष्ट होकर नये पथ का अन्वेषण करते-करते ही प्रयोगवादी बने थे। नये पक्ष के अन्वेषण के लिए सभी प्रयोगवादी कटिबद्ध थे। विषय-वस्तु का नयापन हो या भाषा पक्ष का नयापन हो, इन कवियों का प्राप्य रहा बल्कि कह सकते हैं कि नये पथ के अन्वेषण की प्रबल आकांक्षा ही प्रयोगवादियों को 'प्रयोग' करने के लिए विवश करती थी। नयेपन की आकांक्षा से प्रेरित यह कवि परम्परापालन के लिए आग्रही दृष्टिकोण रखने वालों को दो टूक सुनाते हैं – "जो लोग प्रयोग की निन्दा करने के लिए परम्परा की दुहाई देते हैं, वे भूल जाते हैं कि परम्परा कम से कम कवि के लिए ऐसी कोई पोटली बाँधकर अलग रखी हुई चीज नहीं है जिसे वह उठाकर सिर पर लाद ले और चल निकले। (कुछ आलोचकों के लिए भले ही वैसा हो) परम्परा का कवि के लिए कोई अर्थ नहीं है जब तक वह उसे ठोक बजाकर, तोड़-मरोड़कर देखकर आत्मसात नहीं कर लेता, जब तक वह एक इतना गहरा संस्कार नहीं बन जाती कि उसका

चेष्टापूर्वक ध्यानकर उसका निर्वाह करना अनावश्यक न हो जाए ..."[8] अज्ञेय समेत प्रयोगवाद के सभी कवि नये भाव, नये विषय, नयी संवेदनाएँ, नयी भाषा की तलाश में जुटे रहे। उनकी दृष्टि में नयेपन का अन्वेषण अनिवार्य था क्योंकि तथ्यों को संस्कारबद्ध पुरानेपन ने जकड़ लिया था। इस जकड़न से मुक्ति पाने के लिए प्रयोगवादियों को नयेपन का अन्वेषण अपरिहार्य लगा।

4.1.04. नये शिल्प का प्रयोग

प्रयोगवादी कवि शिल्प-प्रयोग को लेकर अत्यन्त सतर्क रहे हैं। संवेदना व वस्तु-तत्त्व को ठोसपन प्रदान करने वाले एक पूरक तत्त्व के रूप में शिल्प की स्वीकार्यता की अपेक्षा प्रयोगवादियों ने शिल्प को उसके स्वतन्त्र अस्तित्व के साथ स्वीकारा। अज्ञेय ने शिल्प की तुलना में वस्तु को अधिकमहत्त्व देने की वृत्ति का निषेध किया है। 'तारसप्तक' में वे स्पष्ट कर चुके थे – "वस्तु को शिल्प से अलग नहीं किया जा सकता।" अज्ञेय समेत समस्त प्रयोगवादी कवि शिल्प को केवल एक 'फॉर्म' मात्र नहीं मानते थे अतः शिल्प को असाधारण महत्त्व देते थे। वे यह भी स्वीकार करते थे कि शिल्प-प्रयोग में कृत्रिम छन्द-विधान आदि रचना की संवेदनाओं का प्रभाव कम करते हैं किन्तु वस्तु के लिए पूरकछन्द, अलंकार, बिम्ब, प्रतीकादि के कारण वस्तु अधिक प्रभावपूर्ण बन जाती है। इस दृष्टि से प्रयोगवादियों ने भरसक प्रयास किए कि रचना के सम्प्रेषण के लिए अनुकूल शिल्प के नावीन्यपूर्ण प्रयोग किये जाए। सामान्यतः कवि अपनी संवेदनाओं को जिन साधनों द्वारा प्रस्तुत करता है, वे साधन शिल्पगत उपकरण कहलाते हैं। प्रयोगवादी कवियों ने ऐसे नये-नये साधन तलाशने का प्रयास किया। उनके मतानुसार उनकी मौलिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति प्राचीन शिल्पगत उपकरणों के माध्यम से सम्भव नहीं थी। अतः नवीन शिल्पगत उपकरणों को तलाशना अनिवार्य था। जहाँ प्रयोगवादी कवियों ने प्राचीन, प्रचलित उपकरणों को उपयुक्त जाना वहाँ भी उन्हें पारम्परिक रूप में यथावत प्रयोग करने की अपेक्षा नवीन संस्कार के साथ प्रयुक्त किया। बिम्ब, प्रतीक, अप्रस्तुत-योजना, शब्द, भाषा, छन्द, मिथक आदि के नव्यतम प्रयोग के साथ प्रयोगवादियों ने अपना रचना-संसार सजाया।

4.1.04.1. बिम्ब का प्रयोग

बिम्बों की सार्थकता उनके उभरने में होती है। प्रयोगवादियों द्वारा प्रयुक्त बिम्ब-विधान इतनी नवीनता लिये हुए है कि कई बार सम्प्रेषण बाधित हो जाता है। व्यक्तिगत अनुभवों को व्यापक सामाजिक फलक प्रदान करने हेतु बिम्ब-प्रयोग किया जाता है क्योंकि हमारी सोच के मूल में बिम्ब विद्यमान होते हैं। एक कवि जब बिम्ब-प्रयोग करता है तो अपने ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ग्रहण किये गए नितान्त स्थूल बिम्बों को कल्पना के स्तर पर नवीन रूप प्रदान कर प्रस्तुत करता है। इसी कारण कई आलोचक बिम्ब-प्रधान भाषा को ही सफल काव्य-भाषा मानते हैं। प्रयोगवादी कवि अपनी काव्य-भाषा को बिम्बप्रधान बनाने के लिए प्रयासरत रहे। बिम्बों के सार्थक प्रयोग की महिमा अज्ञेय जैसे कवि खूब जानते थे। अतः उन्होंने ऐसे बिम्ब चुने जो पाठकों के मन में प्रतिमा-निर्माण करने में सक्षम हों, ऐसे बिम्ब चुने जो पाठकों के व्यक्तिगत अनुभवों से जुड़कर व्यापक सामाजिक अर्थग्रहण में सार्थक सिद्ध हों। प्रयोगवादी कवियों ने नवीन शिल्प-प्रयोगों में बिम्ब का उपयोग करते हुए अपनी काव्य-भाषा को

अधिक सजीव व मूर्त बनाया। बिम्बों ने भी उनके चिन्तन को सम्प्रेषणीय और संवेदनाओं को मूर्त बनाकर पाठकों तक पहुँचाया। प्रयोगवादी कवि ऐन्द्रिय बिम्ब-प्रयोग में अधिक रमे हुए प्रतीत होते हैं। इसके अलावा प्राकृतिक, पौराणिक, मनोवैज्ञानिक, गन्ध-स्पर्श बिम्बों का मार्मिक प्रयोग प्रयोगवादी कविता के शिल्प-विधान में नवीनता का समावेश कर गया। नवीन शिल्प प्रयोग करने के क्रम में धीरे-धीरे प्रयोगवादी कवि ऐसे बिम्बों का प्रयोग करने लगे जो ऐन्द्रिय बिम्बों के दायरे में नहीं आते। जीवन-सत्य की जटिलता, विचित्र अनुभव, खण्डित मानसिकता, रहस्यपूर्णता और विविध भावनाओं को उद्दीप्त करनेवाली बिम्बाभिव्यक्ति इस दौर की कविता की विशेषता रही।

अज्ञेय ने अपनी 'असाध्य वीणा' में शिल्प-प्रयोग के कई अभूतपूर्व उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। ध्वनि बिम्बों के प्रयोग का एक अप्रतिम उदाहरण प्रस्तुत है –

हरी तलहटी, में, छोटे पेड़ों की ओट, ताल पर
बँधे समय वन-पशुओं की नानाविध आतुर-तृप्त पुकारें
गर्जन, घुर्घर, चीख, भूंक, हुक्का, चिचियाहट।[9]

अज्ञेय जैसे प्रयोगवादी कवियों ने शिल्प की दृष्टि से इतने नवीन प्रयोग किए कि उनकी ताज़गी काव्य-शिल्प में नवीन प्राण फूँक देती है। उन्होंने कई रंग-बिरंगी छटाओं को अपने काव्य-शिल्प में जीवन्त बना दिया। प्रयोगवादी कवियों को विशेषतः अज्ञेय को रंगों का खूब ज्ञान था। वे बड़ी बारीकी से मिश्रित-अमिश्रित रंग-रूपों का सार्थक प्रयोग करते हैं। इस संश्लिष्ट रंग-प्रयोग के माध्यम से वे संवेदनाओं को व्यक्त करते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है –

गेहूँ की हरी बालियों में से
कभी राई की उजली,
कभी सरसों की पीली फूल-ज्योत्स्ना दिप गई
कभी लाली पोस्ते की सहसा चौंका गई –
कभी लघु नीलिमा तीसी की चमकी और छिप गई।[10]

ठीक इसी प्रकार रस, गन्ध, स्पर्श बिम्बों से लेकर विराट् बिम्बों तक कई अप्रतिम बिम्ब-प्रयोग प्रयोगवादी कवियों ने किये हैं।

4.1.04.2. प्रतीकों का प्रयोग

प्रयोगवादी तथा नये कवियों की कविता का शिल्प प्रतीक-प्रयोग के कारण भी सम्पन्न माना जाता है। उनकी काव्य-भाषा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह भी रही है कि इन कवियों ने प्रतीक और बिम्बों का संयुक्त प्रयोग किया। प्रतीक-प्रयोग को लेकर प्रयोगवादी कवि अत्यन्त गम्भीर थे। उन्होंने नये प्रतीकों का सृजन करना आवश्यक समझा।

वह वस्तु जो किसी अन्य वस्तु का बोध कराये, प्रतीक कहलाती है। अज्ञेय ने 'आत्मनेपद' में कहा है – "जो सीधे-सीधे अभिधा में नहीं बँधता उसे आत्मसात करने या प्रेषित करने के लिए प्रतीक काम देते हैं। ... सत्य के अथाह सागर में वह (कवि) प्रतीक रूपी कंकड़ से उसकी थाह का अनुमान करता है।"[11] उनकी यह सोच भी थी कि कोई कवि अपने साहित्य में प्रतीकों की सृष्टि करता रहता है तब तक स्वस्थ रहता है, जब वह यह सृष्टि-सृजन बंद कर देता है तो जड़ हो जाता है। प्रतीक-प्रयोग के सन्दर्भ में इतने आग्रही अज्ञेय और उनके प्रयोगवादी तथा नयी कविता से जुड़े साहित्यिकों ने प्रतीक-प्रयोग अत्यन्त कुशलता से किया। प्रतीकों का अनेकार्थ सूचक होना मात्र पर्याप्त नहीं, अर्थ के प्रत्येक स्तर पर प्रतीक का प्रभविष्णु होना भी अनिवार्य है। इस दृष्टि से इन कवियों द्वारा किये गए प्रयोग इतने सार्थक थे कि अज्ञेय (और समकालीनों) को प्रतीकवादी कहा जाने लगा। पारम्परिक प्रतीकों को नवीन सन्दर्भों में प्रस्तुत करने के साथ-साथ प्रयोगवादी कवियों ने प्रकृति, राजनीति, धर्म, दर्शन, मनोविज्ञान आदि से जुड़े प्रतीकों का सृजन कर अपने काव्य-शिल्प में अत्यन्त नाविन्य भर दिया। अज्ञेय ने भी अध्यात्म-दर्शन से लेकर व्यंग्यात्मकता तक से जुड़े प्रतीकों का इतना कुशल प्रयोग किया कि आलोचकों ने उन्हें फ्रांस के प्रतीकवादियों का भारतीय प्रतिनिधि घोषित किया।

प्रकृतिविषयक प्रतीक-प्रयोग प्रयोगवादियों को विशेष रूप से लुभाता रहा है। सागर, बूँद, आँगन, भोर, द्वार, आकाश, सूर्य, इन्द्रधनु आदि प्रकृति से जुड़े अनगिनत प्रतीक इस कालखण्ड में प्रयुक्त हुए। प्रयोगवाद पर अतिव्यक्तिवादिता और सामाजिक जीवन से विछिन्न होने का आरोप लगाया गया तब उसका उत्तर भी प्रयोगवादी-नये कवियों ने 'नदी के द्वीप' और 'यह दीप अकेला' जैसे प्रतीकों का सृजन करके दिया। अज्ञेय ने 'सागर' पर अनेकानेक कविताएँ रचीं। मात्र इतना ही नहीं, सागर को अनेक प्रतीकों को समाहित कर लेने वाले प्रतीक के रूप में देखा –

ओ सागर
ओ मेरी धमनियों की आग ...
ओ मेघ, ओ ज्वार, ओ बीज,
ओ निदाध, ओ रावण, ओ कीट दंश!
ओ रवि-चुंबी गरुड़, ओ हारिल,
ओ आँगन के नृत्य रत मयूर!
ओ अहल्या के राम,
ओ सागर![12]

सागर ही की भाँति मछली का प्रतीक भी अज्ञेय को विशेष प्रिय था। उनके विचार में – "यदि हम सागर को हमारे न जाने हुए सब कुछ का प्रतीक मान लें, तो मछली उस प्रतीक का प्रतीक हो जाती है जिसके द्वारा कवि अज्ञात सत्य का अन्वेषण करता है। यहाँ से अन्वेषण पद्धत्ति का अन्वेषण करें तो और भी कई प्रतीक मिलते हैं ... सागर और मछली, नदी, सेतु, जल पर पड़ा हुआ प्रकाश, परछाँही, परछाँही को भेदने वाली किरण और अन्त में वह प्रकाशवान् मछली जो परछाँही को भेद जाती है – वह प्रतीक जिसके द्वारा अन्वेषी स्वयं अपने अहंकार से उत्पन्न पूर्वाग्रहों की छाया के पार देख लेता है ..."[13] प्रतीकों के प्रति कवियों के इस दुर्दम्य आकर्षण ने प्रयोगवादी

शिल्प को प्रतीकों का खजाना बना दिया। एक ओर नितान्त पौराणिक प्रतीक तो दूसरी ओर वैज्ञानिक उन्नति से जुड़े प्रतीक प्रयुक्त करने में प्रयोगवादी कवि सिद्धहस्त थे। द्वार, नदी, मछली, साँप जैसे पारम्परिक प्रतीकों को नवीन अर्थ, नवीन सन्दर्भ प्रदान करने के साथ-साथ भूत, ब्रह्मराक्षस, भैंस, गधा, ऊँट, कुत्ता जैसे नितान्त नये प्रतीक भी इस समय की कविता के शिल्प-सौन्दर्य में नयापन भर देते हैं।

4.1.04.3. मिथक का प्रयोग

अज्ञेय कहते हैं कि “प्रत्येक प्रतीक के मूल में मिथक हुआ करता है।” मिथकीय अवधारणा से जुड़े प्रतीक या सीधे शब्दों में मिथकों का प्रयोग भी इस कालखण्ड के काव्य-शिल्प को अद्वितीय बना देते हैं। इन कवियों ने वासुकि, शेष नाग, मंदराचल, असुर, इन्द्र, वज्रकीर्ति, मसीहा, दधीचि जैसे ढेरों प्रतीक अपने अंदाज में व्यक्त किए। भक्तिभाव विभोर होकर किये गए मिथक-प्रयोग की अपेक्षा नये रूपाकार में मिथक-प्रयोग की प्रवृत्ति अधिक दृष्टिगोचर होती है –

वामन ने तीन डग में त्रिलोक नाप लिया था,
ऊँचे-पूरे बाम्हन की एक ही डकार से,
मच गया कहीं ब्रह्मांड में हाहाकार?[14]

‘असाध्य वीणा’ मिथकीय प्रयोग की दृष्टि से अद्वितीय कविता है।

4.1.04.4. भाषा, शैली एवं छन्द-प्रयोग

ठीक इसी प्रकार प्रयोगवादी कवियों ने अप्रस्तुत योजना, उपमान प्रयोग, मूर्त के लिए अमूर्त प्रयोग, अमूर्त के लिए मूर्त प्रयोग, अमूर्त के लिए अमूर्त प्रयोग, मूर्त के लिए मूर्त प्रयोग जैसे कई शिल्पगत प्रयोग किए। इनके उपमान एकदम अनोखे और जीवन से गृहीत हुआ करते थे।

नोन-तेल लकड़ी की फिक्र
में लगे घुन से
मकड़ी के जाले से, कोल्हू
के बैल से[15]

भाषा, शैली, शब्द-प्रयोग अलंकार-प्रयोग के साथ-साथ (अर्थात् इस प्रयोग को सफल सम्प्रेषण की दृष्टि से अपर्याप्त जानकर) विराम चिह्न, संकेत चिह्न, अधूरे वाक्य आदि के माध्यम से अपनी ‘उलझी हुई संवेदनाओं’ को पाठकों तक पहुँचाने के लिए प्रयोगवादी कवियों ने शिल्प को अपनी तईं मोड़ा। प्रयोगवादी कवियों ने ग्रामीण, देशज से लेकर संस्कृत, अंग्रेजी तक सभी प्रकार के शब्दों का प्रयोग किया। विविध विद्याशाखाओं यथा – दर्शन, विज्ञान, मनोविज्ञान से यथावश्यक शब्दों को ग्रहण किया।

वैसे तो महाप्राण निराला ने 'खुल गए छंद के बंध' की घोषणा सर्वप्रथम की थी। किन्तु उनके पश्चात् प्रयोगवादियों ने छन्द के क्षेत्र में विविध प्रयोग किए जिनमें से कुछ सफल तो कुछ असफल हो गए। छन्द के पारम्परिक मात्रिक रूपबन्ध से वे दूर ही रहे। परिणामतः उनकी कविता में लय और गति का अभाव बना रहा और काव्य कई बार गद्यात्मक बन गया। अंग्रेजी सॉनेट, उर्दू की ग़ज़लों-रूबाइयों और लोकगीतों की धुनों के प्रभाव को अपनाने के बावजूद लयात्मकता का अभाव निरन्तर विद्यमान रहा। भारतभूषण अग्रवाल की कविता में छाई गद्यात्मकता द्रष्टव्य है –

तुम अमीर थी
इसलिए हमारी शादी न हो सकी
पर मान लो, तुम गरीब होती
तो भी क्या फर्क पड़ता
क्योंकि तब मैं अमीर होता[16]

कई बार नयेपन का मोह कविता के शिल्प को यूँ सपाट भी बनाता है। नवीनता के अतिरिक्त आग्रह के कारण कविता का सम्प्रेषण बाधित हो जाता है। इस दुरूहता के लिए डॉ॰ नगेन्द्र पाँच बातों को उत्तरदायी मानते हैं – (i) भाव तत्त्व और काव्यानुभूति के मध्य रागात्मक के स्थान पर बुद्धिगत सम्बन्ध (ii) साधारणीकरण का त्याग (iii) उपचेतन मन के खण्ड अनुभवों का यथावत चित्रण (iv) भाषा का एकान्त एवं अनर्गल प्रयोग (v) नूतनता का सर्वग्राही मोह। इन विविध मत मतान्तरों के बावजूद यह कहना होगा कि शिल्प-प्रयोग की दृष्टि से अज्ञेय का प्रतीक युक्त मिथक प्रयोग, प्रभाकर माचवे का अलंकार प्रयोग, उपमान प्रयोग, गिरिजाकुमार माथुर की टेकनिक प्रधानता, मुक्तिबोध की फैंटसी, शमशेर का प्रतीक प्रयोग असाधारण रूप से महत्त्वपूर्ण है।

4.1.05. प्रयोगवाद और नकेनवाद का अन्तर

1943 में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' से प्रयोगवाद का आरम्भ माना जाता है। इसमें कोई दो राय नहीं कि यह काव्यान्दोलन कोई सुनिश्चित योजना बनाकर चलाया नहीं गया था न ही इसकी किसी नियमावली का गठन किया गया था। प्रयोगवाद की प्रथम अनुभूति का प्रतीक माने जानेवाले 'तारसप्तक' के मूल में केवल दो सिद्धान्त कार्यरत थे। पहला यह कि यह एक साझा कार्य है और इसमें शामिल प्रत्येक कवि इस पुस्तक का साझी है। दूसरा सिद्धान्त यह कि 'तारसप्तक' में संगृहीत प्रत्येक कवि कविता को प्रयोग का विषय मानता हो। उसे काव्य-सत्य को पा लेने का भ्रम न हो बल्कि वह स्वयं को अन्वेषी मात्र मानता हो।

'तारसप्तक' की भूमिका में अज्ञेय का यह कथन लगभग सारी बातें स्पष्ट करता है – "तारसप्तक किसी गुट्ट का प्रकाशन नहीं है क्योंकि संगृहीत सात कवियों के साढ़े सात अलग-अलग गुट्ट हैं, उनके साढ़े सात व्यक्तित्व हैं। ... सातों अन्वेषी हैं। काव्य के प्रति अन्वेषी का दृष्टिकोण उन्हें समानता के सूत्र में बाँधता है ... बल्कि उनके एकत्र होने का कारण ही यह है कि वे किसी एक स्कूल के नहीं हैं, किसी मंजिल पर पहुँचे हुए नहीं हैं, अभी राही हैं – राही नहीं, राहों के अन्वेषी।"[17]

इस पृष्ठभूमि पर विशुद्ध प्रयोग की पक्षधरता करते हुए बिहार के तीन कवियों – नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश ने 1956 में 'नकेन के प्रपद्य' का प्रकाशन कर प्रयोगवाद की टक्कर में 'प्रपद्यवाद' नामक आन्दोलन का आरम्भ किया। इन तीनों कवियों ने नामों के प्रथमाक्षरों को मिलाकर 'नकेन' शब्द गठित किया गया था। इसलिए यह 'प्रपद्यवाद' और 'नकेनवाद' दोनों नामों से जाना जाता है। 'प्रयोगवादी पद्य' की अवधारणा को आगे बढ़ाने के लिए 'पद्य' के साथ 'प्र' जोड़ा गया था। प्रपद्यवादियों ने स्वयं को विशुद्ध प्रयोगवादी और अज्ञेयादि को प्रयोगशील घोषित किया। प्रपद्यवाद के तीनों कवि उच्चशिक्षित थे और पश्चिम की विविध विचारधाराओं तथा काव्यान्दोलनों के जानकार थे। अतः उन्होंने अत्यन्त योजनाबद्ध रूप में 'प्रपद्यवाद' का सूत्रपात किया। प्रयोगवाद और नकेनवाद के बीच सबसे पहला अन्तर तो यही कहा जा सकता है कि जहाँ प्रयोगवाद के प्रतिनिधि संकलन 'तारसप्तक' की न कोई सुनियोजित प्रकाशन योजना थी न समविचारी कवियों की सोची-समझी नीति जैसा कि अज्ञेय के उपर्युक्त कथन से स्पष्ट होता ही है। वही दूसरी ओर 'नकेनवाद' अत्यन्त सुनियोजित ढंग से स्थापित किया गया वाद था। 'नकेन' के केसरी कुमार को इस बात पर आपत्ति थी कि हिन्दी आलोचकों ने अज्ञेय को प्रयोगवादी कविता का व्याख्याकार घोषित किया। वास्तविकता यह कि सर्वप्रथम प्रयोगवादी कविताएँ 'नकेन' की ही हैं जबकि अज्ञेय ने कहीं भी उनके नाम का उल्लेख नहीं किया।

अतः 'नकेन' की ओर से विशुद्ध प्रयोगवाद अर्थात् नकेनवाद की स्थापना हेतु प्रयोग की दशसूत्री का प्रस्तुतीकरण किया गया। यह एक तरह से 'नकेन' द्वारा जारी किया गया प्रयोगवाद का मेनीफेस्टो था। इसका प्रारूप निम्न प्रकार है –

i. प्रपद्य भाव और व्यंजना का स्थापत्य है।
ii. प्रपद्य सर्वतन्त्र-स्वतन्त्र है। उसके लिए शास्त्र या दल-निर्धारित नियम अनुपयुक्त हैं।
iii. वह महान् पूर्ववर्तियों की परिपाटियों को निष्प्राण मानता है।
iv. वह दूसरों से भी अधिक अपना अनुकरण वर्जित समझता है।
v. उसे मुक्त-काव्य नहीं, स्वच्छन्द काव्य की स्थिति अभिष्ट है।
vi. प्रयोगशील प्रयोग को साधन मानता है जबकि प्रपद्यवादी साध्य।
vii. प्रपद्यवाद की दृक्वाक्यपदीय प्रणाली है।
viii. प्रपद्यवाद के लिए जीवन और कोष कच्चे माल की खान है।
ix. प्रपद्यवादी प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छन्द का स्वयं निर्माता है।
x. प्रपद्यवाद दृष्टिकोण का अनुसंधान है।

पश्चात् इस दशसूत्री में दो और सूत्र जोड़ दिए गए –

i. प्रपद्यवाद मानता है कि पद्य में उत्कृष्ट केन्द्रण होता है और यही गद्य और पद्य में अन्तर है।
ii. प्रपद्यवाद मानता है कि चीजों का एकमात्र सही नाम होता है।

इस द्वादशसूत्री के आधार पर प्रपद्यवाद का प्रयोगवाद के विपरीत अतियोजनाबद्ध होना सिद्ध होता है। मात्र इतना ही नहीं, पश्चात् जब 'नकेन-2' का प्रकाशन किया गया तो उपर्युक्त 12 सूत्रों के साथ पुनः छह नये सूत्र जोड़कर 'प्रपद्य अष्टादश सूत्री' की घोषणा की गई। ये छह नये सूत्र इस प्रकार हैं –

i. प्रपद्यवाद आयाम की खोज है और अभिनिष्क्रमण भी, ठीक वैसे, जैसे वह भाव और व्यंजना का स्थापत्य है और उससे अभिनिष्क्रमण भी।
ii. प्रपद्यवाद चित्रेतना है।
iii. प्रपद्यवाद मिथक का संयोजन नहीं, स्रष्टा है।
iv. प्रपद्यवाद बिम्ब का काव्य नहीं, काव्य का बिम्ब है।
v. प्रपद्यवाद सम्पूर्ण अनुभव है।
vi. प्रपद्यवाद अविभक्त काव्य-रुचि है।

प्रपद्यवाद के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए तीनों कवियों ने समय-समय पर कुछ वक्तव्य जारी किए। जैसे नलिन विलोचन शर्मा ने विनोद भाव से एक द्विपदी रची –

दिल तो बेकार हुआ जो कुछ है सो ब्रेन
गाय हुई बकेन है, कविता हुई नकेन[18]

'दिल' के बेकार और 'ब्रेन' के सर्वेसर्वा होने का संकेत इस कविता ने स्पष्ट किया।

'नकेन' के 'पस्पशा' में केसरी कुमार ने प्रपद्यवाद की व्याख्या इस प्रकार की – "तो प्रयोगशील, प्रयोगप्रधान, प्रयोगात्मक आदि शब्दों की धारणा से अलग प्रयोगवाद या प्रपद्यवाद की धारणा है। प्रपद्यवाद मात्र प्रयोग नहीं है चाहे वह किसी वस्तु का हो, प्रपद्यवाद प्रयोग का दर्शन है। सही है कि प्रयोग सभी युगों में हुए हैं पर अभी-अभी प्रयोग को काव्य का साध्य कहा गया है। इस प्रकार आज प्रयोग की स्थिति निश्चित है।"[19] नकेनवाद में कविता को अत्यधिक बौद्धिक बनाने का उपक्रम किया गया। कविता में भावुकता का स्थान ही गायब हो गया। प्रयोगवाद भी बुद्धिप्रधान कविता को महत्त्व देता है किन्तु उसमें बौद्धिकता उस प्रकार सर्वोपरि नहीं रही जैसे नकेनवाद में। इस अन्तर के अलावा प्रयोगवाद और नकेनवाद की मान्यताओं में कई बार ज़मीन आसमान का-सा अन्तर उभरकर आता है। नकेनवादियों ने प्रयोग को साधन समझनेवाले प्रयोगवादियों को 'प्रयोगशील' माना और प्रयोग को 'साध्य' मानते हुए स्वयं को विशुद्ध प्रयोगवादी घोषित किया। प्रयोग को साध्य और कविता को नितान्त बौद्धिक वस्तु मानने के कारण नकेनवाद जनसामान्यों की पहुँच के बाहर की वस्तु बना रहा। दूसरी ओर अज्ञेय 'स्वान्तः सुखाय' रचना-सिद्धान्त को अमनोवैज्ञानिक बताते हुए सफल अभिव्यक्ति के लिए 'ग्राहक, पाठक या श्रोता' का अस्तित्व अनिवार्य मानते हैं। अज्ञेय तो 'काव्य-लेखन और प्रेषण' में "यह अनुभव अद्वितीय जो केवल मैंने जिया, सब तुम्हें दिया" की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण मानते हैं।

केसरी कुमार ने नकेनवाद की कविता सम्बन्धी मान्यताओं को स्पष्ट करते हुए कहा है – "प्रयोग के वाद से तात्पर्य यह है कि वह भाव और भाषा, विचार और अभिव्यक्ति, आवेश और आत्मप्रेषण, तत्त्व और रूप, इनमें से कई में या सभी में प्रयोग को अपेक्षित मानता है।"[20] प्रपद्यवादी न केवल सतत प्रयोग अपनाते हैं बल्कि प्रयोग को ही अपना एकमात्र लक्ष्य मानते हैं। प्रयोग ही कविता बन जाए तो कोई 'कविता' के निर्माण के लिए कोशिश क्यों करेगा ? प्रपद्यवादियों ने कई बार प्रयोग के नाम पर अत्यधिक जटिल और अनर्गल रचनाओं का निर्माण किया। इस सन्दर्भ में 'नकेन' की एक स्वीकारोक्ति द्रष्टव्य है – "सही है कि प्रयोगवाद के नाम पर बहुत सस्ती चीजें भी और लब्धप्रतिष्ठ व्यक्तियों द्वारा सम्पादित पत्र-पत्रिकाओं तक में छपने लगी हैं। और ऐसी रचनाएँ भी आलोचकों के लिए प्रयोगवाद के विश्लेषण तक का आधार बन रही है। यहाँ मैं वैसी आलोचनाओं का उल्लेख आवश्यक समझता हूँ, जैसी उदाहरण के लिए उत्तरप्रदेश के नामवर सिंह जैसे लोग नकेनवाद के सम्बन्ध में करते पाए जा सकते हैं"[21] चाहे जिस सन्दर्भ और भाव-भूमिका के साथ अपनी रचनाओं की अनर्गलता का स्वीकार 'नकेन' में किया गया, बावजूद इसके, वे अपनी भूमिका पर अडिग रहे। उनकी दृष्टि में कविता भावना या दर्शन की निष्पति नहीं, वह नये विचारों और नये शब्दों से भी नहीं लिखी जाती बल्कि इनके केन्द्रण से गठित होती है। दैनन्दिन भाषा-व्यवस्था को व्यतिरेकित करके ही इसे पाया जा सकता है। दैनन्दिन जीवन की भाषा और अनुभव के आगे की भाषा व अनुभव को कविता प्रकट करती है।

प्रयोग के प्रति इस प्रकार का अतिवादी जुनून अज्ञेय और सहयोगियों में नहीं। उनके लिए वास्तव में प्रयोग एक ऐसा साधन रहा जिसके अन्तर्गत जीवन से जुड़ने का (सुलभ नहीं किन्तु) नया रास्ता अपनाया जाता है। नकेनवादी तो ऐसा कोई रास्ता शेष ही नहीं रखते जिस पर सामान्य भावकों के चलने की कोई गुंजाइश बचे।

अज्ञेय समेत सभी प्रयोगवादी कवियों ने वस्तुतः साधारणीकरण का विरोध नहीं किया। वे केवल साधारणीकरण की प्रक्रिया में परिवर्तन चाहते थे। दूसरी ओर प्रपद्यवादी थे जिन्होंने समूचे साधारणीकरण को ही नकार दिया। उन्होंने कविता में विशिष्टीकरण का नारा दिया। साधारणीकरण और रसग्रहण की प्रक्रिया में कवि और पाठक की एक ही भाव-सत्ता में उपस्थिति, एक ही भावभूमि पर खड़ा होना अनिवार्य होता है। प्रपद्यवादियों ने न भाव-सत्ता को स्वीकारा न रसानुभूति को। उन्होंने कविता को वैयक्तिक वस्तु माना, सार्वजनिक नहीं। वे अपनी ऐसी निजी अनुभूतियों और शब्दार्थों पर बल देते हैं जिनमें साधारणीकरण के लिए कोई स्थान नहीं। वे कविता में जिस विशिष्टीकरण पर जोर देते हैं, उसका आधार विज्ञान है। नलिन विलोचन शर्मा मानते हैं कि कवि के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विज्ञानसम्मत दर्शन आवश्यक होता है क्योंकि कविता का उद्देश्य सत्य का संधान है। अतः ज्ञान के अन्य क्षेत्रों में जिस प्रकार विशिष्टीकरण आवश्यक होता है, उसी प्रकार कविता में भी विशिष्टीकरण अनिवार्य है। बुद्धि और ज्ञानप्रधानता का कविता में क्या स्थान है, यह बताते हुए केसरी कुमार ने लिखा है – "जब कविता अपने समय की बौद्धिकता से सम्पर्क विच्छेद कर लेती है, तब भाव प्रवण जाग्रत्-मति समाज की उसमें दिलचस्पी नहीं रहा जाती। यह अत्यन्त खेदजनक स्थिति है, क्योंकि यह समाज यद्यपि अल्पसंख्यकों का होता है, पर यही बड़े समाज को गति देने वाला सिद्ध होता है।"[22]

'बड़े समाज को गति देने वाले' अल्पसंख्यक समाज की बुद्धिवादिता में विशिष्टीकरण ही अहम रहेगा। यहाँ भला साधारणीकरण को क्या स्थान ?

अज्ञेय और उनके सहयोगी कवियों का प्रयोगवाद पूर्णतः निर्दोष कदापि नहीं कहा जा सकता। किन्तु नकेनवाद-के-से दोषों से प्रयोगवाद बहुत हद तक मुक्त था। 'नकेनवाद' मानों अतिवाद का दूसरा नाम बनकर उभर आया। अपनी 'फक्किका' अर्थात् टिप्पणी से ही उन्होंने उटपटाँग चमत्कार निर्मिति आरम्भ की। जिस रूप में उन्होंने अपने सूत्रों की उद्घोषणा की, उस रूप में उन्हें चरितार्थ नहीं किया। दूसरी ओर सूत्र भी ऐसे थे जिनमें वायवीपन अत्यधिक मात्रा में भरा हुआ था। प्रपद्यवादी अपने पहले ही सूत्र में कहते हैं कि प्रपद्यवाद भाव और व्यंजना का स्थापत्य है। नयेपन का अतिरेकी आग्रह करनेवाले प्रपद्यवादी यह बात भूल गए कि काव्य आपाततः भाव और व्यंजना का स्थापत्य ही हुआ करता है।

काव्य स्वयंस्फूर्त तत्त्व है। लेकिन उसे विज्ञान की भाँति नियमावली के साथ बद्ध किया गया। रचना के पहले, रचना का संविधान बनाने का यह दुराग्रह सहा भी जा सकता था किन्तु एक ओर नकेनवादी नियमावली गढ़ते हैं और दूसरी ओर सारे नियमों को धता बताने वाला – "प्रपद्यवाद सर्वतन्त्र स्वतन्त्र है" जैसा सूत्र भी गढ़ते हैं। अर्थात् एक ओर नियम और तत्काल ही उसे तोड़ने का संकल्प भी। प्रयोगवाद एक नियोजनहीन योजना थी किन्तु नियोजनबद्ध योजना के रूप में उभरे नकेनवाद के अन्तर्गत ऐसी विरोधाभासी स्थितियाँ सर्वथा ग्राह्य नहीं। पारम्परिक अथवा पुरानी परिपाटी को निष्प्राण मानने वाले प्रपद्यवाद ने भाषा, अप्रस्तुत योजना, शैली, छन्दादि में कुछ नवीन प्रयोग अवश्य किए जिनमें प्राचीन काव्यशास्त्र का आधार भी लिया गया था। इस आधार को समूल नकारने का साहस प्रयोगवादियों ने कभी नहीं किया किन्तु डंके की चोट पर उसे नकारकर, पुरानी लीक पर ही चलकर प्रपद्यवादियों ने अपनी ही बात को खोटा साबित किया। यही बात प्रपद्यवादियों द्वारा अनुकरण को नकारने के सन्दर्भ में भी लागू है।

प्रपद्यवादियों को मुक्त काव्य की नहीं, स्वच्छन्द काव्य की स्थिति अपेक्षित थी। इस वक्तव्य को कहते हुए यह बात भुला दी गई कि रचना अपने उद्भव के समय मुक्त, छन्द, अछन्द जैसी बातें नहीं देखती। कविता में प्रयोग को ही साध्य मानने के सन्दर्भ में भी यह कहा जा सकता है कि कविता बौद्धिक व्यायाम नहीं जो उसे इतनी सजगता के साथ रचा जाए। 'जीवन और कोष' को 'कच्चे माल की खान' कहकर भी प्रपद्यवादी भ्रम व्युत्पन्न करते हैं। जीवनानुभवों से काव्य का अनुप्राणित होना तो समझा जा सकता है किन्तु 'कोष' के सन्दर्भ में (यदि नकेनवादी 'कोष' का प्रयोग 'शब्दकोश' के अर्थ में कर रहे हों तो) यह कहना होगा कि कोशगत शब्द माने काव्य नहीं न ही कोशों को उलटने-पुलटने से काव्य-सृजन सम्भव है। आगे नकेनवादी अपने प्रयुक्त प्रत्येक शब्द और छन्द का निर्माता स्वयं को घोषित करते हैं किन्तु स्वच्छन्द की बात कहकर उन्होंने छन्द-निर्माण की संभावनाओं को स्वयं ही नकारा था। छन्द-निर्माण और स्वच्छन्दता दोनों को एक ही 'फक्किका' में दर्ज कर नकेनवादियों ने अपने अन्तरर्विरोधों को ही अधोरेखित किया है। ऐसे अन्तर्विरोध (सम्भवतः घोषणा-पत्र जारी न करने के कारण) प्रयोगवादियों में कम मात्रा में पाए जाते हैं। घोषणा-पत्र व सूत्रों के अन्तर्विरोध के सन्दर्भ में डॉ॰ रघुवंश ने कहा है – "यदि पहले भूमिका का अध्ययन कर लेने के बाद संकलन की कविताओं को पढ़ा जाएगा, तो कठिनाई होगी

कि इनमें भाव और व्यंजना का वह विशिष्ट स्थापत्य कहाँ है ? वह दृक्वाक्यपदीय शैली या प्रणाली कहाँ है ? इन प्रपद्यों में उत्कृष्ट केन्द्रण कहाँ है ? हाँ, यह ऐसा अवश्य लगता है कि ये सर्व तन्त्र स्वतन्त्र हैं, महान् पूर्ववर्तियों की परिपाटियों को त्याज्य मानते हैं, इनमें मनमानेपन का आग्रह है ।"[23] ऐसी विरोधाभासी स्थितियाँ नकेनवादियों में बराबर बनी रहीं। कट्टरता के साथ यह कवि 'वाद' के प्रचार में जुटे रहे लेकिन वाद के प्रति अपनी आग्रही भूमिका को नकारते रहे । कविता में एक ओर सतर्क बौद्धिकता का समावेश उन्हें अनिवार्य लगा तो दूसरी ओर "लापरवाही के बीच कविता मार्ग खोजती रही है", जैसे कथन भी जारी किये गए।

अपने घोषणा-पत्र, उसमें निहित सूत्रों, भाषा, छन्दादि सम्बन्धी विचार, वस्तु व संवेदना सम्बन्धी विचार आदि में कई अन्तर्विरोध समेटने के बावजूद प्रयोगवादी काव्य की एक सशक्त कड़ी होने के नाते नकेनवाद का महत्त्व नकारा नहीं जा सकता।

4.1.06. नयी कविता की काव्यभाषा का नयापन

प्रयोगवादी कविता का नाम और प्रवृत्ति प्रतिक्रिया के रूप में प्रचलित हुई। यद्यपि अज्ञेय और समविचारी 'प्रयोगवाद' नाम को नकारते रहे पर यह नाम साहित्य-क्षेत्र में छाया रहा, इसमें कोई दो राय नहीं । प्रयोगवादी काव्य के निर्माण और प्रचार में 'प्रतीक' पत्रिका का महत्त्व असाधारण है। इसी पत्रिका की-सी भूमिका का निर्वाह करती, सन् 1953 में 'नये पत्ते' शीर्षक एक पत्रिका पण्डित रामस्वरूप चतुर्वेदी और लक्ष्मीकान्त वर्मा के सम्पादन में निकली। 'नये पत्ते' में शिल्पगत उपलब्धि के आधार पर 'नयी कविता' की दस्तक सुनाई दी। समीक्षकों की लेखनी से यह स्वर उभरने लगा कि प्रयोगवाद नवलेखन की एक भूमिका मात्र रहा । उसकी प्रकृति में निहित अस्थिरतामूलक तत्त्वों के आधार पर कुछ नये प्रयोग किये गए थे। इन्हीं में से कुछ सफल प्रयोगों को नींव स्वरूप मानकर नयी कविता का अविर्भाव हुआ। इसी चर्चा के क्रम में जगदीश गुप्त और रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'नयी कविता' का पहला अंक निकाला। पश्चात् धर्मवीर भारती और लक्ष्मीकान्त वर्मा के सम्पादन सहयोग से 'निकष' पत्रिका का आरम्भ किया गया। अज्ञेय को 'नयी कविता' नाम भा गया। गिरिजाकुमार माथुर और मुक्तिबोध जैसे दिग्गज कवियों ने क्रमशः 'नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ' तथा 'नयी कविता का आत्मसंघर्ष' जैसे पुस्तकों की रचना की। यह और कुछ ऐसे ही सारस्वत-प्रयासों के फलस्वरूप 'नयी कविता' नाम चल पड़ा। चहुँ ओर नयी कविता का डंका बजने लगा।

प्रयोगवाद और नयी कविता के बीच के अन्तर को अलगाने और नयी कविता की विशेषताओं को अधोरेखित करने के उपक्रम किये जाने लगे। नयी कविता की विशेषताओं को जानना, इस सन्दर्भ में उपयुक्त सिद्ध होगा क्योंकि इन्हीं विशेषताओं की पड़ताल करने के पश्चात् नयी कविता का नयापन, नयी कविता की काव्यभाषा का नयापन इत्यादि उभरकर आएगा।

4.1.06.1. नयी कविता की प्रवृत्तियाँ

पण्डित रामस्वरूप चतुर्वेदी ने 'हिन्दी नवलेखन' में नयी कविता की प्रवृत्तियों को स्पष्ट किया है। इन विशेषताओं में से कुछ विशेषताओं का उल्लेख नयी कविता को समझने की दृष्टि से आवश्यक है –

01. नयी कविता नितान्त आधुनिक है। आधुनिकतम होना उसकी प्रथम अनिवार्य शर्त है।
02. एक पूर्णतः नवीन, सुनिश्चित तथा रागात्मक दृष्टिकोण होना उसकी दूसरी अनिवार्य आवश्यकता है। पूर्णतः नवीन होना इसलिए कि परम्परागत दृष्टिकोण सारहीन, जड़ तथा खोखला है।
03. नयी कविता में सामान्य वस्तुओं तथा अकिंचन परिस्थितियों से रागात्मक सम्बन्ध होना अत्यावश्यक है।
04. उसमें गहरे तथा तीखे व्यंग्य (सटायर आइरनी) की प्रवृत्ति भी हो, किन्तु व्यंग्य ऐसा हो जो जीवन के प्रति रागात्मक दृष्टिकोण दे सके।
05. नयी छन्द-योजना, शब्दों के ध्वन्यात्मक प्रयोग तथा आन्तरिक अर्थों का समन्वय भी नितान्त अपेक्षित है।
06. बिखरे भाव-चित्रों तथा मुक्त साहचर्य का निःसंकोच रूप से प्रयोग होना चाहिए।
07. उसमें एक नये व्यापक तथा उदार मानवतावादी दृष्टिकोण को विकसित करने का अथक प्रयास होना बहुत आवश्यक है।
08. सामान्य जनजीवन के प्रति एक अनिवार्य 'कंसर्न' हो।
09. मुखौटों की संस्कृति के प्रति आशंका और आक्रोश भी हो।
10. नयी कविता का धरातल काफी हद तक बौद्धिक हो। बौद्धिक होना ही आधुनिक युग की अनिवार्यता है।
11. नयी कविता में वर्तमान से असंतोष तथा भविष्य में आस्था हो।
12. आवेग, आवेश, उत्साह, दया – नयी कविता में अनावश्यक है।
13. शिल्प की दृष्टि से खुरदरापन, अनगढ़पन, कंकरीट के पलस्तर की तरह – नयी कविता में बहुत आवश्यक वस्तु है।
14. नयी कविता गद्य कविता हो। उसमें जीवन की स्वाभाविक भाषा का प्रयोग हो।
15. वैयक्तिक भाव-चित्रों योजना करना नये कवि के लिए अनिवार्य शर्त है।
16. नयी कविता की सम्पृक्त अनुभूति के लिए पाठक का कुछ प्रशिक्षित होना आवश्यक है।
17. नये कवि के लिए कविता की रचना-प्रक्रिया यथेष्ट जटिल होती है और वह बौद्धिकता से सम्पृक्त होती है।
18. सृजन के क्षण उतने विशिष्ट नहीं जितने नयी कविता के आस्वादन के क्षण महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट होते हैं।
19. नयी कविता में क्षण का महत्त्व होता है। उसमें नये नैतिक प्रतिमान है और नया सौन्दर्य-बोध होता है।
20. नये कवि अनिवार्य होते हुए भी आधुनिकता को यत्नज मानते हैं।

21. प्रेम और शृंगार की जो नग्नता और अश्लीलता का प्रदर्शन परम्परा से अनैतिक अथवा कुण्ठाग्रस्त माना गया है, उसे नये कवि नैतिक मानते हैं।
22. 'कैक्टस' नये कवियों की सौन्दर्य-चेतना का प्रतीक है जो ऊपर से देखने पर कँटीला होता है किन्तु भीतर रसप्लावित रहता है।
23. सामान्यतः अकिंचन क्षणों को उनकी सम्पूर्ण असंगति में अंकित करने की चेष्टा नयी कविता का आधुनिकतम भाव-बोध है।
24. डॉ॰ जगदीश गुप्त 'अर्थ की लय' नयी कविता की अनिवार्य वस्तु मानते हैं। अन्त्यानुप्रास और कविता की आभ्यन्तरिक शाब्दिक लय योजना को वे उपेक्षित करने का आदेश देते हैं।
25. डॉ॰ धर्मवीर भारती के प्रयास से इधर पिछले दिनों से धुरीहीनता का आन्दोलन या क्रुद्ध युवक की एक नयी स्थिति भी नयी कविता की एक अनिवार्य विशेषता के रूप में जुड़ गई है।
26. नये कवि और समीक्षकों का कहना है कि नयी कविता का विकास अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समान रूप से हो रहा है।

4.1.06.2. नयी कविता : शिल्प एवं संवेदना पक्ष

नयी कविता की जिन प्रवृत्तियों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उनमें कई स्थानों पर प्रयोगवाद की छाया अवश्य दिखाई देती है (क्यों न दिखे, आखिर 'प्रयोगवाद मर गया और मरते-मरते अपने प्राण नयी कविता को सौंप गया' जैसे वक्तव्य भी इसी बात को प्रमाणित करते हैं कि नयी कविता प्रयोगवाद की अगली कड़ी है) लेकिन इस बात को भी स्वीकारना होगा कि नयी कविता का अपना अलग अस्तित्व भी है। प्रयोगवाद मूलतः एक कलावादी आन्दोलन था। उसमें काव्य-भाषा, छन्द, बिम्बालंकार आदि शिल्प सम्बन्धी मुद्दों पर खूब विचार हुआ था। कला-पक्ष से सम्बन्धित प्रयोगवाद का नया संस्कारित रूप नयी कविता है अतः बहुत स्वाभाविक है कि नयी कविता का ध्यान काव्य-शिल्प पर अत्यधिक मात्रा में केन्द्रित रहा। अभिव्यक्ति की प्रणाली को लेकर दुर्दम्य आग्रह न केवल 'फॉर्म' में बदलाव लाया बल्कि 'कंटेंट' में भी एक ताज़गी भर गया। नयी कविता में प्रवेश करने के साथ-साथ कविता का शिल्प और संवेदना-पक्ष दोनों में बदलाव देखा जा सकता है। नयी कविता ने, जैसा कि उसकी विशेषताओं से स्पष्ट होता है, सामान्य जनजीवन के प्रति 'कंसर्न' को महत्त्व दिया। इसी के चलते उसने अपने कथ्य में युगानुरूप विषयों को स्थान दिया। साथ ही, इन विषयों को अभिव्यक्त करने के लिए नयी-नयी अभिव्यक्ति शैलियों का प्रयोग किया। नयी कविता यह घोषित कर चुकी थी कि वह बौद्धिकता में विश्वास रखती है। वह तो यह तक मानती है कि सृजन के क्षण उतने विशिष्ट नहीं, जितने नयी कविता के आस्वादन के क्षण महत्त्वपूर्ण और विशिष्ट होते हैं। आस्वादन-पक्ष और उससे जुड़े पाठक से इस बौद्धिक कविता को कई उम्मीदें हैं। वह अपनी रचनाएँ एक ऐसे स्तरीय पाठक के लिए गढ़ती है जिसका कला-बोध नये कवियों का-सा हो। इस सन्दर्भ में डॉ॰ जगदीश गुप्त का कथन विचारणीय है – "वह उन विवेकशील आस्वादकों को लक्षित करके लिखी जा रही है जिनकी मानसिकता अवस्था और बौद्धिक चेतना नये कवि के समान है अर्थात् जो उसके समानधर्मा हैं, जो एक ओर पुरानी कविता की अभिव्यंजना प्रणालियों, शक्तियों और सीमाओं से परिचित हैं और जिनकी

परितृप्ति परम्परागत वस्तु और अभिव्यक्ति से सम्पूर्ण रूप में नहीं होती, और दूसरी ओर जो दिशाएँ खोजने में संलग्न नूतन प्रतिभा की क्षणिक असफलताओं और कठिनाइयों के प्रति सहानुभूतिशील होकर नये कवि की वास्तविक उपलब्धि की आशंसा करने में संकोच नहीं करते ।"[24] पाठकों को ही बौद्धिक होने का आग्रह करने वाली नयी कविता जटिलता, दुरूहता को अपने भीतर जुटाए हुए है । नयी कविता ने अपने शिल्प को एकदम महीन-सा गढ़ लिया है । पारम्परिक पैटर्न पर चलना उसे स्वीकार नहीं सो जिन नयी राहों पर वह चलती है, वह हर राह नये ताज़गी भरे पैटर्न के रूप में उभर आती है । विषयवस्तु का वैविध्य नयी कविता को न केवल पारम्परिक लीक से मुक्त कर देता है बल्कि उसमें नयापन भी भर देता है । विषय-पक्ष और कला-पक्ष की एकता नयी कविता को अपेक्षित है । इस सन्दर्भ में विष्णुचन्द्र शर्मा कहते हैं – "आज की सभ्यता के उपकरण उसकी कविता के शिल्प के माध्यम हैं और संस्कृति के जातीय विकास से उसे काव्य-संस्कार के प्रश्न मिले हैं ।"[25] नयी कविता नये विषय और उनकी नयी प्रकार से अभिव्यक्ति करने में जुट गई । शिल्प के प्रति अतिरिक्त सजगता नयी कविता की महत्त्वपूर्ण विशेषता है । टी.एस. इलियट की कृति 'वैस्ट लैंड' और एजरा पाउंड की रचना 'कैंटोज' के शिल्प ने नयी कविता के शिल्प को अत्यधिक मात्रा में प्रभावित किया । वर्तमान के प्रति असंतोष और भविष्य में आस्था जताना नये कवियों ने अपनी काव्य-भाषा के माध्यम से सम्भव बनाया । नयी कविता में काव्य-भाषा के नयेपन को लेकर कई बार अतिरिक्त आग्रह भी झलकता है जो नयी कविता के विरोधकों को विरोध के लिए पर्याप्त सामग्री भी दे जाता है । उदाहरणार्थ मदन वात्स्यायन की 'केट केली' कविता –

'केट केली' चल दी
चीरती गई सड़क को विरल-वसना, अविरल-रसना, बर्र कटि, चटपटी कथा,
लौंग जैसी, बिच्छी जैसी, शामी कबाब जैसी, बंदूक बुलेटजैसी अप्सरा ।[26]

नयी कविता को उपर्युक्त किस्म के भटकाव से बचाने का काम अज्ञेय और शमशेर ने किया । अज्ञेय ने बिम्ब-विधान और प्रतीक-विधान पर अत्यधिक बल दिया । साथ ही, इस बात का ध्यान भी रखा कि नयी कविता का बिम्ब-विधान चित्रात्मक और ताज़गी भरा हो किन्तु परम्परा से विछिन्न न हो । एक अतिप्रचलित किन्तु सटीक उदाहरण के रूप में अज्ञेय की 'कलगी बाजरे की' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

अगर मैं तुमको ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार – न्हायी कुँई ।
टटकी कली चम्पे की, वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है

बल्कि केवल यही ये उपमान मैले हो गये हैं ।
देवता इन प्रतीकों के कर गए हैं कूच ।

कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है ।[27]

प्रेम के प्रति आस्था और परम्परा से कटे बिना नयी भाषा और शैली में अभिव्यक्ति को प्रधानता देना नये कवियों को अधिक उचित लगा।

मुक्तिबोध ने नयी कविता की काव्य-भाषा को फंतासी और बिम्ब-विधान से सँवारा। अपनी अभिव्यक्ति के लिए नये कवियों को प्रकृति, पुराण, विज्ञान जहाँ-जहाँ से कच्ची सामग्री मिली, नये कवियों ने स्वीकारी और उसमें भरपूर चित्रात्मकता और अपना 'टच' भरकर स्वयं को अभिव्यक्त किया–

ताँबे का आसमान
टीन के सितारे
गैसीला अन्धकार
उड़ते हैं कसकुट के पंछी बेचारे।
लोहे की धरती पर
चाँदी की धारा
पीतल का सूरज है
राँगे का भोला-सा चाँद बड़ा प्यारा।
गन्धक का झौंका है
आदमी धुएँ के हैं (छाया ने रोका है।)
हीरे की चाहत ने घड़ी घड़ी टोका है,
शीशे ने समझा कि रेडियम का मौका है
धूल 'अनकल्चर्ड' है, इसीलिए बकती है –
ज़िंदगी नहीं है यह, धोखा है, धोखा है।[28]

आधुनिक समय की तमाम चिन्ताओं को काव्य-भाषा की ताकत के माध्यम से व्यक्त करने में नये कवियों को महारथ हासिल थी।

व्यंग्य और नयी कविता एक अद्भुत समीकरण है। नये कवियों ने जिस प्रकार व्यंग्य जैसे शस्त्र का अचूक प्रयोग किया, अन्यत्र दुर्लभ है। नयी कविता में यह अभिव्यक्ति का अनिवार्य साधन बन गया। नयी कविता के लगभग सभी कवियों ने प्रखर व्यंग्य में अपनी बात कही। व्यंग्य को नये आयाम प्रदान करनेवाले अज्ञेय की कविता देखिए –

साँप!
तुम सभ्य तो हुए नहीं
नगर में बसना
भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ – (उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डँसना –
विष कहाँ पाया ?[29]

राजनीति, धर्म, दर्शन, आधुनिक जीवन की विडम्बनाएँ, मानवी जीवन की शोचनीय परिणति को व्यंग्य द्वारा बड़ी ही सटीक पद्धत्ति से अभिव्यक्त किया गया। इसमें कई बार हताशा-निराशा उभर आयी। इन सभी ने मिलकर नयी कविता की भाषा को विशिष्ट नयापन प्रदान किया –

श्रवण कीर्तन जप-तप नाना
से रहस्य हमने यह जाना
शरणागत को मुक्ति मिलेगी
विद्रोही को नहीं ठिकाना
बड़े पुराने पंडे हैं हम
गंग-जमुन के पुण्य तीर के।
हम फकीर हैं इस लकीर के।[30]

अज्ञेय का ठण्डा-तीखा व्यंग्य और अजित कुमार का मृदुल व्यंग्य दोनों ही शैलियों को नयी कविता की काव्य-भाषा ने बखूबी समेटा।

नयी कविता ने यौन-प्रतीकों का अतिरिक्त प्रयोग किया। 'नदी की जाँघ पर सो रहे अन्धकार' का चित्रण काव्य-भाषा की नवीनता का परिचय तो अवश्य देता है, भले ही संवेदना व वस्तु के स्तर पर इस प्रकार का कथन ग्राह्य हो या न हो। यौन भावना ने आधुनिक जीवन की विडम्बनाओं में आश्रय पाकर विचित्र अभिव्यक्तियों को जन्म दिया। इसके परिणामस्वरूप नयी कविता में कभी भदेसपन, कभी ऊब, कभी निराशा तो कभी विकृति उभर आयी।

मेरे मन की अँधियारी कोठरी में
अतृप्त आकांक्षा की वेश्या
बुरी तरह खाँस रही है[31]

जैसी कविता हो या अनास्था-प्रदर्शक निम्नलिखित कविता हो –

लगता है, कहीं कोई ठौर नहीं,
आज का मनुष्य
गर्भ से धक्के देकर निकाला हुआ
ऋषि-पुत्र[32]

ऐसी अभिव्यक्तियाँ नयी कविता में विरूपता का समावेश कर देती हैं। इनकी भाषा आदि में नयापन अवश्य है किन्तु यह मन-मस्तिष्क में स्वस्थ-बोध नहीं जगाता। ठीक इसी प्रकार शिल्प-तन्त्र के अतिरेक का सर्वोच्च दुष्परिणाम भी नयी कविता में ही देखा जा सकता है –

प्रेम की ट्रैजेडी
→ ▲ →
(हाय !)
← ▲ ✚
(नहीं चैन,
जगते ही कट गई रैन ...)
→ ←
(प्रेम यानी इश्क यानी लव !)
‘ ! ‘
‘ !! ‘
▲ ✚ ▲
- - - - - - - -
?
(अरमानों कें गाल पर चाँटा
झरबेरी का काँटा)
← ? →
(मुहब्बत में घाटा !!)[33]

यह सच है कि ऐसी कविताओं को सिद्धान्त-कथन का आधार नहीं बनाना चाहिए। बावजूद इसके, चमत्कारप्रधानता व अनोखी काव्य-भाषा के प्रति कवियों में निहित आसक्ति का परिचय ऐसी कविताओं से मिल जाता है। किन्तु ऐसी कविताओं के सन्दर्भ में जगदीश गुप्त कहते हैं कि – “हमें अशक्त की चिन्ता छोड़ शक्तिसम्पन्न कविता पर ही विचार करना चाहिए।”[34] सशक्त कविताओं पर बात करने की ठान लें तो ‘नयी कविता का मैनीफेस्टो’ कहलाई जाने वाली, सहज भाषा में समष्टिवाद की व्यंजना करती अज्ञेय की कविता का उल्लेख अनिवार्य है –

यह दीप अकेला स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर
इसको भी पंक्ति को दे दो।[35]

नयी कविता की विशेषताओं में, जैसा कि संकेत दिया जा चुका है, अर्थ की लय पर विशेष बल दिया है। छन्द की लय की तुलना में काव्य-भाषा के अन्तर्गत अर्थ की लय महत्त्वपूर्ण मानने के कारण काव्य-भाषा गद्य के निकट आ गई। कई बार इसकी तुलना बी.बी.सी. पर प्रसारित वार्ता के साथ की गई। किन्तु नयी कविता अपनी अर्थगत लय, भाषा में संगीतात्मकता सम्बन्धी अपने विचार और कुल काव्य-तत्त्व के सम्बन्ध में अपने मतों पर अडिग रही। अज्ञेय ने स्पष्ट किया – “साधारण का साधारण वर्णन कविता नहीं है। कविता तभी होती है जब साधारण पहले निजी होता है और फिर व्यक्ति से छनकर साधारण होता है। जो इसको भूलते हैं उनके पद्य परम सदुद्देश्यपूर्ण होकर भी कविता नहीं बन सकते और चाहे जो कुछ हो जावे।”[36] नयी कविता जैसा कि बार-बार कहा

जा चुका है, अपने रूप-विधान को लेकर अत्यधिक सजग कविता है । नयी कविता ने अपने वर्ण्य-विषयों को समसामयिक जीवन से उठाया । परिणामतः भाषा भी नयी और जीवन्त हो उठी – 'सब कुछ नया' अपनाते हुए नयी कविता सभी अर्थों में नयी हो उठी – "नयी कविता का रूप-विधान भी नयी मनःस्थिति के अनुरूप नया संतुलन खोजता विकसित हो रहा है । जिस प्रकार आज के जीवन में अनावश्यक बन्धनों और विधि-निषेधों के प्रति अरुचि दिखाई देती है उसी प्रकार छन्द-विधान में भी स्वतन्त्रता का आग्रह अधिकाधिक विकसित हो रहा है । कथ्य की शक्तिमत्ता और महत्ता के साथ कथन की यथासम्भव अकृत्रिमता इस युग की कविता की एक विशेषता कही जा सकती है ।"[37] इस सत्य को नकारा नहीं जा सकता कि नयी कविता की भाषा कई बार विचित्र-अतिविचित्र बन उभरी है, शिल्प के अतिरेक के कारण बेतुकी बनी है । किन्तु यह भी सत्य है कि नयी काव्य-भाषा में तुलनात्मक दृष्टि से अधिक संतुलन और अधिक सुलझापन है । नयी कविता की भाषा में जो सर्वस्तरीय नयापन पाया जाता है, उसका एक बहुत बड़ा कारण यह है कि नयी कविता ने आधुनिक बोध अपनाया । नयी कविता के समस्त साधनों में नयापन भरने का श्रेय नयी कविता के आधुनिक बोध को जाता है ।

4.1.07. लघुमानव की प्रतिष्ठा

संवेदना-पक्ष और शिल्प-पक्ष दोनों ही दृष्टियों से नयी कविता हिन्दी की समकालीन कविता में अपना महत्त्व रखती है । नयी कविता के अन्तर्गत 'नये भाव बोधों की अभिव्यक्ति के साथ ही नये मूल्यों और नये शिल्प विधानों का अन्वेषण' किया गया । भले ही इस काव्य-प्रवृत्ति के मूल में प्रगतिवाद और प्रयोगवाद की प्रेरणा विद्यमान हो, इस कविता ने अपना विशिष्ट स्थान निर्माण किया और कुछ ऐसे सिद्धान्त सारस्वत जगत् को दिए जिनका महत्त्व निर्विवाद है । जीवन के प्रति आस्थावान् यह कविता क्षणवाद में विश्वास करती है । जीवन की ओर देखने की दृष्टि में क्वचित निराशा और अनास्था भले ही उभरे लेकिन मूलतः नयी कविता की स्थायी दृष्टि आस्थावादी, सकारात्मक और स्वीकारवादी रही है । जीवन को भरपूर रूप से जीने की आकांक्षा के कारण ही नयी कविता क्षणवादी दृष्टिकोण अपनाती है । क्षणों की अनुभूतियाँ समग्र जीवन की अनुभूतियों को भोगने की दृष्टि से पूरक सिद्ध हुआ करती हैं । क्षण-क्षण को महत्त्वपूर्ण और सत्य मान लेने से आपाततः समग्र जीवन को – उसकी प्रत्येक अनुभूति को, सुख-दुःख को सत्य मानकर सघन रूप से जीने की प्रवृत्ति बलवती होती है ।

क्षणवादी प्रवृत्ति में जीवन के प्रति जो स्वागतार्ह दृष्टिकोण है, उसी की अगली कड़ी के रूप में नयी कविता के अन्तर्गत लघुमानव की सत्ता-महत्ता को स्वीकारा गया । लघुमानव को प्रतिष्ठित करने के पीछे भी जीवन को पूर्णता प्रदान करने की भावना ही कार्यरत रही । नयी कविता के उन्नायकों ने लघुमानव की संकल्पना को यथाविस्तार स्पष्ट किया है । लघुमानव से उनका तात्पर्य है – "वह सामान्य मनुष्य जो अपनी सारी संवेदना, भूख-प्यास और मानसिक आँच को लिये-दिये उपेक्षित था । इस लघुमानव का अर्थ यदि मनुष्य की लघुता को खोज-खोजकर सत्य-रूप में उसकी प्रतिष्ठा करने से है, तो निश्चय ही यह अतिवादी, प्रतिक्रियावादी और असत्य जीवन-दृष्टि है । स्वस्थ नयी कविता ने कभी भी इस अर्थ को स्वीकार नहीं किया ।"[38] नयी कविता में लघुमानव की संकल्पना को बहुत ही अलग रूप में ग्रहण किया गया । इस संकल्पना के प्रतिपादन में डॉ० लक्ष्मीकान्त वर्मा और विजयदेव नारायण साही का योगदान निश्चित रूप से उल्लेखनीय है । लक्ष्मीकान्त वर्मा ने 'नयी कविता के

प्रतिमान' में लघुमानव का सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसे उन्होंने 1967 में 'कल्पना' की लेखमाला में भी दोहराया। लक्ष्मीकान्त वर्मा नयी कविता के ऐसे हस्ताक्षर हैं जो यथार्थवाद और प्रगतिवाद दोनों की निन्दा करते हैं। उन्होंने नयी कविता को लघुमानव के लघु परिवेश की अभिव्यक्ति बताया। उनका लघुमानव व्यक्ति-मानव है। उनका कहना था कि व्यक्ति और समाज परस्परविरोधी हैं। वे स्वयं को व्यापक मानवता के प्रति आस्थावान् बताकर बार-बार मानवतावाद की चर्चा करते हैं। लघुमानव का सिद्धान्त इसी मानववाद पर आधारित है। लक्ष्मीकान्त वर्मा लघुमानव के रूप से एक ऐसे मनुष्य की परिकल्पना करते हैं जो सारी व्यवस्था के सामने छोटा होते हुए भी अपनी स्वतन्त्रता और विवेक का स्वयं नियन्ता है। ऐसे मनुष्य की कुछ विशेषताओं का संकेत लक्ष्मीकान्त वर्मा इस प्रकार देते हैं –

1. लघुमानव के लघु परिवेश की बात इन कुण्ठाओं से पृथक् है और मानवानुभूति और मानव सार्थकता के महत्त्व से सम्बद्ध है।
2. लघुमानव का परिवेश अनुभूति की गहराई और विवेक की मर्यादा से प्रशासित होता है।
3. भविष्य के प्रति वह अपनी आस्था तो रखता ही है किन्तु लघु परिवेश की सार्थकता के साथ।
4. उसकी अभिव्यक्ति में यह विश्वास भी निहित है कि उसका भावबोध किसी पूर्व निश्चित नियतिवाद या चमत्कार से प्रभावित नहीं।
5. स्वतन्त्रता की कोई और परिभाषा बिना इस मानवीय स्तर के अर्थात् लघु मानव और लघु परिवेश के पूरी नहीं होती।
6. वह जीवन क्रियाशील के (या क्रियाशील जीवन के) उस रूप को चाहता है, जिसमें समग्रता हो, संकीर्णता न हो।
7. जीवन की समग्रता का व्यावहारिक रूप एक-दूसरे को सहन करने में है न कि उस अव्यावहारिक आधिपत्य में, जिसके विरोधों का नाश करके केवल एक सतारूढ़ व्यक्ति के प्रति समस्त चेतना अर्पित की जाए।"[39] लघुमानव सम्बन्धी नयी कविता में चल रहे चिन्तन को लेकर गजानन माधव मुक्तिबोध ने कहा कि लघुमानव व्यक्तिवाद का सगा भाई है क्योंकि यह समाज और सामाजिक चेतना से आतंकित है और व्यक्ति-सत्ता में ही अपनी अद्वितीयता को खोजता और पाता है। वे लघुमानव की संकल्पना को ही शीतयुद्ध की साम्राज्यवादी विचारधारा की व्युत्पति मानते हैं। लघुमानव के सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक परिवर्तन के सारे प्रयत्न व्यर्थ हैं, मानव-मुक्ति के सारे लक्ष्य निरर्थक हैं। मुक्तिबोध को लगता है कि दुःख की स्थिति को प्राकृतिक देन की भाँति स्थायी मान लेने के बाद उसे दूर करने के सारे प्रयास स्वाभाविक रूप से व्यर्थ ही लगेंगे। उनके मतानुसार लघुमानववाद को स्वीकारने का अर्थ है पूँजीवादी समाज व्यवस्था को ध्वस्त कर एक शोषणमुक्त समाज-व्यवस्था के निर्माण की आकांक्षा और प्रयास से मुँह फेरा जाए। इसी कारण मुक्तिबोध ने लिखा है – "यह मुख्यतः मानव-मुक्तिवादी विचारधाराओं के विरुद्ध है, इसकी तीखी नोक खासकर साम्यवादी धारणाओं के विरुद्ध है, क्योंकि साम्यवादी धारणाओं में यह बताया गया है कि मनुष्य चाहे तो अपना भाग्य परिवर्तन कर सकता है।"[40]

लघुमानव की संकल्पना को मुक्तिबोध ने जिस रूप में ग्रहण किया, उस रूप में उन्हें यह कदापि स्वीकारणीय नहीं लगा। उनका मानना था कि दुःख के स्थायित्व, लघुत्व की मूल स्थिति तथा उच्चतर गुणों के माया स्वप्नत्व का पाठ पढ़ाकर मनुष्य को मानव सत्ता के उच्चतर रूपान्तर के कार्यों और कार्यक्रम से अलग करना ही लघुमानव के सिद्धान्त का मुख्य उद्देश्य है। अतः जहाँ लक्ष्मीकान्त वर्मा और विजयदेव नारायण साही जैसे लेखक लघुमानव की संकल्पना को आगे बढ़ाते हैं, वहीं मुक्तिबोध इसे नकारवादी, निराशावादी और प्रतिक्रियावादी मानते हैं।

जैसे आरम्भ में संकेत दिए गए हैं, डॉ॰ नगेन्द्र जैसे लोग लघुमानव का अर्थ मनुष्य की लघुता को खोज-खोजकर, सत्य रूप में उसकी प्रतिष्ठा करने जैसी स्थिति को अत्यन्त हीन बताते हैं। स्वीकृत-अस्वीकृत की सीमारेखा पर आलोचकों में लघुमानव को लेकर चाहे जितनी बहस छिड़ती हो, यह सत्य है कि नयी कविता ने लघुमानव के अस्तित्व को न केवल स्वीकारा बल्कि प्रतिष्ठित भी किया। इस सन्दर्भ में, रघुवीर सहाय जैसे कवियों ने मानव की लघुता और गरिमा का एकसाथ गौरव करते हुए लिखा है – "इस गरम सुबह, तपती दुपहर में निकल पड़े, श्रमजीवी धरती के प्यारे।"

नये कवियों ने लघुमानव को गरिमापूर्ण पद्धत्ति से प्रतिष्ठित कर उसे समसामयिक सन्दर्भों से संलग्न किया। लक्ष्मीकान्त वर्मा कहते हैं – "यह लघु मानव आडम्बरयुक्त विश्वबन्धुत्व से कहीं अधिक समसामयिक दायित्व को महत्त्वपूर्ण समझता है ... लघुता का परिवेश और उसका सन्दर्भ जाग्रत् क्षण में पूर्ण है जो उसे संवेदना देता है और उस संवेदना के साथ-साथ उसे सन्दर्भ के प्रति गतिशील बनाता है और उसकी अनुभूति को प्रभावित करके जीवन की सक्रिय प्रस्तुति करता है।"[41] विजयदेव नारायण साही ने भी 'लघुमानव के बहाने हिन्दी कविता पर बातचीत' जैसा लेख लिखकर वर्माजी के मत को पुष्टि प्रदान की। यह लेख अत्यधिक विवादास्पद रहा। कुछ मान्यवर लघुमानव को नियतिशरण तो कुछ उसे सामयिक सन्दर्भों में जाग्रत् बताकर अपने-अपने विचारों का प्रतिपादन करते रहे। 'लघुमानव' शब्द को लेकर ऐसे विवाद समकालीन कविता में बार-बार उठे। डॉ॰ रमाशंकर तिवारी ने अपनी पुस्तक 'प्रयोगवादी काव्यधारा' में लघु को महत् का विरोध सिद्ध कर अपनी आपत्ति जतायी। दूसरी ओर जगदीश गुप्त भी इस खतरे की ओर अंगुलिनिर्देश करते हैं कि यदि उत्साहवश लघुमानव की स्थापना में लगे रहे तो यह भ्रम पैदा हो जाएगा कि हम मानव व्यक्तित्व को अनिवार्यतः लघु मानते हैं। पश्चात् वे लघुमानव के सन्दर्भ में अपनी संकल्पना प्रस्तुत करते हुए कहते हैं – "नया मनुष्य रूढ़िग्रस्त चेतना से मुक्त, मानव-मूल्यों के रूप में स्वातन्त्र्य के प्रति सजग, अपने भीतर, अनारोपित सामाजिक दायित्व का स्वयं अनुभव करने वाला, समाज को समस्त मानवता के हित में परिवर्तित करके नया रूप देने के लिए कृत-संकल्प, कुटिल स्वार्थ भावना से विरत, मानव मात्र के प्रति स्वाभाविक सहअनुभूति से युक्त, संकीर्णताओं और कृत्रिम विभाजनों के प्रति क्षोभ का अनुभव करनेवाला, हर मनुष्य को जन्मतः समान मानने वाला, मानव व्यक्तित्व को उपेक्षित, निरर्थक और नगण्य सिद्ध करने वाली किसी भी दैविक शक्ति या राजनैतिक सत्ता के आगे अनवनत, मनुष्य की अन्तरंग-सद्वृत्ति के प्रति आस्थावान्, प्रत्येक व्यक्ति के स्वाभिमान के प्रति सजग, दृढ़ एवं संगठित अन्तःकरण संयुक्त, सक्रिय किन्तु

अपीड़क, सत्यनिष्ठ तथा विवेकसम्पन्न होगा ।"[42] इस समय लिखी गईं कई रचनाओं में ऐसा ही मानव-रूप उभरकर आया। उदाहरणस्वरूप कुछ कवितांश प्रस्तुत हैं –

किसी भी साम्राज्य से बड़ा है
एक बन्धु
एक अनाम मनुष्य !!
मुझे मनुष्य में विराजे देवता में
सदा विश्वास रहा है ।[43]

या जैसा कि धर्मवीर भारती अपने 'अन्धा युग' में स्पष्ट करते हैं –

जब कोई भी मनुष्य
अनासक्त होकर चुनौती देता है इतिहास को
उस दिन नक्षत्रों की दिशा बदल जाती है।
नियति नहीं है पूर्वनिर्धारित –
उसको हर क्षण मानव-निर्णय बनाता मिटाता है।[44]

इन सबसे बढ़कर कवियों द्वारा मानव के प्रति व्यक्त हुआ यह भाव असाधारण महत्त्वपूर्ण है –

कितने ही लघु हों
इससे क्या ?
सार्थक हैं।
स्वत्व है हमारा
कर्म
हमारी जलती हुई आँखों में बँधी हुई मुट्ठी में
भिंचे हुए ओठों
इन यात्रित पैरों में संकल्पित प्रज्ञा है।
वर्चस्वी निष्ठा है।
उत्सर्गित इच्छा है।
हम केवल चलते हैं
अपने में अपने से बाहर
धूप और अन्धकार चीरे
हम चलते हैं[45]

लघुमानव अपने अस्तित्व का वाहक है किन्तु समष्टिवाद का विरोधक नहीं। उसका संघर्ष सामाजिकता से नहीं, समाज में व्याप्त मूल्यहीनता से है। वह इस बात में विश्वास करता है कि इकाई की अस्मिता सामाजिक की अस्मिता से कम महत्त्वपूर्ण नहीं। आत्महीनता को अनुभव किये बिना, सम्पूर्ण विवेक के साथ संकटों से जूझने के लिए तत्पर लघुमानव को नयी कविता ने अत्यधिक गर्व के साथ प्रतिष्ठापित किया।

4.1.08. पाठ-सार

आधुनिकता के दस्तक के साथ ही हिन्दी कविता ने अपने धारा प्रवाह जीवन में सर्वथा नवीन बदलावों को अनुभव करना आरम्भ किया । इनमें प्रयोगवाद और नयी कविता अमिट छाप छोड़ने वाली प्रवृत्तियाँ हैं । वस्तुतः इनके निर्माण के लिए मार्क्सवादी विचारधारा से प्रभावित प्रगतिवाद ने सक्रिय सहयोग दिया था । एक तरह से प्रयोगवाद के आगमन के कई कारक तत्त्वों में से एक प्रगतिवादी विचारधारा की अतिसामाजिकता भी है । अतः आधुनिक कविता को सही रूप में समझने के लिए प्रगतिवाद और प्रयोगवाद का तुलनात्मक अध्ययन आवश्यक है ।

दो-दो विश्वयुद्ध, वैज्ञानिक उन्नति, आधुनिकता के कारण मनुष्य में जगी हताशा, निराशा और व्यक्तिवादिता को प्रयोगवाद ने भाव, भाषा आदि प्रत्येक स्तर पर अभिव्यक्ति मिली । बौद्धिकता, व्यक्तिगत कुण्ठाएँ, बेचैनी, उलझी संवेदनाएँ, यौन वर्जनाएँ, अनगढ़ भाषा के साथ प्रयोग करती हुई प्रयोगवादी कविता आगे बढ़ने लगी । इस क्रम में नकेनवादी स्वयं को एकमात्र प्रयोगवादी के रूप में स्थापित करने में जुटे हुए थे । शीघ्र ही, प्रयोग की बेतुकी अतिशयता प्रयोगधर्मिता के प्रति वितृष्णा का भाव जगाने लगी । जिस प्रकार प्रगतिवाद की अतिसामाजिकता उसके लिए विघातक सिद्ध हुई, उसी प्रकार प्रयोगवाद की अतिव्यक्तिवादिता भी प्रयोगवाद की समाप्ति का कारण बनी । व्यष्टिवाद से समष्टिवाद की ओर जाते हुए, अकेले दीप को पंक्ति को समर्पित करते हुए प्रयोगवादी कविता नयी कविता में रूपान्तरित हो गई । लघुमानव को महत्त्व देती हुई नवीन संवेदनाएँ, आधुनिक भावबोध, भाषाई स्तर पर समाविष्ट नवीनता ने नयी कविता को शीघ्र ही स्थापित कर दिया । प्रयोगवाद से लेकर नयी कविता तक पहुँचते-पहुँचते हिन्दी कविता में कई महत्त्वपूर्ण विशेषताएँ जुड़ गईं जिनका अध्ययन वर्तमान कविता की पृष्ठभूमि समझने के लिए अत्यावश्यक है ।

4.1.09. बोध-प्रश्न

बहुविकल्पीय प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों में दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कीजिए –

1. 'इंटीमेसी' कहानी के लेखक कौन हैं ?
   (क) सार्त्र
   (ख) मार्क्स
   (ग) एजरा पाउंड इलियट
   (घ) इलियट

2. 'असाध्य वीणा' के रचनाकार का नाम बताइए ।
   (क) मुक्तिबोध
   (ख) धूमिल

(ग) अज्ञेय
(घ) निराला

3. 'प्रतीकवाद' के प्रणेता के रूप में किस विचारक का नाम लिया जाता है ?
(क) डॉ० रणजीत
(ख) बोदलेयर
(ग) एलेन गिन्सबर्ग
(घ) अज्ञेय

4. 'नकेनवाद' का अन्य नाम है –
(क) प्रगतिवाद
(ख) प्रयोगवाद
(ग) छायावाद
(घ) प्रपद्यवाद

5. 'तारसप्तक' का प्रकाशन कब हुआ ?
(क) 1935
(ख) 1938
(ग) 1943
(घ) 1945

6. 'दिल तो बेकार हुआ जो कुछ है सो ब्रेन, गाय हुई बकेन है, कविता हुई नकेन' – ये पंक्तियाँ किस रचनाकार की हैं ?
(क) नलिन विलोचन शर्मा
(ख) मुक्तिबोध
(ग) नरेश
(घ) केसरी कुमार

7. प्रयोगवादी काव्य के निर्माण और प्रचार में किस पत्रिका का महत्त्व अनन्यसाधारण है ?
(क) निकष
(ख) नये पत्ते
(ग) प्रतीक
(घ) हिन्दी नवलेखन

8. पण्डित रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा लिखित रचना का नाम बताइए ।
(क) नयी कविता का आत्मसंघर्ष
(ख) हिन्दी नवलेखन

(ग) नयी कविता
(घ) नयी कविता : सीमाएँ और संभावनाएँ

9. धर्मवीर भारती और लक्ष्मीकान्त वर्मा के सम्पादन-सहयोग से किस पत्रिका का आरम्भ किया गया ?
(क) निकष
(ख) नये पत्ते
(ग) प्रतीक
(घ) नयी कविता

10. 'कलगी बाजरे की' कविता के रचनाकार का नाम बताइए।
(क) मदन वात्स्यायन
(ख) मुक्तिबोध
(ग) अज्ञेय
(घ) शमशेर

लघुत्तरीय प्रश्न

1. प्रयोगवाद की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. नकेनवाद में सम्मिलित कवियों पर चर्चा कीजिए।
3. सन् 1943 में प्रकाशित 'तारसप्तक' में संकलित कवियों पर प्रकाश डालिए।
4. 'प्रयोगवादी कविता का शिल्प पक्ष' विषय पर टिप्पणी लिखिए।
5. 'बिम्ब' से क्या तात्पर्य है ? स्पष्ट कीजिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

1. "प्रगतिवाद मूलतः मार्क्सवादी दर्शन की ठोस ज़मीन पर उभरा वाद था।" समझाइए।
2. नयी कविता की प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।
3. "प्रयोगवाद के मूल में ही नये पथ के अन्वेषण की भावना प्रगाढ़ रूप से कार्यरत थी।" उक्त कथन की समीक्षा कीजिए।
4. 'प्रगतिवाद' एवं 'प्रयोगवाद' में निहित अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
5. 'नयी कविता में लघुमानव की संकल्पना' विषय पर टिप्पणी लिखिए।

4.1.10. व्यवहार

1. प्रयोगवादी कविता का अध्ययन कर भाषा, शिल्प, प्रतीक आदि दृष्टि से नवीन प्रयोग करते हुए काव्य-रचना कीजिए।

2. हिन्दी की प्रमुख प्रगतिवादी कविताओं का संकलन कीजिए।
3. हिन्दी के प्रसिद्ध प्रयोगवादी कवियों की सूची बनाइए।
4. काव्य-प्रवृत्तियों के आधार पर प्रगतिवादी कविता एवं प्रयोगवादी कविता का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
5. भाषा की दृष्टि से नयी कविता का अध्ययन कर इसकी तुलना पूर्ववर्ती एवं परवर्ती कविताओं की भाषा से कीजिए।
6. अपनी प्रिय आधुनिक हिन्दी कविताओं का संकलन कीजिए।

4.1.11. कठिन शब्दावली

अनर्गल	:	अनियन्त्रित
लब्धप्रतिष्ठ	:	प्रसिद्ध, प्रतिष्ठित

4.1.12. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. मिश्र, डॉ॰ शिवकुमार, प्रगतिवाद, पृ. 17-18
02. शर्मा, बालकृष्ण 'नवीन'
03. शास्त्री, त्रिलोचन, धरती
04. शर्मा, रामविलास, हड्डियों का ताप
05. सिंह, रामधारी 'दिनकर', काव्य की भूमिका, नवीन संस्करण, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
06. अज्ञेय (सं.), तारसप्तक
07. अज्ञेय (सं.), तारसप्तक, सातवाँ संस्करण, पृ. 22
08. अज्ञेय, आत्मनेपद
09. अज्ञेय, आँगन के पार द्वार, कविता – असाध्य वीणा, 1961
10. अज्ञेय, आँगन के पार द्वार, कविता – भीतर जागा दाता, 1961
11. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ. 45
12. अज्ञेय, पहले मैं सन्नाटा बुनता हूँ – 29, 1973
13. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ. 46
14. क्योंकि मैं उसे जानता हूँ – अहं राष्ट्री संगमनी जनानाम
15. माचवे, प्रभाकर
16. अग्रवाल, भारतभूषण
17. अज्ञेय (सं.), तारसप्तक, प्रथम, पृ. 6
18. शर्मा, नलिन विलोचन, द्विपदी
19. नकेन (सं.), 'नकेन के प्रपद्य' में केसरी कुमार का वक्तव्य, पृ. 116

20. वही
21. नकेन (सं.), 'नकेन', पृ. 160
22. वही
23. डॉ॰ रघुवंश, साहित्य का नया परिप्रेक्ष्य, पृ. 226
24. गुप्त, जगदीश, नयी कविता : स्वरूप एवं समस्याएँ, पृ. 177
25. शर्मा, विष्णुचन्द्र (सं.), 'कवि', जनवरी 1957, पृ. 65
26. नयी कविता, अंक-3, पृ. 93, मदन वात्स्यायन की कविता
27. अज्ञेय, 'हरी घास पर क्षण भर' में संकलित 'कलगी बाजरे की' कविता
28. सिंह, राजेन्द्र प्रसाद, निकष, 3-4, पृ. 90
29. अज्ञेय, 'साँप के प्रति', कविता
30. कुमार, अजित, 'अंकित होने दो', पृ. 134
31. गुप्त, जगदीश
32. किशोर, राजेन्द्र, 'स्थितियाँ : अनुभव तथा अन्य कविताएँ', पृ. 11
33. खरे, डॉ॰ गणेश, आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियाँ : एक पुनर्मूल्यांकन में सन्दर्भित सैयद शफीउद्दीन की कविता, पृ. 161
34. गुप्त, डॉ॰ जगदीश, 'नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ', पृ. 185
35. अज्ञेय, 'यह दीप अकेला'
36. अज्ञेय, आत्मनेपद, पृ. 42
37. गुप्त, डॉ॰ जगदीश, नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, पृ. 183
38. डॉ॰ नगेन्द्र, 'हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास', पृ. 629
39. वर्मा लक्ष्मीकान्त, नये प्रतिमान पुराने निकष, पृ. 94
40. मुक्तिबोध, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र, पृ. 26
41. वर्मा लक्ष्मीकान्त, नये कविता के प्रतिमान, पृ. 163
42. गुप्त, डॉ॰ जगदीश, नयी कविता : स्वरूप एवं समस्याएँ, पृ. 29
43. मेहता, नरेश, महाप्रस्थान
44. भारती, धर्मवीर, अन्धा युग, उद्धृत पंक्तियाँ
45. मेहता, नरेश, संशय की एक रात

4.1.13. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. गुप्त, जगदीश (सं.), साही विजयदेव नारायण, नयी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. खरे, डॉ॰ गणेश, आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियाँ, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्रथम-1976
3. त्रिपाठी, राम मनोहर, हिन्दी कविता संवेदना और दृष्टि, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 1986

4. शुक्ल, ललित, नया काव्य नये मूल्य, स्टेंडर्ड पब्लिशर्स (इंडिया), नयी दिल्ली, 1999
5. राय, डॉ॰ लल्लन, हिन्दी की प्रगतिशील कविता, हरियाणा साहित्य अकादेमी, चंडीगढ़, 1989
6. पाण्डेय, डॉ॰ त्रिलोचन, छायावादोत्तर हिन्दी कविता – प्रमुख प्रवृत्तियाँ, कैलास पुस्तक सदन, ग्वालियर
7. मोहन, नरेन्द्र, विचार कविता की भूमिका, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1973
8. सिंह, डॉ॰ बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, परिवर्धित संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
9. डॉ॰ नगेन्द्र (सं.), हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता

इकाई – 2 : 'असाध्य वीणा' का मूल प्रतिपाद्य, अज्ञेय के काव्य में आधुनिक भावबोध, काव्य-भाषा और काव्य-शिल्प

इकाई की रूपरेखा

4.2.0. उद्देश्य कथन
4.2.1. प्रस्तावना
4.2.2. असाध्य वीणा का मूल प्रतिपाद्य
    4.2.2.1. कला और ध्यान-साधना में अन्तस्सम्बन्ध
    4.2.2.2. अहम् का विलयन
    4.2.2.3. प्रकृति के जीवन-प्रवाह के साथ संलयन
    4.2.2.4. अलौकिक आनन्द की अनुभूति
    4.2.2.5. श्रोता पर प्रभाव
    4.2.2.6. बौद्ध साधना पद्धत्ति
4.2.3. अज्ञेय की कविता में आधुनिक भावबोध
4.2.4. भाषा और शिल्प
4.2.5. पाठ-सार
4.2.6. बोध प्रश्न
4.2.7. कठिन शब्दावली
4.2.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

4.2.0. उद्देश्य कथन

आधुनिककालीन हिन्दी काव्य की पाठ्यचर्या के अन्तर्गत प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता खण्ड के इस दूसरी इकाई में आप अज्ञेय की लम्बी कविता असाध्य वीणा के मूल प्रतिपाद्य, उनकी कविता में आधुनिक भावबोध तथा उनकी कविता की भाषा और शिल्प की विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

i. असाध्य वीणा कविता के सही सन्दर्भ और अर्थ से परिचित हो पाएँगे।
ii. इस कविता की सामान्य विशेषताओं से परिचित हो पाएँगे।
iii. भारत की एक भूली-बिसरी कला परम्परा (कला और ध्यान-साधना के अन्तस्सम्बन्ध) से परिचित हो पाएँगे।
iv. अज्ञेय की कविता में आधुनिक भावबोध को समझ पाएँगे।
v. अज्ञेय की काव्यभाषा और शिल्प की विशेषताएँ जान पाएँगे।

4.2.1. प्रस्तावना

अज्ञेय की लम्बी कविता असाध्य वीणा के बारे में आलोचकों ने तरह-तरह से विचार किया है। कभी उसे जापान की जेन साधना पद्धत्ति से प्रभावित बताया गया है तो कभी उस कविता में मौजूद मिथकीय वातावरण को रेखांकित किया गया है। कभी उसके लम्बे काव्य-विधान की चर्चा हुई है तो कभी उसकी काव्यभाषा के अनूठेपन की। आलोचकों ने इस कविता का पाठ तैयार करते हुए कलाकार के अहं के विलयन और परम्परा से जुड़ने के आग्रह को भी बार-बार रेखांकित किया है। लेकिन इस कविता का एक विशेष सन्दर्भ है जिस पर बात करना अभी बाकी है। यह कविता कला और अध्यात्म के विशेष रिश्ते का उद्‌घाटन करती है। भारत और अन्य पूर्वी देशों में कला का उपयोग ध्यान और साधना के लिए भी किया जाता था लेकिन आधुनिकता के आगमन के साथ ही इस बात को भुला दिया गया। इस इकाई में आप जान पाएँगे कि असाध्य वीणा के माध्यम से अज्ञेय इस क्षीण होती कला परम्परा को आधुनिक पाठक के सामने लाते हैं।

4.2.2. असाध्य वीणा का मूल प्रतिपाद्य

4.2.2.1. कला और ध्यान-साधना में अन्तस्सम्बन्ध

कला और ध्यान-साधना में गहरा सम्बन्ध होता है। कला को आध्यात्मिक साधना के रूप में बरतने की भारत में पुरानी परम्परा रही है। कबीर और सूफी सन्तों की कविताओं में इस बात के अनेक प्रमाण भरे पड़े हैं। ताजमहल और अजंता-एल्लोरा की गुफाएँ और खजुराहो के मन्दिर भी आज की तरह पर्यटन के स्थल मात्र नहीं थे बल्कि वे ध्यान-साधना के विशिष्ट केन्द्र थे और उनका वास्तु-विन्यास भी इसी बात को ध्यान में रखकर डिजाइन किया गया था। आधुनिकता के आगमन से इहलौकिकता और भौतिकता का जोर बढ़ा और कला और अध्यात्म के आपसी सम्बन्ध की बात पृष्ठभूमि में चली गई। अज्ञेय इस भूली-बिसरी काव्य-परम्परा को पुनः कविता के केन्द्र में लेकर आते हैं। और इस तरह भारतीय काव्य-परम्परा का पुनराविष्कार करते हैं। 'असाध्य वीणा' कविता की शुरुआत में ही अज्ञेय कला और अध्यात्म के इस आपसी सम्बन्ध का संकेत कर देते हैं। इस कविता में प्रियंवद केशकम्बली कहता है –

राजन ! पर मैं तो
कलावंत हूँ नहीं, शिष्य, साधक हूँ –
जीवन के अनकहे सत्य का साक्षी ।
वज्रकीर्ति !
प्राचीन किरीटी – तरु !
अभिमंत्रित वीणा !
ध्यान मात्र इनका तो गद्‌गद् विह्वल कर देने वाला है !

प्रियंवद कलाकार नहीं है। वह तो साधक है। इसीलिए वह वीणा को बजाने का अहंकार नहीं करता है। वह वीणा को बजाने की चेष्टा भी नहीं करता है। इसके विपरीत वह वीणा, किरीटी तरु और वीणा बनाने वाले वज्रकीर्ति में ध्यान लगाता है। वह कलाविद होने के अहंकार को नहीं पालता है। वह आत्माभिव्यक्ति के सिद्धान्त को नहीं मानता। वह तो वीणा और किरीटी तरु में ध्यान लगाता है, उसको अपने मैडिटेशन का माध्यम बनाता है।

4.2.2.2. अहम् का विलयन

ध्यान और साधना के लिए अहम् का विलयन आवश्यक है। स्वयं को भूलकर बल्कि सब कुछ को भूलकर कर सिर्फ़ एक जगह अपने समूचे अस्तित्व को एकाग्र कर लेना ही ध्यान की पद्धत्ति होती है। केशकम्बली भी सब कुछ को भूलकर, यहाँ तक की अपने को भी भूलकर, सिर्फ़ वीणा पर ध्यान लगाता है। यानी केशकम्बली को कर्त्ता होने का दर्प नहीं है। वह अपने को सर्जक नहीं समझता। क्योंकि ऐसा समझना ध्यान के मार्ग से भटकना है, अहंकार में जीना है और वीणा का अपमान करना है। यह बात आधुनिक कला की रचना प्रक्रिया से बिल्कुल भिन्न है। आधुनिक कला में कलाकार या कर्त्ता सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होता है। आधुनिक कलाकार आत्माभिव्यक्ति करता है और अपनी अनुभूति के प्रति बेहद ईमानदार होता है। तभी वह सर्जना कर पाता है। और वह अपने को भूलकर रचना नहीं करता है अपितु रचना में आत्माभिव्यक्ति करता है। इसीलिए प्रसव पीड़ा से गुजरता है। और आत्माभिव्यक्ति के उपरान्त कथार्सिस के माध्यम से राहत पता है – जैसा कि अरस्तू ने बताया है। यदि आधुनिक कलाकार की आत्माभिव्यक्ति न हो तो वह पागल और बीमार हो जाए।

4.2.2.3. प्रकृति के जीवन-प्रवाह के साथ संलयन

कला को साधना और ध्यान का माध्यम बनाने वाली इस काव्य-परम्परा की दूसरी विशेषता यह होती है कि वह मानव जीवन और प्रकृति में संगति और साहचर्य देखती है। वह आधुनिक समझ के अनुरूप मानव और प्रकृति के बीच अन्तर अथवा प्रतिद्वन्द्विता नहीं देखती। बल्कि इसके ठीक विपरीत प्रकृति को भी मानवीय अस्तित्व का हिस्सा समझती है। वह जीवन के प्रवाह पर अपना ध्यान लगाती है और इस जीवन-प्रवाह में मानव और मानवेतर प्राणियों के साथ साथ पेड़-पौधों तथा वनस्पतियों को भी शामिल करती है। 'असाध्य वीणा' शीर्षक इस कविता में भी प्रियंवद केशकम्बली वीणा पर ध्यान लगाते हुए जब साधना में उतरता है तो किरीटी तरु के माध्यम से प्रकृति से एक विशेष किस्म का साहचर्य बनाता है। वह अपने को किरीटी तरु से अलग नहीं समझता है बल्कि उससे एक रिश्ता बनाता है। वह पूर्ण समर्पण के साथ अपने को किरीटी तरु के जीवन-प्रवाह और कार्य व्यापार के हाथों सौंप देता है। इसीलिए वह कहता है–

नहीं, नहीं ! वीणा यह मेरी गोद रखी है, रहे
किन्तु मैं ही तो
तेरी गोदी बैठा मोद-भरा बालक हूँ,
ओ तरु-तात ! सँभाल मुझे,
मेरी हर किलक

पुलक में डूब जाय :
मैं सुनूँ,
गुनूँ
विस्मय से भर आँकें
तेरे अनुभव का एक एक अन्तस्वर
तेरे दोलन की लोरी पर झूमूँ मैं तन्मय –
गा तू :
तेरी लय पर मेरी साँसें
भरें, पुरें, रीतें, विश्रांति पायें।

किरीटी तरु और उस पर रहने वाले पशु-पक्षियों के माध्यम से वह जगत् के जीवन-प्रवाह पर अपना ध्यान केन्द्रित करता है। उस जीवन-प्रवाह में वह अपने अस्तित्व का समर्पण कर देता है, उसका हिस्सा वह स्वयं भी बन जाता है। और उसी से आग्रह करता है कि वह गाये यानी कला की रचना करे। ध्यान और साधना वाली उस कला की रचना करे जो अन्तस् के अँधियारे को जगमग कर सके। स्पष्ट है कि कला की रचना केशकम्बली नहीं करेगा बल्कि उसकी रचना उस जीवन-प्रवाह में होगा जिसके ध्यान में केशकम्बली डूबा हुआ है।

यहाँ थोड़ी देर रुक कर अज्ञेय के सूक्ष्म प्रकृति पर्यवेक्षण पर भी विचार कर लेना समीचीन होगा। पत्तियों पर वर्षा बूँदों की पट-पट, घनी रात में महुए का चुपचाप टपकना, खग शावक की चिहुक, वन झरने से निकलता लहरीले जल का कल निदान, पार्वती गाँव के ढोलक की थाप, गड़रियों की अनमनी बाँसुरी, कठफोड़े का ठेका, शरद ऋतु ताल लहरियों की सरसर ध्वनि, कून्जों का क्रेंकार, हंस-बलाका, चीड़ वन के गन्ध, जल प्रपात के प्लुत स्वर, झिल्ली दादुर कोकिल चातक की पुकार आदि के माध्यम से संसृति की साँय-साँय (जगत् का जीवन-प्रवाह) का ऐसा विशद् और सूक्ष्म वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है। आधुनिक हिन्दी कविता में शायद ही कोई ऐसी कविता हो जो प्रकृति के कार्यव्यापार का वर्णन इतने जतन और बारीक ब्यौरों के माध्यम से करती हो। एक साथ इतनी क्रियाओं और उनके लिए उपयुक्त विशेषणों का प्रयोग भी अज्ञेय के असाधारण शब्द सामर्थ्य का संकेत करते हैं। प्रकृति के पर्यवेक्षण की ऐसी पैनी दृष्टि और उसकी ऐसी शानदार अभिव्यक्ति आधुनिक हिन्दी कविता की दुर्लभ उपलब्धि है। बहरहाल !

प्रियम्बद केशकम्बली अपने अहम् को तिरोहित करके अपने अस्तित्व को जीवन-प्रवाह को सौंप देता है। बल्कि यह कहना अधिक सार्थक होगा कि उसे यह बोध हो जाता है कि वह खुद भी उस जीवन-प्रवाह का ही हिस्सा है, उसी अखण्ड आनन्दमयी चेतना का एक अणु है। यह महसूस करना ही ध्यान और साधना (मैडिटेशन) की अवस्था है। केशकम्बली साक्षी भाव से उस आनन्दमयी चेतना के प्रवाह को एक बिन्दु से देखता है जिसका हिस्सा वह स्वयं भी है। ध्यान और साधना की इस अवस्था में ही वह किरीटी तरु या उस आनन्दमय जीवन-प्रवाह से वीणा को बजाने का आग्रह करता है। और वीणा बजने लगती है। उससे अलौकिक स्वर फूटता है। वह खुद नहीं बजाता है। वह तो सिर्फ़ माध्यम के रूप में वीणा को बजाता है लेकिन उसके मन में यह बात बैठी हुई है कि वह वादक नहीं है। वीणा को बजा कोई और रहा है और वह स्वयं उस वीणा वादन का साक्षी मात्र है। वह माध्यम

के रूप में वीणा को बजा रहा है और साक्षी भाव से उसे बजते हुए देख रहा है। यही वह बिन्दु है जिसकी वजह से इस कविता को रहस्यवादी कहा गया है। अध्यात्म और ध्यान आदि को न समझने वाले और सिर्फ़ तर्क तक ही सीमित रहने वाले आधुनिक मानस के लिए ये बातें निश्चित तौर पर पहेली हैं। लेकिन दर्शन और अध्यात्म के अध्येता इस पहेली में नागार्जुन के बौद्ध मत तथा गीता में संकलित कृष्ण के उपदेशों की अन्तर्ध्वनि को सुन सकते हैं जब वे अर्जुन को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि तुम कर्त्ता नहीं हो इसीलिए कर्मफल पर तुम्हारा अधिकार नहीं है तुम तो माध्यम मात्र हो।

4.2.2.4. अलौकिक आनन्द की अनुभूति

वीणा के बजने के साथ ही संगीत की सृष्टि होती है। और यह संगीत अलौकिक आनन्द से भरा हुआ है। इस आनन्द की तुलना ब्रह्मानन्द से की जा सकती है। प्राचीन काव्यशास्त्रियों ने कला को ब्रह्मास्वादसहोदर कहा ही है। अज्ञेय अपनी इस कविता में अलौकिक संगीत के अवतरण का वर्णन करते है–

सहसा वीणा झनझना उठी –
संगीतकार की आँखों में ठंडी पिघली ज्वाला-सी झलक गई –
रोमांच एक बिजली सा सबके तन में दौड़ गया।
अवतरित हुआ संगीत
स्वयंभू
जिसमें सोता है अखण्ड
ब्रह्मा का मौन
अशेष प्रभामय।

ध्यान और साधना वाली कला की यह विशेषता होती है कि वह अनिवार्यतः अलौकिक आनन्दमयी चेतना से युक्त होती है। आधुनिक कला से यह आनन्द नहीं पाया जा सकता है। आधुनिक कला विरेचन (कथार्सिस) करती है अर्थात् हमारे भावों का शुद्धिकरण करती है। कलाकार को भी सर्जना का सुख देती है। उसके सर्जना और भावों को अभिव्यक्त होने का अवसर देकर उसे मानसिक पीड़ा और व्याघात से बचाती है। उसे एक तरह की राहत प्रदान करती है। लेकिन वह अलौकिक नहीं होती है। वह अनिवार्यतः आनन्दमयी भी नहीं होती है। वैसे भी हिन्दी साहित्य के शीर्ष आलोचकों ने आधुनिक कविता के सन्दर्भ में रस सिद्धान्त को ख़ारिज करने में खूब दिलचस्पी ली है।

4.2.2.5. श्रोता पर प्रभाव

ध्यान और साधना वाली आधुनिकता पूर्व में प्रचलित इस कला की एक विशेषता यह होती है कि यह कार्यात्मक (फंक्सनल) होती है अर्थात् आनन्द की सृष्टि के अलावे यह अपने श्रोताओं पर कुछ विशेष प्रभाव भी छोड़ती है। सभी श्रोताओं पर यह प्रभाव अलग-अलग होता है, एक जैसा नहीं। इसका कारण यह है कि सभी श्रोताओं का भाव स्तर और अध्यात्मिक स्तर अलग-अलग होता है। ध्यान रहे कि व्यक्ति के इस भाव स्तर का

कोई सम्बन्ध उसके भौतिक और सामाजिक हैसियत से नहीं होता है। इसका अमीरी-गरीबी, जाति-पाँति या किसी भी तरह की सांसारिक पदवी से कोई लेना-देना नहीं है। इसका सम्बन्ध व्यक्ति की आध्यात्मिक चेतना के परिष्कार और हृदय की पवित्रता से होता है। अतः उनके उदात्तीकरण के लिए आवश्यक है कि उनके आध्यात्मिक स्तर के हिसाब से ही उन पर कार्य किया जाए और उनकी चेतना का परिष्कार किया जाए। चित के उदात्तीकरण से ही उनमें उत्तरदायित्व की भावना और कर्त्तव्यबोध का विकास होता है। वे व्यर्थ के लोभ-लालच और आकांक्षाओं को त्याग कर एकनिष्ठता से स्वार्थरहित कर्म में रत होते हैं। इसीलिए इस कविता में एक ही संगीत को सुनने के उपरान्त सबको अपने भाव स्तर के अनुरूप अलग-अलग बोध होता –

डूब गए सब एक साथ
सब अलग अलग एकाकी पार तिरे ।
राजा ने अलग सुना :
जय देवी यशःकाय
वरमाल लिए
गाती थी मंगल गीत
दुन्दुभी दूर कहीं बजती थी,
राज-मुकुट सहसा हल्का हो आया था, मानो हो फूल सिरिस का
ईर्ष्या महदाकांक्षा द्वेष चाटुता
सभी पुराने लुगड़े से झर गए, निखर आया था जीवन-कांचन
धर्म भाव से जिसे निछावर वह कर देगा।

संगीत तो एक ही उत्पन्न हुआ लेकिन सबने उसे अलग-अलग सुना अर्थात् अलग-अलग उसका अर्थ लगाया। राजा ने अलग सुना, रानी ने अलग सुना और इनके साथ सभी श्रोताओं ने अपने भाव स्तर के अनुरूप अलग-अलग संगीत सुना। सबमें अलग-अलग बोध जगा। सबकी इयत्ता भी अलग-अलग जगी अर्थात् सबको अपनी अस्मिता का अलग-अलग बोध हुआ। इसीलिए सबको निःस्वार्थ कर्त्तव्य का अलग-अलग बोध हुआ। और फिर सबकी इयत्ता संधीत होकर जीवन-प्रवाह में विलीन हो गई। अर्थात् सबको यह बोध भी हुआ कि वे एक जीवन-प्रवाह के हिस्से हैं, ब्रह्म के ही अंश हैं। इसीलिए सबके स्वार्थ, मोह, लोभ, लालच, ईर्ष्या आदि झर गए और उनके हृदय उदात्त हो गए।

4.2.2.6. बौद्ध साधना पद्धत्ति

आधुनिक कला से इस कविता के अलग होने का सबसे बड़ा प्रमाण तब मिलता है जब अन्त में अज्ञेय इस कविता का समाहार करते हैं। कविता को समेटते हुए वे इसके आध्यात्मिक आधार और वीणा की वादन-प्रक्रिया का सारांश प्रस्तुत कर देते हैं। प्रियंवद केशकम्बली राजा के पुरस्कार को अस्वीकार करता है और उसका यह अस्वीकार कोरी विनम्रता नहीं है बल्कि वह जानता है कि ध्यान-साधना में रहते हुए वीणा का वादन उसने नहीं किया है। इसीलिए वह कहता है –

श्रेय नहीं कुछ मेरा :
मैं तो डूब गया था स्वयं शून्य में–
वीणा के माध्यम से अपने को मैंने
सब कुछ को सौंप दिया था –
सुना आपने जो वह मेरा नहीं,
न वीणा का था :
वह तो सब कुछ की तथता थी
महाशून्य
वह महामौन
अविभाज्य, अनाप्त, अद्रवित, अप्रमेय
जो शब्दहीन
सबमें गाता है।

असाध्य वीणा के कुछ टीकाकारों ने इन पंक्तियों को अर्थहीन माना है जबकि इस पाठ के हिसाब से ये पंक्तियाँ इस कविता में वीणावादन की समूची प्रक्रिया का सारांश हैं। इन पंक्तियों के माध्यम से प्रियंवद केशकम्बली अपनी ध्यान और साधना की पद्धत्ति का खुलासा करता है जिसकी वजह से वीणा का बजना सम्भव हुआ है। वह कहता है कि मेरा तो कोई श्रेय है ही नहीं क्योंकि मैं कर्त्ता नहीं हूँ अर्थात् वीणा का वादक नहीं हूँ। कर्त्ता होने के भाव का लोप होना दरअसल अहम् का विलयन है जिसका संकेत शुरू में किया जा चुका है। केशकम्बली यह मानता है कि वह वीणा का वादक नहीं है सिर्फ़ माध्यम है। ऐसा मानते हुए वह अपनी इयत्ता या अस्मिता को जगत् के जीवन-प्रवाह में विलीन कर देता है। इसी बात को कविता में रूपायित करने के लिए अज्ञेय किरीटी तरु के सहारे सृष्टि के समूचे जीवन-प्रवाह का स्मरण केशकम्बली को कराते हैं। दरअसल किरीटी तरु के माध्यम से जीवन-प्रवाह का स्मरण करना ही अपने अहम् का विलयन करना और ध्यान में उतरने का प्रारम्भिक चरण है। तभी तो प्रियंवद कहता है कि "वीणा के माध्यम से अपने को मैंने सब कुछ को सौंप दिया था।" वह राजा से कहता है कि आपने जो अलौकिक संगीत सुना वह मेरा या वीणा का नहीं था वह तो सब कुछ की तथता थी अर्थात् इस सृष्टि के जीवन-प्रवाह का था। तथता (सचनेस) अर्थात् सृष्टि का प्रवाह जैसा है उसे उसी रूप में स्वीकार करना। अर्थात् जीवन-प्रवाह को स्वीकार करना। कर्त्ता होने के भाव से उस जीवन-प्रवाह में हस्तक्षेप करने की कोशिश न करना अपितु साक्षी भाव से उस जीवन-प्रवाह को बस देखना। साक्षी भाव से देखना अर्थात् तटस्थ होकर देखना। उस जीवन-प्रवाह में रहते हुए भी फल के व्यापार में शामिल न होना, बस एक बिन्दु से सब कुछ को घटते हुए देखना। यह साधना और ध्यान की चरमावस्था होती है जब व्यक्ति को लगता है कि वह शरीर से अलग है और वह इस जीवन-प्रवाह का हिस्सा है। उसके भीतर और कुछ नहीं है सिर्फ़ शून्य है। इस जीवन-प्रवाह के अतिरिक्त कहीं कुछ नहीं है। जीवन-प्रवाह ही महत्त्वपूर्ण है जो सतत परिवर्तनशील है। अतः हम जिस क्षण से उस जीवन-प्रवाह को देखते हैं बस वही अस्तित्व में है और सिर्फ़ वही सत्य है और बाकी सिर्फ़ शून्य है। अतः ध्यान में होना हर क्षण वर्तमान में होना है। इसी से उस अलौकिक आनन्द की सृष्टि होती है। कहना न होगा कि साधना और ध्यान की यह पद्धत्ति बौद्ध साधना की पद्धत्ति है। 'असाध्य वीणा' शीर्षक यह पूरी कविता इसी

बौद्ध साधना-पद्धत्ति पर आधारित है। यह महाशून्य और महामौन भी और कुछ नहीं प्रसिद्ध बौद्ध दार्शनिक नागार्जुन का शून्यवाद है। लेकिन आधुनिक युग में इस ध्यान-साधना वाली कला परम्परा को भुला दिया गया है। कला के आध्यात्मिक आयाम से सर्जकों और आलोचकों का ध्यान हट गया। इस युग में ध्यानी और साधक बनने वाले लोग नहीं रहे। इसीलिए अन्तिम पंक्तियों में कवि कहता है कि युग पलट गया यानी आधुनिक समय आ गया। और इस युग की इहलौकिकता के सामने ध्यानियों और साधकों और उनकी साधना का कोई महत्त्व नहीं रहा। इसीलिए अज्ञेय कहते हैं इस बदले हुए युग में कला और ध्यान-साधना के बीच सम्बन्ध की खोज करने वाली उनकी वाणी भी मौन हुई। इस तरह असाध्य वीणा के कवि अज्ञेय हमारे सामने एक ऐसे कवि के रूप में आते हैं जो आधुनिकता को अपनी परम्परा में उपलब्ध करता है। वह इतना सयाना है कि पश्चिम प्रेरित आधुनिकता की आँधी में उड़ने के बजाय देशज आधुनिकता का मार्ग प्रशस्त करता है – वह आधुनिकता जो मानवीय चेतना के विस्तार को सिर्फ़ इहलौकिकता और भौतिकता तक ही सीमित नहीं है।

4.2.3. अज्ञेय की कविता में आधुनिक भावबोध

आधुनिक भावबोध का अर्थ है आधुनिकता से पैदा हुई नयी जीवन स्थिति और नवीन मनःस्थिति। तार्किकता, वैज्ञानिक चेतना, औद्योगीकरण और शहरीकरण आदि से मानव के जीवन में नयी सोच, नये विचार और नयी जीवन-शैली का आगमन हुआ। नयी जीवन स्थितियों ने मनुष्य के भावों की प्रणालियों और उनके आलम्बन को बदल दिया। इन नये विचारों, नयी मनःस्थितियों, जीवन-स्थितियों और भावों की नयी प्रणालियों ने नयी अनुभूति और नये विचार को जन्म दिया। इस नयी अनुभूति और नये विचार को कविता में जगह देना ही काव्य में आधुनिक भावबोध का होना है। अज्ञेय उन विरले कवियों में हैं जिन्होंने हिन्दी कविता में आधुनिक भावबोध को लाने में नेतृत्वकारी भूमिका निभायी। इन नयी जीवन-स्थितियों को जानने-समझने और सम्प्रेषित करने के लिए उन्होंने कविता में प्रयोग करने पर बल दिया। इसके लिए आवश्यक था कि भाव और बुद्धि दोनों को कविता का आधार बनाया जाए। भाव के साथ बुद्धि को जोड़ने से नयी संवेदना का निर्माण हुआ। नयी संवेदना वाली कविता पहले से जाने हुए सत्य को व्यक्त नहीं करती है बल्कि वह कविता की सर्जना करते हुए ही सत्य का अन्वेषण करती है और इस तरह ज्ञान का एक प्रकार हो जाती है। और इसके लिए आवश्यक है कि पुरानी परिपाटी, लीक और रूढ़ियों को तोड़कर नया रास्ता बनाया जाए। उनकी कविता इस ज़रूरत को महसूस करती है –

एक मौन ही है जो अब नयी कहानी कह सकता है
इसी एक घट में नवयुग की गंगा का जल रह सकता है
संसृतियों की, संस्कृतियों की, तोड़ सभ्यता की चट्टानें
नयी व्यंजना का सोता बस इसी राह से बह सकता है

आधुनिकता ने व्यक्ति की संकल्पना को जन्म दिया। अज्ञेय इस व्यक्ति की स्वाधीनता के प्रबल पक्षधर थे। अज्ञेय की कविता में व्यक्ति की संकल्पना और व्यक्ति, समाज तथा परम्परा के आपसी रिश्ते पर खूब विचार हुआ है। वे व्यक्ति के उदय को अपने युग की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण चीज बताते हुए कहते हैं –

यह मधु है : स्वयं काल की मौना का युग-संचय,
यह गोरस : जीवन-कामधेनु का अमृत-पूत-पय,
यह अंकुर : फोड़ धरा को रवि को तकता निर्भय,
यह प्राकृत, स्वयंभू, ब्रह्म, अयुत : इसको भी शक्ति को दे दो।
यह दीप, अकेला, स्नेह भरा
है गर्व भरा मदमाता, पर इसको भी पंक्ति को दे दो।

यहाँ दीप व्यक्ति का प्रतीक है। अज्ञेय का यह व्यक्ति अकेला है, स्नेह और गर्व से भरा है तथा काल की मौना और जीवनरूपी कामधेनु का सबसे कीमती अवदान है। यद्यपि अज्ञेय का यह व्यक्ति स्वयंभू और प्राकृत है तथापि यह समाज का विरोधी नहीं है क्योंकि उसकी सार्थकता इसी बात में है कि वह समाज के लिए समर्पित हो जाये (इसको भी पंक्ति को दे दो)। अज्ञेय यह ज़रूर कहते हैं कि समाज के लिए समर्पित होने के बावजूद व्यक्ति की अपनी अद्वितीयता और अस्मिता का लोप नहीं होता है। अज्ञेय का यह व्यक्ति विद्रोही भी है। वह अपनी इयत्ता और सर्जनशीलता को अर्जित करने के क्रम में बाधा के रूप में आने वाली सामाजिक रूढ़ियों और वर्जनाओं के विरुद्ध शीतल बौद्धिक विद्रोह करता है। ध्यान रहे कि अज्ञेय के व्यक्ति का विद्रोह भावुकता से संचालित नहीं होता है। इसीलिए उनका विद्रोह आवेग से रहित है और उसमें एक तरह का बौद्धिक संयम है। जैसे नैसर्गिक प्रेम के आग्रही अज्ञेय प्रेम में सामाजिक वर्जना के विरोधी हैं। वे मानव प्रेम पर लगे वर्जना का विरोध करते हुए किसी तरह की भावुकता नहीं दिखाते बल्कि बहुत संयम के साथ मानव के पाखण्ड का पर्दाफाश करते हैं –

खग युगल ! करो सम्पन्न प्रणय,
क्षण के जीवन में हो तन्मय।
हो अखिल अवनि ही निभृत निलय।
हाय तुम्हारी नैसर्गिकता ! मानव नियम निराला है –
वह तो अपने ही से अपना प्रणय छिपाने वाला है !

यूँ तो अज्ञेय को रोमांटिक कवि माना जाता रहा है लेकिन उनकी कविता में शहरी जीवन और औद्योगिक सभ्यता की विसंगतियों से मुठभेड़ के भी अनेक चिह्न मौजूद हैं। वे अपनी एक कविता में साँप के माध्यम से शहरी जीवन की विसंगतियों और सभ्य लोगों की ईर्ष्या-द्वेष तथा परनिन्दा करने जैसी दुष्प्रवृतियों पर प्रहार करते हुए कहते हैं –

साँप ! तुम सभ्य तो हुए नहीं–
नगर में बसना भी तुम्हें नहीं आया।
एक बात पूछूँ – (उत्तर दोगे ?)
तब कैसे सीखा डँसना – विष कहाँ पाया ?

अज्ञेय स्वयं भी शहर में रहने वाले इन 'साँपों' के विष के शिकार हुए थे लेकिन यहाँ वे सिर्फ़ अपना ही दुखड़ा रोने नहीं बैठे हैं बल्कि नयी सभ्यता की एक अनिवार्य बुराई की और ध्यान दिला रहे है। इसे ही कहते हैं व्यक्ति सत्य को समष्टि सत्य में बदलना जो अज्ञेय के आधुनिक भाव बोध की एक विशेषता है। व्यक्ति की पीड़ा और अनुभूति के माध्यम से लोक-कल्याण अथवा समष्टि के कल्याण की और बढ़ना अज्ञेय की कविता की खास विशेषता है।

4.2.4. भाषा और शिल्प

नयी जीवन-स्थिति और नये वस्तुसत्य के सम्प्रेषण के लिए कविता को नयी भाषा और नये उपकरणों की आवश्यकता हुई। अज्ञेय इस ज़रूरत को समझते थे। इसीलिए उन्होंने कविता के लिए नयी भाषा, नये बिम्ब-प्रतीक और नये लय-विधान की खोज पर बल दिया। वे अपनी एक कविता में नयी काव्यभाषा की माँग करते हुए कहते हैं –

अगर मैं तुमको ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता,
या शरद के भोर की नीहार – न्हायी कुईं,
टटकी कली चम्पे की, वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है।
बल्कि केवल यही : ये उपमान मैले हो गए हैं।
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच।

कविता की इस शर्त के अनुरूप अज्ञेय अपनी कविता में नये बिम्बों और प्रतीकों की खोज करते हैं। उनकी काव्यभाषा तत्सम और तद्भव के मेल से बनी है। उन्होंने दर्शन, इतिहास, पुरातत्त्व आदि अनुशासनों के अनेक शब्दों को काव्यात्मक संस्कार दिया। उनकी काव्यभाषा में कसाव और परिष्कार है। असाध्य वीणा की काव्यभाषा को भी इसके प्रमाण के रूप में देखा जा सकता है। अज्ञेय की अनेक कविताएँ बोलचाल की लय से निर्मित हुई हैं। उस लय की गति धीमी है जो उनकी कविता के बौद्धिक होने और संयमित होने का प्रमाण है। लय की धीमी गति यह भी प्रमाण देती है कि उनकी कविता में एक तरह का धीरज है और वह कोरी भावुकता से बहुत दूर है। इसी संयमित लय पर अज्ञेय की कविता के शिल्प का स्थापत्य निर्मित हुआ है। अज्ञेय आधुनिक युग में कवि कर्म की कठिनता की ओर इशारा करते हुए पहली बार यह ध्यान दिलाया कि अब कविता श्रव्य से पठ्य हो गई। यानी अब कविता सुनने की नहीं पढ़ने की चीज हो गई थी। और यह पहली बार हुआ कि कवि को अपने पाठक के बारे में कुछ भी पता नहीं था। सम्प्रेषण की इस नयी चुनौती से निपटने के लिए कवियों ने विराम-चिह्नों का प्रयोग शुरू किया। अपनी नयी संवेदना के सम्प्रेषण के लिए नये कवि ने अंकों और आड़े-तिरछी लकीरों तथा अक्षरों के विविध आकारों का भी प्रयोग करना शुरू किया – अज्ञेय की अनेक कविताएँ इस बात की प्रमाण हैं।

4.2.5. पाठ-सार

अज्ञेय की कविता आधुनिकता के आगमन से पैदा हुई नयी संवेदना और नयी अनुभूति को नयी भाषा और नये काव्योपकरणों के माध्यम से सम्प्रेषित करती है। इसके लिए वे प्रयोग को आवश्यक समझते हैं। लेकिन प्रयोग उनके लिए माध्यम ही है अभीष्ट नहीं। अज्ञेय की कविता आधुनिकता को अंगीकार करते हुए भी उसमें बैठे हुए पश्चिम को पहचानती है। वे उस पश्चिम को स्वीकारने या अस्वीकार करने की जल्दबाज़ी में नहीं हैं। वे नये ज्ञान की रौशनी में अपनी परम्परा की खोज करते हैं और उस परम्परा में रहते हुए ही बेहद धीरज के साथ पश्चिम से संवाद करने की कोशिश करते हैं। इसी कोशिश और अपनी परम्परा को पुनः उपलब्ध करने की चिन्ता का परिणाम है, असाध्य वीणा जैसी दुर्लभ कविता की सर्जना। इस कविता के माध्यम से वे आधुनिक दौर में भुला दी गई भारत और एशिया की वस्तुनिष्ठ कला परम्परा का पुनरुद्धार करते हैं। रेखांकित करना होगा कि ऐसा करना भारत को पश्चिम की बौद्धिक गुलामी से मुक्त करना और भारतीय आधुनिकता अथवा देशज आधुनिकता का मार्ग प्रशस्त करना है।

4.2.6. बोध प्रश्न

बहुविकल्पीय वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. 'असाध्य वीणा' शीर्षक कविता में प्रियंवद केशकम्बली अपने आत्म को तिरोहित करना चाहता है क्योंकि –
   (क) वह आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति को बुरा समझता है।
   (ख) कला में आत्म का कोई महत्त्व नहीं होता है।
   (ग) ध्यान-साधना के लिए आत्म का तिरोहन आवश्यक है।
   (घ) वह आत्म को तिरोहित कर ईश्वर को पाना चाहता है।

2. नयी परिस्थिति में कविता के सम्प्रेषण की चुनौतियों से निपटने के लिए नयी कविता के कवियों क्या किया ?
   (क) कविता में साधारणीकरण के सिद्धान्त में संशोधन किया।
   (ख) रस सिद्धान्त को ख़ारिज किया।
   (ग) कविता को पढ़ने के लिए नये सिद्धान्तों का निर्माण किया।
   (घ) कविता में नयी भाषा और विराम-चिह्नों का प्रयोग करना शुरू किया।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. आधुनिक भावबोध से क्या तात्पर्य है ?
2. श्रव्य से पठ्य होने पर कविता की भाषा में क्या परिवर्तन हुआ ?

3. अज्ञेय के काव्य में स्वाधीनता के स्वरूप पर विचार कीजिए।
4. कला और अध्यात्म के रिश्ते पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
5. अज्ञेय की कविता में देशज आधुनिकता पर विचार कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अज्ञेय की कविता नयी जीवन-स्थितियों से किस तरह मुठभेड़ करती है ? विश्लेषण कीजिए।
2. "अज्ञेय की कविता एक स्तर पर पूर्व और पश्चिम का संवाद है।" आप इस कथन से कहाँ तक सहमत हैं ?
3. अज्ञेय की कविता में भाषा और शिल्प के नयेपन को स्पष्ट कीजिए।

व्यवहार

1. अज्ञेय विरचित उन कविताओं की सूची बनाइए जो देशज आधुनिकता को विकसित करने प्रेरणा से लिखी गई हैं।

4.2.7. कठिन शब्दावली

विलयन	:	अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को किसी चीज में मिला देना
संलयन	:	किसी प्रवाह में शामिल होना
अभिमन्त्रित	:	मन्त्र की शक्ति से युक्त
इयत्ता	:	अस्मिता, आत्मबोध

4.2.8. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. प्रसाद, राजेन्द्र (2001), अज्ञेय कवि और काव्य, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
2. पालीवाल, कृष्णदत्त (2010), अज्ञेय कवि कर्म का संकट, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली
3. ऋषिकल्प, रमेश (2008), अज्ञेय की कविता परम्परा और प्रयोग, वाणी प्रकाशन, दिल्ली
4. शाह, रमेशचन्द्र (1990), साहित्य अकादेमी, दिल्ली
5. कृष्ण, प्रणय (2005), अज्ञेय का काव्य प्रेम और मृत्यु, आधार प्रकाशन, पंचकुला (हरियाणा)

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/

❖❖❖

खण्ड – 4 : प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता

इकाई – 3 : 'अँधेरे में' कविता का मूल प्रतिपाद्य, मुक्तिबोध और फैंटेसी, मुक्तिबोध का काव्य-शिल्प, मुक्तिबोध का जीवन-दर्शन

इकाई की रूपरेखा

4.3.0. उद्देश्य कथन
4.3.1. प्रस्तावना
4.3.2. मुक्तिबोध : जीवन-परिचय और साहित्य-परिचय
   4.3.2.1. जीवन-परिचय
   4.3.2.2. साहित्य-परिचय
4.2.3. 'अँधेरे में' कविता का मूल प्रतिपाद्य
4.3.4. मुक्तिबोध और फैंटेसी
4.3.5. मुक्तिबोध का काव्य-शिल्प
   4.3.5.1. बिम्ब-विधान
   4.3.5.2. प्रतीक-विधान
   4.3.5.3. अलंकार-योजना
   4.3.5.4. छन्द-योजना
   4.3.5.5. काव्यभाषा
4.3.6. मुक्तिबोध का जीवन-दर्शन
   4.3.6.1. मार्क्सवाद
   4.3.6.2. पूँजीवाद और शोषण-तन्त्र
   4.3.6.3. सर्वहारा वर्ग
   4.3.6.4. क्रान्ति चेतना
   4.3.6.5. मानवतावाद
   4.3.6.6. समाजवाद
4.3.7. पाठ-सार
4.3.8. बोध प्रश्न
4.3.9. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

4.3.0. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई में आप मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में', उनके द्वारा प्रयुक्त फैंटसी, उनके काव्य-शिल्प और जीवन-दर्शन का विस्तृत अध्ययन करेंगे। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. मुक्तिबोध के जीवन का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
ii. मुक्तिबोध के काव्य की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

iii. मुक्तिबोध द्वारा रचित कविता 'अँधेरे में' का प्रतिपाद्य जान सकेंगे।
iv. मुक्तिबोध के काव्य में प्रयुक्त फैंटेसी को समझ सकेंगे।
v. मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प की विस्तृत जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
vi. मुक्तिबोध के जीवन-दर्शन को समझने में यह इकाई आपकी सहायक होगी।

4.3.1. प्रस्तावना

गजानन माधव मुक्तिबोध आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रयोगवादी काव्य के सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे हिन्दी के ऐसे विलक्षण कवि हैं जिन्होंने अपना लेखन छायावाद से आरम्भ किया और प्रगतिवाद, प्रयोगवाद तथा नयी कविता की युगधाराओं से जुड़कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया। मुक्तिबोध ने सर्वप्रथम अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' में अपनी उपस्थिति दर्ज करवाई और मनुष्य की अस्मिता, आत्म-संघर्ष और प्रखर राजनैतिक चेतना से परिपूर्ण उनकी 17 कविताएँ प्रकाशित हुईं। 'तार सप्तक' के कवियों में वे एकमात्र ऐसे कवि हैं, जिनका विकास भिन्न दिशाओं में हो कर भी आगे की कवि-पीढ़ी को प्रभावित करता है। 'तार सप्तक' के वक्तव्य में मुक्तिबोध ने कहा था – "मैं कलाकार की 'स्थान्तरणगामी प्रवृत्ति' पर बहुत जोर देता हूँ। आज के वैविध्यमय उलझन भरे रंग-बिरंगे जीवन को यदि देखना है तो अपने वैयक्तिक क्षेत्र से एक बार तो उड़ कर बाहर जाना ही होगा।"

मुक्तिबोध ने अपने काव्य के द्वारा पीड़ित मानवता की संवेदना का भावसंकुल चित्रण, पूँजीवाद की शोषणकारी व्यवस्था का विरोध और नवीन, शोषणहीन, समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया। प्रस्तुत पाठ में आप मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प, जीवन-दर्शन और उनकी अन्तिम व महत्त्वपूर्ण कविता 'अँधेरे में' का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

4.3.2. मुक्तिबोध : जीवन-परिचय और काव्य-परिचय

साहित्यकार का जीवन-बोध उसकी रचनाओं से अभिव्यक्त होता है। मुक्तिबोध की जीवनगाथा एक ऐसे साधारण भारतीय साहित्यकार की करुण गाथा है, जो इसलिए जीया कि वह दूसरों के जीने का निमित्त बन सके, दूसरों की वेदना में निमज्जित होकर उसे व्यापक रूप दे सके। उनका जीवन पूर्णतः एक समर्पित और प्रतिबद्ध साहित्यकार का जीवन था।

4.3.2.1. जीवन-परिचय

गजानन माधव मुक्तिबोध का जन्म 13 नवम्बर 1917 को ग्वालियर राज्य के मुरैना जिले के श्योपुर कस्बे में हुआ था। इनके पिता माधव मुक्तिबोध एक ईमानदार पुलिस इंस्पेक्टर थे। माता पार्वतीबाई एक भावुक और स्वाभिमानी स्त्री थीं। इनके तीन भाई थे – शरच्चन्द्र मुक्तिबोध, बसन्त मुक्तिबोध और चन्द्रकान्त मुक्तिबोध। इनमें से शरच्चन्द्र मराठी के प्रसिद्ध साहित्यकार माने जाते हैं। मुक्तिबोध के पिता का तबादला होते रहने के कारण उनकी शिक्षा का सिलसिला टूटता-जुड़ता रहा। सन् 1935 में माधव कॉलेज उज्जैन से इंटरमीडिएट की परीक्षा

उत्तीर्ण करने के साथ ही इन्होंने नियमित रूप से साहित्य-सृजन आरम्भ कर दिया । आगे की शिक्षा के लिए वे इन्दौर चले गए और सन् 1938 में बी.ए. में सफलता प्राप्त की । इस समय इनकी रचनाएँ छायावादी भावना से युक्त थीं और विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगीं ।

इन्दौर में मुक्तिबोध का परिचय गरीब परिवार की शान्ताबाई से हुआ और यह परिचय घनिष्ठता में परिवर्तित होने पर इन्होंने जाति-कुल, सामाजिक वैषम्य के अवरोध के उपरान्त भी 1939 में उनसे प्रेम-विवाह कर लिया । पिता के सेवानिवृत्त होने पर पारिवारिक दायित्वों के निर्वहन हेतु उन्होंने बड़नगर के मिडिल स्कूल में अध्यापन कार्य आरम्भ किया । बाद में उज्जैन, कलकत्ता, इन्दौर, बम्बई, बनारस, जबलपुर आदि स्थानों पर भिन्न-भिन्न नौकरियाँ की । उन्हीं के शब्दों में –

नौकरियाँ पकड़ता और छोड़ता रहा ।
शिक्षक, पत्रकार, पुनः शिक्षक, सरकारी और गैर सरकारी नौकरियाँ,
निम्न मध्यम वर्गीय जीवन, बाल-बच्चे, दवा-दारू, जन्म-मौत में उलझा रहा ।

अत्यधिक लाड़-प्यार में पले मुक्तिबोध का शेष जीवन अभाव, संघर्ष और आर्थिक संकट के कारण विपन्नता में व्यतीत हुआ । लेकिन उनकी अध्ययनशीलता में कमी नहीं आई । 1962 उन्होंने अपने साहित्य से जन-आन्दोलन को उभारने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया जिसके लिए उन्हें अत्यधिक मानसिक त्रास को भोगना पड़ा । परिणामस्वरूप उनका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और 17 फरवरी 1964 को उन्हें पक्षाघात हो गया । लगभग 8 महीने तक मृत्यु से जूझने के बाद 11 सितम्बर 1964 को उनका निधन हो गया ।

4.3.2.2. साहित्य-परिचय

गजानन माधव मुक्तिबोध ने चौथी-पाँचवी कक्षा से ही काव्य-लेखन आरम्भ कर दिया था । सन् 1935 में मुक्तिबोध ने नियमित रूप से काव्य-लेखन आरम्भ किया । उनकी रचनाएँ समय-समय पर अनेक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रहती थी जिनमें से प्रमुख हैं – हंस, वीणा, कर्मवीर, राष्ट्र, वाणी, कल्पना, लहर, आगामी कल, विचार, सारथी, वसुधा, प्रतीक इत्यादि । उनके जीवनकाल में उनकी केवल एक ही पुस्तक प्रकाशित हुई थी – 'कामायनी : एक पुनर्विचार', जिसमें उन्होंने प्रसाद-कृत 'कामायनी' की आलोचना नये रूप में प्रस्तुत की है । मुक्तिबोध की प्रकाशित पुस्तकें इस प्रकार हैं – (i) तारसप्तक, (ii) चाँद का मुँह टेढ़ा है (काव्य-संग्रह), (iii) कामायनी : एक पुनर्विचार, (iv) नयी कविता का आत्मसंघर्ष तथा अन्य निबन्ध, (v) भारत-इतिहास और संस्कृति (पाठ्य-पुस्तक जो मध्यप्रदेश सरकार द्वारा जब्त कर ली गई), (vi) एक साहित्यिक की डायरी, (vii) काठ का सपना (कहानी-संग्रह), (viii) विपात्र (उपन्यास), (ix) सतह से उठता आदमी (कहानी-संग्रह), (x) नये साहित्य का सौन्दर्य-शास्त्र (निबन्ध-संग्रह), (xi) भूरी-भूरी खाक-धूल (काव्य-संग्रह), (xii) मुक्तिबोध रचनावली (इसके 6 अंकों में मुक्तिबोध की समस्त प्रकाशित रचनाएँसंगृहीत हैं) । इनके अतिरिक्त भी मुक्तिबोध का बहुत-सा साहित्य आज भी अप्रकाशित पड़ा है, जिसमें निबन्ध, कहानियाँ और अनेक कविताएँ हैं ।

4.2.3. 'अँधेरे में' कविता का मूल प्रतिपाद्य

सन् 1934 में श्रीकान्त वर्मा के सद्प्रयासों से मुक्तिबोध का प्रथम प्रामाणिक संकलन ' चाँद का मुँह टेढ़ा है' प्रकाशित हुआ। इस काव्य-संग्रह में संकलित कविता 'अँधेरे में' अत्यन्त सशक्त और सर्वाधिक लम्बी कविता है। यह कविता आठ खण्डों में विभक्त है, जो मुक्तिबोध का पूर्णतः प्रतिनिधित्व करती है। मुक्तिबोध ने पहले इस कविता का शीर्षक 'आशंका के द्वीप : अँधेरे में' रखा था, लेकिन प्रकाशन के समय सिर्फ़ 'अँधेरे में' रहने देने की इच्छा प्रकट की। उनकी इच्छा के अनुरूप श्रीकान्त वर्मा ने मूल शीर्षक से 'आशंका के द्वीप' हटा दिया। अनेक विद्वानों और आलोचकों ने अपने-अपने ढंग से इस कविता को समझने और टिप्पणी करने का प्रयत्न किया है। कुछ विद्वानों के कथन द्रष्टव्य हैं –

शमशेर बहादुर ने 'अँधेरे में' को मुक्तिबोध की विशिष्ट देन स्वीकार करते हुए कहा है कि – "यह कविता देश के आधुनिक जन इतिहास का, स्वतन्त्रता के पूर्व और पश्चात् का एक दहकता इस्पाती दस्तावेज है। इसमें अजब और अद्‌भुत रूप से व्यक्ति और जन का एकीकरण है। देश की धरती, हवा, आकाश, देश की सच्ची मुक्ति की आकांक्षा नस-नस में फड़क रही है।"

डॉ॰ रामदरश मिश्र के अनुसार – " 'अँधेरे में' एक ऐसी लम्बी कविता है जो अपना प्रतिमान स्वयं है। यह न तो किसी कथा पर आधारित है और न तो अपने जीवन की ऊहापोह से गुजरती है, न बने-बनाये आशावाद के सरल मार्ग से चलती है और न जुगुप्सा, निराशा, यौन-पिपासा के कीचड़ में पाँव धँसाकर चलती है। यह एक ऐसी कविता है जो स्वयं सामाजिक सन्दर्भों से कथा गढ़ती है।"

डॉ॰ प्रभाकर माचवे के अनुसार – " 'अँधेरे में' एक ऐसी कविता है जिसमें उनकी काव्यात्मक शक्ति के अनेक तत्त्व घुल-मिलकर एक महान् रचना की सृष्टि करते हैं। जो अत्यधिक यथार्थवादी और एकदम आधुनिक है।"

नामवर सिंह के शब्दों में – "इस कविता का मूल कथ्य है अस्मिता की खोज। किन्तु कुछ अन्य व्यक्तिवादी कवियों की तरह खोज में किसी प्रकार की आध्यात्मिकता या रहस्यवाद नहीं, बल्कि गली-सड़क की गतिविधि, राजनैतिक परिस्थिति और अनेक मानव-चरित्रों की आत्मा के इतिहास का वास्तविक परिवेश है। आज के व्यापक सामाजिक सम्बन्धों के सन्दर्भ में जीने वाले व्यक्ति के माध्यम से ही मुक्तिबोध ने 'अँधेरे में' कविता में अस्मिता की खोज को नाटकीय रूप दिया है।"

कविता के मूल प्रतिपाद्य को समझने के लिए उसका संक्षिप्त विश्लेषण इस प्रकार है –

मुक्तिबोध की कविता 'अँधेरे में' में दो नायक हैं – एक, काव्य-नायक, जो कवि और मध्यमवर्गीय बौद्धिक वर्ग है। वह आधुनिकता के बोध से ग्रस्त है और स्वतन्त्रता के बाद उसकी चेतना बहुविभाजित और जनविरोधी हो गई है। उसके अन्तर्मन की छटपटाहट से ही कविता का आरम्भ होता है और वह कविता के दूसरे

नायक – स्वप्न-नायक को मनु, श्वेताकृति, रक्तालोक स्नात पुरुष, सम्भावित स्नेह सा प्रिय, आजानुभुज, रहस्यमय व्यक्ति, अब तक न पायी गई अभिव्यक्ति, आत्मा की प्रतिमा, हृदय में रिस रहे ज्ञान का तनाव, निज सम्भावना और प्रतिभा आदि के रूप में बार-बार देखता है।

कविता के प्रथम खण्ड में कवि की उत्कट रचनात्मक बेचैनी दिखाई पड़ती है। इसमें मुक्तिबोध ने काव्य-नायक के माध्यम से मानवीय विवशता का बड़ा सजीव और मार्मिक चित्रण किया है। वहीं दूसरे खण्ड में कवि परम्परागत अन्ध-शोषक परम्पराओं को त्याग कर जीवन और मानवीयता को खुली, संवेदनात्मक दृष्टि से देखने की प्रेरणा देते हैं, जिससे काव्य-नायक खोये हुए व्यक्ति का शोध करने के लिए उसकी खोज में निकल पड़ता है।

कविता के तीसरे खण्ड में फैंटेसी का वास्तविक प्रारम्भ होता है, इसमें काव्य-नायक को यह पता नहीं चल पाता कि वह सपना देख रहा है या जागा हुआ। उसे समकालीन सामाजिक यथार्थ और उसके आतंककारी स्वरूप का एहसास होता है। चिन्ता की भयावह स्थिति में उसे युद्ध और शान्ति से लेखक तालस्ताय की याद आती है। यहाँ तालस्ताय की याद आना मानवता की शान्ति, सुख-समृद्धि की परिकल्पना का प्रतीक मिथ प्रतीत होता है। इसी समय एक जुलूस निकलता है जिसमें शहर के विशिष्ट वर्गों के लोग नज़र आते हैं, जो देश में फासिस्ट सत्ता कायम करना चाहते हैं। यह लोग जन-सहानुभूति के नाम पर अपने ही निहित स्वार्थों को पूरा करना चाहते हैं। तभी जुलूस में से कुछ लोग काव्य-नायक को देख लेते हैं और उसे मारने के लिए दौड़ पड़ते हैं। स्वयं मुक्तिबोध नागपुर की एक्सप्रेस मिल में होने वाली हड़ताल के अवसर पर पत्रकार के रूप में सारे अत्याचारों की साक्षी और तथ्यों के प्रवक्ता थे, उस दौरान उन्हें आतंकित किया गया था। यह अभिव्यक्ति उसी की प्रतिक्रिया प्रतीत होती है।

चौथे खण्ड में काव्य-नायक पुनः उसी स्वप्न से जुड़ जाता है और देखता है कि हर तरफ फासीवादी ताकतों ने अपना आधिपत्य जमा लिया है। चारों ओर भय, आतंक और डर का वातावरण है। कोई इसके विरुद्ध आवाज़ उठाता है तो उसे ताकत के बल पर दबा दिया जाता है। यहाँ स्वप्न-नायक सिरफिरे पागल के रूप में दिखाई पड़ता है, जो ऊँचे स्वर में जाग्रति से परिपूर्ण गीत गाता है। तात्पर्य यह है कि अत्याचार इतना तीव्र और चरम सीमा पर था कि उसने नितान्त निरीह, अबोध और अविकसित समझे जाने वाले की चेतना को भी झकझोर दिया, जिससे उसमें नयी जाग्रति उभर कर आ गई। मुक्तिबोध ने पागल के आत्म-उद्‌बोधनात्मक गीत के माध्यम से तत्कालीन कवियों और चिन्तकों के सुविधाभोगी मध्यमवर्गीय निस्संग चरित्र की भर्त्सना की है। इस गीत के कारण काव्य-नायक आत्ममंथन करता है और सोचता है कि उसकी सुविधाभोगिता और खतरा न उठाने की प्रवृत्ति के कारण ही आज देश की स्थिति इतनी भयावह हो गई है। यहाँ काव्य-नायक उन भारतीयों का प्रतिनिधित्व करता है जो निष्क्रिय रहकर व्यवस्था के दमन-चक्र में पिसते रहते हैं।

पाँचवें खण्ड में काव्य-नायक विभिन्न भयावह परिस्थितियों से गुजरते हुए अन्तश्चेतना की गहराइयों में पहुँच जाता है और वहाँ जीवन में प्राप्त अनुभव, वेदनाओं, जीवन के सत्यों के निष्कर्षों को मणियों और रत्नों के रूप में पड़े हुए पाता है। यहाँ कवि यह बताना चाहता है कि भौतिक स्तर पर प्रकृति से प्राप्त सम्पत्ति को तो हमने

अपनी तिजोरियों में सुरक्षित कर लिया है, किन्तु भावनात्मक स्तर पर उच्च गरिमामय विचारों को अपनी अन्ध मानसिकता के कारण दबा दिया है । इन वैचारिक रत्नों का बहिर्गमन या अभिव्यक्तीकरण व्यवहारिक जगत् में उपयोगी और मानव-हित में सहायक हो सकता है।

छठे खण्ड में काव्य-नायक अपने आन्तरिक बल, मूल्यों, बुद्धि और संघर्षशील व्यक्तित्व को छिपाने के कारण होने वाले मानवता के अहित को सोचकर व्यथित होता है और अब संघर्ष करने के लिए अग्रसर होता है। इस दौरान वह आज तक के विभिन्न वादों की विफलता के सन्दर्भ में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है कि आधुनिक जीवनयापन के मार्ग बर्बरता को प्रश्रय देने वाले हैं, जिससे चेतना श्रमित और आहत है । इस समय काव्य-नायक तिलक की पाषाण मूर्ति के पास पहुँचता है और अनुभव करता है कि अपने आदर्शपुरुषों की सीख से हम में कुछ कर गुजरने की शक्ति आ जाती है, किन्तु साम्राज्यी पहरे और पाबन्दियाँ हमें विवश कर छोड़ देती हैं। इसी दौरान कथानायक अन्तश्चेतना के स्तर पर गाँधी को अपने समक्ष पाता है और वे उसे जनशक्ति के संगठन और श्रम से भावी का निर्माण करने की प्रेरणा देते हैं। यहाँ मुक्तिबोध यह कहना चाहते हैं कि जनशक्ति से ही नये युग का निर्माण सम्भव हो सकता है । हमें महापुरुषों की मूर्तियाँ बनाकर उनकी पूजा करने की आवश्यकता नहीं है वरन् उनके आदर्शों से अनुप्राणित और सक्रिय होकर जीवन-निर्माण करने की आवश्यकता है। इसी क्रम में गाँधी की वह मानसप्रतिमा एक शिशु (नवप्राप्त स्वतन्त्रता) काव्य-नायक को देकर गायब हो जाती है और इस प्रकार स्वतन्त्रता की रक्षा का दायित्व काव्य-नायक पर आ जाता है। शिशु कुछ देर रोता है और फिर लुप्त हो जाता है । कवि निराश है कि स्वतन्त्रता का बोझ वहन करने की शक्ति वर्तमान पीढ़ी के कन्धों में नहीं है परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता के लिए दिये गए बलिदान व्यर्थ हो गए और इसका लाभ आमजन को नहीं मिल पा रहा है । काव्य-नायक क्रान्तिकारी व्यक्तियों की खोज में निकलता है, लेकिन फासिस्ट शक्तियाँ उसे दबोच लेती हैं और यातनाएँ देती हैं। इस घटनाक्रम के माध्यम से कवि ने स्वस्थ और क्रान्तिकारी विचार रखने वालों को सत्ता द्वारा उत्पीड़ित करने का सजीव और यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है। इस प्रताड़ना के उपरान्त भी काव्य-नायक आश्वस्त है कि देह को कुचल कर भी कठोर से कठोर सत्ता आत्मा और मन की आवाज़ को नहीं दबा सकती है।

सातवें खण्ड में काव्य-नायक को यातना-गृह से मुक्ति मिल जाती है। वह जीवन के विद्रूप, घिनौने यथार्थ को देखकर उससे मुक्त होने के लिए तड़पता है और तनाव का अनुभव करता है । वह जनता को अभिव्यक्ति के खतरे उठाने की बात कहता है क्योंकि ऐसा करने से ही फासीवादी ताकतों के अमानवीय व्यवहार से छुटकारा पाया जा सकता है। वह महसूस करता है कि आम जनता इस व्यवस्था से नाराज है किन्तु विषम परिस्थिति के कारण उनकी वैचारिक आग अभी ज्वाला की अभिव्यक्ति का स्वरूप प्राप्त नहीं कर पा रही है। चौथे बंद में काव्य-नायक देखता है कि चारों ओर क्रान्ति का वातावरण है और सभी उसमें बढ़-चढ़कर हिस्सा ले रहे हैं। यहाँ काव्य-नायक या स्वयं मुक्तिबोध आशान्वित हैं कि मानवता के सामूहिक कर्म से पूँजीवाद का अन्त होगा और शान्ति और प्रेम का साम्राज्य स्थापित होगा।

आठवें खण्ड में स्वप्न-कथा के रूप में फैंटेसीबद्ध क्रान्ति की शुरुआत होती है। यह क्रान्ति सशस्त्र क्रान्ति ना होकर जनक्रान्ति है, जो संकेत है कि परिवर्तन अवश्य होगा। यहाँ कवि ने सामूहिकता के भाव पर बल दिया है

तथा कवियों, कलाकारों और अन्य बौद्धिक वर्ग की निष्क्रियता और जनहित से विरहित चेतना पर व्यंग्य करते हुए उन्हें जनभावनाओं का साथ देने की अन्तःप्रेरणा प्रदान की है। यहाँ वातावरण में चारों ओर जनक्रान्ति की लहरें उठने लगती हैं और समाज का प्रत्येक वर्ग कुछ कर दिखाने की भावना से युक्त हो गया है। मुक्तिबोध बदलते युग की सूचना देते हुए कहते हैं कि जनक्रान्ति की लहर में फासीवादी ताकतें उड़ गई हैं, अब श्रमिक और निम्न वर्ग का साम्राज्य होगा और वह अपने श्रम से अपने भविष्य का निर्माण करेंगे। अचानक काव्य-नायक का स्वप्न भंग होता है, उसे अपनी प्रेरक शक्ति (जनक्रान्ति) की याद आती है जिसे कविता में प्रत्यक्ष रूप से प्रेमिका कहा गया है। प्रेम और प्रातःकालीन वातावरण की नवीन अनुभूति के आलोक से युक्त होकर काव्य-नायक गैलरी में आकर खड़ा होता है तो उसे वह व्यक्ति दिखाई देता है, जो स्वप्न में मिला था। उस रहस्यमय पुरुष को अपना गुरु मानते हुए काव्य-नायक उसकी खोज में निकल पड़ता है। तात्पर्य यह है कि कवि मुक्तिबोध काव्य-नायक के माध्यम से उन व्यक्तियों की खोज करते हैं जो जीवन के सत्य और यथार्थ को समझ कर उसे सच्ची अभिव्यक्ति दे सके और सक्रिय होकर मानवता को जीवन की विद्रूप विषमताओं से अपनी क्रान्ति धर्मिता के बल पर मुक्ति दिला सके।

स्पष्ट है कि मुक्तिबोध ने 'अँधेरे में' कविता में देश की आजादी से पूर्व और पश्चात् की परिस्थितियों का गहन अनुभूति के साथ चित्रण किया है। इसमें फासिस्ट शक्तियों से पैदा होने वाले खतरों और उनसे छुटकारा पाने के लिए संभावित जनक्रान्ति दोनों पक्षों को बखूबी प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ ही मध्यमवर्गीय व्यक्ति की दशा और उसके आत्मसंघर्ष को भी यथारूप दिखाया गया है, जो एक ओर समाज में व्याप्त विकृतियों और असमानताओं के प्रति आक्रोशित है वहीं दूसरी ओर वह सुख-सुविधाओं को त्यागने के लिए भी तैयार नहीं है। इस प्रकार मध्यम वर्ग का अन्तर्द्वन्द्व और मानवीय विवशता अत्यन्त सहज, स्वाभाविक रूप से उभर कर आयी है। मुक्तिबोध ने कवि-वर्ग को सन्देश दिया है कि उन्हें आत्म-अन्वेषण करते हुए उपलब्ध जीवन सत्यों से आत्म-विस्तार करना होगा और 'मैं' से 'हम' की ओर जाना होगा अर्थात् व्यक्तिकता से सामाजिकता की ओर पदार्पण करना होगा ताकि समाज में फैले हुए अव्यवस्था रूपी अन्धकार का अन्त हो सके।

4.3.4. मुक्तिबोध और फैंटेसी

फैंटेसी शब्द की उत्पत्ति यूनानी शब्द 'फैंटेसिया' से हुई है, जिसका अर्थ है – अमूर्त को दृश्य बनाना अर्थात् काल्पनिक या स्वप्न-दृश्यों को बिम्बात्मक रूप देने का सामर्थ्य। काव्य रूप में फैंटेसी वह काव्य है जिसमें स्वप्न के माध्यम से यथार्थ का चित्रण किया जाता है, जिससे कवि वास्तविकता के प्रदीर्घ चित्रण से बच जाता है। दूसरे शब्दों में फैंटेसी स्वप्न-कथा है। जार्ज टामसन के अनुसार "फैंटेसी इच्छित यथार्थ की पूर्ति है। यह एक जादू, एक भ्रान्ति है जो यथार्थ के ही ढंग की है।" सफल फैंटेसी उसे ही माना जाता है जिसमें यथार्थ और फैंटेसी सम्बन्धी विचार इस तरह एकाकार हो जाते हैं कि उन्हें फिर अलग नहीं किया जा सकता। इसमें रचनाकार को कल्पना के माध्यम से रचना-संसार में स्वच्छन्द विचरण करने की छूट मिल जाती है। मुक्तिबोध के अनुसार "फैंटेसी में मन की निगूढ़ वृत्तियों का, अनुभूत जीवन समस्याओं का, इच्छित विश्वासों और इच्छित जीवन परिस्थितियों का प्रक्षेप होता है।"

मुक्तिबोध ने फैंटेसी द्वारा द्वन्द्वात्मक समाज और मानव-मन के द्वन्द्व को सृजनात्मक अभिव्यक्ति दी है। उनकी अनेक कविताएँ फैंटसीपरक हैं, जैसे – ब्रह्मराक्षस, अँधेरे में, लकड़ी का रावण, दिमागी गुहान्धकार का ओरांग उटांग, मेरे सहचर मित्र, एक अन्तर्कथा, एक स्वप्नकथा आदि। इन कविताओं में उन्होंने भारतीय मनुष्य की पीड़ा, भारतीय समाज के तनाव और भारतीय जीवन की त्रासदी को फैंटेसी के विविध रूपों में संयोजित किया है। नन्दकिशोर नवल के शब्दों में "मुक्तिबोध फैंटेसी शैली की तरफ धीरे-धीरे बढ़े और यथार्थ बोध की परिपक्वता के साथ उनका ढंग स्वयमेव बदलता गया था। दूसरे उन्होंने अपनी कविताओं में फैंटेसी का कई प्रकार से इस्तेमाल किया है। कहीं फैंटेसी का स्पर्श हल्का है, कहीं प्रगाढ़, कहीं वह सरल रूप में आती है, कहीं बहुत जटिल रूप में। उनकी फैंटेसी शैली की सफलता उनकी इस क्षमता में निहित है कि वे जिस तरह यथार्थ को फैंटेसी में बदल सकते थे, उसी तरह फैंटेसी का चित्रण भी बिल्कुल यथार्थ की तरह कर सकते थे। उनका यथार्थ-लोक जैसे फैंटास्टिक है, वैसे ही उनका फैंटास्टिक-लोक अत्यन्त यथार्थ।"

मुक्तिबोध ने फैंटेसी को सृजन-प्रक्रिया की एक महत्त्वपूर्ण इकाई स्वीकार करते हुए कहा है – "कला का पहला क्षण है, जीवन का उत्कृष्ट तीव्र अनुभव-क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते दुखते हुए मूलों से पृथक् हो जाना और एक ऐसी फैंटेसी का रूप धारण कर लेना मानों वह फैंटेसी अपनी आँखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण है इस फैंटेसी के शब्द-बद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्ण अवस्था तक की गतिमानता।"

मुक्तिबोध ने फैंटेसी के माध्यम से अपने परिवेश की भयानकता और मनुष्य की दर्दनाक दशा का चित्रण किया है। उन्होंने बाहरी कटु यथार्थ के सम्पर्क में आने पर मन में हुई प्रतिक्रिया को कल्पना का योग देखकर ऐसे चित्र प्रस्तुत किए हैं जिसमें अद्‌भुत और विलक्षण का रोमांचक योग होता है। वे भयानक रहस्यमयता से भरपूर, दिल दहला देने वाली फैंटेसी की सृष्टि करते हैं और उसमें अपने विचारों की लड़ियाँ पिरोते चलते हैं। इन फैंटेसियों में पाठक के मानस को उद्वेलित करने की असाधारण शक्ति है। उनकी फैंटेसियाँ प्याज के छिलकों की तरह परत-दर-परत खुलती जाती हैं और दृश्य फिल्म-रील की तरह बदलते जाते हैं और यथार्थ के सजीव चित्र पाठक के समक्ष उद्‌घाटित होते चले जाते हैं। पाठक तीखे, मर्म तक चुभने वाले कटु सत्य का साक्षात्कार करता है और वह निर्णय नहीं कर पाता कि जिस कटु यथार्थ को उसने अभी-अभी देखा है वह फैंटेसी था या जीवन्त प्रत्यक्ष। 'अँधेरे में' कविता में सफेदपोश षड्‌यन्त्रकारियों पर व्यंग्य करने वाली फैंटेसी की पंक्तियाँ इस प्रकार हैं–

उनमें कई प्रकाण्ड आलोचक, विचारक, जगमगाते कविगण
मंत्री भी, उद्योगपति और विद्वान्
यहाँ तक कि शहर का हत्यारा कुख्यात
डोमाजी उस्ताद।

इस प्रकार मुक्तिबोध की फैंटेसी मनुष्य की तबाह होती ज़िंदगी और उसमें सक्रिय ताकतों को बड़े ही प्रभावपूर्ण ढंग से उद्‌घाटित करती है। उनके लिए फैंटेसी अनुभवलोक में चलने वाली यात्रा है, जो मनुष्य को पूरी

तरह अपने में शामिल करते हुए शत्रुओं की पहचान कराती है तथा उसे षड्यन्त्र के चक्रव्यूह से निकलने की शक्ति देती है। अन्ततः यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध जन चेतना के कवि हैं जिन्होंने अपनी फैंटेसी के माध्यम से यथार्थ के गहनतम सत्यों का उद्घाटन कर पाठक की सामाजिक चेतना को विकसित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया है।

4.3.5. मुक्तिबोध का काव्य-शिल्प

काव्य-शिल्प से तात्पर्य होता है, 'कविता को प्रस्तुत करने का ढंग' अर्थात् प्रस्तुतीकरण। प्रस्तुतीकरण की प्रक्रिया काव्य में प्रयुक्त शैली, बिम्ब, प्रतीक, मिथक, छन्द, अलंकार और भाषा आदि विषय-वस्तुओं पर निर्भर करती है। हिन्दी काव्य में फैंटेसी शिल्प के प्रवर्तक मुक्तिबोध का काव्य फैंटेसी का काव्य है, जिसमें सामान्य यथार्थ के सम्प्रेषण के लिए फैंटेसी को माध्यम बनाया जाता है। उन्होंने बाहरी यथार्थ के प्रभावस्वरूप हृदय में होने वाली प्रतिक्रिया में कल्पना का योग कर अद्भुत और रोमांचक चित्र प्रस्तुत किये हैं। अंग्रेजी कवि टी.एस. इलियट के विषय में कहा जाता है कि उनका काव्य उस कक्ष की भाँति है जिसमें अनेक दर्पण विभिन्न पंक्तियों में सजा कर रखे गए हैं। यही कथन मुक्तिबोध के काव्य पर भी पूर्णतः चरितार्थ होता है। उनके काव्य-शिल्प की शैली फैंटेसी के सन्दर्भ में पूर्व में विस्तार से जानकारी दी जा चुकी है, अन्य तत्त्वों का विवरण इस प्रकार है –

4.3.5.1. बिम्ब-विधान

'बिम्ब' शब्द अंग्रेजी के इमेज (Image) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है, जिसका अर्थ है, 'मूर्त रूप प्रदान करना।' साहित्य जगत् में बिम्ब वह शब्दचित्र है जो कल्पना द्वारा आन्तरिक अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है। कविता में बिम्ब का विशेष महत्त्व होता है क्योंकि इसी के आधार पर सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों की अभिव्यक्ति सहजता से हो पाती है। मुक्तिबोध का समस्त काव्य बिम्बमय है। वे एक सशक्त बिम्ब उठाते हैं और फिर बाद में बिम्ब पर बिम्ब आते चले जाते हैं परिणामस्वरूप पाठक की आँखों के समक्ष संश्लिष्ट चित्रों का निर्माण होने लगता है।

बिम्ब-विधान में मुक्तिबोध अद्वितीय हैं, उनकी काव्यानुभूति सार्थक बिम्बों के माध्यम से प्रखर अभिव्यक्ति पाती है। बिम्ब कवि की अनुभूति की संश्लिष्टता के साथ उसके शिल्प-कौशल का भी प्रमाण होता है। मुक्तिबोध के काव्य में हमें विभिन्न प्रकार के बिम्ब उपलब्ध हो जाते हैं, जैसे – व्यक्ति बिम्ब, गत्यात्मक बिम्ब, ध्वनि बिम्ब, भाव बिम्ब, स्मृत्यात्मक बिम्ब, द्वन्द्वात्मक बिम्ब, प्रकृति बिम्ब आदि। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

व्यक्ति बिम्ब –

नुकीली नाक और
भव्य ललाट है,
दृढ़ हनु;

कोई अनजानी अन-पहचानी आकृति।

ध्वनि बिम्ब –

रात के दो बजे हैं,
दूर-दूर जंगल में सियारों का हो-हो;
पास-पास आती हुई गहराती गूँजती,
किसी रेलगाड़ी के पहियों की आवाज़!

भाव बिम्ब (भयानक) –

तालाब के आस-पास अँधेरे में वन-वृक्ष,
चमक-चमक उठते हैं हरे-हरे, अचानक

* * *

वृक्षों के अँधेरे में छिपी हुई किसी एक
तिलस्मी खोह का शिला-द्वार
खुलता है धड़ से।

प्रकृति बिम्ब –

भूमि की सतहों के बहुत-बहुत नीचे
अँधियारी, एकान्त
प्राकृत गुहा एक।

मुक्तिबोध के शिल्प-पक्ष की शक्ति बिम्ब-योजना में निहित है। बिम्बों के समस्त प्रकारों को अपने में समेटे हुए उनका काव्य बिम्बधर्मिता के गुण से परिपूर्ण है। बिम्बों के माध्यम से उन्होंने अपने समय के कटु यथार्थ का चित्रण किया है। शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में "मुक्तिबोध की हर इमेज के पीछे शक्ति होती है, वे हर वर्णन को दमदार, अर्थपूर्ण और चित्रमय में बनाते हैं।"

4.3.5.2. प्रतीक-विधान

प्रतीक का सामान्य अर्थ है, 'संकेत' या 'चिह्न'। जब कोई पदार्थ किसी भाव या विचार का संकेत बन जाता है, उसे प्रतीक कहते हैं। डॉ॰ राजाराम रस्तोगी ने प्रतीक के विषय में लिखा है कि "प्रतीक का अर्थ होता है प्रतिरूप या प्रतिमा अथवा वह वस्तु या भाव जो अंश होकर भी समग्र के लिए व्यवहृत हो।" मुक्तिबोध का वस्तु-क्षेत्र, सन्दर्भ-क्षेत्र,भाव-क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, उन्होंने विराट् विश्व को प्रतीकों के द्वारा अभिव्यक्त किया है। उन्होंने अपनी रचनाओं में प्रतीकों को काव्य-शिल्प का उपादान पात्र समझकर नहीं वरन् अपनी सम्वेदनाओं को व्यक्त

करने के लिए आवश्यक तत्त्व समझ कर उनका प्रयोग किया है। वे अपनी बात को सीधे ढंग से नहीं कहते बल्कि उन्हें प्रतीक शैली में प्रकट करने में विश्वास करते हैं। उनके प्रतीक विधान के लिए एक आलोचक ने कहा है कि – "कला के क्षेत्र में ऐसी सिद्धि सम्भवतः अभी तक किसी कवि को प्राप्त नहीं हो सकी है।"

मुक्तिबोध ने हमारे जाने-बूझे प्रतीकों को एक नया आयाम दिया है तथा सर्वथा नये प्रतीकों का सृजन भी किया है। उन्होंने एक ही प्रतीक को कई स्थानों पर भिन्न-भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किया है, जिससे उनमें एकरूपता या अर्थ का दोहराव नहीं दिखाई पड़ता। कहीं उन्होंने स्वतन्त्र और लघु प्रतीकों का प्रयोग किया है तो कहीं ऐसे विस्तृत आयाम वाले प्रतीकों का प्रयोग किया है जिनका अर्थ-सन्दर्भ सम्पूर्ण कविता में समाया हुआ है। उदाहरण के लिए – शिशु, रत्नमणि, अरुण कमल आदि स्वतन्त्र सन्दर्भ के प्रतीक हैं तो ब्रह्मराक्षस, रक्तालोक-स्नात पुरुष, ओरांग उटांग का प्रतीक-सन्दर्भ पूरी कविता में छाया हुआ है। उनके प्रतीकों को प्रमुख रूप से इन वर्गों में बाँटा जा सकता है – ऐतिहासिक प्रतीक, पौराणिक प्रतीक, प्राकृतिक प्रतीक, सैद्धान्तिक प्रतीक आदि। उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

ऐतिहासिक प्रतीक –

अरे हाँ, वह तो ...
विचार उठते ही दब गए,
सोचने का साहस सब चला गया है।
वह मुख – अरे, वह मुख, वे गाँधीजी !!

पौराणिक प्रतीक –

कौन वह दिखाई जो देता, पर
नहीं जाना जाता है !
कौन मनु !

प्राकृतिक प्रतीक –

अब अभिव्यक्ति के सारे खतरे
उठाने ही होंगे

* * *

जिसमें कि प्रतिपल काँपता रहता
अरुण कमल एक

सैद्धान्तिक प्रतीक –

हाथों में चमचमाती सीधी खड़ी तलवार
आबदार !!
कन्धे से कमर तक कारतूसी बैल्ट है तिरछा।

स्पष्ट है कि प्रतीक विधान की दृष्टि से मुक्तिबोध का काव्य अत्यन्त उच्च कोटि का है। एक ओर उन्होंने परम्परागत प्रतीकों को नये सन्दर्भों से जोड़कर अपने काव्य में मौलिकता का समावेश किया है, वहीं दूसरी ओर अपनी अद्भुत अभिव्यक्ति क्षमता से अपने भावों को विस्तार प्रदान किया है। उनके प्रतीकों में अदृश्य, अज्ञेय, अमूर्त और अनन्त को व्यक्त करने की अद्भुत शक्ति है।

4.3.5.3. अलंकार-योजना

अलंकार का शाब्दिक अर्थ है, 'आभूषण'। काव्यजगत् में अलंकार की भूमिका को स्पष्ट करते हुए दण्डी ने कहा है – "काव्यशोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते" अर्थात् काव्य के शोभाकारक धर्म अलंकार कहलाते हैं। आचार्य शुक्ल ने इसके स्वरूप को स्पष्ट करते हुए लिखा है – "भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं के रूप, गुण और क्रिया का अधिक तीव्र अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होने वाली युक्ति अलंकार है।"

मुक्तिबोध के काव्य में अलंकारों का व्यापक प्रयोग किया गया है किन्तु उन्होंने अलंकार का प्रयोग सौन्दर्य के लिए नहीं वरन् अपनी अभिव्यक्ति को सरल और प्रभावी बनाने के लिए किया है। उनके काव्य में अलंकार स्वाभाविक रूप से आए हैं, सायास नहीं। मुक्तिबोध ने अलंकारों का प्रयोग उसी सीमा तक किया है जहाँ उनकी अभिव्यक्ति को सम्प्रेषित करते हुए बिम्बों और प्रतीकों के माध्यम से सहजता के साथ अभिव्यक्त हुए हैं। उनके काव्य में प्रयुक्त अलंकारों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

उपमा –

भूतों की शादी में कनात-से तन गए

तथा

दुखों के दागों को तमगों सा पहना

रूपक –

सपनों में चलता है आलोचन,
विचारों के चित्रों की अवलि में चिन्तन।

छेकानुप्रास –

समस्वर, समताल,
सहानुभूति की सनसनी कोमल !!

पुनरुक्ति प्रकाश –

प्रत्येक वस्तु का निज-निज आलोक,
मानो की अलग-अलग फूलों की रंगीन
अलग-अलग वातावरण हैं बेमाप,
प्रत्येक अर्थ की छाया में अन्य अर्थ
झलकता साफ-साफ !

सन्देह –

किसी अनपेक्षित
असम्भव घटना का भयानक सन्देह,
अचेतन प्रतीक्षा,
कहीं कोई रेल-ऐक्सीडेंट न हो जाए ।

मानवीकरण –

ओ मेरे आदर्शवादी मन,
ओ मेरे सिद्धान्तवादी मन,
अब तक क्या किया ?
जीवन क्या जिया !!

मुक्तिबोध अलंकारवादी नहीं हैं उन्होंने अपने भावों की अभिव्यक्ति सरल-सुगम भाषा में की है। किन्तु उनके प्रयत्न न करने पर भी अलंकारों ने उनके काव्य में अपना स्थान बना लिया है। उनके काव्य में प्रयुक्त अलंकार सरल, आकर्षक और भावानुकूल हैं। अतः यह कहा जा सकता है कि उनके अलंकार कलावादी मूल्यों से अलग और युग की बदलती संवेदना के अनुरूप हैं ।

4.3.5.4. छन्द-योजना

छन्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है – "छोटी-छोटी सार्थक ध्वनियों के प्रवाहपूर्ण सामंजस्य का नाम छन्द है ।" प्राचीनकाल से आधुनिककाल तक सम्पूर्ण हिन्दी साहित्य में छन्दों का प्रयोग होता रहा है । छायावादी युग में निराला ने छन्दमुक्त कविताएँ लिखना प्रारम्भ कर दिया और प्रगतिवाद, प्रयोगवादी काल में कविता पूर्णतः छन्दमुक्त हो गई।

मुक्तिबोध की अधिकांश कविताएँ छन्दमुक्त हैं। उनका काव्य सौन्दर्य-बोध के लिए छन्दों का मोहताज नहीं था, उनका उद्देश्य अपनी अभिव्यक्ति को सरल और स्पष्ट बनाना था अतः मुक्त छन्दों के विविध प्रयोग कर मुक्तिबोध ने अपनी अनुभूति को साकार रूप दिया है। यद्यपि उनकी कविता में पारम्परिक मात्रिक छन्दों का प्रयोग किया गया है किन्तु वह अव्यवस्थित रूप में प्राप्त होता है। इसके साथ ही उनकी कविता में लय का निर्वाह भी मिलता है, जैसे –

स्वप्न के भीतर एक स्वप्न
विचारधारा के भीतर और
एक अन्य
सघन विचारधारा प्रच्छन्न !!

मुक्तिबोध की कविताओं में ध्वनि योजना के अनुरूप भी छन्दों का प्रयोग किया गया है, 'अँधेरे में' कविता का एक उदाहरण द्रष्टव्य है –

ज़िंदगी के ...
कमरों में अँधेरे
लगाता है चक्कर कोई एक लगातार,
आवाज़ पैरों की देती है सुनाई
बार -बार ... बार-बार
वह नहीं दीखता ... नहीं ही दीखता,
किन्तु, वह रहा घूम
तिलिस्मी खोह में गिरफ्तार कोई एक

4.3.5.5. काव्यभाषा

सफल कवि वही होता है जो अपनी काव्यानुभूति और अभिव्यक्ति के अनुरूप भाषा और शिल्प का निर्माण करने में सक्षम होता है। इस दृष्टि से मुक्तिबोध एक सफल सृजक कवि हैं। उनकी काव्यभाषा काव्यानुभूति के अनुरूप ही विकसित हुई है। उनकी भाषा में सर्वत्र उनके व्यक्तित्व का प्रभाव परिलक्षित होता है। लीक से हटकर चलने वाले मुक्तिबोध की भाषा परम्पराओं और व्याकरण पर निर्भर नहीं है। शमशेर बहादुर सिंह के शब्दों में – "हफ्तों बल्कि महीनों वे (मुक्तिबोध) अपनी लम्बी कविता के टुकड़ों को धीरे-धीरे चिन्तन और कल्पना की ऊर्जा से पुष्ट करते, जोड़ते और बढ़ाते और उसकी अन्तर्योजनाओं को दृढ़ करते जाते।" स्पष्ट है कि वे अपनी भाषा के प्रति अत्यन्त सजग थे।

मुक्तिबोध की काव्यभाषा विभिन्न शब्दावली का मिश्रित रूप है। जिस भाव, विचार या कथन के लिए जो भाषा उचित रही उसी के अनुरूप भाषा बदलती रही। उन्होंने अपनी काव्यभाषा में तत्सम, तद्भव, देशज, अरबी, फ़ारसी, अंग्रेजी सभी प्रकार के शब्दों को सहजता से ग्रहण कर प्रयोग किया है। डॉ० ललिता अरोड़ा के

शब्दों में "उनकी भाषा कभी संस्कृतनिष्ठ सामाजिक पदावली की अलंकृत वीथिका से गुजरती है तो कभी अरबी, फ़ारसी तथा उर्दू के नाज़ुक लचीले हाथों को थाम कर चलती है, कभी अंग्रेजी की इलेक्ट्रिक ट्रेन पर बैठकर जल्दी से खटाक्-खटाक् निकल जाती है और कभी विशाल जनसमूह के शोरगुल और धक्के-मुक्के के बीच एक-एक पर तीव्र दृष्टि डालती हुई रुक-रुक कर चलती है। मुक्तिबोध ने अपनी नयी चेतना की अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया, उसमें स्पष्ट रूप से मुक्तिबोधपन है।"

मुक्तिबोध ने अपनी भाषा की शक्ति को बढ़ाने के लिए मुहावरों और लोकोक्तियों का बड़ा संतुलित प्रयोग किया है। उनके द्वारा प्रयुक्त मुहावरे सम्प्रेषणीयता के गुण से युक्त होने के साथ नवीन अर्थों की व्यंजना भी करते हैं। नारायण मौर्य के शब्दों में "मुक्तिबोध की काव्यभाषा की बहुत बड़ी शक्ति है, 'मुहावरों का प्रयोग'। इतना सटीक और सहज अर्थ देने वाले मुहावरों का प्रयोग आधुनिक हिन्दी काव्य में कम हुआ है। यह मुहावरे अपने आप में एक इकाई से लगते हैं।" उनके काव्य में हमें मुहावरों का पूरा भण्डार मिलता है। कुछ मुहावरे इस प्रकार हैं – सूली पर टाँगना, राह लेना, धर लिया जाना, पंगु होना, दाना चुगना, दरवाजे खुलना, तितर-बितर होना आदि। ये मुहावरे उनकी अभिव्यक्ति को यथार्थ और सार्थक रूप में स्पष्ट करने में महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मुक्तिबोध का काव्य-शिल्प विभिन्न विशेषताओं से युक्त है। उनके द्वारा शिल्प के क्षेत्र में फैंटेसी, बिम्ब, प्रतीक, अलंकार, छन्द, भाषा के अन्तर्गत विभिन्न सार्थक प्रयोगों ने हिन्दी साहित्य जगत् में उनकी विशिष्ट पहचान बनाई और वे आगामी रचनाकारों के लिए प्रेरणा-स्रोत बने।

4.3.6. मुक्तिबोध का जीवन-दर्शन

दर्शन का शाब्दिक अर्थ है, 'देखना'। मनुष्य अपने जीवनकाल में जो कुछ भी देखता-भोगता है, उसके प्रभावस्वरूप उसका एक विशिष्ट दृष्टिकोण निर्मित होता है और यह दृष्टिकोण ही उसका जीवन-दर्शन कहलाता है। मुक्तिबोध का जीवन अभाव, संघर्ष और आर्थिक संकट में व्यतीत हुआ अतः अत्यधिक मानसिक त्रास भोगते हुए उनके जीवन-दर्शन का निर्माण हुआ। जीवन-दर्शन के सम्बन्ध में उनका कथन है कि – "किसी न किसी रूप में हमारे पास व्यापक जीवन-दर्शन आवश्यक है। इसमें अगर कुछ भी ना हो तब भी वे बुनियादी बातें तो हों, जिन्हें साधारण जन अपने हृदय में अनुभव करते हैं, जैसे – अन्याय का प्रतिकार, मानव सभ्यता की स्थापना के प्रयत्न, विकृत स्वार्थवाद और भ्रष्टाचार का विरोध, समझौतापरस्ती के खिलाफ लड़ाई और साधारण भारतीय जनमत के प्रति भक्ति और अनुराग।"

मुक्तिबोध के काव्य का प्रारम्भ छायावादी काव्य-प्रवृतियों के आधार पर ही हुआ, किन्तु बाद में जीवन में प्राप्त कठोर परिस्थितियों ने उन्हें एक नयी काव्य-दृष्टि प्रदान की और उनका काव्य समग्र रूप से जन सामान्य की संवेदना से स्पन्दित हो गया। समसामयिकता, अनुभव की व्यापकता, अनुभूति की सत्यता, विराट् काल्पनिकता और विचारों का अपार भण्डार उनके काव्य के अनिवार्य उपादान के रूप में दिखाई पड़ते हैं। उनके जीवन-दर्शन

को निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है – मार्क्सवाद, पूँजीवाद और शोषण-तन्त्र, सर्वहारा वर्ग, क्रान्ति चेतना, मानवतावाद, समाजवाद।

4.3.6.1. मार्क्सवाद

आधुनिककाल में प्रायः सभी साहित्यकारों पर मार्क्सवाद का न्यूनाधिक प्रभाव पड़ा। मुक्तिबोध भी इसके अपवाद नहीं हैं। उनका लेखन छायावाद से प्रारम्भ हुआ और धीरे-धीरे उनका झुकाव मार्क्सवाद की ओर हो गया। स्वयं मुक्तिबोध के शब्दों में– "क्रमशः मेरा झुकाव मार्क्सवाद की ओर हुआ। अधिक वैज्ञानिक, अधिक मूर्त और अधिक तेजस्वी दृष्टिकोण मुझे प्राप्त हुआ।" तात्पर्य यह है कि मार्क्सवाद के प्रति मुक्तिबोध की आस्था आकस्मिक या भावुकतावश न होकर उनके चिन्तन, गम्भीर अध्ययन तथा अनुभूत वास्तविकताओं के आधार पर जाग्रत् हुई।

मार्क्सवादी दर्शन से ओतप्रोत मुक्तिबोध के काव्य का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति के संशोधन, परिशोधन के द्वारा एक सामाजिक सत्य की उपलब्धि से साक्षात्कार करना है। वे इस युग के सामाजिक संघर्ष को आत्म विश्लेषण के माध्यम से समझकर अपनी अन्तर्वेदना को संगत और पूर्ण निष्कर्षों तक ले जाने वाले कवि हैं। उनके काव्य में मार्क्सवाद के प्रमुख विचारों – द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, ऐतिहासिक भौतिकवाद, मार्क्सवाद : बुनियादी नियम, परिवर्तन तथा रूपान्तरण, परम्परा और प्रगति, वर्ग-संघर्ष, धर्म और ईश्वर का विस्तृत चित्रण मिलता है।

4.3.6.2. पूँजीवाद और शोषण-तन्त्र

मुक्तिबोध पूँजीवादी व्यवस्था के प्रबल आलोचक थे। उनका यह मानना था कि श्रमजीवी मानव-समाज और पूँजीवाद साथ-साथ नहीं चल सकते क्योंकि इस व्यवस्था में पूँजी चन्द व्यक्तियों के नियन्त्रण में होती है, उत्पादन के साधन और सामग्री पर भी उन्हीं का अधिकार होता है। इस व्यवस्था में श्रम को खरीदा जाता है और मुनाफा हड़पना इसका एकमात्र उद्देश्य होता है। उन्होंने अपनी कई कविताओं में पूँजीवादी व्यवस्था का खुलकर विरोध किया है। वे शोषण के खिलाफ आवाज़ उठाने को कवि का पहला कर्त्तव्य मानते हैं इसीलिए उन्होंने अपने काव्य में पूँजीवाद और शोषण के विविध रूपों और आयामों का चित्रण किया है। उन्होंने शोषण की प्रक्रिया को चित्रित करते हुए अपने काव्य में उसे क्रान्ति का कारगर औजार बनाने का भी प्रयास किया है।

4.3.6.3. सर्वहारा वर्ग

मुक्तिबोध के जीवन-दर्शन में मार्क्सवादी-दर्शन को सर्वाधिक महत्त्व मिला है। मार्क्सवाद का मूलाधार सर्वहारा वर्ग है, जो समाज में आर्थिक वैषम्य के कारण शोषित और पीड़ित है। लेनिन के शब्दों – "साहित्य समस्त शोषित वर्ग की सामूहिक मुक्तिके लिए किया जाने वाला प्रयास है" को मानते हुए मुक्तिबोध ने इस वर्ग के दर्द को अपने काव्य में बड़े बेबाक ढंग से व्यक्त किया है। उनकी इसी प्रवृत्ति को लक्ष्य करके डॉ॰ विद्यानिवास मिश्र ने कहा है – "मुक्तिबोध का काव्य ऐसा नर काव्य है, जिसमें नारायण के आँखों की व्यथा भरी है।" मुक्तिबोध

ने अपने काव्य में न सिर्फ़ सर्वहारा वर्ग की समग्र समस्याओं का ही चित्रण किया है वरन् उसकी भरपूर प्रतिष्ठा करते हुए, उसकी विमुक्ति और उद्धार का संकल्प भी उद्भासित किया है।

4.3.6.4. क्रान्ति चेतना

शोषक और शोषित वर्ग में सदैव ही विरोधी भावनाएँ व्याप्त रहती हैं और इसके परिणामस्वरूप इनमें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में अनवरत संघर्ष होते रहते हैं। शोषण के विरुद्ध संघर्ष का भाव ही क्रान्ति है। मुक्तिबोध ने शोषण के अन्त और सर्वहारा वर्ग के उत्थान के लिए क्रान्ति को अनिवार्य माना है। डॉ॰ जनक शर्मा के शब्दों में "मार्क्सवाद की तरह जनक्रान्ति एवं जनसंघर्ष में मुक्तिबोध का विश्वास है। समाज में फैली अव्यवस्था और सत्ताधारियों की निरंकुशता को समाप्त करने के लिए क्रान्ति आवश्यक है। उनका विश्वास है कि एक क्रान्तिपुरुष आएगा, जो नया सवेरा लाने में सफल होगा। उसी का रक्तप्लावित स्वर पीड़ित जनसमुदाय की पराजय का बदला चुकाएगा।"

4.3.6.5. मानवतावाद

मानवतावाद एक लोकतान्त्रिक और नैतिक जीवनदृष्टि है, जो पुष्ट करती है कि मनुष्य के पास अपने जीवन को अर्थ और आकार देने का अधिकार और उत्तरदायित्व है। मुक्तिबोध अपने काव्यजीवन के प्रारम्भ से ही मानवता के सुख-दुःख के भागीदार बने हैं, उनकी दृष्टि, उनकी सोच मानव मात्र के सुख-दुःख पर केन्द्रित रही है। उनके काव्य में मानव के सभी रूप, सभी दुर्बलताएँ और शक्तियाँ प्रतिष्ठित हैं। काव्य प्रयोजन के सम्बन्ध में अपने विचार व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं – "घर में, परिवार में, समाज में मनुष्य को मानवोचित जीवन प्राप्त हो।"

4.3.6.6. समाजवाद

लोकतान्त्रिक मार्ग को अपनाकर व्यक्ति की गरिमा और सामाजिक न्याय की स्थापना करने वाली विचारधारा समाजवाद है। मुक्तिबोध मार्क्सवाद और मानवतावाद के पक्षधर हैं अतः समाजवादी दर्शन के प्रति उनका झुकाव सहज स्वाभाविक है। उन्होंने मानव-कल्याण के लिए समाजवाद की स्थापना के महत्त्व को स्वीकार करते हुए अपने काव्य में पूँजीवादी व्यवस्था के नाश और आम जन-समुदाय के कल्याणकारी, वर्ग-विहीन और शोषणमुक्त समाज की स्थापना को सुन्दर रूप में अभिव्यंजित किया है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि मुक्तिबोध साहित्यिक परम्परा की वह कड़ी है जो अपने अन्दर तीन वाद युगीन परिवर्तन को समेटे हुए है। वे जनवादी, समाजवादी और प्रगतिशील कवि हैं जो विचारों से मार्क्सवादी हैं। उनमें इतिहास-बोध, जीवन-बोध और आधुनिक तनाव से भरा बोध एक साथ दृष्टिगत होते हैं। ये सभी बोध उनके अभ्यन्तर जगत् के संवेदनात्मक बोधों से सम्पृक्त होकर कविता के रूप में ढल गए हैं।

4.3.7. पाठ-सार

मुक्तिबोध ने साहित्य की तीन युग-धाराओं – प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता से जुड़कर न सिर्फ़ हिन्दी-साहित्य को समृद्ध किया वरन् भावी पीढ़ी का भी पथ प्रशस्त किया । उन पर मार्क्सवाद का गहरा प्रभाव था अतः अपने काव्य के माध्यम से उन्होंने पीड़ित मानव की संवेदना का भावसंकुल चित्रण, पूँजीवाद की शोषणकारी व्यवस्था का विरोध और नवीन, शोषणहीन, समाजवादी व्यवस्था की स्थापना का प्रयास किया । उन्होंने कविता, निबन्ध, आलोचना, उपन्यास, कहानी आदि विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई और हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया ।

मुक्तिबोध के काव्य-संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' में संकलित कविता 'अँधेरे में' एक अत्यन्त सशक्त और लम्बी कविता है । इसकी विषय-वस्तु के आधार पर शमशेर बहादुर ने इसे स्वतन्त्रता पूर्व और पश्चात् का इस्पाती दस्तावेज कहा है । इसके आठ खण्डों में फासिस्ट शक्तियों से पैदा होने वाले ख़तरों और उनसे छुटकारा पाने के लिए संभावित जनक्रान्ति दोनों पक्षों को बेहतरीन ढंग से प्रस्तुत किया गया है। मुक्तिबोध ने इसमें मध्यम वर्ग के अन्तर्द्वन्द्व और मानवीय विवशता का प्रभावी चित्रण करते हुए कवि वर्ग को आत्म-अन्वेषण कर प्राप्त होने वाले जीवन सत्यों से आत्म-विस्तार करने की प्रेरणा प्रदान करने के साथ ही वैयक्तिकता से सामाजिकता की ओर पदार्पण करने के लिए भी प्रेरित किया है ।

मुक्तिबोध ने काव्य-सृजन के लिए फैंटेसी शैली को अपनाया और इसके माध्यम से समाज और मानव-मन के द्वन्द्व को सृजनात्मक अभिव्यक्ति दी । मनुष्य की तबाह होती ज़िंदगी और उसमें सक्रिय ताकतों को प्रभावी ढंग से उद्घाटित करने और पाठक की सामाजिक चेतना को विकसित करने में फैंटेसी ने उनके काव्य में महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया । फैंटेसी शैली का प्रयोग करने के कारण उनके काव्य में बिम्ब-विधान, प्रतीक-विधान का सुखद संयोजन देखने को मिलता है। छन्दों और अलंकारों का प्रयोग भी उन्होंने सहज-स्वाभाविक रूप में किया गया है ।

मुक्तिबोध का जीवन-दर्शन कठिन परिस्थिति में निर्मित हुआ, उसके प्रभावस्वरूप उनमें जनसामान्य के प्रति संवेदना का विकास हुआ। उनके काव्य में हमें पूँजीवाद, शोषण तन्त्र का विरोध, क्रान्ति की चेतना, सर्वहारा समाज के प्रति संवेदना और मानवतावादी-समाजवादी भावनाओं का उद्देश्य पूर्ण चित्रण देखने को मिलता है, जो उनके उच्च जीवन-दर्शन का प्रतीक है । अन्ततः हम यह कह सकते हैं कि उनकी कविता आधुनिक भारतीय मनोदशा का महत्त्वपूर्ण दस्तावेज और भारत को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण भाष्य है।

4.3.8. बोध प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'अँधेरे में' कविता किस काव्य-संग्रह में संकलित है? उसका संक्षिप्त परिचय दीजिए।

2. 'अँधेरे में' कविता को एक दहकता इस्पाती दस्तावेज क्यों कहा गया है ?
3. मुक्तिबोध के जीवनकाल में प्रकाशित उनकी पुस्तक का नाम बताते हुए, प्रमुख रचनाओं का विवरण दीजिए।
4. फैंटेसी से आप क्या समझते हैं ?

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. मुक्तिबोध का जीवन-परिचय देते हुए उनकी रचनाओं का विवरण दीजिए।
2. 'अँधेरे में' कविता का मूल प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।
3. 'फैंटेसी' का अर्थ स्पष्ट करते हुए मुक्तिबोध के काव्य में फैंटेसी के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
4. मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प का परिचय दीजिए।
5. मुक्तिबोध के जीवन-दर्शन को स्पष्ट कीजिए।

4.3.9. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. डॉ० सुरेश ऋतुपर्ण, मुक्तिबोध की काव्य दृष्टि, दिल्ली, राधाकृष्ण प्रकाशन, ISBN : 81-711 9-974-7.
2. अशोक चक्रधर, मुक्तिबोध की समीक्षाई, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन, ISBN : 81-711-9-367-6.
3. नन्दकिशोर नवल, मुक्तिबोध : ज्ञान और संवेदना, नयी दिल्ली, राजकमल प्रकाशन।
4. डॉ० प्रभा दीक्षित, मुक्तिबोध एवं नागार्जुन का काव्य-दर्शन, कानपुर, साहित्य निलय।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 4 : प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता

इकाई – 4 : रघुवीर सहाय की राजनैतिक चेतना, रघुवीर सहाय का भाषा-शिल्प

इकाई की रूपरेखा

4.4.0. उद्देश्य कथन
4.4.1. प्रस्तावना
4.4.2. रघुवीर सहाय की राजनैतिक चेतना
    4.4.2.1. समकालीन राजनैतिक बोध
    4.4.2.2. यान्त्रिकता और अमानवीयता का विरोध
    4.4.2.3. इंसानी दुःख-दर्द का यथार्थ दस्तावेज
4.4.3. रघुवीर सहाय का भाषा-शिल्प
    4.4.3.1. प्रतीकात्मक भाषा
    4.4.3.2. लाक्षणिक भाषा
    4.4.3.3. चित्रमयी भाषा
4.4.4. पाठ-सार
4.4.5. उपयोगी ग्रन्थ-सूची
4.4.6. बोध प्रश्न

4.4.0. उद्देश्य कथन

छायावादोत्तर कालखण्ड के साहित्य की अनेक प्रवृत्तियाँ हैं। इस बीच का इतिहास अनेक वादों और धाराओं से होकर विकसित हुआ है। इस समूचे दौर में नूतन जीवनदृष्टि तथा काव्यवस्तु और शिल्पसम्बन्धी नवीन मान्यताएँ उभरी हैं। अज्ञेय, मुक्तिबोध, रघुवीर सहाय जैसे रचनाकारों का काव्यफलक विस्तृत एवं अनुभवपरक है। यूँ तो रघुवीर सहाय की रचनाओं में राजनैतिक अनुभूति का घनत्व अधिक है तथापि उनकी कविताएँ अपनी परिधि में समकालीन प्रश्नों एवं स्वरों से संयुत होकर वैविध्यपूर्ण हो गई हैं। उनके इसी काव्यगत वैशिष्ट्य को केन्द्र में रख प्रस्तुत पाठ में रघुवीर सहाय की राजनैतिक चेतना और भाषा-शिल्प पर विचार किया गया है। इस पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. रघुवीर सहाय की काव्यानुभूति को अनुभूत कर सकेंगे।
ii. रघुवीर सहाय की राजनैतिक चेतना के विविध आयामों से परिचित हो सकेंगे।
iii. रघुवीर सहाय के भाषा-शिल्प का विवेचन करने में समर्थ हो सकेंगे।

4.4.1. प्रस्तावना

कविता अपने मूल में तब तक कविता है, जब तक वह जीवन और परिवेश को संवेदना के धरातल पर अनुभव करके शिल्पगत सौन्दर्य के साथ अभिव्यक्त करती है। कविता जीवन की व्याख्या है, अतः वह ज़िंदगी के तमाम फलसफे को अपनी परिधि में समेटे रहती है। समकालीन कविता अपने युग एवं परिवेश से सम्पृक्त है। रघुवीर सहाय की रचनाओं में युगीन यथार्थ के साथ ही युगीन आशा-निराशा, आकांक्षा-अपेक्षा, राग-विराग, हर्ष व विषाद समाये हुए हैं।

साहित्यकार होने के साथ ही रघुवीर सहाय 'प्रतीक', 'कल्पना', 'दिनमान' और 'नवभारत टाइम्स' जैसे महत्त्वपूर्ण पत्र-पत्रिकाओं में बतौर पत्रकार / सम्पादक सक्रिय रहे हैं। साथ ही एक लम्बे अरसे तक वे आकाशवाणी से भी जुड़े रहे हैं। उनकी पत्रकारिता की शुरुआत वर्ष 1949 ई. में 'नवजीवन' (लखनऊ) से हुई। पत्रकारिता के कार्यक्षेत्र के अनुभव का प्रभाव उनकी रचनाधर्मिता पर देखा जा सकता है। अज्ञेय के सम्पादकत्व में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' के कवि रघुवीर सहाय के छह काव्य-संग्रह प्रकाशित हुए हैं – 'सीढ़ियों पर धूप में' (1960), 'आत्महत्या के विरुद्ध' (1967), 'हँसो-हँसो जल्दी हँसो' (1975), 'लोग भूल गए हैं' (1982), 'कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ' (1989) और 'एक समय था'। 'रास्ता इधर से है' (1972) और 'जो आदमी हम बना रहे हैं' (1982) रघुवीर सहाय के प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं।

अपने कलात्मक चिन्तन तथा रचनात्मक व्यवहार के प्रति विशेष सजग रघुवीर सहाय राजनैतिक चेतना एवं सामाजिक यथार्थ के प्रति सदैव जागरूक रहे हैं। वे समाज व राजनीति को वैज्ञानिक तरीके से समझने के हिमायती हैं। रघुवीर सहाय के रचनाकार व्यक्तित्व पर सार्थक टिप्पणी करते हुए प्रो॰ सुरेश शर्मा लिखते हैं कि "रघुवीर सहाय का कवि हर क्षण सक्रिय रहता था। यह प्रक्रिया इस बात का सबूत है कि वे (रघुवीर सहाय) पत्रकारिता के बीच भी एक कवि की हैसियत से निरन्तर सक्रिय और सचेत रहते थे। सम्भवतः यही कारण है कि उन्होंने अपना अधिकांश काव्य-सत्य पत्रकारिता के इलाके में पाया है, क्योंकि वही उनका जीवन था। उनकी रचनाएँ खबरधर्मी भी इसीलिए हैं। इसी तरह उनकी पत्रकारिता भी काव्यधर्मी है जिसमें मानवीय और संवेदनात्मक प्रसंगों की प्राथमिकता है।"

4.4.2. रघुवीर सहाय की राजनैतिक चेतना

रघुवीर सहाय की कविता राजनैतिक-सांस्कृतिक चेतना का प्रखर रूप लेकर उपस्थित होती है। उन्होंने हिन्दी कविता को राजनैतिक कविता की शक्ति संभावनाओं में ढाला तथा कविता के पुराने साँचे और ढाँचे को ध्वस्त कर उसे एक नये कलेवर में प्रस्तुत किया। उनकी कविताएँ लोकतान्त्रिक विचारधारा से अनुप्राणित हैं जिनमें समग्र जीवन को देखने, सोचने और समझने का साहस और सामर्थ्य मौजूद है। उनकी कविताओं की अन्तर्वस्तु में जीवन और जगत् के बहुआयामी परिवर्तनशील स्वरूपों की मजबूत उपस्थिति के फलस्वरूप राजनैतिक अनुभूतियाँ और मानवीय संवेदनाएँ सर्वत्र ही अनुभव की जा सकती हैं। स्वानुभूत जीवनानुभव,

लोकसम्पृक्ति और चिन्तनशीलता के कारण उनकी कविता अधिक स्थायित्व प्राप्त करती है। वस्तुतः कविता में संवेदना के ताप और भावोष्मा के समानान्तर भाव-गाम्भीर्य का भी ध्वनित होना कठिन है। अपने रचनात्मक वैशिष्ट्य के कारण रघुवीर सहाय बिना किसी वाद से बँधे भी अपनी एक विशिष्ट पहचान स्थिर कर पाए हैं। ध्यातव्य है कि रघुवीर सहाय ने हरेक स्तर पर बोलचाल की अखबारी भाषा के प्रयोग से काव्यात्मकता को पूरी तरह निचोड़ने का भी साहस दिखाया है। उनकी आकांक्षाएँ निजी जीवन के लिए नहीं हैं। यही वह कारण है कि उन्होंने अपने समय की अमानवीय व तुच्छ राजनीति पर 'नये ढंग की कविता' का आविष्कार किया है। स्वभावतः वे कहते हैं –

यह नहीं हो सकता, यह नहीं होगा
शून्य में घोषणा करता है विचारक
पढ़े लिखे लोगों के बीच सिद्ध होता है
कि संवाद मर गया
कर्महीन लोकतन्त्र की मदद करता है विध्वंसक लोकतन्त्र
दोनों मिलकर विचारधारा चलाते हैं
कि कोई विचार नहीं हत्या ही सत्य है
हम भी भयभीत असहाय भी भयभीत है
यों कह कर भीड़ में समर्थ छिप जाते हैं।

(– आत्महत्या के विरुद्ध)

4.4.2.1. समकालीन राजनैतिक बोध

रघुवीर सहाय अपने परिवेश के प्रति सजग हैं और प्रतिबद्ध भी। उनका परिवेश अधिकतया राजनैतिक सन्दर्भों से निर्मित है। काव्य को राजनैतिक दर्शन बनाना आसान है किन्तु कठिनाई राजनैतिक दर्शन को काव्य बनाने में है। कविता को दर्शन में बदलने के लिए परिभाषाकार की ज्ञानात्मक-तथ्यात्मक सजगता अपेक्षित है, परन्तु दर्शन को कविता में बदलने के लिए संवेदनात्मक अनुभूति की गहराई अनिवार्य शर्त है। रघुवीर सहाय इस फर्क की खाई को पाटने में सामर्थ्यवान् हैं। दर्शन की उपस्थिति के आभास से जहाँ कहीं उनकी कविता सिकुड़ जाती है वहाँ भी उनका असीम चिन्तन पाठकों का ध्यानाकर्षित किये बिना नहीं रहता। समकालीन राजनीति की नीयत को महसूस कर वे क्षुब्ध होते हैं। उनकी दृष्टि में सरकार से आशा लगाना व्यर्थ है, क्योंकि अब तक के सभी सजीले स्वप्न मिट्टी में मिल चुके हैं। हमारे राजनेता निरन्तर नारेबाज़ी करके, वायदे करके आम जनता को ठग रहे हैं। मोहभंग की भावना में उनकी संयत अभिव्यक्ति देखिए –

बीस साल,
धोखा दिया गया,
वहीं फिर मुझे,
कहा जाएगा विश्वास करने को,
पूछेगा संसद में,

भोला-भाला मंत्री,
मामला बताओ,
हम कार्रवाई करेंगे,
हाय-हाय करता हुआ,
हाँ-हाँ करता हुआ,
हें-हें करता हुआ,
दल का दल,
पाप छिपा रखने के लिए,
एकजुट होगा;
जितना बड़ा बल होगा,
उतना ही खायेगा देश को।

साहित्यकार के सामाजिक सरोकार गहरे होते हैं इसीलिए प्रायः प्रत्येक संवेदनशील साहित्यकार अपने समय के राजनैतिक परिवेश से किसी न किसी रूप में प्रभावित होता ही है और उसका प्रभाव उसके रचना-कर्म में गाहे-बगाहे समाविष्ट हो ही जाता है। अपने समय की विसंगतियों को उद्घाटित करना साहित्यकार का नैतिक दायित्व भी है। रघुवीर सहाय की रचनाओं में राजनैतिक स्वार्थपरता, घोषणाबाज़ी, नारेबाज़ी, भ्रष्टाचार, झूठे आश्वासन, अनीति और अराजकता के विरुद्ध तिक्तता की पुरजोर अभिव्यक्ति मिलती है। अपने समय में जाति, भाषा, धर्म, वर्ग और क्षेत्र के दायरे में उलझे तथा राजनैतिक षड्यन्त्रों का शिकार हुए शोषित आमजन की दुरावस्था को देखकर वे बेचैन हो उठते हैं। अपने क्षोभ, रोष और आक्रोश को व्यंग्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते हुए वे समकालीन राजनैतिक अनियन्त्रित व्यवस्था पर अत्यन्त निर्ममतापूर्वक प्रहार करते हैं –

संसद का एक मन्दिर,
जहाँ किसी को द्रोही नहीं कहा जा सकता।
दूध पिये मुँह पौंछे आ बैठे,
जीवनदानी, गोददानी सदस्य तोंद सम्मुख धर।
बोले कविता में देश-प्रेम लाना, हरियाना प्रेम लाना,
आइसक्रीम लाना।

कोई भी संवेदनशील व्यक्ति समकालीन राजनीति से निरपेक्ष होकर नहीं जी सकता। रघुवीर सहाय की कविता में उनकी राजनैतिक चेतना पूरे साहस के साथ मुखरित हुई है। समकालीन राजनीति में परिव्याप्त विकृति की ओर सांकेतिक व प्रतीकात्मक शब्दों में उन्होंने पाठकों का ध्यानाकर्षित किया है। बढ़ती हुई राजनैतिक अराजकता की स्थिति में समाज विकास-मार्ग पर जाने की बजाय एक विचित्र आपाधापी की हालत में पहुँच गया है –

हाय-हाय करते हुए
हाँ-हाँ करते हुए

हैं-हैं करते हुए समुदाय
एक हजार लोग ध्यानमग्न सुनते हुए
एक अदद रिरियाता है सियार।

रघुवीर सहाय की कविता विचार एवं चिन्तन पर आधारित कविता है। वे राजनीति का सतही चित्रण नहीं करते, बल्कि पाठक को विचारभूमि की ठोस सतह पर खड़ा करते हैं। अपने 'आत्महत्या के विरुद्ध' कविता-संग्रह उन्होंने राजनैतिक विडम्बनाओं को यथार्थतः प्रकट कर दिया है। जब राजनेताओं की अतृप्त लिप्सा और कर्त्तव्यविमुखता ने राष्ट्र को अधोगामी बना दिया है तब भला रघुवीर सहाय सदृश संवेदनशील और जागरूक कवि मौन कैसे रह सकता है ! अपनी कविताओं में राजनीति और उससे जुड़े तमाम प्रश्नों को उठाते हुए वे स्पष्ट कहते हैं –

देश पर मैं गर्व करने को कहता हूँ
उनसे जो अमीर हैं बड़े स्कूलों में पढ़े हैं
पर उन्हें गर्व नहीं है
गर्व है भूखे प्यासे अधपढ़े लोगों में
गौरव रह गया है अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में
मोहरा बन कर
पड़ोसी को हराने में, यह गर्व मिटता है
यदि पड़ोसी और हमारी जनता की दोस्ती बढ़ती है
बड़े देशों की राजनीति करने के लिए अपनी जनता को
तनाव में रखना पड़ता है।

'धूमिल' की भाँति 'लोकतन्त्र' के तमाशे को रघुवीर सहाय ने भी अनुभव किया है। विवेकशून्य और दिशाहीन राजनीति पर उनका कटाक्ष देखिए –

हर संकट में भारत एक गाय है
ठीक समय पर ठीक बहस नहीं कर सकती
राजनीति
बाद में जहाँ कहीं से भी शुरू करो
बीच सड़क पर गोबर कर देता है विचार।

4.4.2.2. यान्त्रिकता और अमानवीयता का विरोध

समकालीन हिन्दी कविता पर अनजाने ही एकरसता छा रही है जिससे रचनाओं में यान्त्रिकता का खतरा बढ़ गया है। गहरी संवेदनाओं से उपजी रघुवीर सहाय की कविताएँ इस एकरसता को भंग करती है और रचनाओं की भेड़चाल में अपनी एक अलग पहचान बनाती हैं। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त भारत में राजनैतिक-सामाजिक नाकारापन और निषेधात्मक प्रवृत्तियों में विस्तार हुआ। राजनैतिक और प्रशासनिक क्षेत्रों में व्याप्त भ्रष्टाचार ने

भयावह तीव्रता के साथ आधारभूत मानवीय ढाँचे को भी प्रभावित किया। रघुवीर सहाय की कविताएँ जहाँ समसामयिक राजनैतिक-प्रशासनिक ढाँचे को आड़े हाथों लेती हैं, वहीं सामाजिक दुरावस्था के प्रति एक गहन चिन्ता-भाव भी उनकी रचनाओं में प्रकट हुआ है। लोकतन्त्र की उदार व्यवस्थाएँ इतनी फलदायक थीं कि जनता ने ध्वस्त होते हुए सामाजिक-राजनैतिक मूल्यों की चिन्ता छोड़ दी और अपना स्वार्थ सिद्ध करने में लग गए। नव धनाढ्यों की बाढ़-सी आने लगी। राष्ट्र, समाज और नैतिकता की रक्षा करने वाले स्तम्भ धाराशायी होने लगे। मौकापरस्त लोग पाखण्ड, छल-छद्म, मक्कारी और बेईमानी के द्वारा धन-संचय करने लगे। सामाजिक मूल्यवत्ता को नष्ट करने वाले अवसरवादी लोग ही उसी समाज के गणमान्य, कर्णधार और निर्णायक महानुभाव बन बैठे। राजनेताओं के पिछलग्गू लोग उनके प्रभामण्डल से प्रकाशित हो समाज पर आधिपत्य जमाने लगे। राजनेताओं द्वारा मानव-कल्याण व प्राणिमात्र के सुख-सुविधा की घोषणाएँ होती रहीं, अनुदान स्वीकृत होते रहे जबकि वास्तविकता यह थी कि स्थानीय जननायकों का विश्वासघात, स्वार्थपरता और पतित सोच अपने ही समाज को खोखला करने लगीं। ऐसी विकट परिस्थितियों में अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता को सिद्ध करतीं रघुवीर सहाय की कविताएँ अपनी आस्था और विश्वास को दृढ़ रखते हुए जनता को सतर्क करती हैं –

यह शून्य काल है युग बदलने का
बीसवीं शताब्दी जाने से पहले धोखा दे रही है
कि सारे संसार में आ रहा है नवयुग
पीने, उड़ाने, पहनने, खाने का समय
खाने-पीने वाले खुद उसे धोखा समझते हैं
सत्य मानते हैं सिर्फ़ भूखे और प्यासे लोग
जिनको पता होनी चाहिए असलियत।

रघुवीर सहाय सामाजिक यान्त्रिकता और अमानवीयता के खिलाफ विरोध दर्ज करने की सार्थक कोशिश करते हैं। उनकी रचनाओं का परम लक्ष्य मनुष्य है और मानवीय चेतना जागरण हेतु वे सतत प्रयत्नशील हैं। संसार किसी भी उधेड़बुन में लगा हो वे मनुष्यों के जीवन में आने वाले उतराव-चढ़ावों पर नज़र रखते हैं। आम आदमी का जीवन ही उन्हें आकर्षित करता है।

धन, भूमि और सत्ता की ओर से ध्यान हटाने के लिए जनसामान्य को धर्म, संस्कृति और सभ्यता का पाठ पढ़ाया जाता है। व्यवस्था द्वारा स्वयं राष्ट्र-प्रेम, त्याग, कर्त्तव्यनिष्ठा और नैतिकता से विमुख हो जनता को इनके प्रति सचेष्ट होने को प्रेरित किया जाता है। इनके नाम पर अनेकविध उनका शोषण किया जाता है। जनसामान्य की बढ़ती पीड़ा, भूख, अशिक्षा, रुग्णता, बेरोजगारी और आर्थिक अभाव से खिन्न समाज के प्रति समर्पित कवि रघुवीर सहाय को समकालीन राजनैतिक व्यवस्था व तन्त्र के रूखे व्यवहार से ठेस पहुँचती है। क्षुब्धमना वे अपने मनोभाव प्रकट करते हुए कहते हैं –

एक समय था मैं बताता था कितना
नष्ट हो गया है अब मेरा पूरा समाज

तब मुझे ज्ञात था कि लोग अभी भी व्यग्र हैं
बनाने को फिर अपना परसों कल और आज
आज पतन की दिशा बताने पर शक्तिवान्
करते हैं कोलाहल तोड़ दो तोड़ दो
तोड़ दो झोपड़ी जो खड़ी है अधबनी
फिज़ूल था बनाना ज़िद समता की छोड़ दो
एक दूसरा समाज बलवान् लोगों का
आज बनाना ही पुनर्निर्माण है
जिनका अधिकार छीन जिन्हें किया पराधीन
उनको जी लेने का मिलता प्रतिदान है।

(– एक समय था)

रघुवीर सहाय की काव्य-चेतना उनकी निश्छल संवेदना का परिचय देती है। इसलिए राजनैतिक कुचक्र तले यान्त्रिकता और अमानवीयता के विरोध में कई बार कवि स्वयं के विरोध में भी खड़ा दिखाई देता है जो उसके काव्य-विकास का उदात्त पहलू है।

4.4.2.3. इंसानी दु:ख-दर्द का यथार्थ दस्तावेज

जब सामाजिकता के पक्षधर रचनाकर्म में प्रवृत्त होते हैं, तब राजनैतिक व प्रशासनिक कुचक्र में पिसता जनसामान्य ही उनकी दृष्टि में होता है। सभ्यता और राजनीति ने संयुक्त रूप से विश्वासघात कर आमजन का ही शोषण किया है। ऐतिहासिक विवरणों से भी यह सिद्ध है कि सदियों से आमजन का निरन्तर शोषण होता रहा है फिर भी अपने भक्षक से अनजान वह अज्ञानी शोषक वर्ग के सम्मुख हाथ जोड़े खड़ा उसकी जी-हुजूरी करता रहता है। रघुवीर सहाय की कविताएँ अपने में ऐसे अनेक विवरण समेटे हुए हैं। इंसानी दुःख-दर्द को देखने और समझने का उनका अपना दृष्टिकोण है और उस अनूठे दृष्टिकोण की सबसे खास बात यह है कि वे दर्द सहना भी जानते हैं और दर्द देने वाले को प्रताड़ित करने का तरीका भी। वे कर्त्तव्यों को कहीं भूलते नहीं और अधिकार प्राप्त करने का तरीका भी जानते हैं। वे शोषकों और अत्याचारियों के विरुद्ध हर जगह सामान्यजन के साथ खड़े दिखाई देते हैं।

'अनाज के इस्तेमाल' कविता में रघुवीर सहाय ने जनता को समकालीन राजनैतिक कुचक्र का असली रूप दिखाने का सार्थक प्रयास किया है। आजादी के बाद चुनावों के नाम पर सत्ता की छीना-झपटी की जो अखिल भारतीय प्रतिस्पर्द्धा प्रारम्भ हुई है उसने राजनीति में से ईमानदारी, सेवा, त्याग, न्याय, नीति, निष्ठा जैसे तत्त्वों को धकिया कर बाहर निकाल दिया है और उसकी जगह छल-कपट, झूठ, लूट, बेईमानी, धोखा, सौदेबाज़ी और चापलूसी जैसे विध्वंसकारी तत्त्वों को प्रतिष्ठित कर दिया है। समकालीन राजनीति का अर्थ व्यवसाय हो गया है। पहले सत्ता का संरक्षण पाकर जो वर्ग जनसामान्य का शोषण किया करता था अब अपने धन-बल के आधार पर वह सीधे-सीधे सत्ता पर काबिज हो चुका है। अब भी उसका लक्ष्य वही है गोया अब उसकी ताकत में इजाफ़ा हो गया है। ऐसी कुत्सित मानसिकता वाले सत्ताधारियों का आश्रय प्राप्त कर उनके चापलूस भी उन्हीं की राह पर

चलते हुए कमजोर का शोषण कर रहे हैं। परिश्रम कोई नहीं करना चाह रहा। सब नियन्त्रक की भूमिका निभाना चाहते हैं। महज़ बातें बनाने से काम चल जाए ऐसी प्रवृत्ति विकसित हो रही है। 'केवल काम भर चल जाए' इस पर भी सन्तोष कहाँ ! संसार भर के भौतिक संसाधनों का सुख-लाभ उठाने की तृष्णा बलवती हो उठी है। महात्मा गाँधी को श्रद्धेय मानकर इतिश्री समझ ली गई है, उनके जीवन को कोई अपना आदर्श नहीं बनाना चाहता। कैसी भयावह स्थिति है कि कठिन परिस्थितियों में संघर्ष कर कठोर परिश्रम करने वाले वर्ग पर नियन्त्रण और शासन उस वर्ग का है जिसे बातें बनाने और लफ़्फ़ेबाजी के सिवाय कुछ नहीं आता। रघुवीर सहाय बड़ी खिन्नता के साथ इस विसंगति को उजागर करते हैं –

पैदा कम हो रहा है क्योंकि लोग
गुलाम हैं
केवल बात करने वालों की नौकरियाँ
खेत खोदने वालों की नौकरियों पर निर्भर हैं
अब उनकी तनख्वाहें निकल नहीं रही हैं
अनाज का इस्तेमाल तुम चाहते हो
खाने के लिए।
तुम चाहते हो गाढ़े वक़्त में सहारे के लिए
तुम चाहते हो दबा कर
उसी से दूसरों का धन खींचने के लिए।
तुम चाहते हो दूसरों का धन
खींचने का साधन बनाए जाने के लिए
ताकि उस धन से
तुम्हारे राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं की
तनख्वाहें दी जा सकें।

रघुवीर सहाय का कविहृदय प्रत्येक पीड़ित के दुःख से गमगीन है। उनका हृदय जनसामान्य की पीड़ाजन्य स्थिति को अनुभव करता है। वे लेखकीय मर्यादा और उसकी सीमाओं को जानते हैं इसीलिए साहित्यकार वर्ग से उस सीमा से बाहर निकल राजनैतिक-सामाजिक चेतना को जाग्रत् करने का आग्रह करते हैं। वे मनुष्य को साहित्य का केन्द्रबिन्दु मानते हैं और उसी के कल्याण हेतु रचनात्मक निर्वाह चाहते हैं –

... साहित्य के संकरे मोर्चे यहाँ बंद हो जाते हैं
और यह बात लेखकगण कभी जान नहीं पाते
इसीलिए लेखक हो जाने के साथ-साथ
लेखक न रहना ज़रूरी है।
रचना के धर्म में कभी तो पवित्रता त्याग कर
लेखक काग़ज कलम की पूजा के बिना
लेखक बना रहे।

सभ्यता के परिवर्तित होते स्वरूप के साथ कविकर्म कठिन होता जा रहा है। समकालीन परिवेश में वही कविता श्रेष्ठ है जो जीते हुए आम आदमी के यथार्थ का, उसके रोजमर्रा के संसार का सूक्ष्म निरीक्षण-विश्लेषण करे और अपने में समाहित कर ले। रघुवीर सहाय की कविताएँ इस मायने में श्रेष्ठ हैं। उनके रचनाएँ लेखकीय दायित्वों का निर्वहन करने में सफल हुई हैं। आम आदमी के साधारण संसार से उनका रिश्ता सहज, मानवीय, सरल, आत्मीय और जीवन्त है। राजनैतिक तन्त्र द्वारा पीड़ित एवं शोषित जनसाधारण के दुखों जैसे भ्रष्टाचार, दुराचार, अनैतिकता, जातिवाद, भाषावाद आदि का स्वर उनकी रचनाओं में मुखरित है जिन पर उनकी संवेदना का मार्मिक आवरण छाया हुआ है।

4.4.3. रघुवीर सहाय का भाषा-शिल्प

रघुवीर सहाय कभी बँधी-बँधाई परिपाटी में चलने के समर्थक नहीं रहे। उनकी रचनाओं की विषयवस्तु में परम्परा से हटकर समसामयिक विसंगतियों का उद्घाटन हुआ है। यही बात उनके शैली-शिल्प में भी देखने में आती है। वे काव्य-कला में नूतन प्रयोग के हिमायती हैं। भाषिकविधान के आलोक में वे विषयानुकूल भाषा एवं शब्दों का चयन करने में सतर्कता बरतते हैं। पत्रकारिता सुदीर्घकाल तक उनका कर्म-क्षेत्र रहा है इसलिए उनका शब्द-भण्डार अक्षय है। किन्तु वे इसके लिए सजग हैं कि काव्य की भाषा सामान्य बोलचाल की भाषा से भिन्न होती है। शब्दों की आत्मा को पहचानकर काव्य में उनका सटीक प्रयोग करना रघुवीर सहाय बखूबी जानते हैं। वे काव्य में शब्दों के मर्म को भली प्रकार पहचानते हैं और शब्दों की आत्मा तथा उनकी शक्ति-सामर्थ्य का उन्हें बखूबी अंदाज़ा है। तभी तो वे अपने द्वारा प्रयुक्त शब्दों के माध्यम से व्यंजित अर्थों से परमाणु सदृश विस्फोट कर पाते हैं। यह रघुवीर सहाय का कौशल ही है कि वे शब्दों को संगठित कर और कहीं-कहीं उन्हें तोड़कर नयी सार्थक भाषा तैयार करना जानते हैं।

रघुवीर सहाय की रचनाओं में जिस भाषा में काव्याभिव्यक्ति की गई है, वह पत्रकारिता की भाषा से बहुत हद तक प्रभावित है। यही कारण है कि ऊपरी तौर पर वह सामान्य बोलचाल की भाषा प्रतीत होती है। हालाँकि, उन्होंने सामान्य शब्दों का प्रयोग कर उन्हें नवीन अर्थवत्ता प्रदान की है। वे आवरणयुक्त भाषा के स्थान पर खुली और स्पष्ट भाव व्यक्त करने वाली भाषा का प्रयोग करते हैं। अपनी कविताओं में वे बोधगम्य भाषा का प्रयोग करते हैं, इसलिए दृश्य तथा वातावरण की सजीवता को बनाए रखने के लिए वे 'बोली' में किसी तरह का अनावश्यक परिवर्तन न कर उसे जैसा है, उसी रूप में प्रस्तुत कर देते हैं। भाषा में उन्होंने नये बिम्ब, नये प्रतीक और नये उपमानों की खोज भी की है। उनका प्रत्येक शब्द अन्तर्निहित भाव को सम्पूर्णता में व्यक्त करता है। रघुवीर सहाय की भाषागत विशेषताओं का निरूपण उनकी प्रतीकात्मक भाषा, लाक्षणिक भाषा और चित्रमयी भाषा के सन्दर्भ में किया जा सकता है।

4.4.3.1. प्रतीकात्मक भाषा

रघुवीर सहाय अपनी कविताओं में प्रतीकात्मकता का भरपूर आश्रय लेते हैं। प्रतीकों के द्वारा उन्होंने अनेक सूक्ष्म रूपों एवं व्यापारों की सार्थक अभिव्यंजना की है। इसी से उनकी रचनाओं में अपूर्व चमत्कार की स्वाभाविक सृष्टि हुई है। उदाहरण द्रष्टव्य है –

जब से मैंने यह कविता लिखी है
कट रहे जंगल के छोर पर राजमार्ग के समीप
सब दिन मरे पड़े मिलते हैं नौजवान
लाश का हुलिया सुन कोई जानता नहीं कौन था
मान लिया जाता है कैसे मरा होगा
मरने का कारण अब थोड़े ही शेष है
हुलिया भी संक्षिप्त होता जा रहा है
जितने कम कपड़े उतना छोटा हुलिया
चेहरे पर जाति की छाप मिट रही है
गाँव के सयाने तो मौत का कारण हताशा बताते हैं
समवयस्क समवेत स्वर में अनेक नाम लेते हैं
पर उसका नाम है हत्या।

4.4.3.2. लाक्षणिक भाषा

जहाँ सामान्य भाषा प्रभावी नहीं होती है, वहाँ लक्षणा शब्दशक्ति का प्रयोग करके भाषा की सामर्थ्य को बढ़ाया जाता है और इस प्रकार उसकी सम्प्रेषणीयता को निश्चित किया जाता है। रघुवीर सहाय अपनी कविताओं में लाक्षणिकता का प्रयोग सन्दर्भानुकूल करते हैं। उदाहरण देखिए –

यह युग है जिसका अन्त हमें दिखता है
पर अगले युग का आरम्भ नहीं जानते
मनहूस शून्य के अथाह में पाँव नहीं टिकते हैं
हम डूबते नहीं उतराते रहते हैं
बार-बार यह कोशिश है कि हर एक संवाद
अर्थहीन हो जाए
लोगों के सम्बन्ध मध्यस्थों द्वारा बना करें
आज इन टूटते रिश्तों को सार्वजनिक मान्यता देते हैं अध्येता
करते हैं प्रबन्ध की एक शैली का उद्घाटन
जनता के साधनों से नये लाभ की।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है –

मुझे एक लम्बी लम्बी लम्बी छुट्टी दो
मैं अपने कागजों को सँभालूँगा
कितनी तरह के उबड़-खाबड़ कागज हैं ये
इनके बीच से पिरो कर अपने दर्द को निकालूँगा
बाहर भय है भय है भय है
जाने क्यों आशा है कि इनको फिर से सजाने से
भय मिट जाएगा।

4.4.3.3. चित्रमयी भाषा

चित्रमयी भाषा का प्रयोग रघुवीर सहाय का रचनात्मक वैशिष्ट्य है। उनमें किसी दृश्य, घटना का प्रसंगानुकूल संश्लिष्ट चित्र प्रस्तुत करने की अद्‌भुत क्षमता विद्यमान है। इस आलोक में उनकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं जिनमें कवि ने 'समय आ गया है' वाक्यांश के ध्वन्यात्मक प्रभाव के माध्यम से वर्तमान लोकतान्त्रिक व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार की चित्रमय अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है –

दस बरस बाद फिर पदारूढ़ होते ही
नेतराम पदमुक्त होते ही न्यायाधीश
कहता है समय आ गया है
मौका अच्छा देखकर प्रधानमंत्री
सुन्दर नौजवानों से कहता है गाता बजाता
हारा हुआ दलपति।

समवेततः रघुवीर सहाय की भाषा में नवीनता भी है और अंदर तक झकझोर देने का सामर्थ्य भी। साथ-ही-साथ वह गहरी अर्थवत्ता से युक्त भी है। उनका भाषागत यथार्थ कविताओं को विचारों से जोड़ता है। प्रो॰ नामवर सिंह के शब्दों में "उनके यहाँ आवेश में हाँफते हुए स्वर की धारा है। इसीलिए एक वाक्य जैसे दूसरे वाक्य के अंदर घुसा हुआ तीसरे वाक्य को आगे धक्का देता सा प्रतीत होता है। लेकिन, आविष्ट लय का यह प्रवाह उनकी कविता के भाव एवं अर्थ से पूरी तरह बेझिझक जुड़ा हुआ है।"

4.4.4. पाठ-सार

शास्त्रीय अर्थ में रघुवीर सहाय न तो प्रगतिवादी हैं, न प्रयोगवादी और न ही नयी कविता के कवि। उन्होंने कभी किसी वाद के वशीभूत होकर कविता नहीं लिखी। प्रपद्यवादी कवियों की तरह रघुवीर सहाय घोषणापूर्वक अथवा संकल्पापूर्वक खेत-खलिहान या मजदूर-किसान पर कविता लिखने नहीं बैठते। पगडंडी, खेत-खलिहान, श्रमिक बस्ती सभी उनकी संवेदना का अंग हैं। चूँकि, राजनीति का सीधे-सीधे मानवीय जीवन में सर्वाधिक दखल है, इसलिए समकालीन रचनाकार इस पर विचार करने के लिए एक तरह से बाध्य हो जाता है। फिर भी रचनात्मक परिदृश्य में समकालीन राजनीति को रघुवीर सहाय केवल 'राजनीति' के तौर पर स्वीकार नहीं करते हैं। जहाँ भी

शोषण है, अन्याय है, विषमता है, भ्रष्टाचार है, अत्याचार है, कपट है, दिखावा है, आडम्बर है, वहाँ-वहाँ उनकी संवेदना खुद-ब-खुद ही उपस्थित है। उनकी रचनात्मक संवेदना में नयी कविता की मूल प्रवृत्तियाँ इतनी सहजता से समाहित हो गई हैं कि उन्हें समकालीन कविता का 'सहज नागरिक' कहा जा सकता है।

4.4.5. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. वाजपेयी, नन्ददुलारे, आधुनिक साहित्य, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
2. वाजपेयी, नन्ददुलारे, हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.
3. जैन, निर्मला, आधुनिक साहित्य : मूल्य और मूल्यांकन, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
4. नवल, नन्दकिशोर, आधुनिक कविता का इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली.
5. सिंह, नामवर, कविता के नये प्रतिमान, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.
6. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, नयी कविता : एक साक्ष्य, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद.
7. शर्मा, सुरेश, रघुवीर सहाय का कवि कर्म, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.
8. कुमार, कृष्ण (सं.), रघुवीर सहाय संचयिता, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली.

4.4.6. बोध प्रश्न

टिप्पणी लिखिए –

1. रघुवीर सहाय की वैचारिकता।
2. रघुवीर सहाय की पत्रकारिता।
3. रघुवीर सहाय की कविताओं में राजनैतिक बोध।
4. रघुवीर सहाय की काव्य-चेतना।
5. रघुवीर सहाय की भाषा।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. "रघुवीर सहाय की कविताओं में जितनी समृद्ध काल-संसक्ति है, उतनी ही घनीभूत राजनैतिक चेतना भी है।" अपनी सम्मति प्रकट कीजिए।
2. "रघुवीर सहाय की काव्यभाषा के विभिन्न रूपों की लघु दृश्यावली उनके भाषिकविधान की प्रयोगधर्मिता को और अधिक स्पष्ट कर देती है।" परीक्षण कीजिए।

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. कवि रघुवीर सहाय सम्बन्धित हैं –

(क) तारसप्तक से

(ख) दूसरा सप्तक से
(ग) तीसरा सप्तक से
(घ) चौथा सप्तक से

2. रघुवीर सहाय का सम्पादकीय दायित्व जुड़ा रहा है –
(क) प्रतीक से
(ख) कल्पना से
(ग) दिनमान से
(घ) उपर्युक्त सभी से

3. निम्नलिखित में से कौनसा रघुवीर सहाय-कृत काव्य-संग्रह नहीं है ?
(क) सीढ़ियों पर धूप में
(ख) आत्महत्या के विरुद्ध
(ग) हँसो-हँसो जल्दी हँसो
(घ) रास्ता इधर से है

4. किस समाचार पत्र के साथ रघुवीर सहाय ने अपनी पत्रकारिता की शुरुआत की ?
(क) नवजीवन
(ख) दिनमान
(ग) प्रतीक
(घ) नवभारत टाइम्स

5. रघुवीर सहाय का बहुचर्चित काव्यसंग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध' का प्रकाशन किस वर्ष हुआ ?
(क) 1957 ई.
(ख) 1959 ई.
(ग) 1967 ई.
(घ) 1969 ई.

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/

❖❖❖

खण्ड – 4 : प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता

इकाई – 5 : मिथकीय चेतना और नयी कविता, कुँवर नारायण की मिथकीय चेतना

इकाई की रूपरेखा

4.5.0 उद्देश्य
4.5.1 प्रस्तावना
4.5.2 मिथक : अर्थ एवं स्वरूप तथा मिथक का काव्य से सम्बन्ध
    4.5.2.1 मिथक की परिभाषा
    4.5.2.2 मिथक के प्रकार
    4.5.2.3 मिथक और साहित्य
    4.5.2.4 मिथक और नयी कविता
4.5.3 कुँवर नारायण का काव्य
4.5.4 कुँवर नारायण की मिथकीय चेतना
    4.5.4.1 कुँवर नारायण के प्रबन्ध काव्यों में मिथकीय चेतना
        4.5.4.1.1 आत्मजयी
        4.5.4.1.2 वाजश्रवा के बहाने
    4.5.4.2 कुँवर नारायण की मुक्तक कविताओं में मिथकीय चेतना
4.5.5 पाठ-सार
4.5.6 बोध प्रश्न

4.5.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

i. मिथक की परिभाषा, प्रकार एवं नयी कविता में मिथकों की भूमिका के बारे में जान सकेंगे।
ii. मिथक का साहित्य से क्या सम्बन्ध है, समझ सकेंगे।
iii. कुँवर नारायण के रचना-संसार का परिचय प्राप्त कर सकेंगे।
iv. यह भी जान सकेंगे कि कवि ने किस प्रकार प्राचीन मिथकों को काव्य का विषय बनाया है तथा मिथकों के प्रयोग द्वारा भाषा को सहज, सम्प्रेषणीय एवं प्रवाहमयी बनाया है।

4.5.1 प्रस्तावना

कुँवर नारायण आधुनिक हिन्दी कविता के एक असाधारण साहित्यकार हैं। उनका जन्म 19 सितम्बर, 1927 को उत्तरप्रदेश के फैजाबाद जनपद में हुआ था। यद्यपि वे मूलतः कवि हैं फिर भी उन्होंने साहित्य की सभी प्रमुख विधाओं समीक्षा, कहानी, सिनेमा, निबन्ध आदि को भी अपनी लेखनी का विषय बनाया है। उनका कथ्य

और शिल्प वैविध्यपूर्ण है। कवि की यथार्थ से पहचान पक्की है और उस यथार्थ को अभिव्यक्त करने वाली भाषा सरस, व्यंग्यपूर्ण एवं प्रवाहमयी है। इसीलिए उसमें यथार्थ का खुरदुरा स्पर्श है साथ ही उसका सहज सौन्दर्य भी। उनमें समाज, राजनीति, व्यवसायीकरण आदि को लेकर एक दूरदर्शी चिन्ता है जिसके केन्द्र में लोकचिन्ता है। कवि ने मिथकीय एवं ऐतिहासिक सन्दर्भों द्वारा वर्तमान के यथार्थबोध को व्यापक, गम्भीर एवं विवेकी बनाने का प्रयास किया है।

नयी कविता के सशक्त हस्ताक्षर कवि कुँवर नारायण की पहचान अपनी रचनाशीलता में इतिहास और मिथक के जरिए वर्तमान को समझने एवं देखने के लिए जानी जाती है। कवि ने 'आत्मजयी' एवं 'वाजश्रवा के बहाने' सदृश प्रसिद्ध प्रबन्धकाव्यों के कथ्य का चयन कठोपनिषद् से किया है। कथानक में थोड़ा परिवर्तन भी किया है, परन्तु आधार कथा की वस्तु स्थितियों में भिन्नता नहीं हुई है। कवि ने मानवीय द्वन्द्व के माध्यम से कथानक को गति दी है।

इस प्रकार, इस पाठ में मिथक का अर्थ एवं उसके स्वरूप, भेद, मिथकों का साहित्य से सम्बन्ध, कुँवर नारायण का काव्य एवं उसकी मिथकीय चेतना के विषय में जानने का प्रयास किया जाएगा।

4.5.2 मिथक : अर्थ एवं स्वरूप तथा मिथक का काव्य से सम्बन्ध

मिथकीय समीक्षा आधुनिक आलोचना की एक विशेष प्रणाली है। जैसे-जैसे आलोचकों का मिथक के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है, वैसे-वैसे विद्वानों में मिथक की अवधारणा भी जटिल होती जा रही है। कुछ विद्वान् 'मिथक' शब्द की व्युत्पत्ति अंग्रेजी से मानते हैं तो कुछ संस्कृत से। जिन विद्वानों ने मिथक की व्युत्पत्ति अंग्रेजी से मानी है उनमें डॉ॰ नगेन्द्र, डॉ॰ रमेश कुन्तल मेघ, डॉ॰ पाण्डेय शशिभूषण शीतांशु एवं डॉ॰ पशुपति नाथ उपाध्याय सदृश विद्वान् हैं। डॉ॰ नगेन्द्र का विचार है – "मिथक अंग्रेजी के 'मिथ' शब्द का हिन्दी पर्याय है और अंग्रेजी 'मिथ' शब्द यूनानी भाषा के 'माइथस' से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है 'आप्तवचन' अथवा 'अतर्क्य कथन'। ... मिथक' संस्कृत का सिद्ध शब्द नहीं है। संस्कृत में इसके निकटवर्ती दो शब्द हैं – (i) 'मिथस्' या 'मिथः – जिसका अर्थ है परस्पर और (ii) मिथ्या, जो असत्य का वाचक है। यदि मिथक का सम्बन्ध 'मिथस्' से स्थापित किया जाए तो इसका अर्थ हो सकता है सत्य और कल्पना का परस्पर अभिन्न सम्बन्ध अथवा ऐकात्म्य। मिथ्या से सम्बन्ध जोड़ने पर 'मिथक' का अर्थ 'कपोल कथा' बन जाता है।' (मिथक और साहित्य, पृ. 6-7)

डॉ॰ उषा पुरी वाचस्पति ने मिथक का सम्बन्ध संस्कृत से स्थापित किया है। उनका स्पष्ट कहना है – "भारतीय साहित्य में प्रयुक्त 'मिथक' शब्द पाश्चात्य मिथ अथवा माइथालॉजी का पर्याय नहीं है। मिथक के आविर्भाव के विषय में विद्वानों में मतभेद है तथापि यह निश्चित है कि इसके मूल में संस्कृत का 'मिथ' विद्यमान है – अंग्रेजी का नहीं। पाश्चात्य देशों में 'मिथ' अथवा 'माइथलॉजी' काल्पनिक कथाओं पर आधारित होती है जबकि संस्कृत में 'मिथ' धातु का अभिप्राय प्रत्यक्ष दर्शन भी है तथा दो का मिलन भी। मूलतः भौतिकता और

आध्यात्मिकता का योग मिथकों का मूल आधार है। मिथ धातु में कर्त्तवाचक 'क' जोड़कर मिथक शब्द का निर्माण हुआ है। (भारतीय मिथकों में प्रतीकात्मकता, पृ.-1)

4.5.2.1 मिथक की परिभाषा

मिथक के सम्बन्ध में अनेक पाश्चात्य एवं भारतीय समीक्षकों ने गम्भीर चिन्तन किया है। पहले पाश्चात्य विचारकों द्वारा की गई मिथक की परिभाषाओं का अध्ययन कर लिया जाए –

युंग के अनुसार – "मिथक पहला, अग्रवर्ती और प्रधान चितिपरक तत्त्व है, जो आत्मा की प्रकृति का उद्घाटन करता है।" (मनोवैज्ञानिक और मिथकीय आलोचना : डॉ॰ पाण्डेय शशि भूषण शीतांशु के पृ.- 114 से उद्धृत)।

अर्नस्ट कैसिरेर के मत से – "मिथकीय संसार नाटकीय संसार होता है। क्रिया-व्यापारों, शक्ति ऊर्जाओं और संघर्षपरक शक्ति-क्षमताओं से भरा संसार। मिथकीय कल्पनाओं में विश्वास अन्तर्भुक्त होता है। (मनोवैज्ञानिक और मिथकीय आलोचना : डॉ॰ पाण्डेय शशि भूषण शीतांशु के पृ.- 115 से उद्धृत)।

मार्क शोरर के अनुसार – "मिथक एक बृहत् नियन्त्रक बिम्ब है जो सामान्य जीवन के तथ्यों को दार्शनिक अर्थ प्रदान करता है।" (मिथक और साहित्य : डॉ॰ नगेन्द्र के पृ.- 6 से उद्धृत)।

रिचर्ड चेज के अनुसार – "एक मिथक एक कहानी है, वृत्तान्त या काव्य साहित्य है, यह एक कला है, महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि यह उसी सीमा तक किसी संज्ञान या पद्धति, किसी विचार या चिन्तन की व्यवस्था और किसी जीवन का मार्ग है, जिस सीमा तक कोई भी कला है।" (मनोवैज्ञानिक और मिथकीय आलोचना के पृ.- 115 से उद्धृत)।

बेलेक और वारेन के मत से – "कोई भी ऐसी गुमनाम कहानी जो उत्पत्ति और नियति के विषय में बताती है, मिथक है।" (मनोवैज्ञानिक और मिथकीय आलोचना के पृ.- 115 से उद्धृत)।

भारतीय समीक्षकों ने भी मिथक को भिन्न-भिन्न रूपों में अभिव्यक्त किया है। उनकी मान्यता है कि मिथक शब्द का प्रयोग देवी-देवताओं अथवा अति प्राकृत पात्रों, और मानव जीवन के परे, किसी (सुदूर) काल की असाधारण घटनाओं एवं परिस्थितियों से सम्बद्ध आख्यानों के लिए होता है।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार – "मिथक तत्त्व वास्तव में भाषा का पूरक है। सारी भाषा इसके बल पर खड़ी है। आदि मानव के चित्त में संचित अनेक अनुभूतियाँ मिथक के रूप में प्रकट होने के लिए व्याकुल रहती हैं। ... मिथक वस्तुतः ऐसे सामूहिक मानव भाव निर्मात्री शक्ति की अभिव्यक्ति है जिसे कुछ मनोवैज्ञानिक 'आर्किटाइपल इमेज' आद्यबिम्ब कहकर सन्तोष कर लेते हैं।" (डॉ॰ हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थमाला, खण्ड-7, पृ.-85)।

डॉ० नगेन्द्र के मत से – "मिथक का अर्थ है ऐसी परम्परागत कथा जिसका सम्बन्ध अतिप्राकृत घटनाओं और भावों से होता है। मिथक मूलतः आदिम मानव के समष्टि मन की सृष्टि है जिसमें चेतन की अपेक्षा अचेतन प्रक्रिया का प्राधान्य रहता है। मिथक की रचना उस समय हुई जब मानव और प्रकृति के बीच विभाजक रेखा स्पष्ट नहीं थी – दोनों एक सार्वभौम जीवन में सहभागी थे।" (मिथक और साहित्य, पृ.-7)।

डॉ० विजयेन्द्र स्नातक के अनुसार – "मिथक तत्त्व माया की भाँति ही मनुष्य की निश्चित सर्जना शक्ति का विलास है। यह ऊपर से देखने में असत्य या अन्धविश्वास भले प्रतीत हो, किन्तु गम्भीरतापूर्वक विचार करने पर उसमें किसी प्रच्छन्न या परोक्ष सत्य को पा लेना कठिन नहीं है।" (भारतीय मिथक, कोश भूमिका)।

डॉ० शीतांशु के मत से – "मिथक आत्मा की प्रकृति की उद्घाटिका एक चितिपरक सत्ता है। यह अचेतन की चेतन अभिव्यक्ति और ब्रह्मा की अथक शक्तियों की सांस्कृतिक विवृत्ति है। यह अघटनीय की सम्भाव्यता, उत्पत्ति और नियांत-विषयक गुमनाम कथा और वर्तमान की संगति के नजरिए से अतीत की, की गई निर्वचन व्याख्या है। उसमें नाटकीयता, संघर्षपरक शक्ति क्षमता व विश्वसनीयता के तेवर मिलते हैं।" (मनोवैज्ञानिक और मिथकीय आलोचना, पृ.-115)।

डॉ० रमेश कुन्तल मेघ के अनुसार – "मिथक वाक् का एक आद्य / पुरातन रूप है जो बाद में समझ में नहीं आई। इस वाक् (भाषा) का अर्थ रूपक, अन्योपदेश (एलिगरी), नीतिकथा (पैरेबल्स), कर्मकाण्ड (रिचुअल), आद्यबिम्ब (रूप) के धुँधले चिह्नों या संकेतों की अधिभाषा (मेटा लैंग्वेज) तथा आदिभाषा (प्रोटो-लैंग्वेज) तथा रूपकात्मक भाषा (मेटा-फारिकल लैंग्वेज) के मिथिधुँध में झिलमिलाता, कँपकँपाता रहता है। अतः इसका उद्गम (भाषा की) अर्थभ्रान्ति में ढूँढ़ा जाता रहा है, ('वह तेजस पुरुष उषा-रमणी का अरुणोन्मत्त होकर पीछा कर रहा है' = सूर्य उषा के बाद उगता है।) अतः मिथक का अर्थ गोपित, ग्रंथित, कूटस्थ, अवगुण्ठित होता है। इसके विश्लेषण की कई आधुनिक विधियाँ विकसित हुई हैं।" (साक्षी है सौन्दर्य प्राश्निक, पृ.-285)।

डॉ० पशुपति नाथ उपाध्याय के मत से – "मिथक आदिम मानव मस्तिष्क की प्राकृतिक संवेदना है जिसमें कथात्मकता की अभिव्यक्ति होती है। मिथक पुरामानव के आनुभविक वैचारिक रहस्यमय प्राकृतिक तथ्यों की कथात्मक अभिव्यक्ति है। इसमें धार्मिक एवं अलौकिक तथ्यों, कथ्यों एवं सत्यों की सहजानुभूति की प्रस्तुति होती है।" (मिथकीय समीक्षा, पृ.-49)।

उपर्युक्त परिभाषाओं-लक्षणों का अध्ययन करने के उपरान्त कहा जा सकता है कि – मिथक आदिम मानव मस्तिष्क की एक प्रतीक मूलक वर्णनात्मक कथा है जिसमें मानव जाति के अवचेतन के सामूहिक अनुभव के कर्मकाण्डीय एवं अनुष्ठानिक संस्कार आस्था, विश्वास एवं निष्ठा के साथ सुरक्षित होते हैं। मिथक के सम्बन्ध में कहा जा सकता है –

i. मिथक का रूप कथात्मक होता है जिसमें आस्था एवं विश्वास का भाव निहित होता है।
ii. मिथक के लिए दन्तकथा, पुरावृत्त, धर्मगाथा, पुराकथा और पुराख्यान शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है।

iii. मिथक की रचना में कल्पना का अनिवार्य योगदान होने पर ही उसकी प्रतीति सत्य रूप में ही होती है।

iv. मिथक में प्रकृति का मानवीकरण होता है। दैनन्दिन अनुभवों के तथ्यों की मिथकों से रूपान्तरित करने वाला सर्वप्रथम कारण प्रकृति की चेतनता है, जिसका सर्वोच्च रूप मानवीकरण को माना जाता है।

v. मिथक में मानव का प्रकृतीकरण ही होता है। अवतारों एवं लोकनायकों के चरित्र में इसे देखा जा सकता है। मानवीय मुखमण्डल के चारों ओर सूर्य और चन्द्रमा की शान्त दिव्य ज्योति के वलय का निरूपण मिथकीय उत्स से ही होता है।

vi. मिथकों में लोकमंगल एवं लोककल्याण काभाव निहित होता है।

vii. प्रबन्ध रचनाओं में मिथक जनश्रुति, लोकास्था, पुराख्यान या महान् व्यक्तियों के आदर्शों पर आधारित होते हैं।

4.5.2.2 मिथक के प्रकार

मिथक का क्षेत्र बहुत व्यापक है और उसका विस्तार असीमित है। कुछ विद्वानों ने इसे कई प्रकारों में विभाजित किया है। ए. जी. गार्डनर ने मिथक को निम्नानुसार विभाजित किया है –

(i) ऋतु परिवर्तन एवं प्राकृतिक परिवर्तन से सम्बन्धित मिथक
(ii) प्राकृतिक तत्त्वों से सम्बन्धित मिथक
(iii) विशिष्ट प्राकृतिक तत्त्वों से सम्बन्धित मिथक
(iv) सृष्टि उत्पत्ति से सम्बन्धित मिथक
(v) देवोत्पत्ति से सम्बन्धित मिथक
(vi) मानव एवं पशु उत्पत्ति से सम्बन्धित मिथक
(vii) रूपान्तरण एवं आवागमन से सम्बन्धित मिथक
(viii) चरित नायक, परिवार एवं राष्ट्र से सम्बन्धित मिथक
(ix) सामाजिक संस्थाओं एवं आविष्कारों से सम्बन्धित मिथक
(x) मृत्यु एवं स्वर्ग नरक सम्बन्धी मिथक
(xi) दानवों एवं राक्षसों से सम्बन्धित मिथक
(xii) प्रख्यात एवं ऐतिहासिक घटनाओं से सम्बन्धित मिथक

ए. जी. गार्डनर के इस वर्णन में अतिव्याप्ति दोष है। इसमें अनावश्यक विस्तार है। एच. जे. रोज ने मिथकों के तीन प्रकार ही किए हैं –

(i) सृष्टि सम्बन्धी मिथक
(ii) प्रलय सम्बन्धी मिथक
(iii) देवताओं के प्रणयाचार सम्बन्धी मिथक

डॉ॰ नगेन्द्र ने प्राकृतिक पदार्थों का सम्बन्ध भी मिथक से माना है। इन्होंने मिथक के चार प्रकार बताये हैं –

(i) उत्पत्ति सम्बन्धी मिथक
(ii) प्रलय सम्बन्धी मिथक
(iii) चरित नायकों अथवा दैवीय चरित्रों (देव-दानव) के प्राचीन एवं ऐतिहासिक वृत्त
(iv) प्रकृति सम्बन्धी मिथक

काव्य के अध्ययन के लिए डॉ॰ नगेन्द्र का मिथकों का वर्गीकरण उचित प्रतीत होता है।

4.5.2.3 मिथक और साहित्य

काव्य में मिथक का उपयोग प्रारम्भ से हो रहा है। काव्य में जीवन एवं समाज की सहज, सरस एवं सार्थक अभिव्यक्ति होती है। मिथक जीवन के लिए अपरिहार्य हैं। आई. ए. रिचर्ड्स ने 'कॉलरिज ऑन इमैजिनेशन' में कहा है कि मिथक के बिना मनुष्य आत्मा रहित क्रूर पशु की तरह हो जाएगा। यदि मनुष्य द्वारा अर्जित इन मिथकीय परम्पराओं को एकाएक समाप्त कर दिया जाए, तब भी मानव नये-नये मिथक गढ़ लेगा। इसका प्रमुख कारण है – मिथक का मानवीय वृत्तियों से सम्बद्ध होना। मानव में सृजन की इच्छा सदैव बलवती रही है और उसकी इस अभिव्यक्ति का प्रमुख माध्यम मिथक रहा है। काव्य भी मानव की अनुभूतियों एवं मानसिक वृत्तियों की अभिव्यक्ति का माध्यम है। अतः मिथक एवं काव्य का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध होना स्वाभाविक है।

डॉ॰ रमेश कुन्तल मेघ ने मिथक को मनुष्य का आदिम काव्य कहा है। (मिथक और स्वप्न, पृ.-176) भावात्मकता, कल्पनाशीलता, प्रतीकात्मकता, चित्रात्मकता, रहस्यानुभूति जैसे तत्त्व मिथक और साहित्य – दोनों में विद्यमान होते हैं। इन तत्त्वों के उभयधर्मी होने पर भी मिथक और काव्य एक नहीं हैं। मिथक की सर्जना में सार्वकालिक, सार्वभौमिक एवं निर्वैयक्तिक सामूहिक अवचेतन की क्रियाशीलता रहती है। यही कारण है कि इसमें बिम्ब एवं प्रतीक भाव-प्रतिमा से निर्मित होते हैं। इस प्रकार मिथक आर्केटाइप्स (आदिम प्रारूपों) का पुनरान्वेषण हैं। काव्य के बिम्ब एवं प्रतीक व्यक्तिगत अवचेतन एवं चेतना से सम्पन्न होतेहैं। यह अलग बात है कि काव्य में प्रयुक्त ये बिम्ब एवं प्रतीक रूढ़ हो जाते हैं।

कवि अपने देश के मिथकों से विषयवस्तु ग्रहणकर रचना का विकास करता है, उसे अपनी पारम्परिक संस्कृति से सम्पृक्त करता है। लचीलापन होने के कारण एक ही मिथक प्रत्येक युग की वास्तविकता को अभिव्यक्त करने के लिए नवीन सन्दर्भ से जुड़ने में भी सक्षम रहा है। राम की कथा को काव्य का विषय बनाना इसी प्रकार का उदाहरण है। तुलसीदास ने राम की कथा को 'नानापुराणनिगमागमसम्मत' बनाया तो उसी मिथक को मैथिलीशरण गुप्त ने 'साकेत', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' ने 'राम की शक्तिपूजा' एवं नरेश मेहता ने 'संशय की एक रात' में नवीन भावों एवं विचारों से विभूषित करके विस्तार दिया है। अतः इतना स्पष्ट है कि मिथकों की पुनरावृत्ति न होकर उसकी पुनर्रचना एवं पुनर्व्याख्या होती है।

4.5.2.4 मिथक और नयी कविता

हिन्दी की कविता आदिकाल से ही मिथकों से प्रभावित होती रही है। यहाँ की जनता पौराणिक आख्यानों से प्रेरित-प्रभावित होती रही है। जहाँ एक ओर नयी कविता यथार्थवादी है, उसमें लघुमानव की प्रतिष्ठा है, भावाभिव्यक्ति में नये उपमानों एवं नवीन प्रतीकों को अपनाया गया है वहीं दूसरी ओर इन कवियों ने पौराणिक मिथकों को नये विचारों से समन्वित करके उन्हें अपने काव्य का विषय भी बनाया है। राम के मिथक को वाल्मीकि, तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, निराला, नरेश मेहता आदि कवियों ने आधार बनाया परन्तु सभी ने उस मिथक को युगानुरूप नयी अर्थवत्ता प्रदान की है।

नयी कविता में अनेक कृतियाँ हैं जिनकी कथा का स्रोत इतिहास एवं पुराण है। इन मिथकीय रचनाओं में प्रमुख हैं – अन्धा युग, कनुप्रिया (धर्मवीर भारती), संशय की एक रात (नरेश मेहता), महाप्रस्थान (देवराज), एक कण्ठ विषपायी (दुष्यन्त कुमार), शम्बूक (जगदीश गुप्त), सूर्यपुत्र (जगदीश चतुर्वेदी), एक पुरुष और (विनय) आदि। इस प्रकार कहा जा सकता है कि नयी कविता मिथकीय चेतना की दृष्टि से समृद्ध है।

4.5.3 कुँवर नारायण का काव्य

कुँवर नारायण का काव्य बहुविध है। वे प्रमुखतः कवि हैं परन्तु उन्होंने साहित्य की प्रमुख विधाओं में भी लेखन कार्य किया है। उनकी प्रकाशित कृतियाँ निम्नवत् हैं –

कविता-संग्रह	:	चक्रव्यूह (1956), तीसरा सप्तक (1959), परिवेश-हम-तुम (1961), अपने सामने (1979), कोई दूसरा नहीं (1993), इन दिनों (2002)।
खण्डकाव्य	:	आत्मजयी (1965), वाजश्रवा के बहाने (2008)।
कहानी-संग्रह	:	आकारों के आस-पास (1973)।
समीक्षा	:	आज और आज से पहले (1998), मेरे साक्षात्कार (1999), साहित्य के अन्तर्विषयक सन्दर्भ (2003), तट पर हूँ पर तटस्थ नहीं (भेंटवार्ताएँ) (2010), रुख (2014)।
पुरस्कार	:	हिन्दुस्तानी अकादमी पुरस्कार, प्रेमचन्द पुरस्कार, तुलसी पुरस्कार, केरल का कुमारन आशान पुरस्कार, व्यास सम्मान, शलाका सम्मान (हिन्दी अकादमी, नयी दिल्ली), उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, कबीर सम्मान, पद्मभूषण।

हिन्दी के वरिष्ठ कवि और ज्ञानपीठ से सम्मानित कवि कुँवर नारायण का 90 वर्ष की उम्र में 15 नवम्बर, 2017 को मस्तिष्क आघात के कारण निधन हो गया।

4.5.4 कुँवर नारायण की मिथकीय चेतना

प्रसिद्ध कवि, कथाकार और आलोचक कुँवर नारायण का समकालीन साहित्य में विशिष्ट स्थान है। उन्होंने वर्तमान को जाँचने-परखने एवं देखने के लिए मिथक का अधिक उपयोग किया है। मिथक के उपयोग और प्रभाव के विषय में वे स्वयं कहते हैं– "रामायण और महाभारत इस हद तक भारतीय जनमानस में रचे-बसे हैं कि लगता है आज भी अगर उस जनमानस तक कोई सन्देश पहुँचाना है तो वह इन दोनों महाकाव्यों के माध्यम से भी पहुँचाया जा सकता है। चाहे वह सन्देश आधुनिक हो या प्राचीन, ये दोनों स्रोत उसके लिए एक सहज जनमार्ग की तरह हैं, जो कभी भी पुराने नहीं पड़े – उन पर लगातार आवाजाही और चहल-पहल रही है। वाल्मीकि के राम से लेकर गाँधी के राम तक एक अटूट परम्परा है। रामायण के राम और महाभारत के कृष्ण मिलकर भारतीय मानस की वह बृहत् भावभूमि बनाते हैं जिनके पीछे हजारों साल का मिथकीय इतिहास है – जिसे घटनात्मक इतिहास से अलग करके समझना ज़रूरी है। इतिहास मरता है पर मिथक कभी नहीं मरता। मिथक बार-बार जन्मता है और हर बार पहले से कहीं अधिक सशक्त और प्रभावी होकर हमारे समय में उपस्थित रहता है।" (शब्द और देश काल, पृ.-65)

इस प्रकार मिथकों के सम्बन्ध में कुँवर नारायण की दृष्टि एकदम स्पष्ट है। वे अपने भावों, संवेदनाओं, विचारों को जनमानस में प्रभावशाली एवं स्थायी रूप से सम्प्रेषित करने के लिए मिथकों का प्रयोग करते हैं। कविता में एक साथ कई सन्दर्भ निहित होते हैं, जिन्हें कवि पाठक तक पहुँचाना चाहता है। कुँवर नारायण ने इसीलिए उपनिषदों या अन्य क्लासिक महाकाव्यों (रामायण, महाभारत आदि) के मिथकों से अपने कथ्य एवं शिल्प को समृद्ध किया है।

4.5.4.1 कुँवर नारायण के प्रबन्ध काव्यों में मिथकीय चेतना

साठोत्तरी कविता में, जिन रचनाकारों ने प्रबन्धात्मक काव्य की रचनाएँ की हैं, उनमें कुँवर नारायण का नाम प्रमुख है। 'आत्मजयी' एवं 'वाजश्रवा के बहाने' इनके प्रमुख खण्डकाव्य हैं जिनका प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ से क्रमशः 1965 एवं 2008 में हुआ है। मिथकीय चेतना की दृष्टि से इन दोनों रचनाओं पर विचार किया जाए –

4.5.4.1.1 आत्मजयी

कुँवर नारायण औपनिषदिक परम्परा के प्रतिष्ठित कवि हैं। 'आत्मजयी' (1965) रचना की विषय-वस्तु 'कठोपनिषद्' पर आधारित है। इस खण्डकाव्य की कथा 28 शीर्षकों में विभक्त है जिसमें कवि ने मृत्यु के प्रति अपनी दृष्टि उजागर की है। नचिकेता के माध्यम से कवि ने आधुनिक विचारशील मानव की समस्या को उठाने का प्रयास किया है। 'आत्मजयी' की भूमिका में कवि ने कहा है – 'आत्मजयी' में उठायी गई समस्या मुख्यतः एक विचारशील की समस्या है। कथानक का नायक नचिकेता मात्र सुखों को अस्वीकार करता हैः तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्ति-भर ही उसके लिए पर्याप्त नहीं है। उसके अन्दर वह बृहत्तर जिज्ञासा है जिसके लिए

केवल सुखी जीना काफी नहीं है, सार्थक जीना ज़रूरी है। यह जिज्ञासा ही उसे उन मनुष्यों की कोटि में रखती है जिन्होंने सत्य की खोज में अपने हित को गौण माना, और ऐन्द्रिय सुखों के आधार पर ही जीवन से समझौता नहीं किया, बल्कि उस चरम लक्ष्य के लिए अपना जीवन अर्पित कर दिया जो उन्हें पाने के योग्य लगा।" ('आत्मजयी' - भूमिका, पृ.-5)

नयी कविता में निराशा, विसंगतियों, घुटन एवं बोझिल स्थितियों का चित्रण होता है परन्तु 'आत्मजयी' में इनके विरुद्ध मानवीय बोध की संघर्ष चेतना की अभिव्यक्ति हुई है। प्रायः अस्तित्ववाद को पश्चिमी विचारक सार्त्र से जोड़कर देखा जाता है परन्तु भारतीय दर्शन एवं भारतीय चिन्तन में सदैव जीवन और मृत्यु, अस्तित्व और अनस्तित्व सम्बन्धी चिन्ता विद्यमान रही है। आज के भौतिकतावादी चकाचौंधयुक्त जीवन के अभ्यस्त मनुष्य के हृदय से उदात्त मानवीय भाव लुप्त हो रहे हैं। उसके चित्त में अनास्था, कुण्ठा, हताशा तथा मृत्यु का भय व्याप्त है। इसीलिए नचिकेता वाजश्रवा से सहिष्णुता, साहसिकता, शील, सत्य एवं जिजीविषा की सार्थकता की बात करता है –

असहमति को अवसर दो। सहिष्णुता को आचरण दो
कि बुद्धि सिर ऊँचा रख सके ...
उसे हताश मत करो काइयाँ स्वार्थों से
हरा-हरा कर।
अविनय को स्थापित मत करो,
उपेक्षा से खिन्न न हो जाए कहीं
मनुष्य की साहसिकता।

इस प्रकार कवि ने पीढ़ियों के संघर्ष के माध्यम से युगीन जीवन के सन्दर्भों के चित्रण हेतु सफल प्रयास किया है। कवि ने समकालीन सन्दर्भों को महत्त्व दिया है।

जीवन के पूर्णानुभव के लिए किसी ऐसे मूल्य के लिए जीना आवश्यक है जो जीवन की अनश्वरता का बोध कराए। यही मनुष्य को सान्त्वना दे सकता है कि मर्त्य होते हुए भी वह किसी अमर अर्थ में जी सके। मृत्यु मानव-जीवन का सबसे बड़ा, निश्चित परन्तु समय में अनिश्चित ऐसा भय है जिसके कारण उसे सम्पूर्ण संसार अनर्थक लगने लगता है। इस मृत्यु के भय का अतिक्रमण मनुष्य की सृजनात्मक क्षमता ही कर सकती है। कवि कुँवर नारायण 'आत्मजयी' को मूलतः जीवन की सृजनात्मक सम्भावनाओं में आस्था के पुनर्लाभ की कहानी बताते हैं। कवि का मानना है –

अब यह जग पर्याप्त नहीं है।
यह प्रदत्त संसार
तुझे स्वीकार नहीं है।
अपना कुछ विशेष
अब तुझको रचना होगा,

अपने ही भीतर उठते
इस महाप्रलय के
अन्धनाश से बचना होगा।
तुझमें अब कृतित्त्व का कारण –
कारण को आकाश चाहिए
तुझमें स्रष्टा की व्याकुलता,
उसको एक विकास चाहिए ...

– (आत्मजयी, पृ.-97)

‘आत्मजयी’ का हिन्दी साहित्य में एक प्रबन्धकाव्य के रूप में विशिष्ट स्थान है। इसका कथानक कठोपनिषद् के नचिकेता प्रसंग पर आधारित है। मरणशील होते हुए भी मनुष्य अमर अर्थ में जी सके – इसी का सन्धान आत्मजयी का काव्य-विषय है। डॉ॰ रामस्वरूप चतुर्वेदी का विचार है – “ ‘आत्मजयी’ की समस्या युग-युग की समस्या है। इसी से किसी युग विशेष का सन्दर्भ उससे नहीं जुड़ता। अपने स्वरूप में वह वैसी ही बेलौस है जैसी कि कठोपनिषद् की कथा। कविता पर कहीं-कहीं दर्शन के छा जाने का यह एक और कारण है। सच तो यह है कि कविता कठोपनिषद् में जाकर भी कविता बनी रहती है, यह वैसा ही है जैसा यम के दरवाजे से नचिकेता का वापस आ जाना : ‘आत्मजयी’ यों अपने शीर्षक को प्रमाणित करता है।” (नयी कवितायें : एक साक्ष्य, पृ.-110)

4.5.4.1.2 वाजश्रवा के बहाने

हिन्दी के वरिष्ठ कवि कुँवर नारायण के काव्य ‘वाजश्रवा के बहाने’ का प्रकाशन भारतीय ज्ञानपीठ द्वारा सन् 2008 में किया गया। इस काव्य के दो खण्ड हैं – (क) नचिकेता की वापसी, एवं (ख) वाजश्रवा के बहाने। ‘आत्मजयी’ की भाँति इस काव्य का उपजीव्य ग्रन्थ भी कठोपनिषद् है। वैसे वाजश्रवा का अर्थ है – अन्नदानी के रूप में जाना जाने वाला व्यक्ति। परन्तु इस काव्य के वाजश्रवा वैदिककालीन कर्मकाण्ड, लौकिकता, लेन-देन एवं सांसारिक रीति-नीति में दक्ष पिता के रूप में चित्रित हुए हैं। यज्ञ की पूर्णाहुति के लिए दान देने के समय वाजश्रवा बूढ़ी गायों को दान में देते हैं। इसे देखकर नचिकेता को दुःख होता है, क्योंकि वह जानता है कि दान में स्वयं की प्रिय वस्तु को देना चाहिए। अतः नचिकेता अपने पिता से पूछता है कि मैं आपका सबसे प्रिय हूँ, मुझे आप किसे दान में देंगे ? नचिकेता द्वारा बार-बार यह प्रश्न किए जाने पर वाजश्रवा क्रोध में कहते हैं कि “मैं तुम्हें मृत्यु को देता हूँ।” पिता के वचनों को शिरोधार्य कर नचिकेता यमलोक के द्वार पर पहुँचते हैं। यमराज बाहर गए हुए हैं। तीन दिन प्रतीक्षा करने के बाद यम आते हैं तथा बालक के साहस और सत्त्व को देखकर नचिकेता से तीन वर माँगने एवं घर लौट जाने को कहते हैं।

यमराज के बहुत प्रयास के बाद नचिकेता मानता है और तीन वरदान माँगता है – (i) घर वापसी तथा पिता के क्रोध का शमन, (ii) स्वर्गप्राप्ति की प्रविधि का ज्ञान, एवं (iii) जीवन एवं मृत्यु के रहस्य का ज्ञान। यमराज नचिकेता को प्रलोभन देते हैं कि वह गूढ़ ज्ञान के बदले संसार की सारी सम्पदा माँग ले। परन्तु नचिकेता सारे

प्रलोभन ठुकराता है। यमराज उसे गूढ़ ज्ञान देते हैं और नचिकेता आत्मज्ञानी बनकर पिता के पास वापस लौटता है।

'आत्मजयी' और 'वाजश्रवा के बहाने' – दोनों काव्यों के विषय जीवन, मृत्यु, प्रेम, शोक आदि हैं लेकिन दोनों काव्यों के कथ्य में थोड़ा अन्तर है। कवि के अनुसार, 'वाजश्रवा के बहाने' जीवन के इसी प्रबल आकर्षण के स्पर्धा की चेष्टा है। इस जिजीविषा के विभिन्न आयाम चाहे भौतिक हों या आत्मिक, चाहे बौद्धिक (दार्शनिक) हों या भावनात्मक, तत्त्वतः वे हैं जैविक ही। 'आत्मजयी' में यदि मृत्यु की ओर से जीवन को देखा गया है, तो 'वाजश्रवा के बहाने' में जीवन की ओर से मृत्यु को देखने की कोशिश की गई है।

कुँवर नारायण का काव्य जीवन का काव्य है, जिजीविषा का काव्य है, शक्ति का काव्य है। शक्ति के दो रूप हैं – (i) उग्र एवं विस्फोटक तथा (ii) संयत, उदार एवं अनुशासित। निरालाजी ने 'राम की शक्तिपूजा' में शक्ति के इन दोनों रूपों को चित्रित किया है। 'वाजश्रवा के बहाने में' शक्ति के संयत, उदार एवं अनुशासित स्वरूप का चित्रांकन है। कवि कुँवर नारायण की विशेषता यही है कि वे मिथकीय चरित्रों में नवीन अर्थ को योजित करते हैं। वाजश्रवा के चरित्र में क्षमा-भाव, पश्चाताप एवं वात्सल्य आदि को दिखाया गया है जो कि लोकमानस की वाजश्रवा-छवि से अलग है, उदाहरणार्थ –

उसका रुदन जैसे एक स्तवन से
गूँज उठा हो भुवन का कोना-कोना
वह छा गया है आक्षितिज
व्योम से परे तक
प्रदीप्त है
लोक परलोक।

पिता और पुत्र के सम्बन्ध में प्रायः द्वन्द्व रहा करता है। यह द्वन्द्व पीढ़ी अन्तराल के कारण पनपता है। यही पीढ़ी अन्तराल ही दुःख और तनाव का कारण बनता है। वाजश्रवा के माध्यम से कवि यही वास्तविकता पाठकों के समक्ष रखता है –

जानता हूँ
दीमक लगी चौखटों की
बासी नक्काशियों को पार कर
भुतही हवेलियों में पाँव रखते
झिझकेगा एक नवागत पुत्र का भविष्य-बोध

जीवन के विभिन्न कालों में मनुष्य के लिए जीवन का अर्थ भी बदलता रहता है। जीने का वास्तविक लक्ष्य एवं अर्थ भी बदलता रहता है। जीवन का यह यथार्थ उसे बहुत बाद में समझ में आता है –

कठिन होता है समझ पाना जीने का अर्थ
आयु के चौथे पहर में
जब बदल जाते हैं
युद्ध और शान्ति के अर्थ
तब हम केवल जीतने के लिए नहीं
केवल न – हारने की लड़ाई लड़ते हैं ।

'वाजश्रवा के बहाने' में कवि ने शाश्वत प्रश्नों के साथ-साथ सामयिक प्रश्नों को उठाया है । इस काव्य की भाषा सहज, सरल और सरस है । भाषा एवं काव्य-शिल्प में वैविध्य है । इस रचना में जीवन के आलोक का रेखांकन है । जीवन का आनन्द समन्वय बनाये रखने में है और यह रचना दो पीढ़ियों के बीच समन्वय बनाये रखने के समझदार ढंग को रूपायित करती है ।

4.5.4.2 कुँवर नारायण की मुक्तक कविताओं में मिथकीय चेतना

कुँवर नारायण के प्रमुख काव्य-संग्रह हैं – चक्रव्यूह, परिवेश : हम-तुम, अपने सामने, कोई दूसरा नहीं, इन दिनों, एवं हाशिए का गवाह । इन काव्य संग्रहों में छोटी-छोटी कविताएँ हैं जिनमें विषय वैविध्य है । इन रचनाओं में प्रेम, सामाजिक यथार्थ, जन्म, मृत्यु, इतिहास एवं मिथक – सब समाहित है । उनके सभी काव्य-संग्रहों में मिथकीय चेतना देखी जा सकती है । वे कविता को मन की दुनिया कहते हैं और उनके मन में वेद, उपनिषद, रामायण एवं महाभारत के प्रति गहरी निष्ठा है । कवि ने अपनी कविताओं में पौराणिक प्रतीकों को आधुनिक सन्दर्भों में प्रस्तुत किया है ।

महाभारतकालीन अनेक घटनाओं को कवि ने अपनी कविता का विषय बनाया है । 'चक्रव्यूह' शीर्षक कविता में अभिमन्यु के प्रसंग को आधार बनाकर कवि ने आधुनिक मानव की अपरिचित ज़िंदगी का संघर्षपूर्ण चित्र प्रस्तुत किया है –

मैं नवागत वह अजित अभिमन्यु हूँ
प्रारब्ध जिसका गर्भ से ही हो चुका निश्चित,
अपरिचित ज़िंदगी के व्यूह में फेंका हुआ उन्माद,
बाँधी पंक्तियों को तोड़
क्रमशः लक्ष्य तक बढ़ता हुआ जयनाद :
मेरे हाथ में टूटा हुआ पहिया,
पिघलती आग सी संध्या,
बदन पर एक फूटा कवच,
सारी देह क्षत-विक्षत,
धरती खून में सनी ज्यों सभी लथपथ लाश,
सिर पर गिद्ध सा मँडला रहा आकाश ...

– (चक्रव्यूह, पृ.-135)

अच्छाई का बुराई से संघर्ष अनवरत चलता रहता है। महाकवि जयशंकर प्रसाद ने 'कामायनी' में कहा है कि –

देवों की विजय दानवों की हारों का होता युद्ध रहा
संघर्ष सदा उर अन्तर में जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।

कुँवर नारायण 'चक्रव्यूह' में लिखते हैं –

यह महासंग्राम,
युग-युग से चला आता रहा महाभारत,
हजारों युद्ध, उपदेशों, उपाख्यानों, कथाओं में
छिपा वह पृष्ठ मेरा है
जहाँ सदियों पुराना व्यूह, जो दुर्भेद्य था, टूटा

– (चक्रव्यूह, पृ.-136)

अन्धकार पर प्रकाश की विजय का मिथक कवि को बहुत प्रिय है। ज्योति विनम्रता का प्रतीक है तो अन्धकार गर्व और घमण्ड का। 'जन्मसिद्ध अधिकार' कविता में कवि ने उस मिथक का प्रयोग किया है जिसमें कृष्ण दूत बनकर दुर्योधन के पास पाँच गाँव माँगने के लिए जाते हैं –

लपलपाता अन्धकार,
ज्योति का अन्धकार सविनय माँगता
कुछ भूमि;
"नहीं दूँगा नोक भर स्थान"
... कहता अन्धकार :
पंच तत्त्वों की अपरिमिति शक्ति
छल से बद्ध,
कौरवों की सभा हारी,
द्रोपदी की शिखा सहमी
प्रार्थना की एक मुद्रा-लौ
ज्योति ओढ़े खड़ी शंकित
चेतना के बीच सहसा
खींच ले कब तमस-दुःशासन।

– (चक्रव्यूह, पृ.-107)

उपर्युक्त मिथक कवि को बहुत प्रिय है। उसे लगता है कि जीवन का आनन्द समन्वय एवं सामंजस्य में है। 'अपठनीय' कविता में भी कवि ने इस मिथक का सार्थक प्रयोग किया है –

सूई की नोक बराबर धरती पर लिखा
भगवद्गीता का पाठ
इतना विराट्
कि अपठनीय

– (इन दिनों, पृ.-14)

कवि ने भावों एवं विचारों के सम्प्रेषण के लिए मिथक का रमणीय प्रयोग किया है। प्रातःकाल आकाश में किरणों के प्रसार के लिए बावनावतार के मिथक का प्रयोग किया गया है। वामन विष्णु के पाँचवें तथा त्रेतायुग के पहले अवतार थे। वह विष्णु के ऐसे अवतार थे जो बौने ब्राह्मण के रूप में प्रकट हुए। भागवत कथा के अनुसार विष्णु ने इन्द्रलोक पर पुनः अधिकार स्थापित करने के लिए यह अवतार धारण किया। राजा बलि ने देवलोक पर अधिकार स्थापित कर लिया था। वामन एक बौने ब्राह्मण के रूप में बलि के पास गए और अपने रहने के लिए तीन कदम के बराबर भूमि माँगी। वामन ने अपना आकार इतना इतना बढ़ा लिया कि पहले कदम में पूरा भूलोक और दूसरे कदम में पूरा देवलाक नाप लिया। तीसरे कदम के लिए कोई भूमि बची ही नहीं। तब बलि ने तीसरा कदम रखने के लिए अपना सिर प्रस्तुत कर दिया। प्रातःकालीन किरणों के प्रसार बावन (बौने) वामनावतार विष्णु के चरणों के फैलाव की तरह है –

वन्दना के स्वर उभरते,
हर्ष के पंखी चहकते,
एक बावन किरण बढ़कर छा गई आक्षितिज
तीनों लोक पग से नापकर

कृष्ण और सुदामा की मैत्री का मिथक प्रसिद्ध है। इस मिथक को कवि ने आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार प्रस्तुत किया है –

कैसी बाँसुरी ? कैसा नाच ? कौन गिरिधारी ?
जिस महल को तुम
भौंचक खड़े देख रहे
वह तो उसका है
जिसकी कमर की लचकों में
हीरों की खान है।
बहुत भोले हो सुदामा,
नहीं समझोगे इस कौतुक को ......।

कुँवर नारायण की एक प्रसिद्ध कविता है – 'अयोध्या, 1992'। राम के मिथक को आधुनिकता से जोड़ते हुए कवि कहता है –

हे राम,
जीवन एक कटु यथार्थ है
और तुम एक महाकाव्य !
तुम्हारे बस की नहीं
उस अविवेक पर विजय
जिसके दस-बीस नहीं
अब लाखों सिर लाखों हाथ हैं,
और विभीषण भी अब
न जाने किसके साथ है ।

कवि मानता है कि "ग्रीक माइथॉलोजी में, मिथक इतिहास की तरह हैं लेकिन हमारे यहाँ वे आज भी जीवित हैं। कई बार लगता है यथार्थ से अधिक हमारे यहाँ मिथक जीवित हैं। और वे भावभूमि को ही नहीं, यथार्थ जीवन को प्रभावित करते हैं, कभी अच्छे के लिए, कभी बुरे के लिए। यह एक चैलेंज है कि मिथक, जो जीवित हैं उनका इस्तेमाल कैसे करें ।" एक साक्षात्कार में लीलाधर मंडलोई द्वारा जब मिथक के कुरूपीकरण पर प्रश्न पूछा गया तो कवि का उत्तर था – "हाँ, राम का मिथक ! जिस पर मैंने 'अयोध्या-92' कविता लिखी । मैंने इस मिथक के कुरूपीकरण के खिलाफ ही कविता में लिखा । क्योंकि यह मिथक एक सामाजिक खलल की तरह सामने पेश हुआ जो तकलीफदेह था ... ।" (तट पर हूँ तटस्थ नहीं, पृ.-23)

इस प्रकार कुँवर नारायण के काव्य में आदि से लेकर अन्त तक मिथकीय सन्दर्भों को देखा जा सकता है। उन्होंने विदेशी मिथकों को भी अपनी रचनाओं में प्रयुक्त किया है । 'ट्यूनीशिया का कुआँ', 'शाहनामा', 'इब्नेबतूता', 'नीरो का संगीत प्रेम' जैसी कविताएँ इसका उदाहरण हैं। कवि के मिथकों की एक बड़ी विशेषता उनका आधुनिक सन्दर्भों में प्रयोग है । पुरुषोत्तम अग्रवाल के शब्दों में कहा जा सकता है – "मिथकों के प्रति गम्भीर संवेदनशीलता रखते हुए कुँवर नारायण उन्हें न तो जबरन इतिहास बनाते हैं, न उनमें अपने समकालीन राजनैतिक आग्रहों को ठूँसते हैं। भाषा के प्रति संवेदनशील कवि जानता है कि मिथकों की वास्तविक सार्थकता उनकी बहुलार्थ सम्भाव्यता में ही है; सुज्ञात, सुपरिभाषित ऐतिहासिक तथ्य या व्यक्ति बन जाने में नहीं । कवि मिथक की पुनर्रचना करता है । इस पुनर्रचना में उसके अपने आग्रहों का आना स्वाभाविक, बल्कि निर्णायक है, लेकिन इस पुनर्रचना की विश्वसनीयता, कवि के अभिप्रेत को व्यंजित कर सकने की क्षमता पुनः भाषा के उसी नाजुक संतुलन पर निर्भर करती है। मिथक-वस्तु की रक्षा करते हुए ही अपने समय के सरोकारों से जोड़ने का यह प्रयत्न एक भी शब्द की लापरवाही से विफल हो सकता है। सन्दर्भ मिथकों, किंवदन्तियों या ऐतिहासिक व्यक्तियों का हो, चाहे आस-पास के पर्यवेक्षण का, कुँवर नारायण भाषा के संतुलन को हाथ से छूटने नहीं देते।" (प्रतिनिधि कविताएँ, पृ.-11)

4.5.5 पाठ-सार

मिथक का आधुनिक चिन्तन में विशेष महत्त्व रहा है। अनेक आधुनिक कृतियाँ और विचारधाराएँ मिथक सम्बन्धी चिन्तन से घनिष्ठ रूप से जुड़ी हैं। मिथकीय प्रयोगों से साधारणीकरण और सम्प्रेषणीयता में वृद्धि होती है। मिथक का रूप कथात्मक होता है तथा इसमें आस्था और विश्वास का भाव विद्यमान रहता है। पौराणिक अतीत हमारी स्मृति का हिस्सा भी है और हमारी मानसिकता में प्रतीक के रूप में जीवित और सक्रिय भी है। कवि मानता है कि पौराणिक चरित्र मनुष्य की आशाओं-निराशाओं, आकांक्षाओं, पराजयों जैसी मूल भावनाओं के कल्पित नायकों और खलनायकों की प्रतिछवियाँ हैं।

कुँवर नारायण आधुनिक हिन्दी कविता के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उन्होंने यथार्थ को समझा है। उनकी कविताएँ आधुनिक मानव की पीड़ा, संवेदना और जिजीविषा को प्रकट करती हैं। इस यथार्थबोध को कवि ने मिथकीय चेतना से और अधिक व्यापक, गम्भीर और विवेकवान् बनाया है। कुँवर नारायण के दो प्रबन्धकाव्यों – 'आत्मजयी' और 'वाजश्रवा के बहाने' का कथानक मिथक पर आधारित है। इन दोनों का उपजीव्य ग्रन्थ कठोपनिषद् है, जिनके माध्यम से कवि ने मृत्यु एवं जीवन विषयक सार्थक चर्चा की है। 'आत्मजयी' में कवि ने आत्म एवं अनात्म के समन्वय की खोज की है। कवि की बहुत सी मुक्तक रचनाओं का कथानक भी मिथकों पर आधारित है। उनके मिथकों की सबसे बड़ी विशेषता उनका आधुनिक सन्दर्भों में प्रयोग है। उनके मिथकों की पौराणिक विश्वसनीयता भी बनी रही है तथा वे समकालीन सन्दर्भों से जुड़कर नवीन प्रतीकात्मक अर्थ की अभिव्यंजना करने में भी समर्थ रहे हैं।

4.5.6 बोध प्रश्न

1. मिथक के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
2. मिथक का काव्य से क्या सम्बन्ध है ?
3. मिथकीय समीक्षा की दृष्टि से कुँवर नारायण के प्रबन्ध काव्यों का मूल्यांकन कीजिए।
4. कुँवर नारायण के काव्य का मूल स्वर क्या है?
5. "मिथकों के प्रयोग से कुँवर नारायण की मुक्तक कविताएँ नवीन अर्थबोध से सम्पन्न हुई हैं तथा उनकी भाषा सहज एवं सम्प्रेषणीय हुई है।" इस कथन के आलोक में कुँवर नारायण के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/

❖❖❖

खण्ड – 4 : प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता

इकाई – 6 : केदारनाथ सिंह की कविताओं का कथ्य, बिम्ब-विधान, बिम्ब और प्रतीक का अन्तर

इकाई की रूपरेखा

4.6.01. उद्देश्य कथन
4.6.02. प्रस्तावना
4.6.03. केदारनाथ सिंह की कविताओं का कथ्य
 4.6.03.1. गाँव और लोक से गहरी सम्पृक्ति
 4.6.03.2. महानगरीय जीवन से अरुचि
 4.6.03.3. पर्यावरण के प्रति जागरूकता
 4.6.03.4. मानवता और उसके भविष्य में गहरी आस्था
 4.6.03.5. केदारनाथ सिंह की कविता का शिल्प-सौन्दर्य
4.6.04. बिम्ब-विधान
4.6.05. बिम्ब और प्रतीक का अन्तर
4.6.06. पाठ-सार
4.6.07. बोध प्रश्न
4.6.08. व्यवहार
4.6.09. कठिन शब्दावली
4.6.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

4.6.01. उद्देश्य कथन

आधुनिककालीन काव्य की पाठ्यचर्या के अन्तर्गत प्रयोगवादी काव्य और नयी कविता खण्ड की छठी इकाई में आप केदारनाथ सिंह की कविता के कथ्य और शिल्प की विशेषताओं के बारे में पढ़ेंगे। इसके साथ ही आप बिम्ब-विधान तथा बिम्ब और प्रतीक के अन्तर के बारे में भी पढ़ेंगे। इस इकाई को पढने के बाद आप –

i. केदारनाथ सिंह की कविता के कथ्य से परिचित हो सकेंगे।
ii. उनकी कविता के शिल्प की विशेषताओं को भी जान सकेंगे।
iii. उनकी कविता में बिम्ब और आख्यान के महत्त्व को समझ पाएँगे।
iv. बिम्ब-विधान, बिम्ब के स्वरूप, उसकी रचना-प्रक्रिया तथा उसके विभिन्न प्रकारों को समझ पाएँगे।
v. बिम्ब और प्रतीक के अन्तर के बारे में जान पाएँगे।

4.6.02. प्रस्तावना

केदारनाथ सिंह तीसरे सप्तक के कवि रहे हैं। शुरुआती दौर में उनकी पहचान एक गीतकार के रूप में थी। बाद में वे कविता की मुख्य धारा की ओर मुड़े। लेकिन इस धारा से जुड़ने के बाद भी उनकी कविता गाँव, क़स्बा और लोकजीवन से जुडी रही है। दरअसल केदारनाथ सिंह की काव्य-यात्रा गाँव से नगर और नगर से महानगर की ओर रही है। गाँव से महानगर और महानगर से गाँव की आवाजाही में ही उनकी काव्यभूमि निर्मित होती है। यहाँ तक की उनकी कविता के शिल्प पर भी इस काव्यभूमि के प्रभाव को पहचाना जा सकता है।

4.6.03. केदारनाथ सिंह की कविताओं का कथ्य

4.6.03.1. गाँव और लोक से गहरी सम्पृक्ति

नयी कविता मुख्य रूप से शहरी जीवन और शहरी भावबोध की कविता रही है। लेकिन केदारनाथ सिंह कविता के इस राजमार्ग पर नहीं चलते. वे अपने लिए एक नयी पगडंडी बनाते है जो गाँव की और जाती है। गाँव और गँवई जीवन के अनेकानेक दृश्यों और आख्यानों के सहारे वे हिन्दी कविता के पाठक को लोकजीवन की विशेषताओं से परिचित कराते हैं। लोक और गाँव से उनका लगाव इकहरा न होकर बहुस्तरीय है। प्रगतिवादी कवि त्रिलोचन की तरह भोजपुरी अंचल की मिट्टी, हवा, पानी, बोली-बानी और पशु-पक्षी से लेकर लोक-संस्कृति और लोकसंचित ज्ञान तक को केदारनाथ सिंह बेहद आत्मीयता से अपनी कविता में जगह देते हैं। उनकी कविता में लोक के सौन्दर्य और संघर्ष दोनों को जगह मिली है। भोजपुरी भाषा के शिखर-संस्कृति-पुरुष भिखारी ठाकुर को याद करते हुए कवि अपनी कविता 'भिखारी ठाकुर' में उनका एक मोहक चित्र खींचता है –

इस तरह सरजू के कछार-सा
एक सपाट चेहरा
नाचते हुए बन जाता था
कभी घोर पियक्कड़
कभी वर की खामोशी
कभी घोड़े की हिनहिनाहट
कभी पृथ्वी का सबसे सुन्दर मूर्ख

सरयू नदी के कछार जैसे सपाट चहरे वाले भिखारी ठाकुर अपनी नाच मण्डली के लेखक और निर्देशक ही नहीं थे अपितु उसके मुख्य अभिनेता भी थे। कवि इस काव्यांश में नाच मण्डली में उनके द्वारा निभाये गए विभिन्न भूमिकाओं के बिम्ब खींचता है। पहली पंक्ति में ही 'सरजू (सरयू नदी) के कछार' जैसे उपमान का प्रयोग करके कवि अपनी कविता पर भोजपुरी इलाके की संस्कृति और भूगोल के प्रभाव का प्रमाण दे देता है। उनकी कविता में लोक संस्कृति के अनेक रंग हैं। वे कभी नानी और दादी की लोरियों को याद करते हैं और शहरों से गायब होती लोरियों के लिए बिसूरते हैं तो कभी दादरी मेले में लगने वाले पशुमेले का चित्र खींचते हैं। वे इस

लोक में बहुत गहराई से रचे बसे हैं। भोजपुरी अंचल की स्थानीय साँस्कृतिक विशिष्टताएँ और पर्व-त्योहार भी केदारनाथ सिंह की काव्य संवेदना को झंकृत करती रहतीहै। वे उन पर्वों और उत्सवों में निहित मानवीयता और उल्लास के कायल हैं। पूर्वी उत्तरप्रदेश में प्रचलित आग पर चलने के उत्सव को याद करते हुए वे अपनी कविता में आदमी के आग पर चलने का पूरा विवरण देते हैं–

इसमें कितना समय लगा
मेरी स्मृति से वह हिस्सा
धुल-पुँछ गया है
पर इसके बाद जो हुआ
वह एक अंगारे की तरह याद है
आदमी ने कुछ सोचा
फिर आव देखा न ताव
बस पहले ही अंगारे पर
रख दिया पाँव
तब से पाँव और अंगारा
मेरी स्मृति में गुँथे हुए
उसी तरह पड़े हैं
मैंने कोशिश बहुत की
पर एक को दूसरे से
अलगा नहीं सका आज तक

* * *

मैं अपने पूरे वजूद से
आदमी के आग पर चलने के करिश्मे पर
विश्वास करना चाहता हूँ

कवि के मानस पर लोक का प्रभाव बहुत गहरा है। यह उनकी स्मृति में गुँथे हुए पाँव और अंगारे से स्पष्ट है। शहर में रहने वाले पढ़े-लिखे आधुनिक लोग किसी आदमी के आग पर चलने की घटना पर अविश्वास ही करेंगे। कवि भी शहर में रहते हुए अब तक इस पर अविश्वास ही करता रहा है लेकिन लोकजीवन की सहजता और मानवीयता उसे मजबूर करती है कि वह उस पर विश्वास करे। कवि के लिए वह उत्सव और उस उत्सव से जुड़ी मानवीयता, उत्साह, सहजता और पवित्रता का अधिक महत्त्व है। इसीलिए कविता उसे मजबूर करती है कि वह अपने पूरे वजूद से उस घटना पर भरोसा करे। इतना ही नहीं केदारनाथ सिंह उस भोजपुरिया अंचल के लोकसंचित ज्ञान पर भी भरोसा करना चाहते हैं। लोकसंचित ज्ञान पर भरोसा करना कहीं-न-कहीं आधुनिक और औपचारिक शिक्षा-व्यवस्था की अपर्याप्तता की ओर इशारा करना भी है। उनकी कविता में एक किसान अपने संचित अनुभव को अपने बेटे से साझा करते हुए कहता है –

अगर कभी लाल चीटियाँ
दिखाई पड़ें
तो समझना
आँधी आने वाली है

अगर कई कई रातों तक
कभी सुनाई न पड़े स्यारों की आवाज़
तो जान लेना
बुरे दिन आने वाले हैं

ऐसा नहीं है कि कवि लोक की आत्मीयता, सहजता, मानवीयता और अनुभवसंचित ज्ञान से ही प्रभावित है बल्कि वह तो भोजपुरी अंचल में रहने वाले भोजपुरियों की अद्भुत जिजीविषा और संघर्ष का भी कायल है। नदियों से घिरा भोजपुरी का यह क्षेत्र सिर्फ़ अपनी कृषि के लिए ही नहीं जाना जाता बल्कि हर साल आने वाले बाढ़ के लिए भी जाना जाता है। लेकिन बाढ़ के पानी में घिरने के बावजूद यहाँ के लोग हताश और निराश नहीं होते; पानी में बहुत कुछ बह जाने के बाद भी जीवन में उनकी आस्था क्षीण नहीं होती –

मगर पानी में घिरे हुए लोग
शिकायत नहीं करते
वे हर कीमत पर अपनी चिलम के छेद में
कहीं-न-कहीं बचा कर रखते हैं
थोड़ी-सी आग

केदारनाथ सिंह की कविता में यह आग बार-बार आता है जो मनुष्य की जिजीविषा और संघर्ष करने की क्षमता का प्रतीक है। इस तरह केदारनाथ सिंह की कविता गाँव और लोक की बहुरंगी छवि और अद्भुत जीवटता के चित्र प्रस्तुत करती है।

4.6.03.2. महानगरीय जीवन से अरुचि

केदारनाथ सिंह की निगाहों में शहर अथवा महानगर मानवीयता, संवेदनशीलता, सहजता,आत्मीयता आदि के कब्रगाह हैं। इसीलिए उनकी कविता गाँव के बनिस्पत शहर के जीवन को पसंद नहीं करती है। धूमिल की तरह केदारनाथ सिंह की कविता में भी शहर गाँव का विलोम है। शहरी जीवन में सम्बन्धों की कृत्रिमता से केदारनाथ सिंह को चिढ़ है और वे इसे नमक शीर्षक कविता के माध्यम से व्यंजित करते हैं –

कि ठीक उसी समय
पुरुष जो कि सबसे अधिक चुप था
धीरे से बोला --
“दाल फीकी है”

"फीकी है ?"
स्त्री ने आश्चर्य से पूछा
"हाँ, फीकी है –
मैं कहता हूँ दाल फीकी है"
पुरुष ने लगभग चीखते हुए कहा

* * *

न सही दाल
कुछ न कुछ फीका ज़रूर है
सब सोच रहे थे
लेकिन वह क्या है ?

आपसी सम्बन्धों में फीकापन, बनावटीपन, छल-कपट और आडम्बर शहरी जीवन का यथार्थ है। इसी यथार्थ के कारण कवि को शहरी जीवन नापसंद है। शहरी जीवन की अजनबियत, बनावटीपन, कृत्रिमता, अमानवीयता, प्रकृति के सहज रूप को नियन्त्रित करने और मानवेतर की घोर उपेक्षा करने जैसी प्रवृतियों के कारण केदारनाथ सिंह की कविता शहरी जीवन को लगातार कठघरे में खड़ा करती है। शहर में बाज़ार के बढ़ते वर्चस्व ने उसकी अमानवीयता और खोखलेपन में इज़ाफ़ा ही किया है। केदारनाथ सिंह की कविता बाज़ार के इस बढ़ते वर्चस्व का रचनात्मक विरोध करती है –

कैसा रहे
बाज़ार न आये बीच में
और हम एकबार
चुपके से मिल आयें चावल से
मिल आयें नमक से
पुदीने से
कैसा रहे
एकबार ... सिर्फ़ एकबार ...

सभ्यता और महानगरीय जीवन के आवरण को चीर कर कवि पुनः उस आदिम लोक की ओर जाने का आह्वान कर रहा है जो उसकी स्मृतियों में जीवन्त है। इसका कारण यह है कि लोक आज भी बाज़ारू चमक-दमक और कृत्रिमता से दूर प्रकृति के सान्निध्य में रंग, रूप और खुशबू के पूरे वैभव के साथ मौजूद है। अपने इस वैभव से वह हमारी इन्द्रियों की संवेदन-शक्ति को उद्बुद्ध करता है। वह हमारे जीवन में रंग, उमंग, रहस्य और उत्सुकता की पुनर्वापसी करता है और इसतरह हमारी मानवीयता को समृद्ध करता है। केदारनाथ सिंह की कविता बाज़ार और आधुनिक सभ्यता द्वारा फैलायी जा रही अमानवीयता के खिलाफ एक रचनात्मक संघर्ष करती है।

4.6.03.3. पर्यावरण के प्रति जागरूकता

इस बाज़ार और औद्योगिक सभ्यता की अमानवीयता के खिलाफ संघर्ष का ही एक दूसरा मोर्चा है पर्यावरण के प्रति संवेदनशीलता। शहर भी पर्यावरण के क्षरण के एक कारण हैं और इसके सबसे बड़े शिकार भी। पर्यावरण में प्रदूषण की वजह से ऐसा लगता है कि शहर स्वयं भी असंतुलित हो गए हैं –

नहीं – मुझे कोई भ्रम नहीं
कि मैं इसे ढोकर पहुँचा दूँगा कहीं ओर
या अपने किसी करिश्मे से
बचा लूँगा इस शहर को
मैं तो कौओं को
उनका उच्चारण
इसके पानी को
उसका पानीपन
उसकी त्वचा को
उसका स्पर्श लौटना चाहता हूँ

कवि, अपनी कविता में ही सही, शहर के इस प्रदूषण और असंतुलन को दूर करना चाहता है। लेकिन सिर्फ़ शहर ही क्यों ? यह सभ्यता ही ऐसी है कि इसके प्रदूषण से कोई भी अछूता नहीं है, खुद इंसान भी अपने आन्तरिक प्रदूषण के कारण अपनी सरलता, सहजता और मानवीयता खो चुका है। आधुनिक सभ्यता की इस बाह्य और आन्तरिक प्रदूषण की पहचान करते हुए कवि बहुत वेदनामय स्वर में कहता है –

पर कोई करे भी तो क्या
समय ही कुछ ऐसा है
कि पानी नदी में हो
या किसी के चेहरे पर
झाँक कर देखो तो तल में कचरा
कहीं दिख ही जाता है !

कवि की स्पष्ट मान्यता है कि इस आधुनिकता और औद्योगिकरण ने सिर्फ़ बाहरी परिवेश में ही कचरा नहीं फैलाया है बल्कि हमारे भीतर की कालिमा को भी गहरा किया है। बाहर और भीतर के इस कचरे और कलुष ने हमारी मानवीयता का क्षरण किया है।

4.6.03.4. मानवता और उसके भविष्य में गहरी आस्था

शहरी जीवन और औद्योगिक सभ्यता के कारण पैदा हो रहीं विसंगतियों और अमानवीय परिस्थितियों के बावजूद कवि हताश नहीं है। उसे अब भी मानवता के भविष्य में गहरी आस्था है। उसे पूरा भरोसा है कि एक दिन

मानवीयता, आत्मीयता, सहजता और सरलता को बचाया जा सकेगा। यह भरोसा भी उसको लोक से ही है। यानी लोक ही अन्ततः मानवीयता को बचाने में सफल हो सकेगा। गाँव और क़स्बे में रहने वाला गरीब-गुरबा ही अन्ततः इस मानवीयता को बचाने के लिए आगे आएगा।

सचाई यह है कि सारे माहौल में
सिर्फ़ यह धूल है
सिर्फ़ इस धूल का लगातार उड़ना
जो मेरे यकीन को अब भी बचाए हुए है
नमक में
और पानी में
और पृथ्वी के भविष्य में
और दन्तकथाओं में

केदारनाथ सिंह की कविता में इस लोक की पहचान धूल की उपस्थिति से होती है। गरीब-गुरबा का जीवन इस धूल से सना होता है। केदार के कवि को इस धूल से खासा लगाव है क्योंकि उन्हें गाँव में रहने वाले इन गरीब लोगों और आमजन से गहरा प्रेम है। इस गहरे प्रेम का कारण यह है कि वहीं पर आज भी मानवीयता, सहजता और निष्कलुष आत्मीयता बची हुई है।

4.6.03.5. केदारनाथ सिंह की कविता का शिल्प-सौन्दर्य

केदारनाथ सिंह बिम्बों में सोचने वाले कवि हैं। इसीलिए दृश्यात्मकता उनकी कविता की ख़ास विशेषता है। हिन्दी कविता में प्रमुख रूप से दो तरह के बिम्ब प्रचलित रहे हैं – एक प्रकृति से सम्बन्धित ओर दूसरे मनोवैज्ञानिक। केदारनाथ सिंह इसका विस्तार करते हुए कविता को लोक बिम्ब से जोड़ने की कोशिश करते हैं। 'बोझे' शीर्षक कविता में एक लोक बिम्ब का उदाहरण देखा जा सकता है –

कुछ हाथ हैं
जो झूल रहेहैं बगल में
कुछ हाथ हैं जो ताबड़तोड़
बाँध रहे हैं बोझे
जैसे बोझे चुराए गए हों
सूरज की टाल से

केदारनाथ सिंह के बिम्ब सिर्फ़ दृश्यात्मक ही नहीं हैं बल्कि उनकी कविता में बिम्बों के दूसरे प्रकार भी भरे पड़े हैं। ध्वनि बिम्ब का एक उदाहरण देखिए –

यह उसके चलने की आवाज़ है
जो पत्तों में

पीतल की तरह बज रही है

यहाँ बाघ के चलने की बात हो रही है। कवि का ध्यान सिर्फ़ चलने के दृश्य पर ही नहीं है बल्कि वह उस आवाज़ को भी सुन रहा है जो पत्तों पर बाघ के चलने से निकल रही है। वह अपनी कविता के पाठक को भी यह आवाज़ सुनाना चाहता है और इसीलिए पीतल के बजने के बिम्ब को निर्मित कर रहा है।

उनकी कविता के शिल्प की दूसरी विशेषता है उसका आख्यानपरक होना। वे अपनी कविता को आख्यान के झीने ढाँचे के सहारे बुनते हैं। इसके लिए वे घटनाओं की कल्पना करते हैं और अपनी कविता में बिम्बों के माध्यम से उन घटनाओं के दृश्य दिखलाते हैं। आख्यान की एक विशेषता संवाद भी होती है। केदारनाथ सिंह की कविता में भी इस संवाद को सहज रूप से ही पहचाना जा सकता है। इस संवाद की लय पर भोजपुरी बोली का गहरा प्रभाव है।

ये आदमी लोग इतने चुप क्यों रहते हैं आजकल
एक दिन बाघ ने लोमड़ी से पूछा ...
कोई दु :ख होगा उन्हें
वही दु :ख
मैंने कहा न

'आदमी' के साथ 'लोग' और 'कहा' के साथ 'न' की जुगलबंदी ठेठ भोजपुरी में बातचीत के कारण है, इसके साथ ही प्रश्न पूछने की मुद्रा भी इस बातचीत की लय को विशिष्ट बनाने (लोक चेतना से एकाकार करने) में अपनी भूमिका निभाती है। लोक बिम्ब, आख्यान, प्रश्नवाचकता और ठेठ भोजपुरी की लय पर आधारित संवाद आदि विशेषताएँ केदारनाथ सिंह की कविता के शिल्प को भी लोकभूमि के धरातल पर प्रतिष्ठित करते हैं। उनका काव्य-शिल्प लोक से उनकी कविता के जुड़ाव को प्रामाणिकता प्रदान करता है।

4.6.04. बिम्ब-विधान

बिम्ब एक तरह के शब्द चित्र होते हैं। वे पाठक के मन में किसी विशेष चित्र या भाव या विचार को मूर्तिमान करते हैं। यानी वे पाठक के ऐन्द्रिय बोध को जगाने का प्रयत्न करते हैं। बिम्ब के निर्माण के लिए बाहर के वस्तु जगत् से प्रत्यक्ष सम्बन्ध और कल्पना का होना आवश्यक है। बिम्ब के इन्हीं विशेषताओं को ध्यान में रखते हुए केदारनाथ सिंह ने उसे परिभाषित करते हुए कहा है "बिम्ब वह शब्दचित्र है जो कल्पना के द्वारा ऐन्द्रिय अनुभवों के आधार पर निर्मित होता है।" इस परिभाषा से स्पष्ट है कि बिम्ब शब्दों के माध्यम से बनाये गए चित्र हैं और उनके निर्माण के लिए कल्पना और ऐन्द्रिय अनुभव का होना अनिवार्य है। ऐन्द्रिय अनुभव के लिए बाहरी संसार से प्रत्यक्ष रागात्मक सम्बन्ध का होना एक अनिवार्य शर्त है। यह रागात्मक सम्बन्ध जितना गहरा और ठोस होगा बिम्ब-निर्माण और उसके ग्रहण में सफलता उतनी ही ज्यादा मिलेगी। इसका अर्थ यह भी है कि किताबी ज्ञान अथवा अन्तर्दृष्टि के आधार पर बिम्ब का निर्माण नहीं किया जा सकता है और ना ही किताबी ज्ञान और

अन्तर्दृष्टि के आधार पर बिम्ब को ग्रहण ही किया जा सकता है। अतः बिम्ब के निर्माण और उसके ग्रहण के लिए आवश्यक है कि बाहरी संसार के साथ कवि और पाठक का सम्बन्ध प्रत्यक्ष और गहरा हो।

बिम्ब को शब्दचित्र अथवा मूर्त कहने का यह अर्थ नहीं है कि उसका सम्बन्ध सिर्फ़ दृश्यता से ही होता है। दृश्यता तो बिम्ब का एक प्रकार मात्र है। वह बिम्ब का एक स्थूल छोर मात्र है जबकि बिम्ब का दूसरा छोर बेहद सूक्ष्म होता है। कवि की अनुभूतियाँ अमूर्त और निजी होती हैं। वह अपनी अनुभूतियों को सार्वजनिक करना चाहता है यानी अपने पाठकों तक पहुँचाना चाहता है। इसके लिए वह भाषा को माध्यम के रूप में चुनता है। कवि भाषा में अपनी अनुभूतियों की पुनर्रचना करता है। उसकी निजी अनुभूतियाँ एक सार्वजनिक माध्यम (भाषा) में आकार ग्रहण करती हैं। वह अपनी अनुभूति अथवा संवेदना को भाषा में मूर्त करता है। बिम्ब को मूर्त कहने का आशय भी यही है। बिम्ब का सम्बन्ध मनुष्य की पाँचों इन्द्रियों से होता है जिसके माध्यम से वह बाहर की दुनिया को जान, समझ और महसूस कर पाता है। अर्थात् दृश्यता के साथ-साथ स्वाद, स्पर्श, गन्ध और श्रवण का भी बिम्ब-निर्माण से गहरा सम्बन्ध होता है। यदि शब्दचित्र पाठक के मन में स्वाद, गन्ध, स्पर्श और श्रवण से सम्बन्धित ऐन्द्रिय बोध को जगाने में सफल होता है तो वह भी बिम्ब के ही श्रेणी में माना जाता है। इन्हीं पाँच इन्द्रियों के आधार पर बिम्ब को पाँच भागों में बाँटा जाता है – दृश्य बिम्ब, ध्वनि बिम्ब, स्पर्श बिम्ब, स्वाद बिम्ब और घ्राण (गन्ध) बिम्ब। केदारनाथ सिंह की कविता में इन बिम्बों के उदाहरण भरे पड़े हैं। विषय के आधार पर भी बिम्बों के अनेक प्रकार किये जा सकते हैं। आपके पाठ्यक्रम में संकलित 'चींटियों की रुलाई' शीर्षक कविता के उदाहरण से बिम्बों के इन भेदों को समझा जा सकता है –

सुनो, आज सुबह उठा तो आसमान मेरी खिड़की से इस तरह दिखा
जैसे कोई तौलिया सूख रहा हो
कौवे की आवाज़ ऐसी सुनाई पड़ी
जैसे वह भोंपू की आवाज़ हो
एक जाता हुआ वायुयान ऐसा लगा
जैसे वह आता हुआ वायुयान हो
मेरी तरफ !

इस काव्यांश में आसमान का सूखने के लिए डाले गए तौलिये की तरह दिखना दृश्य बिम्ब का उदाहरण है जबकि कौवे की आवाज़ भोंपू की तरह सुनाई देना ध्वनि बिम्ब का उदाहरण है और जाते हुए वायुयान का आते हुए वायुयान की तरह लगना गतिज बिम्ब का उदाहरण है। यहाँ यह भी ध्यान देना चाहिए कि ये सारे बिम्ब सादृश्य धर्म के कारण उपमान के रूप में प्रयुक्त हुए हैं और शहर के विडम्बनापूर्ण जीवन की ओर संकेत करते हैं।

काव्य में बिम्ब-निर्माण की प्रवृति आधुनिककाल की देन है। आधुनिक कवि अपने काव्य में बिम्ब-निर्माण के लिए सचेत रूप से प्रवृत हुए। अतः आधुनिक कविता में बिम्ब की उपयोगिता पर विचार करना भी समीचीन है। कविता में बिम्ब भाव की ग्राह्यता और सम्प्रेषणीयता को बढ़ाते हैं। वे काव्य में मौलिक अनुभूति को तीव्रतर करते हैं। बिम्ब किसी अनुभूति को मात्र प्रतिबिम्बित ही नहीं करते हैं अपितु उसे एक नये स्तर पर

पुनर्निर्मित भी करते है। वे सिर्फ़ विचारों और भावों का वहन ही नहीं करते हैं अपितु सूक्ष्मता से पढ़ा जाए तो उन विचारों और भावों के पीछे की सम्पूर्ण उलझनों और संघर्षों को भी सूचित करते हैं। इतना ही नहीं, बिम्ब भाषा को संक्षिप्त, केन्द्रित और संगठित भी करता है। इसका मूल कारण यह है कि बिम्ब सन्दर्भ-सापक्ष होते हैं। इससे भाषा अर्थवान् और पारदर्शी बनती है। बिम्ब अक्सर अपने अर्थ के लिए लक्षणा और व्यंजना शब्द शक्तियों का प्रयोग करते हैं। वे काव्य में शब्दों के अपव्यय को रोकते हैं और गागर में सागर भरने की पुरानी युक्ति को आधुनिक युग में चरितार्थ करते हैं।

4.6.05. बिम्ब और प्रतीक का अन्तर

बिम्ब और प्रतीक में गहरा सम्बन्ध होता है। प्रत्येक बिम्ब के मूल में एक प्रतीक छुपा होता है और समय के साथ विकसित होते-होते अपना स्वरूप पा जाता है। अर्थात् बिम्ब चाहे जितना भी ऐन्द्रिक हो अन्ततः उसकी परिणति प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना में ही होती है। जब बिम्ब अपनी ऐन्द्रिय संवेदन की क्षमता को खो देते हैं और सिर्फ़ अर्थ की ही व्यंजना तक सीमित हो जाते हैं तो वे प्रतीक बन जाते हैं। अर्थात् जब एक ही बिम्ब का प्रयोग बार-बार होने लगे तो उसके प्रतिपादित अर्थ में एक तरह की निश्चतता आ जाती है और उनकी इन्द्रिय संवेदन की क्षमता चुक जातीहै। प्रयोग की अधिकता के कारण इन्द्रिय संवेदन की क्षमता में ह्रास होने और अर्थ की निश्चतता स्थापित होने से बिम्ब प्रतीक में बदल जाते हैं। प्रतीक तीन तरह के होते हैं। पहले प्रतीक तो वे हैं जो कवि को काव्य-परम्परा से प्राप्त होते हैं। जैसे मुख की सुन्दरता को व्यंजित करने के लिए कमल या चाँद का प्रयोग करना। मध्यकाल के कवियों ने ऐसा प्रयोग खूब किया है। दूसरे तरह के प्रतीक वे होते हैं जो कवि द्वारा निर्मित किये जाते हैं। इन्हें वैयक्तिक प्रतीक कहा जा सकता है क्योंकि इनसे इन्हें निर्मित करने वाले कवि की मानसिकता, संस्कार, सौन्दर्यबोध और विशिष्ट अनुभूति के बारे में पता लगाया जा सकता है। जैसे मुक्तिबोध अपनी कविता में सड़क के लिए 'काली जिह्वा' का प्रयोग करते हैं जबकि ज्ञानेन्द्रपति उसी सड़क के लिए 'लुटेरी लम्बी बाँह' का प्रयोग करते हैं। स्वयं केदारनाथ सिंह की कविताओं में 'आग' शब्द का प्रयोग बार-बार होता है जो सामान्य लोगों की जिजीविषा का प्रतीक है। जैसे उनकी कविता 'पानी में घिरे हुए लोग' में आग शब्द का सर्जनात्मक उपयोग देखा जा सकता है जहाँ चिलम की आग को बचाने का अर्थ है जीवन की आग को बचाना अर्थात् जीवटता या जीवन में संघर्ष के जज्बे को बचाए रखना –

मगर पानी में घिरे हुए लोग
शिकायत नहीं करते
वे हर कीमत पर अपनी चिलम के छेद में
कहीं न कहीं बचा रखते हैं
थोड़ी-सी आग

ये सब व्यक्तिगत प्रतीकों के उदाहरण हैं जो कवियों द्वारा सन्दर्भ और अपने काव्य-संस्कार के अनुरूप निर्मित किये गए हैं। तीसरे तरह के प्रतीक वे होते हैं जो प्रकृति के उपादान होते हैं और कवियों द्वारा स्वतन्त्र रूप से प्रयोग में लाये जाते हैं।

आपस में सम्बन्ध रखते हुए भी बिम्ब और प्रतीक में अन्तर होता है जिसे समझ लेना आवश्यक है। प्रतीक के लिए आवश्यक है कि एक निश्चित अर्थ के लिए उसका प्रयोग बार-बार किया जाए, तभी पाठक उसके प्रतीकात्मक अर्थ की प्रतीति कर पाने में सफल हो सकेगा। यानी प्रतीक के लिए समाज सापेक्ष या परम्परा सापेक्ष होना आवश्यक है। वह शब्दार्थ के प्रवाह में रहते हुए ही अपने प्रतीकत्व को ग्रहण करता है। निरन्तर प्रयोग में आने से ही उसका अर्थ निश्चित होता है और प्रतीक अपना आकार ग्रहण करता है। यही प्रतीक का विकास होना है जिसका उल्लेख ऊपर की पंक्तियों में किया गया है। इसके ठीक विपरीत बिम्ब आकस्मिक होते हैं। वे ऐतिहासिक प्रवाह में अपना आकार ग्रहण नहीं करते। उनका ऐन्द्रिय संवेदन शब्दार्थ के प्रवाह से स्वतन्त्र और बेहद निजी होता है। प्रतीक और बिम्ब में दूसरा अन्तर यह है कि प्रतीक पाठक के ऐन्द्रिय संवेदन को उद्बुद्ध नहीं करते हैं बल्कि वे वर्ण्य वस्तु की किसी खास विशेषता या अर्थ की ओर संकेत करते हैं और ऐसा करते हुए अपने मूल अर्थ को गौण बना देते हैं। यानी प्रतीक का मूल अर्थ कविता में महत्त्व नहीं रखता है उसका सांकेतिक अर्थ महत्त्वपूर्ण होता है। प्रतीक अपने सांकेतिक अर्थ के साथ सूक्ष्म और गहरी एकता का बोध कराता है और इसी कारण प्रतीक की योजना में एक किस्म की तार्किक संगति होती है। प्रतीक के अर्थ प्रतिपादन में व्यंजना शब्द शक्ति की भूमिका प्रबल होती है। बिम्ब के साथ ऐसा नहीं है। बिम्ब के लिए अर्थ की अपेक्षा ऐन्द्रिय संवेदन प्रमुख है। अर्थ प्रतिपादन करने के उपरान्त भी बिम्ब की सत्ता का क्षरण नहीं होता है बल्कि वे देर तक पाठक की इन्द्रियों को झंकृत किये रहते हैं। बिम्ब अपनी प्रकृति से ही संश्लिष्ट होते हैं। पाठक उनका ग्रहण भी संश्लिष्ट रूप में ही करता है। इसीलिए प्रतीक के विपरीत बिम्ब अधिक स्वच्छन्द होते हैं और साथ ही अनेकार्थ व्यंजक भी। प्रतीकों के उलट बिम्बों की संश्लिष्टता ही उनकी अनेकार्थता को जन्म देती है। इस अनेकार्थता के कारण बिम्ब अनेक दिशाओं में संकेत करते हैं। वे इस जीवन और जगत् की अनेकता पर आधृत होते हैं। उनमे तार्किक संगति का अभाव होता है। प्रतीक और बिम्ब में तीसरा अन्तर यह है कि प्रतीक मूर्त और अमूर्त दोनों हो सकते हैं जबकि बिम्ब अनिवार्यतः मूर्त होते हैं। हालाँकि बिम्बों की मूर्तता सिर्फ़ चित्रात्मकता तक ही सीमित नहीं होती है। बिम्बों की मूर्तता ध्वनि, घ्राण और स्वाद से सम्बन्धित भी हो सकती है। इस तरह बिम्ब और प्रतीक में आपसी सम्बन्ध होते हुए भी अन्तर है। अतिप्रयोग के कारण बिम्ब जब अपनी ऐन्द्रियता को खो देते हैं और निश्चित अर्थ की ओर संकेत करने लगते हैं तो प्रतीक बन जाते हैं।

4.6.06. पाठ-सार

केदारनाथ सिंह की कविता गाँव और महानगर के बीच आवाजाही में अपनी काव्यभूमि की तलाश करती है। उनकी कविता में गाँव-जवार और लोक के लिए गहरी आत्मीयता को सहज ही पहचाना जा सकता है। उनकी कविता में जितनी गहरी आत्मीयता गाँव के लिए है उतनी ही अरुचि शहरी और महानगरीय जीवन के प्रति भी है। दरअसल केदारनाथ सिंह की काव्य संवेदना लोक और शहरी जीवन के टकराव से निर्मित होती है। वे अपनी कविता के लिए बिम्ब और आख्यान को आधार बनाते हैं। उनके काव्य कलन में लोकबिम्बों की अनेक छवियाँ मौजूद हैं जो प्रत्यक्ष जगत् से उनके गहरे सम्बन्ध, उनकी संवेदनशीलता और तीक्षण कल्पना शक्ति का प्रमाण है। कविता में बिम्ब के प्रयोग से उसकी इन्द्रिय-संवेदन की क्षमता बढ़ जाती है। वे पाठक के मन में भाव और विचार

को मूर्त कर देते हैं। जब प्रयोग की बहुलता के कारण बिम्ब के इन्द्रिय-संवेदन की क्षमता चूक जाती है और उनका अर्थ निश्चित हो जाता है तो वे प्रतीक बन जाते हैं।

4.6.07. बोध प्रश्न

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. कविता के लिए बिम्ब की बहुत उपयोगिता होती है क्योंकि –

(क) बिम्ब कविता के अर्थ को स्पष्ट करने में सहायक होते हैं।

(ख) बिम्ब कविता के भाव को महसूस कराने में सहायक होते हैं।

(ग) बिम्ब कविता में अर्थ को निश्चित करते हैं।

(घ) बिम्ब कविता में अमूर्तन को बढ़ावा देते हैं।

2. बिम्ब-निर्माण के लिए आवश्यक है –

(क) प्रत्यक्ष अनुभूति और कल्पना

(ख) विशद् ज्ञान और पाण्डित्य

(ग) भाषा और व्याकरण की बारीकियों का ज्ञान

(घ) काव्यशास्त्र की जानकारी

3. केदारनाथ सिंह की कविता में अंचल विशेष की संस्कृति और संघर्ष का आत्मीय चित्रण हुआ है। वह अंचल है–

(क) मिथिला का अंचल

(ख) ब्रज का अंचल

(ग) खड़ीबोली का अंचल

(घ) भोजपुरी का अंचल

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. केदारनाथ सिंह की कविता में प्रयुक्त बिम्बों की विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. बिम्ब और प्रतीक में क्या अन्तर है? स्पष्ट कीजिए।
3. बिम्ब के विविध प्रकारों का वर्णन कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. केदारनाथ सिंह की कविता की मूल संवेदना पर विचार कीजिए।

2. केदारनाथ सिंह की कविता के शिल्प की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।
3. बिम्ब-निर्माण की प्रक्रिया पर विचार कीजिए।
4. कविता में बिम्ब के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

4.6.08. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य

1. केदारनाथ सिंह की कविताओं से बिम्बों को चुनकर बिम्ब के विविध प्रकारों के अनुरूप उनका वर्गीकरण कीजिए।

4.6.09. कठिन शब्दावली

आख्यान	:	कथा
जिजीविषा	:	जीने की इच्छा
जीवटता	:	जीवन में संघर्ष करने का जज्बा
काव्य कलन	:	कविताओं का संकलन

4.6.10. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. यायावर, भारत खुगशाल, राजा (2004), कवि केदारनाथ सिंह, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
2. प्रसाद, गोविन्द (2013), केदारनाथ सिंह की कविता बिम्ब से आख्यान तक, स्वराज प्रकाशन, नयी दिल्ली
3. श्रोत्रिय, प्रभाकर (1988), कविता की तीसरी आँख, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली
4. सिंह, केदारनाथ (1994), आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब-विधान, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : समकालीन हिन्दी कविता

इकाई – 1 : साठोत्तरी कविता आन्दोलन : विद्रोही पीढ़ी, अ-कविता, बीट पीढ़ी, युयुत्सावादी कविता, श्मशानी कविता, वाम कविता, सहज कविता, विचार कविता

इकाई की रूपरेखा

5.1.00. उद्देश्य कथन
5.1.01. प्रस्तावना
    5.1.01.1. साठोत्तरी हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि
5.1.02. अ-कविता
    5.1.02.1. अ-कविता आन्दोलन की पृष्ठभूमि
    5.1.02.2. अ-कविता : स्वरूप एवं विकास
5.1.03. बीट पीढ़ी
    5.1.03.1. बीट कविता : तात्पर्य एवं स्वरूप
5.1.04. युयुत्सावादी कविता
5.1.05. श्मशानी कविता
5.1.06. विद्रोही पीढ़ी
5.1.07. वाम कविता
5.1.08. सहज कविता की पृष्ठभूमि
    5.1.08.1. सहज कविता : तात्पर्य एवं स्वरूप
5.1.09. विचार कविता : पृष्ठभूमि, तात्पर्य एवं स्वरूप
5.1.10. पाठ-सार
5.1.11. बोध प्रश्न
5.1.12. व्यवहार
5.1.13. कठिन शब्दावली
5.1.14. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची
5.1.15. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

5.1.00. उद्देश्य कथन

i. साठोत्तरी कविता की पृष्ठभूमि का विवेचन करना।
ii. साठोत्तरी काव्य की विभिन्न प्रवृत्तियों को स्पष्ट करना।
iii. साठोत्तरी काव्यधाराओं का विवेचन करना।
iv. साठोत्तरी काव्यान्दोलनों की पड़ताल करना।
v. साठोत्तरी कविता आन्दोलन की सार्थकता-निरर्थकता व उद्देश्य को प्रतिपादित करना।

5.1.01. प्रस्तावना

स्वाधीनता-प्राप्ति के पश्चात् भारतीय जनमानस प्रजातन्त्रीय व्यवस्था में अत्यधिक परिवर्तन देखने का आकांक्षी था। स्वाधीनता के लिए किया गया हर आन्दोलन, हर बलिदान पन्द्रह अगस्त उन्नीस सौ सैंतालीस को रंग लाया। जवाहरलाल नेहरू के सक्षम नेतृत्व में करोड़ों भारतीय जन अपनी स्थिति में बदलाव लाने के लिए इच्छुक थे। इस बदलाव के लिए जनसामान्य ने कुछ वर्षों तक प्रतीक्षा भी की किन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, आशा निराशा में बदलने लगी और मोहभंग का दौर आरम्भ हो गया। जिस सामाजिक न्याय और लोकोन्मुखी जनतान्त्रिक व्यवस्था की स्थापना की आस लोगों को थी, वह दूर की कौड़ी बनी रही। दरिद्रता के विकराल रूप सामने आने लगे। महँगाई और शोषण बढ़ा। धनवान् अधिक धनसम्पन्न हुए और निर्धन अधिकाधिक दरिद्र होते चले गए। विषमता की यह खाई गहरी होती चली गई और जनतान्त्रिक व्यवस्था की आड़ में पूँजीवादी व्यवस्था पनपने लगी। लम्बे समय तक एक उपनिवेश के रूप में जीते हुए विदेशी साम्राज्यवादी सत्ता के पंजे में भारतीय जनता जकड़ी हुई थी। अंग्रेज़ों के जाने के बाद शोषण का यह शिकंजा समाप्त कर दिया जाएगा, इस आस में जीते हुए भारतीय जन अब देसी महाजनी सभ्यता की विकराल मार सहने लगे। कुल भारतीय व्यवस्था अलोकतान्त्रिक मूल्य, भ्रष्टाचार, पाखण्ड, शोषण, विषमता और अविश्वास का प्रतीक बन गई।

5.1.01.1. साठोत्तरी हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि

हिन्दी कविता में उपर्युक्त स्थितियों का वर्णन करने के लिए कवियों ने स्वयं को बाध्य पाया। इन परिस्थितियों के कारण संत्रस्त हो चुके कवियों ने अपनी भावनाओं को लेखनी के माध्यम से अभिव्यक्त किया। साठोत्तरी कविता में ये भावनाएँ अत्यधिक बलवती होकर उभर आयीं। इस समय तक आते-आते कवियों के मन से अनुकूल बदलाव की आस क्षीण हो गई थी और आस का स्थान आक्रोश ने ले लिया था। व्यवस्था के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करने के लिए मार्क्सवादी जनवाद और अस्तित्ववादी व्यक्तिवाद अत्यन्त सक्रिय रहे। अपने बाह्यावरण में परस्पर विरोधी प्रतीत होने वालीं ये विचारधाराएँ पूँजीवादी शोषणमूलक व्यवस्था के विरोध में समान रूप से मुखर हुईं। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता जैसी पूर्ववर्ती कविता की विचारभूमि मार्क्सवादी और अस्तित्ववाद ही रही। इनसे उपजी सामाजिकता एवं व्यक्तिवादिता की अभिव्यक्ति कविता में की गई थी। विशेषतः नयी कविता ने अत्यन्त संतुलित पद्धत्ति से देश में व्याप्त अव्यवस्था, भ्रष्टाचार, शोषण, विषमता, मूल्यहीनता आदि विद्रूपताओं पर कड़े प्रहार किए थे। ऐसी स्थिति में साठोत्तरी कविता के निर्माण के कारणों की पड़ताल आवश्यक लगती है। पूर्ववर्ती कविता की सक्षमता को अपर्याप्त जानकर ही कवियों ने नये नामकरण और नये दृष्टिकोण को अपनाते हुए साठोत्तरी कविता को जन्म दिया। बल्कि यूँ कहिए कि प्रत्येक समय की सक्षम कविता अपनी पूर्ववर्ती कविता की अपर्याप्तता को भाँपकर, उसमें निहित कमियों की पूर्ति के लिए कटिबद्ध होकर ही अवतरित होती है।

नयी कविता निःसन्देह अपनी शक्तिभर सामाजिक कुरूपताओं पर व्यंग्य, कटाक्ष, प्रहार कर रही थी लेकिन इस बात को कदापि भूलना नहीं चाहिए कि नयी कविता में अस्तित्ववादी व्यक्तिवाद अत्यन्त प्रबल रूप में

कार्यरत था। अस्तित्वाद की विविध भंगिमाएँ – खालीपन, हतबलता, असमर्थता, मृत्युबोध नयी कविता पर प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हावी हैं। साठोत्तरी कवियों (और जनसामान्य) की यही मानसिकता थी कि इस असहायता, रिक्तता, मृत्युबोध जैसी हताशाजनक बातों की अपेक्षा अब आक्रामकता को अपनाया जाए। मात्र व्यंग्य-कटाक्ष करने की अपेक्षा खड़ी व स्पष्ट भाषा तथा भाव के साथ अब सक्रिय एवं संघर्षात्मक तेवर अपनाये जाएँ। इस प्रकार के संघर्षात्मक तेवर अपनाना अस्तित्ववादी व्यक्तिवाद के लिए सम्भव नहीं था क्योंकि वह उसकी मूल प्रकृति के अनुरूप नहीं। इसके लिए जिस जनवादी समझ से लैस होना आवश्यक था, वह समझ साठोत्तरी कवियों के पास थी। पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध आवाज़ बुलंद करना, पूँजीवादी व्यवस्था के प्रत्येक षड्यन्त्र को बेनकाब करना और सामाजिक व्यवस्था में सुधार नहीं बल्कि आमूलचूल परिवर्तन करना साठोत्तरी कविता का लक्ष्य था। इसी लक्ष्य से प्रेरित होकर शोषण विरोधी संवेदनाओं को अलग-अलग तेवरों के साथ अभिव्यक्त किया गया। सामाजिक-राजनैतिक विसंगतियाँ, कुर्सीवाद, भाई-भतीजावाद, भ्रष्टाचार जितना बढ़ने लगा उतना ही क्रोध और आक्रोश साठोत्तरी कवियों के मन में फूटने लगा। क्रोधातिशयता ने विद्रोह को जन्म दिया और विद्रोह की ओर उन्मुख साठोत्तरी कवि-पीढ़ी ने अस्वीकृति, व्यंग्य, सपाटबयानी, क्रोध में लिपटी भाषा, सेक्स सम्बन्धी शब्दादि का प्रयोगातिरेक जैसी विशेषताओं को अपनाकर अपने भावों को अभिव्यक्त करना आरम्भ किया।

साठोत्तर समय विविध काव्यान्दोलनों का समय रहा है। डॉ॰ जगदीश गुप्त ने अपने व्यंग्यात्मक लेख 'किसिम-किसिम की कविता' में चालीस से अधिक आन्दोलनों का उल्लेख किया है। आन्दोलनों की एक बाढ़-सी इस समय में आयी। वस्तुतः इस कालखण्ड में कई युवा कवि काव्य के क्षेत्र में दाखिल हुए। इस समय अनगिनत पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन हुआ। अधिकांश काव्यान्दोलन इन्हीं युवा कवियों और पत्र-पत्रिकाओं के द्वारा छेड़े गए।

5.1.02. अ-कविता

साठोत्तरी काव्यान्दोलनों में सर्वाधिक चर्चित और तुलनात्मक दृष्टि से प्रभावी माना गया आन्दोलन 'अ-कविता' है। सन् 1963 में जगदीश चतुर्वेदी ने 'प्रारम्भ' नामक काव्य-संकलन का प्रकाशन किया। इसके साथ ही नयी कविता से स्वयं को अलगाने का प्रयास सबसे पहले उभरकर आया। दिल्ली से प्रकाशित इस काव्य-संकलन में चौदह कवियों को सम्मिलित किया गया था जिनके नाम इस प्रकार हैं – जगदीश चतुर्वेदी, कैलाश बाजपेयी, राजकमल चौधरी, श्याम परमार, विष्णुचन्द्र शर्मा, नरेन्द्र धीर, केशु, ममता अग्रवाल, श्याम मोहन, मनमोहिनी, रमेश गौड़, राजीव सक्सेना, स्नेहमयी चौधरी और नर्मदाप्रसाद त्रिपाठी।

प्रस्तुत संकलन चार भागों में विभक्त था – 'नस्लहीन नगर और अंधे लोग', 'कमज़ोर आवाज़ें और छटपटाते हाथ', 'आकाश के बाजुओं में' और 'सिलहुटी रूपाभास और अनजान रागनियाँ'। जगदीश चतुर्वेदी 'प्रारम्भ' की विशेषता और कवि-चयन की कसौटी को लेकर लिखते हैं – "इसमें वही कवि सम्मिलित किये गए हैं जिनमें आधुनिकता के प्रति सहज आग्रह है और जो अपने कविधर्म के प्रति सजग तथा सचेत हैं।"[1]

5.1.02.1. अ-कविता आन्दोलन की पृष्ठभूमि

'प्रारम्भ' की आवश्यकता और नवीनता को जगदीश चतुर्वेदी ने कुछ इस प्रकार स्पष्ट किया है – "अभी तक नयी कविता का मूल्यांकन केवल सप्तकों तथा पिछले दशक में प्रकाशित कुछ कविता संकलनों के आधार पर किया जाता रहा है। किन्तु सत्य यह है कि आधुनिक जीवन के विभिन्न स्तरों को छूनेवाली कवि-दृष्टि इधर पाँच-सात वर्षों से ही दिखाई दे रही है।"[2] नयी कविता के कई कवि 'प्रारम्भ' में जगदीश चतुर्वेदी के साथ पाये जाते हैं। अतः जिस काव्य-दृष्टि (जो 'इधर पाँच-सात वर्षों से ही दिखाई देने') की बात की गई वह केवल आत्मोन्मुख सेक्स भावना से पूरित प्रतीत होती है –

रात का उजड़ा हुआ निश्वास
सो गया है
मैथुनों में रत
भग्न आँखों में उलूकों के[3]

राजकमल चौधरी की पंक्तियाँ भी लगभग ऐसी ही सेक्स-भावना का उद्घाटन करती हैं –

स्त्री कभी नग्न नहीं होती है
अपनी त्वचा में ढकी हुई
उजाले में सोती है[4]

इस बानगी के अलावा अ-कविता में अनगिनत ऐसे उदाहरण हैं जिनमें नयी काव्य-दृष्टि का तो खैर पता नहीं पर, नारी की देह और मैथुन से जुड़ी तमाम कुण्ठाएँ खुलकर सामने आयी हैं।

सन् 1966 में 'अकविता' पत्रिका के प्रकाशित हो जाने के पश्चात् अ-कविता आन्दोलन अधिक प्रबल हुआ। अबकी बार श्याम परमार के नेतृत्व में इसे विस्तार मिलने लगा। आरम्भ में गिरिजाकुमार माथुर, भारतभूषण अग्रवाल जैसे हस्ताक्षर भी अ-कविता से जुड़े थे किन्तु धीरे-धीरे श्याम परमार समेत सौमित्र मोहन, जगदीश चतुर्वेदी, मोना गुलाटी आदि कविगण अकविता में अधिक सक्रिय रहे। सन् 1967 में जबलपुर की 'कृति-परिचय' के सम्पादक ललित कुमार श्रीवास्तव ने भी 'अकविता' शीर्षक से ही एक काव्यांक प्रकाशित किया। गोविन्द राय के सम्पादकत्व में ग्वालियर से 'अकविता' नाम से एक पत्रिका निकाली गई जिसकी सम्पादक-सलाहकार समिति में रमेश कुंतल मेघ, राजीव सक्सेना, रणजीत आदि प्रगतिशील कवि शामिल थे।

इन पत्रिकाओं में सामाजिक, राजनैतिक समझ व उत्तरदायित्व का भाव लगभग नदारद था। अपनी क्षुब्धता की अभिव्यक्ति कर निषेध के स्वर को बलवान् बनाना इनका उद्देश्य प्रतीत होता है। इस उद्देश्य की सार्थकता उभरने से पहले ही 'अकविता' में नारी-देह का उबकाई भरा चित्रण स्पष्ट होने लगा। बावजूद इसके ऐसी अलग-अलग पत्रिकाओं और कवियों ने 'अकविता' शब्द के साथ विशिष्ट रूपाकारवाली कविता को आगे बढ़ाने का प्रयास किया।

5.1.02.2. अ-कविता : स्वरूप एवं विकास

'एंटी पोएट्री' की तर्ज पर 'अकविता' कहलाये गए इस काव्यान्दोलन को लेकर उसके प्रमुख हस्ताक्षर श्याम परमार ने कुछ अपने तर्क प्रस्तुत किए। उनके मतानुसार –

i. अकविता स्थितिपरक संतुलित स्तर की कविता है।
ii. अकविता की नियति अकेलेपन की नियति नहीं है, बल्कि विकृत सम्बन्धों की नियति है।
iii. अकविता वस्तुतः कविता के ऊबे हुए लोगों की अभिवृत्ति है। यह ऊब नैराश्यजाया नहीं, न ही ऐसे लोगों की प्रतिक्रिया है जिन्हें 'आइडेंटिटी' की आवश्यकता है। नैराश्य अब स्वभाव बन गया है।
iv. अकविता अन्तर्विरोधों की अन्वेषक कविता है।
v. अकविता अवाक् मन की प्रक्रिया नहीं है।
vi. अकविता स्वाभाविक कविता की दिशा है।

श्याम परमार की दृष्टि से अ-कविता का उद्भव तथा उपस्थिति सर्वथा औचित्यपूर्ण है। इसका स्पष्टीकरण देते हुए वे बड़ी सहजता के साथ अ-कविता को 'नयी कविता' से भिन्न सिद्ध करते हैं – "सोचने पर 'कविता' और 'नयी कविता' साधारण शब्द प्रतीत होते हैं। कविता में 'अ' जोड़ने से उक्त दोनों शब्दों के बासीपन से मुक्ति मिलती है।"[5]

अ-कविता से जुड़े लोग स्वयं अ-कविता को लेकर अलग-अलग मान्यताएँ रखते पाए जाते हैं। यथा, जहाँ श्याम परमार प्रस्तुत काव्यान्दोलन को न निषेध का आन्दोलन मानते हैं न ही उस पर कोई विदेशी प्रभाव स्वीकारते हैं, वहीं जगदीश चतुर्वेदी स्पष्ट कहते हैं – "इंग्लैंड के एंग्री यंग मैनों की तरह एक क्षुब्धता आज के हिन्दी कवियों में है। इस अभिनव काव्य-संकलन में कदाचित् प्रथम बार हिन्दी के क्षुब्ध पीढ़ी के कवि एक स्थान पर संगृहीत हैं।"[6] ग्वालियर से निकली 'अकविता' के सम्पादक गोविन्द राय का मानना है – "अकविता तनाव और फ्रस्टेशन की काव्य-परिणति है, जिसे मोटी-मोटी तनख्वाह पाने वाले अपने अनुसार ढाल लेना चाहते थे। इनकी इसी प्रवृत्ति ने अकविता के सम्बन्ध में भ्रम फैला दिए हैं।"[7] भले ही यह कथन सत्य हो, (या असत्य हो या फिर अर्द्धसत्य हो) 'अकविता' के कविगणों ने अपने विषय में फैलते भ्रमों का निराकरण करने की अपेक्षा इन्हें इतना अधिक बढ़ाया कि अ-कविता की मूल तस्वीर ही धुँधलाती गई। जिन-जिन मतों या टिप्पणियों के माध्यम से अ-कविता की तस्वीर प्रस्तुत की गई थी, वे मत स्वतः निष्प्रभ-से होते गए। अ-कविता ने स्वयं को 'अन्तर्विरोधों की अन्वेषक' कविता घोषित किया था किन्तु जिन सामाजिक, राजनैतिकादि अन्तर्विरोधों की पड़ताल करने में पूर्ववर्ती कविता चूक गई थी, ऐसे किसी अन्तर्विरोध पर अकविता के अन्तर्गत लेखनी नहीं चलाई गई। जिस अ-कविता को 'स्वभाविक कविता की दिशा' माना गया, वह अ-कविता अपनी सारी स्वाभाविकता, दिशा आदि को केवल स्त्री देह के उटपटाँग चित्रण तक सीमित करती चली गई। श्याम परमार के मतानुसार अ-कविता से जुड़े

कविगणों को आइडेंटिटी की आवश्यकता नहीं है। जबकि सत्य यह प्रतीत होता है कि समूचे अकविता आन्दोलन के पीछे आइडेंटिटी क्राइसेस ही कार्यरत है।

चूहा, बिल्ली, कुत्ता,
हाथी, शेर, रीछ, गेंडा, बारहसिंगा,
लकड़बग्घा, भैंसा, गाय, सुअर,
तीतर, बटेर, कबूतर,
साँप, बिच्छू, अजगर,
बकरा, ऊँट, गधा, घोड़ा ... और मैं[8]

श्याम परमार के अनुसार अ-कविता स्थितिपरक संतुलित स्तर की कविता है। वे यह भी स्पष्ट करते हैं कि हॉरर या मृत्यु जैसी बातें अकवियों को विक्षुब्ध नहीं करतीं। अव्यवस्था, विसंगति, मूल्यहीनता, विरोधाभास और आदर्शों का अकाल आदि बातें उन्हें संवेदनशील और करुण नहीं बनातीं। मात्र इतना ही नहीं, श्याम परमार आगे कहते हैं कि अकवि के लिए जीवन-दर्शन की मान्यताओं का कोई अर्थ शेष नहीं बचा है। यह और ऐसी कितनी ही बातें अ-कविता की संकल्पना स्पष्ट करते हुए कही गईं। इनके परिपार्श्व में अ-कविता की लक्ष्यहीनता और दिशाभ्रष्टता अधिक खुलकर सामने आती है। बहुत स्वाभाविक रूप से कुछ प्रश्न उभर आते हैं कि जिस मूल्यहीनता के कारण कवि लेखनी उठाने के लिए विवश होता है, वह मूल्यहीनता यदि कवि के लिए कोई मायने नहीं रखती या उसे आन्दोलित नहीं करती तो कवि आखिर लिख क्यों रहा है और किसके लिए लिख रहा है? यदि अकारण लिख रहा है और किसी विशिष्ट तक अपना स्वीकार-अस्वीकार पहुँचाने हेतु नहीं लिख रहा है तो उसका सम्पूर्ण लेखन ही व्यर्थ सिद्ध होता है। यदि अकवि नैराश्य को अपना स्वभाव बना चुका है और उसकी कविता, कविता के ऊबे हुए लोगों की अभिवृत्ति मात्र है तो कवि और कविता को लेकर बनी समस्त धारणाएँ स्वतः ही ध्वस्त हो जाती हैं।

अ-कविता आन्दोलन इसी प्रकार की अस्तव्यस्तताओं से भरा पड़ा है। इसमें बुझे-थके स्वयं घोषित कवियों की वह जमात शामिल है जो व्यापक लोककल्याण और समाजोपकार के भाव से पूरी तरह उचटी हुई है। इनकी लेखनी ऊब, निराशा घूम-फिरकर स्त्री के अंग-प्रत्यंग का बीभत्सता भरा वर्णन करने में ही सार्थकता का अनुभव करती है। नग्नता, भौंडापन और सेक्स के स्तरहीन चित्र अ-कविता की एकमात्र उपलब्धि मानी जा सकती है। इस सन्दर्भ में डॉ॰ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का एक कथन द्रष्टव्य है – "यौन चित्रों की बीभत्सता इस कविता में इतनी अधिक है कि विक्टोरियन नैतिकता के लोग तो उसे अपठनीय घोषित कर देंगे मगर नव समृद्ध वर्ग में ही नहीं, सारे उच्च और मध्यमवर्ग में यौनतृष्णा अत्यन्त प्रबल है जो समाज के भय के कारण अँधेरे, उजालों में पूरी निर्लज्जता से प्रकट है। स्वयं अकवि की स्थिति भी यही है।"[9]

देह की राजनीति में लिप्त अ-कविता कई अच्छे कवियों को निगल गई। कई कवि, जिनमें भविष्य की उज्ज्वल संभावनाएँ निहित थीं, अ-कविता की देहलिप्त कविता के भँवर में ऐसे फँसे कि निकल ही न पाए।

सन् 1963 में 'प्रारम्भ' से जो काव्यान्दोलन प्रारम्भ हुआ था, वह सन् 1973 में जगदीश चतुर्वेदी द्वारा प्रकाशित 'निषेध' के साथ समाप्त भी हो गया। कुल जमा 9-10 वर्ष के अपने जीवन-काल में अ-कविता आन्दोलन हिन्दी कविता को तत्कालीन घोषणाबाज़ी के अलावा कुछ भी न दे पाया।

5.1.03. बीट पीढ़ी

अमेरिका के कवि एलेन गिन्सबर्ग की सोच में 'बीट कविता' सबसे पहले उभरी। 'बीट जनरेशन' अर्थात् 'बीट पीढ़ी' शब्द का अविष्कार जैक केरूआक ने अमेरिका के चेल्सा डिस्ट्रिक्ट में रहते हुए किया था। जैक केरूआक अमेरिका के बीटनिक आन्दोलन के प्रख्यात कवि एलेन गिन्सबर्ग के साथी थे। सन् 1952 में न्यूयार्क टाइम्स में 'दिस इज अ बीट जनरेशन' शीर्षक लेख छापा था। पश्चात् सन् 1955 में जैक केरूआक ने अपने उपन्यास के कुछ अंश 'जाज ऑफ़ दि बीट जनरेशन' शीर्षक से प्रकाशित करवाए थे जिसने अपने समय में खासी लोकप्रियता जुटा ली थी। इस बीच सन् 1954 में एलेन गिन्सबर्ग की काव्य-पुस्तक 'हाउल' प्रकाशित हुई और प्रकाशन के साथ ही पुलिस ने इसे जब्त कर लिया। पश्चात् न्यायालय में गिन्सबर्ग के पक्ष में निर्णय देने के उपरान्त ग्यारह कविताओं का यह संकलन हजारों प्रतियों में बिका। इस संग्रह की कविताओं में विभिन्न राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय प्रश्नों को स्पर्श किया गया था। साथ ही, आत्मसमीक्षण भी विद्यमान था। जिस साफगोई से गिन्सबर्ग ने अपनी बात रखी, वह काफी प्रशंसित हुई–

अमरिका, जब मैं छोटा था तो कम्युनिस्ट था – इसका मुझे
कोई दु:ख नहीं है।
जब मुझे मौका मिलता है मारिजुआना पीता हूँ
तुम्हें देखना चाहिए कि मैं मार्क्स पढ़ रहा हूँ
मेरा मनोचिकित्सक कहता है कि मैं बिल्कुल ठीक हूँ[10]

5.1.03.1. बीट कविता : तात्पर्य एवं स्वरूप

एलेन गिन्सबर्ग का भारत में आगमन हुआ और देखते ही देखते भारत के साहित्यकारों, विचारकों को उसने असाधारण रूप से प्रभावित किया। गिन्सबर्ग ने लिखा है – "कलकत्ता के कुछ उत्साही युवा कवियों ने मुझसे प्रेरणा पाकर एक गुट बनाया है – 'भूखी पीढ़ी'।"[11] हिन्दी में 'बीट' पीढ़ी का सर्वप्रथम उल्लेख निरन्तर अमेरिका आते-जाते प्रभाकर माचवे ने किया। अर्थात् इस बात को लेकर भी काफी मत-मतान्तर देखे जा सकते हैं। सन् 1962 में भारत आये गिन्सबर्ग को एक उदाहरण के रूप में देखा जा सकता है। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में असाधारण उन्नति कर चुके अमेरिका से आये गिन्सबर्ग दो-दो विश्वयुद्धों की त्रासदी सह चुके लोगों की मानसिकता से न केवल परिचित थे बल्कि भुक्तभोगी भी थे। विज्ञान की तरक्की, उसका मानव पर पड़ा असर और इस व्याकुल मानसिकता से त्रस्त भारत आये बेचैन लोगों और उनके विचारों को लेकर कैलाश बाजपेयी ने कहा है – "लगता है जैसे दुनियाभर में वर्तमान का लतमर्दन किया जा रहा है। कला, राजनीति, चिन्तन सब पर एक विचित्र प्रकार की ऐठन फैल रही है। सब अवाक् होकर एक द्विमुखी नाटक देख रहे हैं। एक ओर हैं लाल रक्षक –

भयंकर क्रूर और हर प्रकार की मानवीय संवेदना एवं प्रतिक्रिया से कट्टे पूर्ण निरंकुश, सपाट और उद्धत। दूसरी ओर हिप्पी, विभक्त, मनस्क और उल्थे सन्दर्भ में गाँधी और बुद्ध को पुकारते, अन्तर्मुखी यात्रा के बहाने 'मारिजुआना' और एल.एस.डी. के स्फार में यौन स्वच्छन्दता का आनन्द लेते। जिनकी सांस्कृतिक गतिविधियों से चौकन्ना होकर राज्य को दो हजार से अधिक मनोचिकित्साग्रह खोलने पड़े हैं ..."[12] वाजपेयीजी जिसका संकेत देते हैं उस हिप्पी संस्कृति ने भारत में मुंबई दिल्ली, गोवा, बनारस, कलकत्ता जैसे स्थानों पर अपना डेरा जमा लिया। इन हिप्पियों की सोच का सम्पूर्ण परिपाक 'बीट' संकल्पना में देखा जा सकता है। बांग्ला के माध्यम से हिन्दी कविता में इस प्रवृत्ति ने दस्तक दी। राजकमल चौधरी, मलय राय चौधरी, सुविमल वसाक, सुभाष घोष, समीर चौधरी आदि रचनाकारों ने बीट प्रवृत्ति का स्वीकार किया। राजकमल चौधरी, प्रभाकर माचवे, रमेश बक्षी जैसे हिन्दी रचनाकारों ने 'कृति', 'अभिव्यक्ति' शीर्षक पत्रिकाओं के माध्यम से इसे हिन्दी में पहुँचाया। ये कवि नग्नता और यौन सम्बन्धों के खुलेपन को बेहिचक स्वीकारते हैं। अभिजात्य संस्कारों के प्रति क्रोध और विद्रोही भाव इन कवियों में कूट-कूटकर भरा है –

ट्रेपस्टी के पीछे नीले फूलदान में एक कद्दावर
गिरगिट छिप जाता है
औरतें अस्पताल जाती हैं
और सत्रह हजार तीन सौ पचपन दवाओं के
पेटेंट नुस्खों के साथ-साथ एक चूहा खरीद लाती हैं[13]

अ-कविता पर दृष्टिगोचर होता बीटनिकों का प्रभाव विस्तार पा गया। पश्चात् अ-कविता ही नहीं, प्रत्येक क्षुब्ध मानसिकता को बीट पीढ़ी के विचार आकर्षित करने लगे। राजकमल चौधरी तो गिन्सबर्ग से इस कदर प्रभावित हैं कि उनके 'मुक्ति प्रसंग' में गिन्सबर्ग और उनके अनुयायी मलयराय चौधरी दोनों विद्यमान हैं –

जिसे बेड़ौल टुकडों में बाँटकर अलग-अलग चाहते हैं
भोग करना बनिए-सौदागर
इस दुनिया की सबसे नंगी सबसे मजबूत औरतका नाम है वियतनाम
उत्तर वियतनाम और दक्षिण वियतनाम / उत्तर कोरिया और
दक्षिण कोरिया
सफेद अफ्रिका और काला अफ्रिका
पूर्वी जर्मनी और पश्चिमी जर्मनी
पाकिस्तान और हिन्दुस्तान
सफेद अमरिका और काला अमरिका
जॉन्सन का अमरिका और इलेन गिन्सबर्ग का अमरिका
इंदिरा गाँधी का हिन्दुस्तान
और मलयराय चौधरी का हिन्दुस्तान
इस दुनिया की प्रत्येक मजबूत औरत नंगी और दो टुकडों
में बँटी हुई।

यह औरत मेरी माँ और मेरी बीवी मेरा देश / और मेरी ज़िंदगी[14]

केवल राजकमल चौधरी ही गिन्सबर्ग से प्रभावित नहीं थे । सन् 1963 में शमशेर बहादुर सिंह ने 'कल्पना' में गिन्सबर्ग को लेकर पाँच कविताएँ लिखीं । उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा – "कवियों के मध्य कोई सीमारेखा नहीं होती । यदि होती है तो गंगा की रेत, मियामी उद्यान, कश्मीर, निस्, जेनेवा, नियाग्रा, रायो, सितारों, पहाड़ों, बहारों-त्यौहारों, एक जाम, चाय, चिलम, कॉफ़ी, धूम्रपान, सागर-लहर और फाख्ताओं के सिवाय कोई सीमारेखा नहीं ।"[15] उपर्युक्त कथन से गिन्सबर्ग के हिन्दी कविता पर पड़े सर्वव्यापी प्रभाव को आँका जा सकता है । इस 'बीट जनरेशन' ने भी हिन्दी कविता में यत्किंचित श्रीवृद्धि नहीं की क्योंकि इसमें भी केवल नारी देह का अंग-प्रत्यंग वर्णन, कुण्ठा, आत्महत्या, सेक्स चिन्ता के अलावा कुछ भी नहीं था । अमेरिका के बीटनिकों ने जो जिया उसे हिन्दी ने (बांग्ला के माध्यम से) चितारा और जीवन में उतारा । इन बीटनिकों ने समलैंगिकता, घृणास्पद उच्छृंखलता, अतिवादी फैशन, काम-बुभुक्षा को आध्यात्मिक तलाश का चोगा पहनाया । इस सन्दर्भ में विमल पाण्डे लिखते हैं – "हिन्दी की बीट कविता कुत्साप्रधान कविता है । वह उतनी ही भौंडी है जितनी किसी को सीधे गाली देना । बीट कवियों का भी जीवन-दर्शन नहीं है । बीट कविता में पतनोन्मुख प्रवृत्तियों को सैद्धान्तिक समर्थन देने की प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष चेष्टा की गई है । इसमें गाँजा एवं चरस पीना, मन में छिपी सेक्सुअलिटी खोज निकालने वाली नशीली दवाओं का उपयोग – यौन विकृतियों की भौंडी आलोचना की गई है ।"

स्वयं जगदीश गुप्त इस विषय में अपनी बेबाक राय देते हैं – "क्षुधा और काम को नितान्त अमर्यादित रूप में ग्रहण करना आधुनिक जीवन के गहन सांस्कृतिक संकट का परिचायक भले ही हो, उसका विश्वसनीय निदान नहीं है, क्योंकि इनके वेग के द्वारा मानवीय सहानुभूति बहुधा कुचल दी जाती है और मनुष्य कंकाल के सदृश्य खोखला दिखाई देने लगता है ।"[16]

बीट पीढ़ी की कविताएँ मात्र सेक्स तक सिमटकर रह गईं । भारतीय मिट्टी में वह कभी एकाकार प्रतीत ही नहीं हुई । इस कविता का मूल्यांकन करता हुआ डॉ० बैद्यनाथ सिंहल का कथन पूर्ण रूप से सत्य प्रतीत होता है – "मूल्यदृष्टि बीट कवियों के पास तो बिल्कुल नहीं है । जिस प्रकार बीट लोग काम से बचकर ऐश उड़ाना चाहते हैं, इसी प्रकार ये कविता से बचकर कवि होने का नाम कमाना चाहते हैं । यदि बीट लोग अन्तर्राष्ट्रीय तस्कर हैं, तो बीट कवि उनकी पासपोर्ट कहे जा सकते हैं ।"[17]

बीट कविता अपने मूल अवतार में कई बार अचूक सामाजिक, राजनैतिक सन्दर्भ के साथ उभरी है, कई राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय मुद्दों का स्पर्श करती दिखाई देती है किन्तु इन सकारात्मक प्रवृत्तियों के मजबूत होने के पहले ही बीट कविता मारीजुआना, सेक्स, आध्यात्मिकता की खोल और कई सारी दुर्भाग्यपूर्ण असंगतियों में फँस गई और देखते ही देखते सारा बीट आन्दोलन ही थोथा, भौंडा, अश्लील और सारहीन सिद्ध हुआ ।

5.1.04. युयुत्सावादी कविता

शलभ श्रीराम सिंह ने 'रूपाम्बरा' पत्रिका के माध्यम से युयुत्सावादी भाव रखनेवाली कविता का विचार प्रस्तावित किया। इसे क्रुद्ध पीढ़ी के साथ जोड़ा गया। शलभ श्रीराम सिंह ने 'युयुत्सा' पत्रिका का सम्पादन किया था। 'युयुत्सा' शब्द का अर्थ ही 'युद्ध की इच्छा' बताया जाता है। स्वाभाविक रूप से युयुत्सावादी कविता ने विद्रोह के तेवर अपना लिए थे। ओम प्रभाकर, विमल पाण्डेय जैसे कवि भी युयुत्सावादी कविता से जुड़े। सन् 1965 के अप्रैल में प्रकाशित 'रूपाम्बरा' में स्वदेश भारती ने शलभ श्रीराम सिंह को कोट किया था – "मैं साहित्य-सृजन की मूल प्रेरणा के रूप में उसी, आदिम युयुत्सा को स्वीकारता हूँ जो कहीं न कहीं प्रत्येक क्रान्ति, परिवर्तन अथवा विघटन के मूल में प्रमुख रही है। वह युयुत्सा जिजीविषावादी, मुमूर्षावादी, विद्रोहात्मक अथवा प्लैटोनिक कुछ भी हो सकती है।"[18]

युयुत्सावादी कविता ने संतुलित विद्रोह, यान्त्रिकता का विरोध, परोक्ष पराधीनता के प्रति विद्रोह जैसी विशेषताओं के साथ अपना रूपाकार गढ़ना आरम्भ किया – "फैशन के नाम पर अंधाधुंद साहित्य लिखने वाले लेखकों की एक भीड़ अनजाने इस षड्यन्त्र की जड़ मजबूत करने में लगी हुई है। व्यक्तिगत स्थापना की लालसा इन लेखकों को मूल बिन्दु से हटाकर एक ऐसी आधुनिकता के समीप ले जा रही है जहाँ जातीय बोध आधारहीनता की स्थिति को सहज ही प्राप्त होता जा रहा है। इसका एक मात्र और भयानक कारण यह है कि आज साहित्य और जनसाधारण के बीच तीसरा व्यक्ति आ गया है ... आवश्यकता है, गलत हाथों की पकड़ से यान्त्रिकता को मुक्त कराने के लिए संतुलित विद्रोह की। विद्रोह जो एक विचारधारा के व्यक्तियों द्वारा चिन्तन के स्तर पर हो।"[19]

शलभ श्रीराम सिंह के साथी ओम प्रभाकर ने भी 'युयुत्सा' पत्रिका में युयुत्सावादी काव्य-प्रवृत्ति का समर्थन किया – "युद्धेच्छा एक सनातन वृत्ति है, एक आदिम स्वभाव है। ... मनुष्य मात्र अपने से ही जिस वृत्ति के वशीभूत होकर सबसे अधिक सक्रिय होता रहा है वह वृत्ति युयुत्सा ही है ... युयुत्सा हमारी नियति है।"[20]

15 अगस्त सन् 1968 को 'युद्ध युद्ध युद्ध' संकलन प्रकाशित हुआ था। 'मुखौटे, सलीब, युद्ध' जैसे सहकारी संकलन ने भी युयुत्सा को भली-भाँति परिभाषित किया। इसमें चन्द्रमौलि उपाध्याय, राजीव सक्सेना, रामाश्रय सविता, नीलम, उमेश, शरद, आनन्द सोनवलकर जैसे कविगण शामिल थे। इससे पहले भी चन्द्रमौलि उपाध्याय ने अपने काव्य-संकलन को 'युद्ध श्रेयस्' शीर्षक से प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने वीरपूजा, धर्म भावना व जन-संस्कृति को अपना उपजीव्य माना था। इस संग्रह की कविताएँ निश्चित रूप से युद्ध-ओज से भरपूर थीं। इसमें अपनी स्थिति की संकटापन्न व यंत्रणापूर्ण संभावनाओं का भानथा। इन्हें ही कविता के माध्यम से वाणी प्रदान की गई –

सिर्फ़ धरती रहने दो, सिर्फ़ धरती,
तुम उठा लो अपनी जाति मेरे वक्ष से

मैं बंजर नहीं रहूँगी
फिर कभी पैदा होगा कोई मनुजात
एक लाख साल के बाद
जिनके हाथों में होंगे
सही रचना के सामान
सच्चे विध्वंस के हथियार
इतिहास की सच्ची रास।
तुम इतिहास को मुक्त कर दो
छोड़ दो मेरी छाती
मेरा मातृत्व अब सो जाना चाहता है।[21]

धरती की यह ललकार और ऐसे ही कई अनोखे स्वर इस वाद की कविता में देखे जा सकते हैं। 26 जनवरी सन् 1969 को लखनऊ से प्रकाशित 'मुखौटे, सलीब, युद्ध' में उमेश ने लिखा है – "युद्ध सही भूमि पर सही कारणों और स्थितियों पर होना चाहिए। उसका थोड़ा-सा भी कोण बदल जाने पर वह अर्थ के स्थान पर अनर्थवाहक हो जाता है। क्रान्ति की पहली शर्त ही हर चीज़ को गलत समझना है, तभी विद्रोह में तेजी आएगी।"[22] युयुत्सावादी कविता की अच्छी बात यह कि दिशाहारा होने की स्थिति में आन्दोलन की क्या स्थिति होगी, इस बात से भी वे भली-भाँति परिचित थे तभी उमेश अपने वक्तव्य में आगे यह भी स्पष्ट कर देते हैं कि – "नये निर्माण का नक्शा भी दिमाग में होना चाहिए वरना लक्ष्यभ्रष्ट विद्रोह केवल आत्महंता ही साबित होता है।"[23]

सेक्स को अपनी रचनाधर्मिता की आधारशीला न मानने वाला युयुत्सावादी कविता जैसा कोई काव्यान्दोलन साठोत्तरी समय में हो रहा था, यही अपने आप में अनोखी बात थी। किन्तु धीरे-धीरे जनसाधारण और साहित्य के बीच की खाई को पाटने की आकांक्षा रखने वाला यह काव्यान्दोलन क्षीण होने लगा। जनवरी 1967 के 'युयुत्सा' के अंक में शलभ श्रीराम सिंह ने 'सामाजिक स्थिति में दोहरे परिवर्तनों के आ जाने' और 'दो प्रक्रियाओं से एक साथ गुजरने की विवशता' के कारण अपने मूल वैचारिक स्वरूप के 'कुछ का कुछ' हो जाने को लेकर शिकायत की और लिखा कि "हम स्वयं से अधिक बीटनिक दिखने लगते हैं।"[24] स्वयं को बीटनिकों से भिन्न ठहराने की परिवर्तनकामी कोशिश कोरे कथनों, घोषणाओं के कारण समाप्त होती गई और युयुत्सावादी कविता के रूप में उभर आया आन्दोलन ठण्डा पड़ गया।

5.1.05. श्मशानी कविता

श्मशानी कविता काव्यान्दोलन के प्रवक्ता निर्भय मलिक थे। उनकी पत्रिका 'श्मशानी पीढ़ी' के द्वारा उन्होंने यह काव्यान्दोलन चलाया। छह अंक प्रकाशित होने के पश्चात् 'श्मशानी पीढ़ी' पत्रिका का नाम बदलकर 'विभक्ति' कर दिया गया। इस छठे अंक का समर्पण वाक्य श्मशानी कविता का स्वभाव स्पष्ट करता है – "जैनेन्द्र की सुनिता को जो अपने पति के दोस्त के लिए खुशी से नंगी हो जाती है।"[25]

अस्वीकार, आक्रोश, क्रोध, यौन असंगतियों के खुले वक्तव्य, सपाटबयानी और संस्कारों का घोर निषेध श्मशानी कविता की प्रधान विशेषताएँ कही जा सकती हैं। इसके प्रवक्ता निर्भय मलिक का निम्नलिखित वक्तव्य श्मशानी कविता का रूपाकार स्पष्ट करता है – "किसी तथाकथित राजनैतिक तुर्क के मुँह से प्रगतिवाद का नाम सुन हिन्दुस्तान की मूर्ख जनता खुश हो सकती है, फिराक की शायरी सुनने के लिए लिजलिजे गदहों की भीड़ इकट्ठी हो सकती है और लाख-दो लाख का पुरस्कार भी दिया जा सकता है, किसी बाज़ारू औरत की सुख-सुविधा के लिए किसी धनी आदमी की तिजोरी खाली हो सकती है और सेठों के लौंडे ज्यादा से ज्यादा संख्या में उसके इर्द-गिर्द चक्कर भी काट सकते हैं, किन्तु किसी श्मशानी लेखक की रचना पढ़कर भीड़ इकट्ठी होगी, ऐसा मुझे कतई विश्वास नहीं होता।"[26] निर्भय मलिक स्पष्ट रूप से स्वीकार करते हैं कि 'संस्कारी गदहों' के बीच उनकी कविता के पाठक बहुत कम हैं। उनके मतानुसार युवा पीढ़ी में संस्कारी गदहों की संख्या अधिकहै। अतः प्रत्येक पुराने और कुछेक नयों को वे बुर्जुआ मानते हैं। श्मशानी कविता के साथ सव्यसाची, विष्णुचन्द्र शर्मा, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय जैसे सशक्त नाम भी जुड़े हैं जो सोयी हुई संवेदनाहीन व्यवस्था को जगाने के लिए पूरे सपाटपन के साथ ऐसी शब्दावली विशेषतः यौन शब्दावली का प्रयोग करते हैं कि जाग्रति की बजाय वितृष्णा का भाव अधिक जगता है। उनके मतानुसार वे सजगता के साथ मानव-अस्तित्व की चिन्ता का वहन करते हुए अपने परिवेश का साहित्य रचते हैं। वे अपनी तुलना श्मशानी विचारक अल्वेअर कामू से करते हैं। श्मशानी पीढ़ी के कवि सकलदीप सिंह इस कविता के धर्म को लेकर कहते हैं – "समकालीन लेखन के उस हिस्से को भी यह पीढ़ी नंगा करने पर अड़ी है जो सेठों की रंगीन पत्रिकाओं में पूँजीवादी लेखन-परम्परा को जीवित रखे रहने की साजिश कर रहा है और सामाजिक स्वस्थता के नाम पर आर्य समाजी लहजे में अपनी अश्लील, लिजलिजी रोमांटिक संवेदना को प्रगतिशीलता या वाममार्गी रंग चढ़ाकर आज के करप्शन को आगे बढ़ा रहा है।"[27]

श्मशानी कविता बोध, संवेदना और मानसिकता की एकरूपता के बिना लेखन को असम्भव मानती है और इस एकरूपता का अस्तित्व केवल श्मशानी कविता में स्वीकारती है। लेखकीय विद्रोह और समसामयिक परिवेश के प्रश्नों के प्रति ईमानदारी इस एकरूपता के लिए आधारभूमि का निर्माण करते हैं। श्मशानी कविता के कविगण मूल्य परम्परा आदि के प्रति अपना दृष्टिकोण इस प्रकार स्पष्ट करते हैं – "मनुष्य, सभ्यता, संस्कृति, क्षमा, दया, ममता, प्रेम, आदर्श, मूल्य और इतिहास आदि शब्द परम्पराविहीन हैं। इन शब्दों की परम्परा से देखने पर एक सपाट चेहरा उसे दिखता है। वह चेहरा मुखौटा वाला है।"[28] इन्हीं मुखौटों, परम्परा आदि का निषेध अत्यन्त अश्लील शब्दावली के साथ करना मानों इनका एकमात्र कविधर्म रहा। एक अतिप्रसिद्ध उदाहरण द्रष्टव्य है –

सुनो दोस्तों
मरने के बाद
मेरी लाश पर वीर्यपात कर मूत देना
और किसी रजस्वला औरत
के कपड़े में लपेट कर
पार्लियामेंट के घर में फेंक देना
कहाँ मिलेगी इतनी बड़ी मुर्दों की भीड़

और इतनी बड़ी कब्रगाह हिन्दुस्तान में ।[29]

निःसन्देह यह भाषा अश्लीलता की हर सीमा का उल्लंघन करती है पर श्मशानी कवि मानता है कि जब सभ्य और श्लील शब्दावली के प्रयोग से बात नहीं बनती तब ऐसी ही शब्दावली का प्रयोग करना पड़ता है । मार्क्सवाद द्वारा अपनायी गई शैली में श्मशानी कवि पूँजीवाद का विरोध नहीं करता । पूँजीवाद का विरोध करने की उसकी अपनी शैली है । उनकी भाषा-शैली और प्रतीकों में यौन शब्दों की भरमार है । इन कवियों ने सेक्स के माध्यम से क्रान्ति करने का निश्चय किया था किन्तु वास्तव में इनमें सेक्स को वरीयता और क्रान्ति को निम्नता दी हुई दिखाई देती है । श्मशानी कवि जिस सामाजिक बदलाव के आकांक्षी थे, उस सामाजिक बदलाव का कोई ठोस चित्र इनके पास नहीं था । शायद इसीलिए श्रीमती विजय चौहान श्मशानी पीढ़ी से इस बात की गारंटी माँगती हैं कि "पानी के साथ बच्चे को भी टब से बाहर नहीं फेंका जाएगा । यह गारंटी ज़रूरी है क्योंकि कई फुलवारियाँ उजड़ चुकी हैं ।"[30]

काम और कामुकता के माध्यम से समाज में क्रान्ति लाने का स्वप्न देखते श्मशानी कवि आचार्य रजनीश जैसे चिन्तकों में अपना भविष्य तलाशते हैं । किन्तु वास्तविकता यह है कि अश्लीलता, कामुकता ने ही श्मशानी पीढ़ी की रचनात्मकता को ध्वस्त कर श्मशानी कविता को भी पूर्णविराम लगा दिया ।

5.1.06. विद्रोही पीढ़ी

समकालीन कविता के लगभग सारे ही आन्दोलनों के मूल में विद्रोह, नकार, निषेध और आक्रोश का भाव विद्यमान रहा । सन् साठ के बाद लिखी गई कविता के बीज कहीं न कहीं नयी कविता के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं । यह सत्य है कि साठोत्तर में उदित कविता नयी कविता की-सी नहीं है किन्तु वह नयी कविता की विरोधी भी नहीं है ।

इस समय काव्यान्दोलन के क्षेत्र में एक बाढ़-सी आ गई । यत्र-तत्र-सर्वत्र काव्य-क्षेत्र में नये-नये नाम जारी किए जाने लगे । इनमें कुछ काव्यान्दोलन इतिहास पर अपनी छाप छोड़ गए तो कुछ समय की आँधी में विलुप्त हो गए । अच्छे-बुरे चाहे जिस अर्थ में लीजिए, समकालीन कविता में बीट पीढ़ी का उदय महत्त्वपूर्ण माना जाएगा । इन कवियों का निषेध, इनके भूखेपन का विरोध करते हुए कई काव्यान्दोलनों ने समकालीन कविता में जन्म लिया । बीटनिकों के आक्रोश, विरोध और विद्रोह से स्वयं को अलगाने की होड़-सी लगी थी । इसी क्रम में कवि केशनी प्रसाद चौरसिया ने इलाहाबाद से समविचारी सात कवियों को लेकर 'विद्रोही पीढ़ी' नामक एक संकलन प्रकाशित किया । बीटनिकों का हिप्पीपन, यौन विकृतियाँ, समसामयिक परिस्थितियों के प्रति वितृष्णा का भाव और उस वितृष्णा की अभिव्यक्ति के लिए अपनायी गई यौन-विकृति से भरपूर, बीभत्स शब्दावली से स्वयं को भिन्न सिद्ध करने का प्रयास केशनी प्रसाद चौरसिया ने किया था । किन्तु जैसा कि जगदीश गुप्त ने 'किसिम-किसिम की कविता' में स्पष्ट किया है, "केशनी प्रसाद का 'विद्रोही पीढ़ी' के प्रकाशन का प्रयास मात्र 'यौन-विकृति से बजबजाती नंगी-भूखी शब्दावली की व्यावहारिक संस्तुति' थी ।" विद्रोह की ठोस और सार्थक भूमिका को

अपनाने की अपेक्षा विद्रोही पीढ़ी के कवियों की लेखनी यौन-क्षेत्र में आक्रामक शब्दावली का प्रयोग करने तक ही सीमित रही। 'विद्रोही पीढ़ी' के कवियों ने विशेषतः केशनी प्रसाद चौरसिया ने विद्रोह की दिशा को स्पष्ट करते हुए अमेरिका के बीट कवियों में पाए जाने वाले विद्रोह को केवल एक दिखावा कहा। मात्र इतना ही नहीं, अमेरिका से आयी इस बीट प्रवृत्ति और उसमें निहित विद्रोह की कड़ी निन्दा भी की।

विद्रोही पीढ़ी का यह स्टैंड अपने बाह्यावरण में निश्चित रूप से सकारात्मक और आशादायी प्रतीत होता है। किन्तु समय के अन्तराल में स्वयं 'विद्रोही पीढ़ी' ने भी उसी बीटनिक स्वर को अपनाया जिसके विरोध में वह खड़ी थी। इनके विद्रोह में कोई नयापन दृष्टिगोचर नहीं हुआ या कोई ऐसी विशेषता उभरकर नहीं आई जो इन्हें बीटनिकों के विद्रोह से अलगाए। इसी बात पर व्यंग्य करते हुए डॉ॰ जगदीश गुप्त लिखते हैं – "इसमें भी वही शमशेरी वृत्ति दिखाई देती है जिसमें रूसी प्रगतिशीलता और अमरीकी बीटनिकता एक साथ निर्विरोध स्थित मिलती है। सहअस्तित्व के सिद्धान्त का भारतीय राजनीति में नहीं साहित्य में भी मजे से पालन हो रहा है। 'जाज़' भी और 'जाज़ोमेनिया' भी। जिन्सबर्ग भी और येब्तुशेंको भी।"[31] इस समय इस बात को नजरंदाज कर दिया गया कि "आक्रोश का ठीक पात्र ढूँढना विद्रोह की पहली जिम्मेदारी होती है।" इसी बात की उपेक्षा करने के कारण विद्रोही कविता दिशाहारा-सी प्रतीत होती है। बीटनिकों का विरोध करने के साथ-साथ अपना विद्रोह सही फॉर्म में दर्ज किया जाता तो सम्भवतः यह एक सफल आन्दोलन सिद्ध होता। डॉ॰ रमानाथ त्रिपाठी ने 'वातायन' मार्च 66 के अंक में बीटनिकों के विरोध की भूमिका लिखी – "लगता है इनकी भूख सेक्स और आत्मप्रचार की है। ... वासना के प्रबल आवेग के समय नारी अंगों के साथ जो उखाड़-पछाड करने की तीव्र असह्य एवं कष्टदायक लालसा जागती है उसी का सत्य (ट्रू) वर्णन अधिकांशतः भूखी कविता का सत्यवाद रह गया है। चूँकि अमेरिकन बीटनिक प्रतिष्ठित जनों के शिष्ट आचार को ऊपर की नकाब कहकर उसका विरोध करता है अतएव भूखे लोगों ने भी कुछ वयोवृद्ध लोगों के पास मुखौटे भेजे थे कि लत जीवन-मूल्यों का नकाब उतार फेंको, जीवन-मूल्यों का निर्धारण क्या इन आचारहीन विक्षिप्तों के द्वारा होगा ?"[32]

बहरहाल, प्रतिक्रियात्मक परिस्थितियों और वाद से मुक्त होकर समकालीन कविता में विद्रोह बलवान् होकर उभर रहा था। वर्तमान परिस्थितियों से असंतुष्ट कवि-गण अपनी लेखनी के माध्यम से विद्रोह और विरोधी भावनाओं को दर्ज करने से नहीं चूक रहे थे। विद्रोह की भिन्न-भिन्न स्थितियों को शब्दबद्ध करनेवाले कवियों में लीलाधर जगूड़ी, रमेशचन्द्र शाह, वेणु गोपाल, कुमार विकल, रमेश गौड़, श्रीराम वर्मा, ज्ञानेन्द्रपति जैसे कवि अग्रणी रहे।

राजीव शुक्ला 'रेबेल्स इन हिन्दी पोएट्री, न्यूवेव', (11 जून 1972) में लिखते हैं कि "रमेश गौड़ को उन विद्रोही युवा कवियों की कतार में रखना उचित है जो सोचते हैं कि आम-जनता की विद्रोह चेतना के असमान और धीमे विकास के कारण आज की विद्रोही पीढ़ी को हार कर एक कटुता के साथ ही अपनी मौत स्वीकार करनी होगी और शायद इतिहास में इसका जिक्र एक व्यर्थ खोई हुई पीढ़ी के रूप में ही हो। इसी संभावित व्यर्थता की निराशा ने इन कवियों के विद्रोही स्वर को अपनी शहादत के ढोल की आवाज़ में बदल दिया है।"[33] शहादत के ढोल में ढलने के बावजूद विद्रोही कवि का स्वर अपनी जगह महत्त्वपूर्ण ही मानना होगा।

रमेश गौड़ जैसे कवि ने अपनी विद्रोही अभिव्यक्ति जबरदस्त पद्धति से दी है। एक बानगी देखिए –

मुझे खुद में अपने ही हाथों से चाबी भर
अपनी ही मेज पर खुद को नचाना है
(खुश होकर पीटनी है तालियाँ)
चौराहे से चारों ओर फूटती सड़कों पर
मुझे एक साथ जाना है
और फिर (सब लोगों के होते हुए)
मुझे, हाँ सिर्फ़ मुझे ही चक्रव्यूह ढहाना है
क्योंकि यह जीने की अनिवार्य शर्त है।[34]

व्यवस्था से असंतुष्ट इस समय के कवियों ने विद्रोह को अपनी लेखनी का स्थायी भाव बना लिया। नामकरण करने में समय गँवाने की अपेक्षा यह कवि विद्रोहाभिव्यक्ति की परम्परा जारी रखते हैं। इलाहाबाद से प्रकाशित 'विद्रोही पीढ़ी' के बैनर तले विद्रोही भाव की कविता रचने की घोषणा की गई किन्तु बीटनिक विरोधी भूमिका को एकमात्र अजेंडा बनाने के कारण वह अल्पायु ही सिद्ध हुई किन्तु विद्रोह का सकारात्मक रूप अपनाकर व्यवस्था से टक्कर लेने वाली विद्रोही कविता की परम्परा न केवल जीवित है बल्कि दनदनाती हुई आगे बढ़ रही है।

5.1.07. वाम कविता

हिन्दी कविता के इतिहास के एक सशक्त दौर के रूप में प्रगतिशील कविता की ओर देखा जा सकता है। मार्क्स के विचारों के प्रति निष्ठावान् और समाजवादी व्यवस्था की स्थापना हेतु प्रयासरत दिग्गजतम कविगण इस कालखण्ड में लेखनी चलाते रहे। पश्चात् प्रयोगवाद, नयी कविता और समकालीन कविता के विविध आन्दोलनों के दौर में कविता अपना रूपबन्ध बदलती रही। उसकी संवेदनाओं में वैविध्य देखा गया।

इस दौरान भारत ने अनेक राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तन देखे। स्वाधीनता की लम्बी लड़ाई के पश्चात् मिली स्वाधीनता देखी और लम्बी लड़ाई के पश्चात् हुआ मोहभंग भी देखा। नेहरू के रूप में समाजवादी व्यवस्था का समर्थक नेता जब तक जीवित था तब तक लोकमानस में एक सकारात्मकता थी भी किन्तु नेहरू की मृत्यु के बाद के कुछ घटनाक्रम (बल्कि इस घटनाक्रम का आरम्भ नेहरूजी के जीवित रहते ही हो चुका था) ने भारतीय मानसिकता को अत्यधिक विचलित किया। नयी कविता की समाप्ति का दौर अर्थात् साठोत्तरी कविता के आगमन-काल में सन् 1962 में हुआ भारत-चीन संघर्ष, भारत की पराजय आदि घटनाओं ने भारत की अस्मिता को चोट पहुँचाई। भारत-चीन युद्ध के कारण साम्यवादियों में गहरे मतभेद निर्माण हुए। पश्चात् ताश्कंद में शास्त्रीजी की सन्देहास्पद मृत्यु और इन्दिरा गाँधी का सत्ता में पदार्पण जैसी घटनाओं ने भारतीय राजनीति में भारी उथल-पुथल मचा दी। साथ ही, देश में बढ़ती राजनैतिक विसंगतियाँ, भ्रष्टाचार और राजनैतिक उठा-पटक ने मोहभंग को बढ़ावा दिया। दूसरी ओर समाज में व्याप्त स्वार्थवृत्तियाँ, भ्रष्टाचार, शोषण, विषमता, अव्यवस्था में निरन्तर वृद्धि

होती रही। भारत जैसे कृषिप्रधान देश में खाद्यान्न समस्या व्युत्पन्न हुई। प्रकृति की मार झेलते किसान, मजदूर, श्रमजीवी, मध्यमवर्ग गरीबी, भुखमरी, बेरोजगारी में पिसने लगे। इस वातावरण में स्वाभाविक रूप में अनास्था, घुटन, निराशा, पराजय-बोध छाया हुआ था। वस्तुतः वाम कविता के रूप में कोई स्वतन्त्र काव्यान्दोलन नहीं छेड़ा गया बल्कि इस कालखण्ड में कवियों का एक वर्ग ऐसा था जिसका मुख्य लक्ष्य वर्ग संघर्ष का रूपायन करने की अपेक्षा देश के जनतन्त्र, देश के जनवादी मूल्य और सामान्य-दलित, पीड़ित, शोषित, आदिवासी, अल्पसंख्यक-लोगों के जनवादी अधिकारों के लिए संघर्ष करना था। ऐसे लोगों का रचना-कर्म, जो व्यवस्था के विरुद्ध जाकर जनसामान्य के जनवादी अधिकारों की रक्षा हेतु कटिबद्ध व संघर्षरत है, वाम कविता कहलाया गया। एक तरह से वाम कविता सातवें दशक की प्रतिबद्ध धारा का विकास है। चंचल चौहान ने इसका नामकरण करने का प्रयास करते हुए इसे 'सत्तरोत्तरी वाम जनवादी प्रतिबद्ध कविता' कहा। इस लम्बे-चौड़े नाम का मजेदारपन नजरंदाज करें तो यही कोशिश उभरकर आती है कि वाम, जनवादी, प्रतिबद्ध अलग-अलग चीजें नहीं बल्कि एक ही विचारसरणी में बँधे नाम हैं। इस समय ढेरों मात्रा में वामपंथी लघु पत्रिकाएँ निकल रही थीं और तत्कालीन युवा पीढ़ी प्रेम कविता लिखने के बजाय जनसामान्य की संघर्षगाथा को शब्दबद्ध कर रही थीं। इस कालखण्ड में रचना-कर्म में निरन्तर लीन वेणु गोपाल, आलोक धन्वा, कुमार विकल, डॉ॰ रणजीत, विष्णुचन्द्र शर्मा, अरुण कमल, श्रीराम तिवारी, ज्ञानेन्द्रपति और धूमिल जैसी काव्य-प्रतिभाओं का अविर्भाव हुआ। इनमें से लगभग सभी कवि वामपंथी संगठनों से किसी न किसी रूप में जुड़े हुए थे और इस बात में विश्वास करते थे कि कविता की योग्य समझ के लिए समाज के अन्तर्विरोधों और वस्तुगत परिस्थितियों को समझना आवश्यक है। इस समझ की प्राप्ति वे संघर्षरत सर्वहारा संगठन से जुड़ने के पश्चात् ही सम्भव मानते थे। सम्भवतः इसी उद्देश्य से 'जनवादी लेखक संघ', 'नवजनवादी लेखक संघ' जैसे संगठन आकार ग्रहण करने लगे थे। इन कवियों की वाणी में जन-पक्षधरता और दमखम था। वेणु गोपाल जैसे कवि-अध्यापक को पुलिस के अत्याचार केवल इस कारण सहने पड़े क्योंकि पुलिस और कुल व्यवस्था को उनकी कविताएँ खतरनाक लगीं। उनकी गिरफ्तारी पर नन्द चतुर्वेदी ने अपनी त्रैमासिक पत्रिका 'बिन्दु' में लिखा – "हर प्रजातन्त्र की मौत का सिलसिला पुलिसवालों के काव्य-पारखी होने से शुरू होता है। प्रजातन्त्र तब पूरी तरह गड़बड़ा जाता है जब प्रबुद्धों का काम पुलिस और पुलिस का काम प्रबुद्ध करने लगते हैं। मुझे हिन्दुस्तान की आबोहवा में प्रबुद्धों और पुलिस के बीच कामकाज की यह तब्दीली नज़र आने लगी है और इसलिए मुझे भय है कि कुछ ही दिनों में प्रजातन्त्र महज एक मुहावरे की तरह काम में आने लगेगा।"[35] इस पृष्ठभूमि पर वेणु गोपाल की वाम लेखनी चलती रही –

नकाबों के खिलाफ
खड़ा हुआ हमारा इनकार
हमारे जिस्म से रिसते
खून की
आखिरी बूँद में भी रहेगा।[36]

वाम कविता में सवाल उठाते धूमिल जैसे कवि हुए जिन्होंने 1972 में प्रतिबद्ध कविता की संकल्पना को विस्तार दिया । आक्रोश, व्यंग्य, विद्रोह से कूटकर भरी यह कविताएँ वाम कविता मात्र की नहीं, समग्र हिन्दी कविता की अनमोल पूँजी बन गईं –

... मैं जानता हूँ कि मेरे देश का समाजवाद
माल गोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर 'आग' लिखा है,
और उसमें बालू और पानी भरा है ।[37]

धूमिल जैसे कवियों ने कविता को 'न भूतो' रूप में परिभाषित किया –

कविता क्या है ? कोई पहनावा ? कुर्ता पाजामा है ?
ना, भाई ना,
कविता –
शब्दों की अदालत में
मुजरिम के कटघरे में खड़े बेकसूर आदमी का
हलफनामा है
...
कविता
भाषा में
आदमी होने की तमीज है ।[38]

एक ओर कविता और दूसरी ओर जनता के प्रति प्रतिबद्ध 'वाम कविता' को लेकर प्रदीप सक्सेना ने लिखा है – "आज कवि यह नहीं कह सकता कि अमुक रचना उसने पता नहीं किस मूड में लिखी थी और यह भी कि अर्थ तो आलोचक लगाए । आज वह पूरी सचेतना के साथ अवाम के बीचोंबीच खड़ा है । अवाम को नजरंदाज करके वह शुतुरमुर्ग रह सकता है, ऐसी चेतनाशील रचनाएँ इस दौर की विशेष उपलब्धि है जो जनता को उसके शत्रु-मित्र की पहचान कराती हैं ।"[39] वाम कविता की सक्षम अभिव्यक्तियों के बावजूद उसमें निहित आक्रामकता, दुस्साहस, स्त्री विषयक दृष्टिकोण, यौन शब्दावली की भरमार और सपाट गद्यात्मकता के कारण इस पर आक्षेप उठते रहे । बावजूद इसके, व्यक्तिवादिता की अपेक्षा जनता के हित के लिए प्रतिबद्ध 'वाम कविता' निर्विवाद रूप से हिन्दी कविता का महत्त्वपूर्ण पड़ाव है ।

5.1.08. सहज कविता की पृष्ठभूमि

मार्च 1967 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय से डॉ० रवीन्द्र भ्रमर ने 'सहज कविता' का प्रवर्तन किया । अस्वाभाविकता के स्थान पर स्वाभाविकता, कृत्रिमता के स्थान पर सहजता को महत्त्व देते हुए 'अनपेक्षित मैनरिज़्म, कौशल की अतिशयता, निराशा-मृत्यु का हॉरर और पतनोन्मुख यौनाचार' से कविता की मुक्ति पर बल

दिया । सन् 1968 में रवीन्द्र भ्रमर ने 'सहज कविता' शीर्षक से काव्य-संकलन का प्रकाशन भी किया । 'सहज कविता' को लेकर भ्रमर के विचार अपने आप में काफी स्पष्ट थे – "1960 के बाद एक वर्ग ने मैनरिज़्म और क्राफ्टमनशिप को ही मूल लक्ष्य माना और हिन्दी कविता कुल मिलाकर टेढ़ी रेखाओं के व्यापार के रूप में सामने आयी । इसीलिए वह फैशन रही है और बहुत अर्थपूर्ण भी नहीं । इस बीच जो नये-नये नाम अथवा नारे सामने कविता के क्षेत्र में उछाले गए उनके मूल में स्वस्थ सृजन की प्रवृत्ति उतनी नहीं रही जितना कि उन नारों को उछालने वाले व्यक्ति अथवा व्यक्ति समूह को प्रचारित करने का कौतुक । कविता के इन तथाकथित सूत्रधारों ने या तो मरे हुए विदेशी आन्दोलनों का आयात किया या फिर अनास्था और हीनतापूर्ण दलीलें पेश करके नयी पीढ़ी को गुमराह करने की साजिश की है। अहमन्यता, आत्महत्या, योनि और जंघाओं पर कविता लिखने की प्रेरणा दी है। अतएव आज कविता के नाम पर एक ओर तो कुण्ठाएँ और विकृतियाँ हैं और दूसरी ओर चमत्कार एवं अनुकरणात्मक प्रवृतियाँ, जिनके कुहासे में स्वस्थ कविता गुम है सहज कविता नये सिरे से कविता की खोज करना चाहती है ... 'सहज कविता' अकृत्रिम जीवनबोध और अकृत्रिम कलारचना के क्षेत्र में नवीन प्रतिमान स्थापित करना चाहती है।"[40]

5.1.08.1. सहज कविता : तात्पर्य एवं स्वरूप

सहज कविता की स्थापना की पृष्ठभूमि उपर्युक्त कथन में स्पष्ट करने के पश्चात् रवीन्द्र भ्रमर ने 'सहज' शब्द और 'सहज कविता' की दृष्टि से अपेक्षित व महत्त्वपूर्ण बातों को स्पष्ट करते हुए लिखा है – "यह जो सहज की माँग है, सरलता या सुविधा की माँग नहीं है । इसे युग-जीवन की जटिलता और संघर्षों से पलायन मान लेने की धारणा पूर्वाग्रहयुक्त और अवैज्ञानिक होगी । रचनागत परिप्रेक्ष्य में सहज का दायित्व अनुभूति और अभिव्यक्ति की अनपेक्षित कृत्रिमताओं से बचने का दायित्व है जो अपने आप में कला साधना का प्रतिमान बनता है । प्रस्तुत सन्दर्भ में सहज शब्द का व्युत्पत्तिगत अर्थ लेना होगा । 'सहजायते इति सहजः' अर्थात् जो रचना यथार्थ अनुभूति संवेग के साथ वाणी के मूर्त माध्यम से जन्म लेती है, वह सहज है। सहज की माँग व्यक्तिमूलक होते हुए भी समाज सापेक्ष है । ऐसी कोई भी अभिव्यक्ति अथवा भावसंरचना, जिससे मानव की आस्था और मर्यादा के विघटन का बोध होता है, असहज और अस्वाभाविक कही जाती है । जिसे सहज होना है, उसे सार्थक भी होना है । सहज कविता वस्तुतः कविता की दिशा में एक मंगलकारी प्रस्थान है । ... आज की विषम काव्य-परिस्थितियों में वह कविता की खोज मात्र है। सहज कविता विवेक और संतुलन बनाये रखने की माँग है ..."[41]

यह कथन सहज कविता के लक्ष्यों का अधोरेखन करता है। जड़ मूल्यों और बेजान मर्यादाओं को समाप्त करने की बात करने वाली सहज कविता जीवन और समाज के प्रति प्रतिबद्धता का अनुभव करती है। अति मुक्त जुमलेबाज़ी के स्थान पर सहज कविता ने वैचारिक व सर्जनात्मक स्तर पर शिष्टता एवं अनुशासन की स्थापना को महत्त्व दिया । आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी, हजारीप्रसाद द्विवेदी और रामधारीसिंह 'दिनकर' जैसे कई विद्वानों ने सहज कविता का स्वागत किया । पश्चात् हिन्दी कविता के क्षेत्र में 'सहज कविता' की बात उठती रही। सन् 1994 में डॉ॰ सुधेश ने 'सहज कविता' नामक त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन आरम्भ किया । इसमें डॉ॰ सुधेश ने पुनः कविता की सहजता पर विचार किया – "सहज कविता में प्रतीक, बिम्ब, अप्रस्तुत विधान का समावेश

स्वाभाविक रीति से होता है, पर ये कविता के साध्य न होकर अभिव्यंजना के माध्यम भर होते हैं। इन्हें कविता का पर्याय नहीं माना जा सकता। इन्हें कविता का पर्याय मानने से कृत्रिमता शुरू हो जाती है।"[42] कविता के क्षेत्र में जिस प्रकार सपाटबयानी और अतिरिक्त गद्यात्मकता प्रचलित हुई थी, उसका सहज कविता अस्वीकार करती है। छन्द, लय, राग, तुक आदि के स्वीकार की ओर सहज कविता का स्वभाविक रुझान है। कविता के वादों से सम्बद्ध होने के समय में भी केवल नवगीतों ने अपनी लोकप्रियता को बनाये रखा था। सहज कविता की दृष्टि से इसका एक कारण नवगीतों की सहज सम्प्रेषणीयता और छन्द, लय, तुकों का स्वाभाविक निर्वाह है। नवगीत की इसी विशेषता का निर्वाह करने पर सहज कविता ने बल दिया। आर्थिक शोषण जैसी वस्तु को भी लयबद्ध अभिव्यक्ति प्रदान की –

आधी सदी काट दी उसने, खाकर चना चबेना जी।
मेहनत उसकी मौज तुम्हारी, यह सब और चलेना जी।[43]

इस सन्दर्भ में 'सहज कविता' की सोच कुछ इस प्रकार है – "आज हिन्दी कविता की अलोकप्रियता का एक बड़ा कारण उसकी गद्यात्मकता है, ऐसी गद्यात्मकता जिसमें न गद्य की स्पष्टता और तार्किकता है और न कविता की लय और अभिव्यंजना की सहजता तथा सम्प्रेषणीयता। ... इसलिए मेरा विचार है कि आज हिन्दी में 'सहज कविता' की बड़ी आवश्यकता है अथवा कविता में सहजता अपेक्षित है।"[44] सहजता के लिए आग्रही 'सहज कविता' व्यापक समर्थन के बावजूद उतनी ही असफल रही जितनी कि सहज कहानी।

5.1.09. विचार कविता : पृष्ठभूमि, तात्पर्य एवं स्वरूप

सन् 1969 में 'दिविक' पत्रिका के माध्यम से विचार कविता का विचार सर्वप्रथम उभरकर आया किन्तु इसे वास्तव में स्थैर्य मिला 'संचेतना' पत्रिका के माध्यम से। सन् 1973 में महीप सिंह और नरेन्द्र मोहन के सम्पादकत्व में 'संचेतना' पत्रिका का विचार कवितांक 'विचार कविता' शीर्षक के साथ प्रकाशित हुआ। वैसे साठोत्तरी समय में कई काव्यान्दोलन हुए किन्तु उनमें से अधिकांश नाम विफल ही रहे। विचार कविता अपने समय का एक सार्थक काव्यान्दोलन माना जाता है। विचार कविता को बलदेव वंशी, मुक्तिबोध, नरेन्द्र मोहन, वेणु गोपाल, ज्ञानेन्द्रपति, चन्द्रकान्त देवताले आदि कवियों का समर्थन प्राप्त हुआ।

विचार कविता में 'विचार' सर्वोपरि था। वैसे देखा जाए तो कोई रचना विचार से मुक्त हो ही नहीं सकती। रामदरश मिश्र इस सन्दर्भ में कहते हैं कि "आज की कोई भी स्वस्थ कविता, वह चाहे गीत ही क्यों न हो, विचार से मुक्त नहीं रह सकती।" मिश्रजी के विचारों से सहमति दर्शाते हुए विचार कविता आगे बढ़ने लगी। इस कविता की प्रवृत्ति स्पष्ट करते हुए नरेन्द्र मोहन अपनी पुस्तक 'कविता की वैचारिक भूमिका' में लिखते हैं – "कविता के विचार को किसी एक विचार में आबद्ध नहीं किया जा सकता न किसी विचारधारा में बंद किया जा सकता है... कविता में विचार के अनुपस्थित और अप्रासंगिक हो जाने का अर्थ विचार के अनुपस्थित और अप्रासंगिक होने से

नहीं है। विचार कविता के सम्पूर्ण विधान में गुँथा रहता है। कविता विचार को ओढ़ती नहीं है, उसे अपने लिए वास्तविकता की पहचान के निमित्त तलाशती है।"[45]

विचार समसामयिक परिस्थितियों में निहित होता है और कविता में संचरित होकर अभिव्यक्त होता है। विचार कविता ने नारेबाज़ी, जुमलेबाज़ी और बड़बोलेपन से थोड़ा बचकर जीवन की असंगतियों और विरोधाभासों का साक्षात्कार करने पर बल दिया। संयमित अनुभूतियों को विचार कविता ने महत्त्व दिया। जीवन के अनुभवों को विचार का अधिष्ठान प्रदान कर कविता का रूप तैयार किया जाता था। अतः इस कविता में अनुभूति और विचार का उत्कृष्ट समीकरण देखा जा सकता है। अनुभवाधारित होने के कारण विचार कविता संवेदना से रहित नहीं थी। इस सन्दर्भ में बलदेव वंशी का एक कथन बड़ा महत्त्वपूर्ण है। वे कहते हैं – "समकालीन हिन्दी कविता अपनी प्रगति और प्रभाव से जिस मानवीय संघर्ष की साझेदारी में उतरी है, उसके पास लड़ने के लिए आधार और शस्त्र 'विचार' हैं। यह विचार वैज्ञानिक दक्षता अथवा विचारधारात्मक कठोरता से रहित, सामाजिक अनुभवों से उद्भूत मानवीय और संवेदनात्मक विचार है।"[46]

तात्पर्य यह कि विचार कविता भाव से मुक्त नहीं थी बल्कि विशिष्ट विचारधारा की कट्टरता से व्युत्पन्न कठोरता से मुक्त थी। कई बार विचार-कविता ने कट्टरपन का ठेठ विरोध किया – "ये कविताएँ अकविताई और वामपंथी दुस्साहस से अलग हटकर हैं। 'विचार कविता' का प्रतिनिधि रूप इन कविता में उपलब्ध है। अकविताओं और 'विचार कविता' का विरोध तो साफ है, किन्तु विचार कविता का वामपंथ से कोई खास विरोध हो, ऐसी बात नहीं है। वास्तव में यहाँ विरोध दुस्साहसिकता से है ..."[47]

बिना किसी हो-हल्ले के, एक धूर्त राजनीतिज्ञ को सम्बोधित करता नरेन्द्र मोहन का वैचारिक संवाद 'विचार कविता' में निहित विचार-प्रधानता को स्पष्ट करने के लिए पर्याप्त है –

मैं नहीं मान सकता
आपकी चमड़ी है ही नहीं
हाँ, यह ज़रूर है आपने साधना द्वारा
इतना सख्त बना लिया है इसे कि
किसी बड़े धमाके के बिना
इसमें कोई हरकत नहीं होती।[48]

इस कविता में निहित तटस्थ आलोचक दृष्टि सम्पूर्ण समकालीन कविता में विशिष्ट नज़र आती है। विचार कविता में कोई हंगामा नहीं, अतिवाद नहीं, केवल वैचारिक प्रक्रिया को उत्तेजित करते वक्तव्य हैं जिन्होंने इस कविता को भीड़ में भी विशिष्ट बना दिया।

5.1.10. पाठ-सार

स्वाधीनता के पश्चात् निरन्तर विकराल होती राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक स्थितियों ने जनमानस का मोह भंग कर दिया था। कविगण इस मोहभंग को अलग-अलग तरीके से वाणी देने लगे और साठोत्तर समय में विविध काव्यान्दोलनों का जन्म हुआ।

इस काल में 'अकविता' आन्दोलन की खूब चर्चा रही। अपने असंतोष को निषेधात्मक रूप में वाणी देने का कार्य अकवि करने लगे। मशीन, विज्ञान और सेक्स के सम्मुख मनुष्य की हतबलता का अनुमान बीट पीढ़ी या भूखी पीढ़ी को देखकर लगाया जा सकता। पश्चिमी प्रभाव लिए अपनी भूख और आक्रोश की अभिव्यक्ति इसके अन्तर्गत की जाती रही। श्मशानी पीढ़ी, विद्रोही पीढ़ी, युयुत्सावादी कविता, बीट कविता का समर्थन या असमर्थन करने के क्रम में आकार पाती रही। इनमें भी निषेध, अस्वीकार और विद्रोह का भाव प्रधान रहा। भ्रष्टाचार, नक्सलवाद, आतंकवाद, लालफीताशाही, बेरोजगारी, आर्थिक-सामाजिक विषमता, राजनैतिक विद्रूपता आदि के बीच जनता के हित को महत्त्व देती प्रतिबद्ध कविता के रूप में वाम कविता का प्रचलन हिन्दी कविता को धूमिल, वेणु गोपाल आदि सक्षम कवि प्रदान कर गया। सहज कविता और विचार कविता जैसे काव्यान्दोलन अपनी सौम्यता के बावजूद सामाजिक प्रतिबद्धता का निर्वहण करने के बहुत हद तक सफल रहे।

साठोत्तरी कविता के उपर्युक्त काव्यान्दोलन अपने-अपने समय में झंकृत हुए स्वर हैं। इनमें से कई नाम भर के लिए उभरे और समयाकाश में विलुप्त हो गए तो कुछ आज भी अपने अस्तित्व की अनुगूँज महसूस करवाते हैं।

आज की कविता की सही समझ के लिए साठोत्तर समय में उमड़े इन काव्यान्दोलनों का परिचय पाना अत्यधिक आवश्यक है।

5.1.11. बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों में दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कीजिए –

01. 'प्रारम्भ' नामक काव्य-संकलन का प्रकाशन कब हुआ ?
    - (क) 1900
    - (ख) 1963
    - (ग) 1966
    - (घ) 1970

02. 'बीट जनरेशन' या 'बीट पीढ़ी' शब्द का अविष्कार किस विद्वान् ने किया ?
    - (क) एलेन गिन्सबर्ग
    - (ख) राजकमल चौधरी
    - (ग) सुविमल वसाक

(घ) जैक केरूआक

03. 'कल्पना' काव्य-संग्रह के रचनाकार हैं –

(क) सुभाष घोष

(ख) प्रभाकर माचवे

(ग) शमशेर बहादुर सिंह

(घ) रमेश बक्षी

04. निर्भय मलिक द्वारा सम्पादित पत्रिका का नाम बताइए।

(क) श्मशानी पीढ़ी

(ख) युयुत्सा

(ग) रूपाम्बरा

(घ) युद्ध श्रेयस

05. 'युद्ध श्रेयस' किनकी रचना है ?

(क) राजीव सक्सेना

(ख) नीलम

(ग) आनन्द सोनवलकर

(घ) चन्द्रमौलि उपाध्याय

06. 'युयुत्सा' पत्रिका के सम्पादक का नाम बताइए।

(क) शलभ श्रीराम सिंह

(ख) डॉ॰बैद्यनाथ सिंहल

(ग) जगदीश गुप्त

(घ) विमल पाण्डे

07. 'सहज कविता' नामक काव्य-संकलन का प्रकाशन कब हुआ ?

(क) 1900

(ख) 1940

(ग) 1942

(घ) 1968

08. काव्य पुस्तक 'हाउल' के लेखक का नाम बताइए।

(क) देरिदा एलेन

(ख) गिन्सबर्ग

(ग) जान्सन

(घ) जैक केरूआक

09. मार्च 1967 में अलीगढ़ विश्वविद्यालय से 'सहज कविता' का प्रवर्तन करनेवाले रचनाकार कौन हैं ?

(क) रामधारीसिंह

(ख) नन्ददुलारे बाजपेयी

(ग) डॉ॰ रवीन्द्र भ्रमर

(घ) डॉ॰ सुधेश

10. किस पत्रिका के माध्यम से 'विचार कविता' को सर्वप्रथम अभिव्यक्ति मिली ?

(क) संचेतना

(ख) दिविक

(ग) विभन्ति

(घ) श्मशानी पीढ़ी

लघुत्तरीय प्रश्न

1. साठोत्तरी कविता की पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालिए।
2. युयुत्सावादी कविता के स्वरूप को स्पष्ट कीजिए।
3. 'प्रारम्भ' काव्य-संकलन में समाविष्ट कवियों पर चर्चा कीजिए।
4. श्मशानी कविता की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
5. विद्रोही कविता से तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।
6. 'साठोत्तरी कविता आन्दोलन' पर टिप्पणी लिखिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

1. "साठोत्तरी कविता आन्दोलन किसी एक प्रवृत्ति की ओर अग्रसर न होकर विविध धाराओं की ओर बढ़ा।" कथन की समीक्षा कीजिए।
2. अ-कविता से तात्पर्य स्पष्ट करते हुए अ-कविता के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
3. "विचार कविता भाव से मुक्त नहीं थी बल्कि विशिष्ट विचारधारा की कट्टरता से व्युत्पन्न कठोरता से मुक्त थी।" समझाइए।

4. साठोत्तरी हिन्दी काव्यान्दोलनों में चर्चित 'बीट आन्दोलन' पर प्रकाश डालिए।
5. सहज कविता के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए सहज कविता की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

5.1.12 व्यवहार

1. साठोत्तरी हिन्दी कविता को केन्द्र में रखकर सन् साठ के पूर्व की काव्य-प्रवृत्तियों एवं साठोत्तरी काव्य-प्रवृत्तियों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
2. आपके क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित किसी कवि के द्वारा लिखित कविता की तुलना साठोत्तरी हिन्दी कविता से कीजिए।
3. किसी प्रसिद्ध अथवा प्रिय कविता को पढ़कर उसकी काव्यगत प्रवृत्तियों को स्पष्ट कीजिए।
4. काव्य की प्रवृत्तियों को समझकर अपनी रुचि के अनुसार किसी विषय पर कविता लिखिए।
5. हिन्दी की प्रसिद्ध कविताओं का संकलन कीजिए।
6. संकलित कविताओं को विषय एवं प्रवृत्तिनुसार वर्गीकृतकीजिए।

5.1.13. कठिन शब्दावली

युयुत्सा	:	युद्ध की इच्छा
बानगी	:	नमूना
क्षुब्धता	:	अप्रसन्न, कुपित
मुमूर्षा	:	मरने की इच्छा
बुर्जुआ	:	रूढ़िवादी

5.1.14.सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. चतुर्वेदी, जगदीश (सं.), प्रारम्भ, दिल्ली, भूमिका
02. वही
03. वही
04. खरे, डॉ॰ गणेश, आधुनिक काव्य प्रवृतियाँ : एक मूल्यांकन, पुस्तक संस्थान, कानपुर से उद्धृत राजकमल चौधरी की कविता
05. अ-कविता-1, संकेत से उद्धृत, श्याम परमार का कथन
06. चतुर्वेदी, जगदीश, प्रारम्भ, भूमिका
07. अ-कविता, ग्वालियर, जून-अगस्त 1968
08. जमाली, सतीश, अ-कविता-5, पृष्ठ 79
09. शुक्ल, ललित (सं.), नया काव्य नये मूल्य, स्टेंडर्ड पब्लिशर्स, 1999 से उद्धृत विश्वम्भरनाथ उपाध्याय का कथन

10. पेंगुइन मॉडर्न पोएट्स 5, पृष्ठ 85
11. शुक्ल, ललित (सं.), नया काव्य नये मूल्य, स्टेंडर्ड पब्लिशर्स, 1999 से उद्धृत
12. ज्ञानोदय, शेष शताब्दी अंक, पृष्ठ 219
13. चौधरी, राजकमल, शर्मा, आचार्य अमरनाथ, अ-कविता-1, अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ 56
14. चौधरी, राजकमल, मुक्तिप्रसंग, पृष्ठ 21
15. कल्पना, जुलाई 1963, पृष्ठ 37
16. गुप्त, डॉ० जगदीश, नयी कविता : स्वरूप और समस्याएँ, पृष्ठ 234
17. गुप्त, डॉ० जगदीश, साही, विजयदेव नारायण (सं.), नयी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद से उद्धृत बैद्यनाथ सिंहल का कथन
18. रूपाम्बरा, अप्रैल 1965, शलभ श्रीरामसिंह के सन्दर्भ में स्वदेश भारती का कथन
19. गुप्त, डॉ० जगदीश, साही, विजयदेव नारायण (सं.), नयी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृष्ठ 264
20. युयुत्सा, कोलकाता, दिसम्बर 1967 में प्रकाशित ओम प्रभाकर का वक्तव्य
21. उपाध्याय, चन्द्रमौलि, युद्ध श्रेयस्, पृष्ठ 10
22. 'मुखौटे, सलीब, युद्ध', लखनऊ, 26 जनवरी सन् 1969 में प्रकाशित उमेश का कथन
23. 'मुखौटे, सलीब, युद्ध', सहकारी संकलन, भूमिका
24. गुप्त, डॉ० जगदीश, साही, विजयदेव नारायण (सं.), नयी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृष्ठ 266
25. श्मशानी पीढ़ी- 6, पृष्ठ 1
26. वही, पृष्ठ 10-12
27. विभक्ति-7, पृष्ठ 16
28. सिंह सकलदीप, विभक्ति- 7, पृष्ठ 30
29. मलिक निर्भय, श्मशानी पीढ़ी- 6, पृष्ठ 27
30. विभक्ति-7, पृष्ठ 4, श्रीमती चौहान विजय का कथन
31. गुप्त, डॉ० जगदीश, साही, विजयदेव नारायण (सं.), नयी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहबाद, पृष्ठ 257
32. 'वातायन' मार्च 1966 में प्रकाशित डॉ० रमानाथ त्रिपाठी का कथन
33. 'रेबेल्स इन हिन्दी पोएट्री, न्यू वेव', (11 जून 1972) में प्रकाशित राजीव शुक्ला का कथन
34. गौड़ रमेश, मेरी पीढ़ी : एक आत्मस्वीकृति
35. बिन्दु (त्रैमासिक) में प्रकशित नन्द चतुर्वेदी का कथन
36. गोपाल, वेणु, वे हाथ होते हैं
37. धूमिल, पटकथा
38. धूमिल, मुनासिब कार्रवाई

39. ज्ञानरंजन, प्रदीप सक्सेना (सं.), पहल,14, 1976, पृष्ठ 153
40. भ्रमर, रवीन्द्र (सं.), सहज कविता, मार्च 1967
41. वही, खण्ड-1, अन्तिम पृष्ठ
42. डॉ॰ सुधेश (सं.), सहज कविता, अंक-1, पृ.3-4
43. डॉ॰ सुधेश, वेद प्रकाश (सं.), सहज कविता- 1, अमिताभ, दिल्ली,
44. डॉ॰ सुधेश (सं.), सहज कविता, अंक-1, सम्पादकीय
45. 'कविता की वैचारिक भूमिका' में प्रकाशित नरेन्द्र मोहन का कथन
46. डॉ॰ विनय (सं.), समकालीन हिन्दी कविता, संवाद, पृष्ठ 33
47. डॉ॰ सिंह सुखवीर, समीक्षा के नये प्रतिमान, बलदेव वंशी के 'उपनगर में वापसी' सम्बन्धी कथन, पृष्ठ 138
48. मोहन, नरेन्द्र, सिंह, महीप, 1976, संचेतना, विचार कविता विशेषांक

5.1.15 उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. गुप्त, जगदीश, साही विजयदेव नारायण (सं.), नयी कविता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद
2. खरे, डॉ॰ गणेश, आधुनिक काव्य-प्रवृत्तियाँ, पुस्तक संस्थान, कानपुर, प्रथम संस्करण 1976
3. त्रिपाठी, राम मनोहर, हिन्दी कविता संवेदना और दृष्टि, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस, नयी दिल्ली, 1986
4. शुक्ल, ललित, नया काव्य नये मूल्य, स्टैंडर्ड पब्लिशर्स (इंडिया), नयी दिल्ली, 1999
5. राय, डॉ॰ लल्लन, हिन्दी की प्रगतिशील कविता, हरियाणा साहित्य अकादेमी, चंडीगढ़, 1989
6. पाण्डेय, डॉ॰ त्रिलोचन, छायावादोत्तर हिन्दी कविता : प्रमुख प्रवृत्तियाँ, कैलास पुस्तक सदन, ग्वालियर
7. मोहन, नरेन्द्र, विचार कविता की भूमिका, नॅशनल पब्लिशिंग हाऊस, दिल्ली, 1973
8. सिंह, डॉ॰ बच्चन, हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास, परिवर्धित संस्करण, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली
9. डॉ॰ नगेन्द्र (सं.), हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : समकालीन हिन्दी कविता

इकाई – 2 : समकालीन हिन्दी कविता, काव्य-दृष्टि, काल-संसक्ति, लोक-संसक्ति, आधुनिकता और समकालीनता का अन्तर

इकाई की रूपरेखा

5.2.00. उद्देश्य कथन
5.2.01. प्रस्तावना
5.2.02. समकालीन हिन्दी कविता
5.2.02.1. समकालीन हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि
5.2.02.2. समकालीन हिन्दी कविता का स्वरूप
5.2.03. समकालीन हिन्दी कविता : काव्य-दृष्टि
5.2.03.1. कविता में लोकतन्त्र और राजनैतिक सन्दर्भों की बहुलता
5.2.03.2. जनसंघर्ष, जनआन्दोलन और अस्मितामूलक विमर्श
5.2.03.3. आम जनजीवन की संवेदना और परिवेश के प्रति लगाव
5.2.03.4. समकालीन कविता : काव्य-भाषा और काव्य-शिल्प
5.2.04. समकालीन हिन्दी कविता : काल-संसक्ति
5.2.05. समकालीन हिन्दी कविता : लोक-संसक्ति
5.2.06. आधुनिकता और समकालीनता का अन्तर
5.2.07. पाठ-सार
5.2.08. बोध प्रश्न
5.2.09. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य
5.2.10. कठिन शब्दावली
5.2.11. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

5.2.00. उद्देश्य कथन

प्रस्तुत इकाई समकालीन हिन्दी कविता के स्वरूप और वैशिष्ट्य पर केन्द्रित है। प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. समकालीन हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि और स्वरूप को समझ सकेंगे।
ii. समकालीन हिन्दी कविता की काव्य-दृष्टि से अवगत हो सकेंगे।
iii. समकालीन हिन्दी कविता की काल-संसक्ति को जान पाएँगे।
iv. समकालीन कविता में लोक-संसक्ति और लोकव्याप्ति का अनुशीलन कर सकेंगे।
v. आधुनिकता एवं समकालीनता के मध्य भेद को समझ सकेंगे।
vi. समकालीन कविता की सृजनात्मकता की पड़ताल करने में समर्थ हो सकेंगे।

5.2.01. प्रस्तावना

आजादी के बाद देश में नये स्वप्न, नये विचार और नयी चेतना का आगमन हुआ। देश को राजनैतिक स्वाधीनता तो प्राप्त हुई लेकिन सामाजिक-आर्थिक रूप से भारत में आजादी का स्वर मुकम्मल न था। स्वाधीनता के बाद देश का बँटवारा हुआ, गाँधीजी की हत्या हुई, मूल्यहीन राजनीति का नया दौर भी शुरूहुआ। आजादी की उमंग जनता में आशा की जगह निराशा लेकर आयी, आस्थावादी जीवन-मूल्यों की अपेक्षा अनास्थावादी और विघटनकारी मूल्यों का अधिक विस्तार हुआ। साहित्य पर भी इसका बखूबी असर पड़ा। प्रयोगवाद और नयी कविता का दौर इन्हीं मूल्यों और संवेदनाओं के बीच विकसित हुआ। तभी तो इन काव्य-आन्दोलनों में मोहभंग, अतिवैयक्तिकता, अवसाद, घुटन, कुण्ठा, विसंगति और विडम्बना का स्वर मुखर रहा। यों नयी कविता के समाप्त होते-होते आशा और आस्था के नये रंग भी दिखने लगे। हिन्दी कविता में सन् 60 के बाद नये मूल्यों और मान्यताओं के साथ कविता की बहुरंगी छवियाँ उभरीं। साठोत्तरी काव्य के इस दौर में पूर्ववर्ती और समकाल का मिला-जुला स्वर देखा जा सकता है। साहित्येतिहास में इस काव्यधारा को 'समकालीन कविता' और 'साठोत्तरी काव्य' नाम दिया गया।

5.2.02. समकालीन हिन्दी कविता

समकालीन कविता नयी कविता के बाद कविता की वह संश्लेषी धारा है जिसमें आम आदमी की पीड़ा, संत्रास और परिवेश की सहज अभिव्यक्ति का स्वर है। यों हर समय की कविता अपने परिवेश और समय की पुकार है लेकिन समकालीन कविता में परिवेश का रूपायन सर्वाधिक हुआ है। युगीन यथार्थ की टकराहट से पैदा हुई इस कविता में आम आदमी का दुःख-दर्द है, आत्म-मंथन है, निराशा है, आक्रोश है, विद्रोह है, विरोध है लेकिन यह कविता अनास्थावाद की प्रतिष्ठा नहीं करती। समकालीन कविता में राजनैतिक सन्दर्भों को अधिक अर्थवान् और प्रतिबद्धता के साथ व्यक्त किया गया है।

5.2.02.1. समकालीन हिन्दी कविता की पृष्ठभूमि

समकालीन कविता का प्रस्थान वर्ष 1964 सर्वाधिक महत्त्व का है। साहित्य और राजनीति दोनों में यह विशिष्ट वर्ष है। आजाद देश के पहले प्रधानमंत्री और स्वप्नदर्शी राजनेता, चिन्तक, विचारक जवाहरलाल नेहरू के देहान्त का वर्ष 1964 है तो यही वह वर्ष है जिसमें साहित्य को नयी चेतना प्रदान करने वाले गजानन माधव मुक्तिबोध का देहावसान भी हुआ। स्वतन्त्र भारत में मिश्रित अर्थव्यवस्था और लोकतान्त्रिक मूल्यों को विकसित करने वाली संस्थाओं की नींव नेहरू के वैज्ञानिक चिन्तन का परिणाम था। अपने समय-समाज और साहित्य को नये द्वन्द्वात्मक नजरिए से देखने वाले मुक्तिबोध के काव्य को स्वतन्त्र भारत का इस्पाती दस्तावेज कहा गया। मुक्तिबोध कई जगह नेहरू की नीतियों के प्रशंसकथे। लेकिन उस दौर की खामियों का उनसे बड़ा आलोचक भी कोई और न था। नेहरूयुगीन सामाजिक-राजनैतिक स्थितियों की मुखर आलोचना मुक्तिबोध की 'अँधेरे में' कविता में देखा जा सकता है। साठोत्तरी समय में मोहभंग का स्वर प्रमुख है। मुक्तिबोध के साथ नागार्जुन-त्रिलोचन

और शमशेर के यहाँ यह देखा जा सकता है। साठोत्तरी कविता की एक काव्यधारा वह है जिसके प्रतिनिधि कवि धूमिल हैं। इनके साथ ही और गंगाप्रसाद विमल का नाम लिया जाता है। यह 'अ' कविता की काव्यधारा है। वैसे मोहभंग का स्वर इन सभी काव्यधाराओं में है। लेकिन काव्य-दृष्टि में भेद है। 'मुक्तिबोध' के मोहभंग में अनुशासन और गहन इतिहास बोध है। वहीं 'धूमिल' के यहाँ मोहभंग का अराजक रूप है और तत्कालिकता का प्रभाव अधिक है। यों साठोत्तरी काव्यान्दोलन में कविता की कई काव्यधाराओं की उपस्थिति होने के कारण कवि सम्पादक जगदीश गुप्त ने उसे 'किसिम-किसिम की कविता' कहा, तो ठीक ही है।

समकालीन कविता की पृष्ठभूमि में राजनैतिक मुखरता का स्वर प्रधान है। राजनीति से मोहभंग ने 'नक्सलवादी आन्दोलन' को जन्म दिया जिसमें व्यवस्था के प्रति प्रतिरोध है। आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में असांस्कृतिककरण उपभोक्तावादी और नव साम्राज्यवादी नीतियों का विकास हुआ। महँगाई, बेरोजगारी और निरंकुश राजनीति ने आमजन में असंतोष पैदा किया। असंतोष की यह संवेदना हिन्दी कविता को समकालीन स्वर के रूप में उभरा। समकालीन कविता के प्रतिनिधि कवि 'धूमिल' की यह प्रश्नाकुल काव्य-पंक्तियाँ लोकतन्त्र के मोहभंग को ही व्यक्त करती हैं –

क्या आजादी सिर्फ़ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब होता है।

5.2.02.2. समकालीन हिन्दी कविता का स्वरूप

समकालीन हिन्दी कविता के अनेक रूप-रंग और अनेक शैलियाँ है। कई पीढ़ियों के कवि और काव्यधाराओं से मिलकर समकालीन कविता का स्वरूप बनता है। कविता के इस संश्लिष्ट चित्र की वरिष्ठ पीढ़ी के कवियों में मुक्तिबोध, धूमिल, रघुवीर सहाय, कुँवरनारायण, केदारनाथ सिंह, चन्द्रकान्त देवताले, मलय, विजेन्द्र, विनोद कुमार शुक्ल, अशोक वाजपेयी, आलोक धन्वा, नरेश सक्सेना, ज्ञानेन्द्रपति, भगवत रावत, विष्णुचन्द्र शर्मा, ऋतुराज और विष्णु खरे का नाम शुमार किया जा सकता है। इसके बाद की पीढ़ी में वीरेन डंगवाल, उदय प्रकाश, अरुण कमल, राजेश जोशी, लीलाधर जगूड़ी, मंगलेश डबराल, श्याम कश्यप, असद जैदी, विष्णु नागर, प्रयाग शुक्ल, बोधिसत्व, निलय उपाध्याय, दिनेश कुशवाह, मदन कश्यप, बद्रीनारायण, एकान्त श्रीवास्तव, दिनेश कुमार शुक्ल, जीतेन्द्र श्रीवास्तव, कुमार अम्बुज, देवी प्रसाद मिश्र, ओमप्रकाश वाल्मीकी, अनामिका, कात्यायनी, सविता सिंह, निर्मला पुतुल शामिल हैं। युवा पीढ़ी में मनोज कुमार झा, बसंत त्रिपाठी, राकेश रंजन, आशुतोष दुबे, शिरीष कुमार मौर्य, प्रेमरंजन अनिमेष, संतोष चतुर्वेदी, अनुराधा सिंह, अरुणाभ सौरभ, ज्योति चावला, पंकज चतुर्वेदी, उमाशंकर चौधरी और अनुज लगुन का नाम उल्लेखनीय है। दक्षिण भारत में ए. अरविन्दाक्षन् और सुरेश नारायण ने हिन्दी कविता का विस्तार किया है।

समकालीन कविता में सप्तकीय कवियों में मुक्तिबोध, कुँवर नारायण और केदारनाथ सिंह की कविता का प्रभाव परवर्ती काव्य पर रहा। यों मुक्तिबोध की कविताई का असर प्रगतिशील विचारधारा के कवियों पर अधिक

रहा। समकालीन कविता की यह केन्द्रीय धारा है। अशोक वाजपेयी और नन्दकिशोर आचार्य सरीखे कवियों के यहाँ कला और व्यक्ति केन्द्रित भाव का विस्तार है। आपातकालीन परिदृश्य में उभरे कवियों में दुष्यन्त कुमार की गजलों ने हिन्दी कविता का रूप रंग बदला। इक्कीसवीं सदी में नये कवियों ने कविता की भाषा को नया मुहावरा दिया। कविता के इस भरे-पूरे संसार में जीवन के विविध रंग और ढंग के साथ समकालीन कविता की संस्कृति निर्मित हुई है।

5.2.03. समकालीन हिन्दी कविता : काव्य-दृष्टि

समकालीन कवियों में यथार्थ की अनेक छवियाँ और काव्य-प्रवृत्तियाँ आपस में जुड़ते-टकराते कविता का विकास करती हैं। इस दौर में कविता की कई पीढ़ियाँ एक साथ रचनारत हैं। समकालीन कविता में कवियों ने जीवन की बहुआयामी और बहुस्तरीय छवियों को रचा है।

5.2.03.1. कविता में लोकतन्त्र और राजनैतिक सन्दर्भों की बहुलता

साठोत्तरी कविता अथवा समकालीन कविता में संसद, चुनाव, लोकतन्त्र, समाजवाद और अनेक राजनैतिक सन्दर्भों को कविता में रूपायित किया गया। रघुवीर सहाय के काव्य-संग्रह 'आत्महत्या के विरुद्ध', मुक्तिबोध का संग्रह 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' और धूमिल काव्य के संग्रह 'संसद से सड़क तक' में भारतीय जनतन्त्र और राजनीति की विद्रूपता की सजग समीक्षा है। इन कवियों में धूमिल प्रखर राजनैतिक चेतना के कवि हैं। 'कल सुनना मुझे' संग्रह में 'रोटी और संसद' कविता में वह संसद के यथार्थ को कुछ इस रूप में व्यक्त करते हैं –

एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है
वह सिर्फ़ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ
यह तीसरा आदमी कौन है ?
मेरे देश की संसद मौन है।

समकालीन कविता में धूमिल, नागार्जुन के साथ, उदय प्रकाश, लीलाधर जगूड़ी की कविताओं में राजनीति और जनतन्त्र के यथार्थ को व्यक्त किया गया है। लीलाधर जगूड़ी की कविता 'इस व्यवस्था में' जनतन्त्र पर गहरा व्यंग्य करती है।

नौकरी के लिए पढ़कर
सिफ़ारिश से कुर्सी पर चढ़कर

इस दरमियान
मैंने जाना है
जनतन्त्र में
बिल्कुल नया जमाना है
नागरिकता पर
सबसे बड़ा रंदा थाना है

राजनीति और जनतन्त्र ने आजादी के बाद आमजन के साथ छल किया। राजनीति में पाखण्ड और झूठ बढ़ा। राजनैतिक भ्रष्टाचार का कद बढ़ता गया और लोकतन्त्र का कद घटता गया। हाल यह है जनता जनतन्त्र के इस फरेब और छलावे का लगातार शिकार होती है। जनतन्त्र के बारे में 'धूमिल' का यह कहना बिल्कुल सही है कि,

अपने यहाँ जनतन्त्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान मदारी की भाषा है।

'संसद' के खोखलेपन को उकेरती 'उदय प्रकाश' की 'महापुरुष' कविता में संसदीय व्यवस्था के यथार्थ को बयां किया गया है –

महापुरुष की धोती का
एक छोर
नगर सेठ की तिजोरी में है
दूसरा संसद की मूर्ति में।

समकालीन कविता में राजनीति और लोकतन्त्र की विद्रूपता को बेनकाब किया गया है। लोकतन्त्रीय व्यवस्था के प्रति मुखर विद्रोह करती इन कविताओं में आजादी के बाद के भारतीय जनतन्त्र की सजग समीक्षा है।

5.2.03.2. जनसंघर्ष, जनआन्दोलन और अस्मितामूलक विमर्श

आजादी के बाद भारतीय राजनीति और लोकतन्त्र से आम जनता ने जो स्वप्न देखा वह मोहभंग हुआ। भ्रष्टाचार और आर्थिक तंगी ने किसानों, मजूदरों और जनता के अन्दर आक्रोश पैदा किया। औपनिवेशिक दौर में होने वाले शोषण से मुक्ति के बाद जनता को लगा कि नये देश में नये सपनों को उड़ान भरने का खुला आकाश मिलेगा, भूख मिटेगी, जीवन सुन्दर होगा, लोकतन्त्र मजबूत होगा पर ऐसा न हुआ। संसद में बैठी सरकार के थोथे आश्वासन से जनता त्रस्त हो चुकी थी। सन् 1967 के आस-पास होने वाले 'नक्सलबाड़ी आन्दोलन' ने जनता को आकर्षित किया। बंगाल में नक्सलबाड़ी गाँव के किसानों ने अपनी भूमि और फसल पर कब्जा कर लिया। उन्होंने पुलिस और ज़मींदारों के विरुद्ध सशक्त संघर्ष किया। भूमिहीन गरीब किसान और शोषण-तन्त्र में पिसते चाय बागान के मजूदरों द्वारा किये गए विद्रोह ने पूँजीवादी और सामन्ती व्यवस्था को हिलाकर रख दिया। तेलंगाना का

भी किसान विद्रोह हुआ। इस संघर्ष में किसानों और मजदूरों के साथ कई जगह धोखा हुआ सो इस आन्दोलन को सही परिणति न मिल पायी। नक्सलबाड़ी किसान आन्दोलन का साठोत्तरी कविता पर गहरा असर है। धूमिल, और सर्वेश्वर की कविता में तो नक्सलवाद का सीधा चित्रण हुआ। साहित्य में नया जनधर्मी मोड़ आया। ग्रामीण और किसानी जीवन की ओर कवियों ने कलम चलाई। धूमिल ने 'पटकथा' नाम की अपनी लम्बी कविता में 'नक्सलबाड़ी' किसान आन्दोलन की संवेदना को व्यक्त करने वाली पंक्तियाँ लिखी हैं –

एक ही संविधान के नीचे
भूख से रिरियाती हुई फैली हथेली का नाम
'दया' है
और भूख में
तनी हुई मुट्ठी का नाम
'नक्सलबाड़ी' है।

सन् 1974 में होने वाले जयप्रकाश नारायण की सम्पूर्ण क्रान्ति का आह्वान और युवा क्रान्ति का भी हिन्दी की समकालीन कविता पर स्पष्ट प्रभाव है। नागार्जुन ने इस क्रान्ति के प्रभाव में अनेक कविताएँ लिखी हैं। 'क्रान्ति सुगबुगाई हैं' इसी प्रभाव की कविता है –

क्रान्ति सुगबुगाई है
करवट बदली है क्रान्ति ने
मगर वह अब भी उसी तरह लेटी है
एक बार इस ओर देखकर
उसने फिर से फेर लिया है
अपना मुँह उसी ओर
'सम्पूर्ण क्रान्ति' और 'समग्र विप्लव' के मंजुघोष
उसके कानों के अन्दर
खींज भर है या गुदगुदी
यह आज नहीं कल बतला सकूँगा।

26 जून 1975 की रात में देश में आपातकाल की घोषणा हुई। आपातकाल में अनेक जनवादी विचारों के नेताओं और साहित्यकारों को झूठे इल्जामों में फँसाया गया। उन्हें जेल में डाल दिया गया। उस दौर के कई प्रगतिशील कवियों ने सरकार के इस तानाशाही कदम का पुरजोर विरोध किया। लेकिन इनमें सबसे मुखर और प्रतिरोधी काव्य स्वर नागार्जुन का था। 1975 में 'इमरजेंसी' पर 'सत्य' नामक उनकी यह कविता 'आपातकाल' की सत्यता को व्यक्त करती है –

जी हाँ, सत्य को लकवा मार गया है
उसे इमरजेंसी का शॉक लगा है
लगता है, अब वह किसी काम का न रहा

जी हाँ सत्य अब पड़ा रहेगा

लोप की तरह, स्पन्दनशून्य मांसल देह की तरह।

साठोत्तरी कविता सत्ता की तानाशाही और शोषण के खिलाफ विद्रोह और जनसंघर्ष की कविता है। यह कविता शोषित, उत्पीड़ित और श्रमरत मनुष्य के साथ खड़ी कविता है। औपनिवेशिक गुलामी से मुक्ति के बाद नव-औपनिवेशिक गुलामी के खिलाफ संघर्षरत मनुष्य की मुक्ति अकेले नहीं सामूहिकता में हीहोगी।

जनसंघर्ष के समूह की ताकत को गजानन माधव मुक्तिबोध ने सही पहचाना है। 'चकमक की चिनगारियाँ' उनकी कविता यही बयां करती है –

अरे जन संग उष्मा के बिना
व्यक्तित्व के स्तर जुड़ नहीं सकते
प्रयासी प्रेरणा के स्रोत
सक्रिय वेदना की ज्योति
सब साहाय्य उनसे लो
तुम्हारी मुक्ति उनके प्रेम से होगी
कि तदगत लक्ष्य उनसे प्राप्त
करने की क्रिया में से उभर ऊपर
विकसते जायेंगे निज के
तुम्हारे गुण
कि अपनी मुक्ति के रास्ते
अकेले में नहीं मिलते

जनता की चेतना का जाग्रत् होना एक साथ होना, संघर्ष करना और जनता के प्रतिरोध का सामूहिक स्वर जनसंघर्ष के साथ समकालीन कविता को भी संभावना से भर देता है। क्रान्तिकारी कवि आलोक धन्वा की ये काव्य-पंक्तियाँ इसी संवेदना को व्यक्त करती हैं –

महसूस करने लगा है वह
अपनी पीठ पर लिखे गए सैकड़ों उपन्यासों
अपने हाथों से खोदी गई नहरों और सड़कों को
कविता की महान् संभावना है यह
कि वह मामूली आदमी अपनी कृतियाँ महसूस करने लगा है
अपनी टाँग पर टिके महानगरों और
अपनी कमर पर टिकी हुई राजधानियों को
महसूस करने लगा है वह।

पूँजीवादी समाज और लोकतन्त्र का यह अन्तर्विरोध है कि हम एक ही समय में मुक्ति की बात करते हैं और परम्परा के जड़वादी संस्कारों को भी सँजो लेना चाहते हैं। यह बात हाशिए के समाज के प्रति हमारे किये गए व्यवहार में साफ देखी जा सकती है। वैश्वीकरण और नव-पूँजीवाद के दौर में मुक्ति के नये द्वार खुले तो वहीं शोषण की नयी बाज़ारवादी शक्ति भी उभरी। पुरुष सत्तात्मक, पूँजीवादी और सामन्ती समाज के प्रतिरोध में अस्मितामूल विमर्श का उभार हुआ। स्त्री, दलित और आदिवासी अस्मिता का नया स्वर विकसित हुआ। साहित्य के इतिहास में वैसे तो यह चेतना अपने आरम्भिक दौर से ही मौजूद है लेकिन समकालीन दौर में यह साहित्य की मुख्य धारा के रूप में विकसित हुआ। स्त्री विमर्श में स्त्री अस्मिता का स्वर पुरुष सत्ता और बाज़ारवादी साजिशों के खिलाफ है। घर से लेकर बाहर व्यापक सामाजिक-सांस्कृतिक संस्थाओं तक उत्पीड़ित नारी की मनो-संवेदना को खुद स्त्री कवियों ने बड़ी संजीदगी और ईमानदारी से व्यक्त किया है। अनामिका, कात्यायनी, निर्मला पुतुल, सविता सिंह, नीलेश रघुवंशी, अनुराधा सिंह और ज्योति चावला की कविताओं में स्त्री संवेदना और संघर्ष को व्यक्त किया गया है। स्त्रीत्व के अधिकार और अस्तित्व को समझने और इंसान की हैसियत पाने की आकांक्षा को अनामिका ने अपनी इस कविता में बड़ी संजीदगी से रचा है –

एक दिन हमने कहा
हम भी इंसान हैं
हमे कायदे से पढ़ो, एक-एक अक्षर
सुनो हमें अनहद की तरह
और समझो जैसी समझी जाती है
नयी-नयी सीखी हुई भाषा।

दलित साहित्य का आरम्भ हिन्दी साहित्य में सन्त कविता से माना जाता है। भक्तिकालीन सन्त कवियों ने जाति और सम्प्रदाय के भेदभाव का प्रतिरोध करते हुए प्रेम और मानवता की बात की है। कबीर, रैदास और दादू ने निम्न जाति की जनता में गौरव गर्व भरा। आधुनिक दलित कविता सन्त कविता को अपनी पूर्वज कविता मानती है। आधुनिक दलित कवियों में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिषराय, जयप्रकाश कर्दम, श्योराज सिंह 'बेचैन' और सूरजपाल चौहान उल्लेखनीय कवि हैं। ओमप्रकाश वाल्मीकि की कविता 'खेत उदास है' में दलित जीवन के दंश की अभिव्यक्ति है –

चिड़िया उदास है –
जंगल के खालीपन पर
बच्चे उदास हैं –
भव्य अट्टालिकाओं के
खिड़की दरवाजों में कील की तरह
ठुकी चिड़िया उदास है –
भरपूर फसल के बाद भी
सिर पर तसला रखे हरिया

चढ़-उतर रहा है एक-एक सीढ़ी
ऊँची उठती दीवार पर
लड़की उदास है –

उदारीकरण और वैश्वीकरण में उपभोक्तावाद ने आदिवासी जीवन और संस्कृति को सबसे अधिक नुकसान पहुँचाया है।

आदिवासियों को उनके जल, जंगल, ज़मीन से अलग-थलग कर विकास की क्रूर संस्कृति रची जा रही है। आदिवासियों को उन्हीं की ज़मीन से बेदखल किया जा रहा है। अपने जीवन को बचाने और सांस्कृतिक धरोहर को सुरक्षित रखने के लिए आदिवासी आन्दोलन और आदिवासी विमर्श ने दस्तक दी है। हिन्दी कविता में निर्मला पुतुल, अनुज लुगुन और जसिंता केरकेट्टा ने पूँजीवादी शोषण और उपभोक्तावादी संस्कृति के खिलाफ सशक्त रचनाएँ की हैं। अनुज लुगुन संभावनाशील आदिवासी कवि हैं जिनकी कविता में आदिवासी जन जीवन के संघर्ष और प्रतिरोध को संजीदा ढंग से व्यक्त किया गया है। आदिवासी नेता का पूँजीवादी ताकतों से गठजोड़ करने पर अपना आक्रोश व्यक्त करते हुए उनका कहना है –

वह कौन दैत्य जो लोहा खा जाता है
कौन साधु है जिसके कमण्डल मे जाकर कोयला राख हो जाता है
जंगल के स्वत्व का केन्द्र बना है दिल्ली या फिर राँची
जहाँ से उठी घोषणाओं की हवा से जंगल के पत्ते झर जाते हैं
जो सिंह की दहाड़ से भी ज्यादा खतरनाक मालूम पड़ती है

5.2.03.3. आम जनजीवन की संवेदना और परिवेश के प्रति लगाव

समकालीन कविता का यथार्थ कवि का स्थानीयता और परिवेश के प्रति गहरे लगाव से उपजता है। अपनी संवेदनात्मक चेतना से कवि अपने परिवेश से जुड़ता है, टकराता है और जीवन के छोटे-छोटे संवेगों को ग्रहण करता है एवं सजग भाषा में रचता है। मुक्तिबोध, धूमिल, केदारनाथ सिंह, श्रीकान्त वर्मा, रघुवीर सहाय, चन्द्रकान्त देवताले, विनोद कुमार शुक्ल, लीलाधर जगूड़ी, उदय प्रकाश, अरुण कमल और राजेश जोशी जैसे कवियों की कविताओं में स्थानीय संवेदना और परिवेश के प्रति लगाव को देखा जा सकता है। रघुवीर सहाय की 'आत्महत्या के विरुद्ध', धूमिल की 'मोचीराम' और केदारनाथ सिंह की 'बनारस' कविता में परिवेश और स्थानीयता का रंग देखा जा सकता है। इन कविताओं में कवि अपने आस-पास के चरित्रों और घटनाओं से कविता का सृजन-संसार बुनता है। समकालीन कविता की खूबी यह है कि यहाँ कवि अपनी कविता को रोजमर्रा की ज़िंदगी से जोड़ता है। जीवन और परिवेश से जुड़ी छोटी-छोटी चीजों पर लिखी गई कविताएँ समकालीन काव्य की खास विशेषता है। राजेश जोशी ने कविताओं में अपने शहर, पलम्बर, मिस्त्री और माली को याद करते हुए खूबसूरत कविताएँ लिखी हैं। ये मामूली लोग हमारे जीवन का अनिवार्य हिस्सा हैं। इन्होंने हमारे जीवन को सुन्दर बनाया है। अपने शहर को याद करते हुए राजेश जोशी ने लिखा भी है।

एक एक कर अपने शहर की गलियों को याद करता हूँ
कितनी मिट्टी, कितना पानी कितनी हवा
मेरे फेफड़ों में जमा है मेरे शहर की
बाहर निकलना चाहकर भी, बाहर नहीं जा पाता
किसी दूसरे शहर की गलियों में घूमते हुए
उसका चेहरा अपने शहर की गलियों से मिलाता हूँ

केदारनाथ सिंह का बनारस शहर से खास जुड़ाव रहा है तभी तो 'बनारस' कविता में वह इस शहर की संस्कृति, सभ्यता और भूगोल को संजीदगी से रचते हैं। शहर की बाह्य और आन्तरिक संरचना 'बनारस' कविता में जीवन्त बन पड़ी है। केदारनाथ सिंह के शब्दो में –

किसी अलक्षित सूर्य को
देता हुआ अर्घ्य
शताब्दियों से इसी तरह
गंगा के जल में
अपनी एक टाँग पर खड़ा है यह शहर
अपनी दूसरी टाँग से बिल्कुल बेखबर

संघर्ष और प्रतिरोध में जीवन की महक तलाशने वाला कवि बहस पर विश्वास करता है। आम जन-मन की समस्याओं को रचकर ही वह कविता को सार्थक बनाता है। कवि देवी प्रसाद मिश्र की कविता में इसी संवेदना को उकेरा गया है –

और फिर कवि ने फुसफुसा कर कहना चाहा कि
बार-बार मनुष्य के चेहरे का वर्णन
मौलिकता का पुनराविष्कार है बार-बार
इसलिए पानी की माँग बार-बार
इसलिए बार-बार पुकार
और इसलिए बार-बार
खोई हुई कविता की खोज
और खोए गणतन्त्र को खोजने का
नैतिक उपद्रव बार-बार।

राजेश जोशी की कविता 'मारे जायेंगे' हमारे समय का कारुणिक यथार्थ है। 1988 ई. में लिखी यह कविता आज के समय में अधिक प्रासंगिक है। यही है कविता की शक्ति। यह कविता हमारे समय की क्रूर, घातक और स्वार्थी प्रवृत्तियों को उकेरती है –

जो इस पागलपन में शामिल नहीं होंगे
मारे जाएँगे
कटघरे में खड़े कर दिए जाएँगे, जो विरोध में बोलेंगे
जो सच-सच बोलेंगे, मारे जाएँगे
बर्दाश्त नहीं किया जाएगा कि किसी की कमीज हो
उनकी कमीज से ज्यादा सफेद
कमीज पर जिनका दाग नहीं होगा, मारे जाएँगे
धकेल दिए जाएँगे, कला की दुनिया से बाहर, जो चारण नहीं
जो गुन नहीं गाएँगे, मारे जाएँगे
धर्म की ध्वजा उठाए जो नहीं जाएँगे जुलूस में
गोलियाँ भून डालेंगी उन्हें, काफिर करार दिए जाएँगे
सबसे बड़ा अपराध है इस समय
निहत्थे और निरपराध होना
जो अपराधी नहीं होंगे, मारे जाएँगे।

5.2.03.4. समकालीन कविता : काव्य-भाषा और काव्य-शिल्प

समकालीन कविता में काव्यभाषा यथार्थ को रूपायित करने में अधिक कारगर साबित हुई है। भाषा में गद्यात्मकता बढ़ी है। विचारों की सघनता का काव्यभाषा में नये बिम्ब और प्रतीक में ढालकर समकालीन कवियों ने काव्यभाषा को अधिक सृजनात्मक बनाया है। समकालीन कविता में एक ओर मुक्तिबोध के काव्य-शिल्प को अपनाया गया जिसमें व्यंग्य, नाटकीयता और फैंटेसी की ओर भाषा का झुकाव है दूसरी ओर भाषा में धूमिल की काव्यभाषा का प्रभाव है। धूमिल की कविता काव्य-अभिजात्य से भाषा को मुक्त करने का अभियान है। यहाँ व्यंग्य है, सपाटबयानी है और संवादी स्वर है। समकालीन कविता में भाषा की जनधर्मी चेतना के प्रभाव से आक्रोश, पीड़ा, घृणा, अन्याय और प्रतिरोध से काव्य-भाषा अधिक सामर्थ्यवान् और समृद्ध हुई है। भाषा में जनवादी क्रान्ति को रूपायित करने वाले कवि मुक्तिबोध 'जमाने के पैगम्बर' कविता में लिखते हैं –

मानो या मत मानो
इस नाजुक घड़ी में
चन्द्र है सविता है
पोस्टर की कविता है
चटाख में लगी हुई
कारतूस गोली के धड़ाके से टकरा
प्रतिरोधी कविता बनती है पोस्टर

सहज-सरल आक्रामक भाषा समकालीन कविता की जान है। धूमिल, अरुण कमल, राजेश जोशी, आलोक धन्वा और लीलाधर जगूड़ी की कविता सहज भाषा में तीखा वार करती है। धूमिल अपनी कविता में ऐसी ही बात लिख रहे हैं –

उसे मालूम है कि शब्दों के पीछे
कितने चेहरे नंगे हो चुके हैं
और हत्या अब लोगों की रुचि नहीं –
आदत बन चुकी है।

व्यंग्य की धार समकालीन कविता का केन्द्रीय स्वर है । शासन, लोकतन्त्र और बौद्धिक समाज की कमजोरियों पर समकालीन कविता मे गजब का व्यंग्य किया गया है । रघुवीर सहाय की यह काव्य-पंक्तियाँ लोकतन्त्र पर गहरा व्यंग्य है –

राष्ट्रगति में भला कौन वह, भारत भाग्य विधाता है।
फटा सुथन्ना पहिने जिसका गुन हरचरना गाता है।

बिम्ब और प्रतीक का प्रयोग समकालीन कविता में रोजमर्रा की ज़िंदगी से जोड़कर किया गया है सो वह बेहद सम्प्रेषणीय लगती है । केदारनाथ सिंह की कविता में बिम्ब और प्रतीक का सार्थक प्रयोग किया गया है । 'बैल' शीर्षक कविता में केदारजी बैल को मजबूर और कमजोर आदमी के प्रतीक की तरह प्रयोग करते हैं –

वह चल रहा है और सिर्फ़ एक पगडंडी
उसे याद है जो उसकी पूँछ की तरह
उसे हाँक लिये जा रही है।

भाषाई चमत्कार से समकालीन कवि चौंकाता है, जीवन की वास्तविकता को व्यक्त करता है । यहाँ कविता में यथार्थ को नाटकीयता की शैली में रचा जाता है। वर्णन में कल्पना और कौतुक लगता है लेकिन अन्दर एक गहरा मर्म छिपा रहता है । अनुभव का साधारणीकरण । भाषा का सुन्दर विधान। राजेश जोशी की कविता 'चाँद की वर्तनी' में इस भाषाई चमत्कार को देखा जा सकता है –

चाँद लिखने के लिए चा पर चन्द्रबिन्दु लगाता हूँ
चाँद के ऊपर चाँद धर कर इस तरह
चाँद को दो बार लिखता हूँ
चाँद की एवज में सिर्फ़ चन्द्रबिन्दु रख दूँ
तो काम नहीं चलता भाषा का
आधा शब्द में और आधा चित्र में
लिखना पड़ता है उसे हर बार
शब्द में लिखकर जिसे अमूर्त करता हूँ
चन्द्रबिन्दु बनाकर उसी का चित्र बनाता हूँ

समकालीन कविता में छन्द को पारम्परिक बन्ध से मुक्ति के साथ गद्य की लय में रूपायित किया गया है । बोलचाल की शैली में कविता की आन्तरिक लय कभी टूटती नहीं। यों कभी-कभी लगता है कि गद्य और कविता

का अन्तर लगभग समाप्त हो चुका है। नयी सदी में बाज़ार, तकनीक, विज्ञान और बौद्धिक वैचारिक दबाव में कविता का नया मुहावरा कवियों ने गढ़ा है। इस टूट-फूट में कविता की भाषा के पुराने संस्कार बदले हैं तो नयी सर्जनात्मक भाषा का विधान सुखकारी है। यह भाषा बदलते समय के यथार्थ को व्यक्त करने में समर्थ है।

5.2.04. समकालीन हिन्दी कविता : काल-संसक्ति

काल-चेतना और काल-संसक्ति के प्रति सजग आलोचक समकालीन कविता को 'साठोत्तरी कविता' कहना अधिक उचित मानते हैं। समकालीन कविता की काल-संसक्ति का दायरा इतना व्यापक है कि यह एक ओर अपनी पुरानी पीढ़ी से काव्य-संस्कार ग्रहण करती है तो इसने बदलते समय के यथार्थ के साथ अपना कलेवर भी बदला है। समकालीन कविता का गहरा सम्बन्ध आजादी से है। आजादी के (1947) के छह महीने बाद गाँधीजी की हत्या हो गई। विभाजन और त्रासद साम्प्रदायिक दंगे हुए। लोकतन्त्र की नींव खून से सनी थी। कविता में आजादी के स्वागत के साथ मोहभंग की कविता अधिक लिखी गई। एक तरफ टूटे सपने से उपजी कुण्ठा और निराशा का स्वर तो दूसरी ओर आस्था और आशा का स्वर भी गूँजा। प्रयोगवादी कवियों के प्रभाव से विकसित कविता में कुण्ठा, निराशा, मोहभंग, अतिवैयक्तिकता, आस्था-अनास्था की संवेदना विन्यस्त हुई तो प्रगतिशील कविता की धारा से जुड़े कवि मोहभंग के साथ जनसंघर्ष, आशा, प्रतिरोध और जनता के श्रम-संवेदना को वाणी दे रहे थे। प्रगति-प्रयोग-नयी कविता-समकालीन कविता की काव्य-संवेदना का विकास इन मिली-जुली संवेदनाओं से हुआ। अन्तर्विरोधों और द्वन्द्वों से विकसित होते हुए समकालीन कविता रूपायित हुई। इस बीच कम्युनिस्ट पार्टी का विभाजन हुआ। प्रगतिशील काव्यधारा अलग-अलग धाराओं में बँटकर काव्य-सृजन की यात्रा कर रही थी। 1975 में 'आपातकाल' के दौर में बहुत से कवियों-कलाकारों पर सत्ता की ओर से तानाशाही रवैया अपनाया गया। कविता में इसकी छाया को साफ देखा जा सकता है। सन् 1980 के बाद उदारीकरण और वैश्वीकरण के प्रभाव ने जन-जीवन के सामने नयी चुनौतियाँ पेश की सो कविता में सृजन और प्रतिरोध का रूप भी बदला।

1992 मे बाबरी ध्वंस और 2002 में हुए गोधरा कांड ने भारतीय राजनीति का चेहरा ही नहीं बदला, हिन्दी कविता में इस नये बनते सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की शिनाख्त की गई। यह काबिलेगौर बात है कि वैश्वीकरण और साम्प्रदायिकता प्रवृत्तियाँ साथ-साथ बढ़ीं। उत्तर समय में उत्तर औपनिवेशिक, अमरीकी साम्राज्यवाद, उत्तर पूँजीवाद की साजिशों को हिन्दी कविता ने बेनकाब किया। प्रतिशोध और संघर्ष की यह संवेदना साहित्य की अन्य विधाओं की तुलना में कविता में अधिक सृजनात्मकता के साथ रची गई।

5.2.05. समकालीन हिन्दी कविता : लोक-संसक्ति

लोक-संसक्ति कविता की आदिम ज़मीन है। हिन्दी का भक्ति आन्दोलन शास्त्रीय जड़तावादी चेतना के खिलाफ लोक-संस्कृति, लोकभाषा और जनपदीय चेतना के व्यापक प्रतिरोध का आन्दोलन था। आधुनिक कविता में प्रगतिशील काव्यधारा का मूल स्वर लोक संवेदना ही है। इस कविता में खेत है, खलिहान है, किसान-

मजदूर है और कविता की लोकधर्मी चेतना है। आजादी के बाद प्रयोगवाद और नयी कविता में लोक संवेदना का स्वर बहुत मुखरित न हो सका। समकालीन कविता के दौर में उदारीकरण, बाज़ारवाद और भूमण्डलीय संवेदना के बरअक्स हिन्दी कविता में स्थानीय संवेदना और लोक चेतना की कविता प्रचुर मात्रा में रची गई। हिन्दी कविता में लोक और स्थानीयता का यह रंग एक ओर वैश्वीकरण और नव साम्राज्यवादी निरंकुशता के खिलाफ है तो दूसरी ओर हिन्दी की जातीय ज़मीन से कविता जुड़ रही है। समकालीन कविता में लोक-संसक्ति का यह स्वर नागार्जुन, विजेन्द्र, केदारनाथ सिंह, त्रिलोचन, मानबहादुर, बद्रीनारायण, एकान्त श्रीवास्तव और रामकुमार कृषक की कविताओं में व्यक्त हुआ है। बाज़ारवादी इस मायावी और भयावह दौर में समकालीन कविता में लोक का स्वरूप भी बदला। यहाँ लोक के अवयवों का अर्थ कवि बदलता है। लोक पर खतरा अधिक बढ़ा सो प्रचलित मुहावरों से अलग समकालीन कवि नदी, पशु-पक्षियों के गुण-धर्म को बदलने का आग्रह करता है। तभी तो वह इस बाज़ारू मायावी शक्तियों से अपने को बचा पाने में सक्षम होगा। बद्रीनारायण की इस कविता में भक्ति की अनुगूँज भी है और समकालीन दौर में लोक के बदलाव का पुनर्सृजन भी है –

हिरणें जिन्हें अपने हिरण होने के अर्थ में थोड़ी तब्दीली करते हुए
शेर को रोकना चाहिए था, लामबंद हो उसे घेर लेना चाहिए था
वे खजुराहो में पत्थर चाट रही हैं
हिरणों अरज करूँ मैं तोसे
अपने चाँद को बचा लो –

लोकचेतना की इस कविता में राजनैतिक-सामाजिक यथार्थ का रंग भी है। लोक के रंग, स्मृति और आत्मिक गन्ध से कवि पतनशील सभ्यता को बचा पाने की आशा-आकांक्षा रखता है। यह शक्ति कवि की लोक सम्पृक्ति से आती है। एकान्त श्रीवास्तव अपनी कविता में लोक की शक्ति और स्पन्दन का इस्तेमाल करते हैं। लोकजीवन और जैविक विविधता का प्रयोग करते हुए वह उम्मीद की कविता लिखते हैं। उन्हीं के शब्दों में,

पर कितनी चीजें यूँ ही छूट जाती हैं
खेतों में
जीवन में
संसार में
जिनसे मुक्ति असंभव
असंभव मगर नामुमकिन नहीं
इनसे मुक्ति तभी
जब एक दूसरी व्यूह रचना
तुम करो तैयार
जैसे तुम करगा घास से मुक्ति के लिए
तुम करते व्यूह रचना नागकेसर की

लोकधर्मी कवि रामकुमार कृषक लोकजीवन के सुख-दुःख, भूख, बीमारी, संघर्ष और प्रतिरोध को रचते हैं। 'नीम की पत्तियाँ' संग्रह में दर्ज इस ग़ज़ल में रामकुमारजी पारम्परिक प्रतीकों से समकालीन लोकमन और प्रतिरोध को व्यक्त करते हैं –

भेद लंका का सभी जान लिया
हम विभीषण ही सही मान लिया
राज अपना है, पराया राजा
हमने नातों का इम्तिहान लिया
सोन महलों में सच नहीं मिलता
सोच की छलनी लगा छान लिया
शीश दस-बीस बाहुओं वाले
रावणी राज को पहचान लिया –

नये बदलते यथार्थ समकालीन कवियों की लोक-संसक्ति का रंग भी है। वह परम्परा से लोक-संस्कृति से चेतना ग्रहण करता है लेकिन अपने समय के अनुकूल वह विकल्प रचता है। लोक-संसक्ति की समताहीन कविता में नदी, तालाब, चिड़िया और प्रकृति के छोटे अवयव हैं जिनसे प्यार करना ही विकल्प नहीं है। इनको बचा लेने की नयी रणनीतियाँ और संघर्ष को कविता में ढालकर कवि लोक की नयी संस्कृति का सृजन करता है।

5.2.06. आधुनिकता और समकालीनता का अन्तर

भारत में आधुनिकता का मतलब पश्चिमी आधुनिकता या औपनिवेशिक आधुनिकता है। सन् 1857 के बाद विकसित औपनिवेशिक आधुनिकता का स्वरूप आजादी के बाद भी बदस्तूर जारी है। जिसमें आधुनिकीकरण की प्रक्रिया पश्चिमीकरण का ही प्रतिरूप है। अंग्रेजों के आगमन के पूर्व भारत में आधुनिकता का अपना परिवेशगत विकास हो रहा था, जिसे हम भारतीय आधुनिकता कहते हैं उसे अंग्रेजी आधुनिकता ने नष्ट कर दिया। भारतीय कृषि, उद्योग, व्यापार, स्थापत्य और अन्य सांस्कृतिक अभियानों को बेतरह नष्ट कर पश्चिमी आधुनिकता को भारतीयों पर थोपा जिसमें विकास के नाम पर भारतीय परिवेश के अनुरूप विकसित चेतना और व्यापार को नष्ट कर पश्चिमी गुलामी की ओर ढकेल दिया। गौरतलब बात यह है कि आजादी के बाद भी पश्चिम केन्द्रित आधुनिकता का ही विकास अधिक हुआ। भारतीय आधुनिकता कम पश्चिमी आधुनिकता के इस स्वरूप का समकालीन कविता में पुरजोर विरोध है जिसने मनुष्य को अकेलेपन और अमानवीयकरण की ओर उन्मुख किया है। आधुनिकता के परिवेश में बेरोजगारी, भ्रष्टाचार, पूँजी का अनैतिक विकास अधिक हुआ। यूरोप और अमेरिका के पूँजीवादी आधुनिकीकरण ने भारत में बौद्धिक विवेकशीलता की जगह अन्धविश्वास और अन्धविकास को अधिक फैलाया। सत्तर के दशक में यूरो केन्द्रित इस आधुनिकता का हिन्दी कविता में प्रबल विरोध दर्ज किया गया है। औपनिवेशिक आधुनिकता के प्रभाव में भारतीय जनतन्त्र के कमजोर होते रूप का मुक्तिबोध (अँधेरे में), धूमिल (पटकथा) में स्पष्ट शिनाख्त करते हैं।

समकालीनता, समसामयिकता का पर्याय नहीं है। इसी तरह समकालीनता से तात्कालिक मात्र का भी बोध नहीं होता। असल में अपने समय में हर कविता समसामयिक होती है। हिन्दी कविता में 'समकालीनता' का प्रयोग व्यापक साहित्यिक-सामाजिक-राजनैतिक सरोकार के सन्दर्भ में किया गया है। समकालीन कविता में अपने समय के तमाम अन्तर्विरोधों, आग्रहों और द्वन्दों की संवेदना है। साहित्यिक रूप में हिन्दी की पूर्ववर्ती और समसामयिक काव्यधाराओं का पुँज ही समकालीन कविता की जद में आता है। मनुष्य को केन्द्र में रखकर लिखी जाने वाली इस कविता के विविध काव्य-रंग है।

समकालीन कविता के प्रतिनिधि कवि धूमिल की कविता 'मोचीराम' समकालीन काव्य संवेदना को पूरी तरह से रूपायित करती है। जिसमें वे कहते हैं –

मेरे लिए हर आदमी एक जोड़ी जूता है जो मरम्मत के लिए खड़ा है।

'आधुनिकता' किसी भी देश और काल में परिवेश में विकसित वह मूल्य है जिसमें बौद्धिकता, वैज्ञानिकता, तार्किकता, मानवीयता जैसे गुण विद्यमान हैं जबकि 'समकालीनता' में समसामयिक जैसे मूल्यों के विन्यस्त होने के बावजूद वह कालबोधक अधिक होता है। हिन्दी कविता में आधुनिकता की चेतना सिर्फ़ आधुनिककाल के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ। भक्तिकाल की आधुनिक चेतना से हम सब परिचित हैं। समकालीनता में अपने समय और समाज से जुड़ने और प्रासंगिक होने की बात अधिक है।

5.2.07. पाठ-सार

समकालीन कविता सन् 60 के बाद कविता के कई मिले-जुले काव्य-आन्दोलनों का संश्लिष्ट रूप है। इस काव्यान्दोलन में पूर्ववर्ती काव्यधाराओं की भी अनुगूँज है। समकालीन कविता की प्रमुख काव्य-प्रवृत्तियों में राजनैतिक सन्दर्भों की बहुलता जनान्दोलन, जनसंघर्ष, अस्मितामूलक विमर्श, परिवेश के प्रति लगाव और आम जन-जीवन की संवेदना को कवियों ने बहुलता से रचा है। समकालीन कविता ने काव्य-भाषा के अभिजात्य को त्यागकर आम बोलचाल की भाषा और संस्कृति को ग्रहण किया है। इस कविता में किसान है, मजदूर है, दलित है, आदिवासी है, स्त्री है और व्यापक मध्यमवर्ग का जन है जो जीवन से संघर्ष कर रहा है, जीवन के मायने तलाश रहा है। समकालीन कविता में आधुनिकता की चेतना के साथ उत्तर-समय के विमर्श का भी प्रभाव है। उपभोक्तावाद और वैश्वीकरण के दौर में उपजी समस्याओं का मुखर प्रतिरोध समकालीन कविता के केन्द्र में है।

5.2.08. बोध प्रश्न

(1) निम्नलिखित **बहुविकल्पीय** प्रश्नों के सही विकल्प चुनिए –

1. निम्नलिखित में से समकालीन कविता के कवि नहीं हैं –

(क) धूमिल

(ख) केदारनाथ सिंह

(ग) भगवती चरण वर्मा

(घ) श्रीकान्त वर्मा

सही उत्तर – (ग)

2. धूमिल की लम्बी कविता का शीर्षक है –

(क) पटकथा

(ख) संसद से सड़क तक

(ग) अँधेरे में

(घ) आत्महत्या के विरुद्ध

सही उत्तर – (क)

3. समकालीन कविता के कौन से कवि सप्तक के कवि नहीं है –

(क) केदारनाथ सिंह

(ख) कुँवर नारायण

(ग) धूमिल

(घ) रघुवीर सहाय

सही उत्तर – (ग)

(2) निम्नलिखित **लघु उत्तरीय** प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. समकालीन कविता की पृष्ठभूमि स्पष्ट कीजिए।
2. समकालीन कविता की काव्यभाषा पर प्रकाश डालिए।
3. समकालीन कविता के विविध काव्यान्दोलनों पर टिप्पणी कीजिए।
4. समकालीन कविता का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
5. आधुनिकता और समकालीनता का अन्तर बताइए।

(3) निम्नलिखित **दीर्घ उत्तरीय** प्रश्नों के उत्तर दीजिए –

1. समकालीन कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ स्पष्ट कीजिए।
2. समकालीन कविता के प्रमुख कवियों का परिचय दीजिए।
3. समकालीन कविता में प्रवहमान विविध काव्यान्दोलनों और काव्य-विचार पर प्रकाश डालिए।

5.2.09. व्यावहारिक (प्रायोगिक) कार्य

1. पूर्ववर्ती काव्यान्दोलनों के आलोक में समकालीन कविता का अध्ययन कीजिए।
2. समकालीनता, आधुनिकता और समसामयिकता का आशय स्पष्ट कीजिए।

3. समकालीन कविता में युवा काव्य-स्वर पर विचार कीजिए।

5.2.10. कठिन शब्दावली

साठोत्तरी	:	सन् साठ के बाद
काल-संसक्ति	:	समय से जुड़ाव या काल की व्याप्ति
लोक-संसक्ति	:	लोकव्याप्ति
वैश्वीकरण	:	भूमण्डलीकरण या विश्वव्याप्ति
औपनिवेशिक	:	अंग्रेजी शासन या साम्राज्यवादी चेतना

5.2.11. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

01. समकालीन कविता का यथार्थ, परमानन्द श्रीवास्तव, हरियाणा साहित्य अकादेमी, चंडीगढ़।
02. समकालीन हिन्दी कविता, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
03. आधुनिक हिन्दी कविता का इतिहास, नन्दकिशोर नवल, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली।
04. कविता अभी बिल्कुल अभी, नन्दकिशोर नवल, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
05. एक कवि की नोटबुक, राजेश जोशी, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
06. हिन्दी कविता आधी शताब्दी, अजय तिवारी, साहित्य भण्डार, इलाहाबाद।
07. कविता की ज़मीन और ज़मीन की कविता, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
08. कविता के नये प्रतिमान, नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली।
09. कविता के सम्मुख, गोविन्द प्रसाद, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
10. कविता के पते ठिकाने, विजय कुमार, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली।
11. आधुनिक कवि विमर्श, धनंजय वर्मा, ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली।

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : समकालीन हिन्दी कविता

इकाई – 3 : नवगीत : अर्थ एवं महत्त्व, हिन्दी नवगीत परम्परा, प्रमुख नवगीतकार

इकाई की रूपरेखा

5.3.0. उदेश्य
5.3.1. प्रस्तावना
5.3.2. नवगीत : अर्थ एवं महत्त्व
5.3.3. नवगीत के स्वरूप
5.3.4. हिन्दी नवगीत की परम्परा
5.3.5. नवगीत : उद्भव और विकास
    5.3.5.1. प्रथम चरण : 1950 से 1960
    5.3.5.2. द्वितीय चरण : 1961 से 1970
    5.3.5.3. तृतीय चरण : 1971 से अद्यतन
5.3.6. प्रमुख नवगीतकार
5.3.7. पाठ-सार
5.3.8. बोध प्रश्न
5.3.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

5.3.0. उदेश्य

नवगीत केन्द्रित प्रस्तुत पाठ का अध्ययन करने के उपरान्त आप –

i. नवगीत के अर्थ एवं महत्त्व को समझ सकेंगे।
ii. नवगीत के स्वरूप के बारे में चर्चा कर सकेंगे।
iii. नवगीत की विभिन्न परम्पराओं से परिचित हो सकेंगे।
iv. प्रमुख नवगीतकारों के बारे जानकारी हासिल कर सकेंगे।

5.3.1. प्रस्तावना

नवगीत हिन्दी काव्य के क्षेत्र में न तो किसी नयेपन की तलाश है और न ही किसी कविता का नया संस्करण, बल्कि यह एक स्वतन्त्र विधा है। इसका सर्वप्रथम नामोल्लेख फरवरी 1958 में प्रकशित राजेन्द्र प्रसाद सिंह के 'गीतांगिनी' नामक काव्य-संग्रह में मिलता है। इस संग्रह के गीत अनेक वर्गों में विभक्त हैं और उनका विभाजन अवैज्ञानिक है, परन्तु इन गीतों को दिया जाने वाला नाम 'नवगीत' सर्वस्वीकृत है। हालाँकि उस समय यह नाम छायावादी और छायावादोत्तर गीतों से अलग एक नया नाम देने के लिए 'नवगीत' रखा गया था, किन्तु जल्द ही यह स्पष्ट हो गया कि 'नवगीत' एक नयी विधा है जो लोक-चेतना, लोक-संस्कृति, जातीय संस्कार और

जातीय सौन्दर्य-बोध से जुड़ने की अपनी निजी विशेषता के आधार पर विकसित हुई है । वैसे 1958 से पूर्व सामयिक गीत के नये मूल्य की पहचान कर 1956 में वीरेन्द्र मिश्र ने 'नवगीत' शब्द का प्रयोग इलाहाबाद के साहित्यकार सम्मेलन की कविता-गोष्ठी में पढ़े गए निबन्ध 'नयी कविता, नया गीत : मूल्यांकन की सीमाएँ' में किया था। बाद में सन् 1962 में 'वासंती' पत्रिका ने भी 'नये गीत : नये स्वर' लेखमाला आरम्भ कर इसी नाम को स्वीकार किया। लेकिन सन् 1958 से लेकर आज तक क्रमशः 'नवगीत' नाम ही प्रचलित एवं स्वीकृत है। स्वयं राजेन्द्र प्रसाद सिंह के शब्दों में, " 'नवगीत' में नवीन अनुभूतियों की स्वीकृति एवं शिल्प के क्षेत्र में नवीनता का आग्रह है । 'नवगीत' नवीन अनुभूतियों की प्रक्रिया में संचित मार्मिक समरसता का आत्मीयतापूर्ण स्वीकार है, जिसमें अभिव्यक्ति के आधुनिक निकायों का उपयोग और नवीन प्रविधियों का संतुलन होगा ।" (राजेन्द्र प्रसाद सिंह, गीतांगिनी की भूमिका से) इस तरह नवीन अनुभूतियों एवं नूतन भाषा-शिल्प विधान की वजह से 'नवगीत' विधा का हिन्दी काव्य-परम्परा में पारम्परिक गीत से अलग अपना विशिष्ट स्थान है।

5.3.2. नवगीत : अर्थ एवं महत्त्व

नवगीत 'नवता' और 'गीतत्व' का संश्लिष्ट रूप है । नवता उसके युगानुरूप परिवर्तन की परिचायक विशेषता है, गीतत्व उसका मूल काव्य-रूप है । शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से जिसे गाया गया है, वह गीत है। गा, गातृ, गातु आदि का प्रयोग वैदिक साहित्य में भी गाने के अर्थ में ही हुआ है। प्रत्येक साहित्यिक विधा की भाँति 'नवगीत' ने भी अनेक पारिभाषिक विशेषताओं को भी क्रमशः अर्जित किया है। गीत मानस-हृदय के संवेगों को व्यक्त करने की आकुलता का परिणाम है । मनुष्य जब-जब अपने मन में व्युत्पन्न सुख-दुःख, राग-विराग की सम्वेदना को व्यक्त करने के लिए बेचैन हुआ, तब-तब गीत का जन्म हुआ। 'नवगीत' भी इसी परम्परा की एक कड़ी है।

5.3.3. नवगीत के स्वरूप

'नवगीत' के स्वरूप को लेकर पर्याप्त चर्चा हुई है। डॉ॰ शंभुनाथ सिंह, गिरिजा कुमार माथुर, राजेन्द्र प्रसाद सिंह, त्रिलोचन शास्त्री, डॉ॰ रामदरश मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र, बालस्वरूप राही, रवीन्द्र भ्रमर तथा रमेश कुंतल मेघ ने समय-समय पर विविध पत्र-पत्रिकाओं में इसके स्वरूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है । राजेन्द्र प्रसाद सिंह ने नवगीत के पाँच तत्त्वों का उल्लेख किया है – जीवनदर्शन, आत्मनिष्ठा, व्यक्तित्व-बोध, प्रीति-तत्त्व और परिसंचय।

डॉ॰ शंभुनाथ सिंह ने नवगीत की परिभाषा देते हुए कहा है – "नवगीत गीत-रचना की परम्परा और भावबोध को छोड़कर नवीन भाव-सारणियों को अभिव्यक्त करने वाले 'गीत' जब भी और जिस युग में भी लिखे जाएँगे, 'नवगीत' कहलाएँगे।" (डॉ॰ शम्भुनाथ, नवगीत दशक-2 की भूमिका)

बालस्वरूप राही ने "आधुनिकता को नवगीत की अनिवार्य शर्त माना है।" (राजेन्द्र गौतम, हिन्दी नवगीत : उद्भव और विकास)

रवीन्द्र भ्रमर ने "नवगीत में दर्दिकता तथा अनुभूति की प्रधानता आवश्यक मानी है।"

डॉ॰ रामदरश मिश्र ने नवगीत की निम्नलिखित विशेषताएँ बतायी हैं – अनुभूति की सच्चाई, नवीन सौन्दर्य-बोध, आकार की लघुता और नवीन बिम्बों, प्रतीकों तथा उपमानों की योजना।

परन्तु प्रश्न यह है कि ये विशेषताएँ तो सामान्य रूप से सभी गीतों की होती है तो इन्हें ही 'नवगीत' नाम क्यों दिया जाए ? यहाँ उत्तर यह हो सकता है कि नवगीत को गीत विधा से पृथक् करने वाला मूल तत्त्व 'लोकोन्मुखता' का भाव ही है। नवगीत की रचनाओं का एक विहंगम पर्यावलोचन यह सिद्ध करता है कि 'नवगीत' में 'लोकोन्मुखता' का भाव अत्यन्त प्रबल है। इसी विशेषता ने उसके स्वरूप को सजाया-सँवारा है और उसे एक नयी विधा के रूप में प्रतिष्ठित किया है।

डॉ॰ विश्वनाथ प्रसाद ने 'नवगीत' की निम्नलिखित विशेषताओं का उल्लेख किया है –

(i) संवेदन के अनुरूप लय को संवृत्त और विवृत्त करने का प्रयास।
(ii) मात्राओं से अधिक लय पर बल।
(iii) संक्रमित मानसिकता के अनुरूप वस्तुबोध और जीवन के यथार्थबोध को व्यक्त करने वाली पैनी शब्दावली।
(iv) इन सबके अन्तराल से छानकर प्रवाहित होती हुई मध्यमवर्ग की छटपटाहट भरी ज़िंदगी को नवगीत में ढालने की चेष्टा।

शुरुआत में लोगों की धारणा थी कि 'नवगीत' खुरदरी अनुभूतियों को व्यक्त करने में असमर्थ है किन्तु धर्मवीर भारती के नवगीत संग्रह 'सात गीत वर्ष' ने उनकी इस धारणा को निर्मूल सिद्ध कर दिया। ओम प्रभाकर, रमेश रंजक और अनूप अशेष जैसे नवगीतकारों ने लोक जीवन की कोमलता और संवेदनाओं के अतिरिक्त खुरदरे यथार्थ को भी वाणी दी। 'नवगीत' की पहचान यही है कि उसका रचयिता तनाव, टूटन, कुण्ठा को व्यक्त करते हुए भी राग की ऊष्मा से अपना नाता जोड़े रखता है। निराशा और व्यर्थता के क्षणों में भी अंचल की माटी की सोंधी-सोंधी महक से वह आशा के नवसंचार का एहसास कराता रहता है ताकि पराजय और हताशा की स्थिति में भी मानव जिजीविषा से परिपूर्ण रहे।

नवगीत की कलापरक विशेषताओं को इस प्रकार रेखांकित किया जा सकता है –

(i) टटकी भाषा का प्रयोग।
(ii) आंचलिक भाषा की मिठास का प्रयोग।
(iii) यथार्थ की खुरदरी भाषा को गेयता के अनुरूप ढालने की चेष्टा।
(iv) नूतन शब्दावली एवं नवीन छन्दों का प्रयोग।
(v) प्रकृति से गृहीत अछूते बिम्बों का प्रयोग।

समग्रतः कहा जा सकता है कि 'नवगीत' हिन्दी साहित्य की वह विधा है जिसका सम्बन्ध लोकजीवन से है और जिसमें नवीन छन्दों एवं बिम्बों के माध्यम से आंचलिकता के साथ टटकी भाषा का प्रयोग किया गया है।

5.3.4. हिन्दी नवगीत की परम्परा

भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य की परम्परा प्रारम्भ से प्रचलित है। मानव में आरम्भ से ही गीत रचने और गुनगुनाने की प्रवृत्ति रही है। 'गायन' और 'नर्तन' दोनों ही कलाओं में मानवीय मन सदा से रम रहा है। कहना न होगा कि नर्तन-गायन सृष्टि की उत्पत्ति के साथ ही अस्तित्व में आया। हमारा वैदिक साहित्य गीत का अमूल्य भण्डार है। 'सामवेद' की ऋचाएँ गीतों का श्रेष्ठतम उदाहरण हैं।

'सामवेद' के पश्चात् लौकिक संस्कृत में जयदेव पहले एवं लोकप्रिय गीतकार हुए जिनका 'गीतगोविन्द' गीतिकाव्य का उत्कृष्ट नमूना है। 'गीतगोविन्द' एक आदर्श गीतिकाव्य है जिसमें जयदेव ने गीतों के माध्यम से ईश्वर (कृष्ण) की स्तुति की है, यहाँ कवि ने अलौकिक प्रेम की व्यंजना करने के लिए लौकिक प्रेम का सहारा लिया है। हालाँकि जयदेव से पूर्व एवं वैदिककाल के पश्चात् बौद्ध साहित्य की 'थेरी गाथाओं', कालिदास व भवभूति की कृतियों एवं आचार्य क्षेमेन्द्र के 'दशावतारचरित' में कुछ गेय पदों की रचनाएँ मिलती हैं पर वे परिमाण में अल्प एवं रूप में भिन्न हैं इसलिए गीति-परम्परा का प्रारम्भ जयदेव से ही माना जाना उचित है। जयदेव के गीतों का वर्ण्य-विषय कृष्ण एवं राधा की शृंगारपरक लीलाएँ हैं। संस्कृत में जयदेव के उपरान्त यह परम्परा लुप्तप्राय हो गई। जयदेव के समकालीन सिद्ध कविओं द्वारा रचित 'चर्यापद' अपने समय की जनभाषा में लिखित गीत ही थे। प्रथम सिद्ध कवि सरहपा (8वीं शती) की रचनाएँ गेय पदों में मिलती हैं। हिन्दी साहित्य का आदिकाल गीति-काव्य के विकास हेतु उपयुक्त न था तथापि 'सिद्ध-साहित्य' में अवश्य ही कुछ सुन्दर गीत दीख पड़ते हैं। इसके साथ ही 'बीसलदेव रासो' व 'परमाल रासो' (आल्हाखण्ड) आदि कृतियाँ भी गीतिकाव्य के अन्तर्गत परिगणित की जाती हैं। सच तो यह है कि गीतिकाव्य का समुन्नत विकास हिन्दी साहित्य के भक्तिकाल में ही सम्भव हो सका। जयदेव के 'गीतगोविन्द' से प्रभावित होकर परवर्ती कवियों विद्यापति और चण्डीदास ने गीत रचकर राधाकृष्ण की प्रेमलीलाओं का मधुर वर्णन किया। हिन्दी साहित्य में कृष्णकाव्य के जन्मदाता विद्यापति ही माने जाते हैं। उनकी 'पदावली' में राधाकृष्ण के सौन्दर्य तथा प्रेम एवं संयोग और वियोग के हृदयग्राही चित्र अंकित किये गए हैं। विद्यापति-कृत 'पदावली' गीतिकाव्य का अनुपम उदाहरण है।

ऐसा नहीं है कि गीतिकाव्य की परम्परा केवल भक्तिपरक, प्रेमपरक और शृंगारपरक रचनाओं में ही विकसित हुई प्रत्युत यह गीतिकाव्य पद्धत्ति वीरगाथाकाल में वीरगीतों के रूप में भी उतनी ही तीव्रता के साथ प्रयुक्त हुई। इन वीरगीतों के माध्यम से कवियों ने अपने आश्रयदाताओं के शौर्य, पराक्रम, ऐश्वर्य तथा प्रेमगाथाओं का वर्णन किया है। भक्तिकाल में यह पद्धत्ति निर्बाध रूप में व्यवहृत हुई जहाँ निर्गुण एवं सगुण भक्तकवियों ने इस पद्धत्ति में अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की। गीतपरक रचना करने वाले निर्गुण सन्त कवियों में कबीर, रैदास, नामदेव, नानक, दादू तथा सगुण भक्त कवियों में तुलसीदास, सूरदास, रसखान, मीरा आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

गीतिकाव्य की इस धारा ने रीतिकाल को अपनी मधुरिमा से सिंचित किया। बिहारी, पद्माकर, देव, घनानन्द आदि की काव्य-माधुरी गीति-काव्यधारा से सराबोर दिखाई देती है। विशेषकर रससिद्ध कवि बिहारी के दोहे कोमलता से युक्त गेय शैली पर आधारित हैं। गीति-काव्य की यही परम्परा आधुनिककाल में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, जयशंकर प्रसाद, महादेवी वर्मा, सुमित्रानन्दन 'पन्त', सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', हरिवंश राय बच्चन आदि कवियों के काव्य में विकसित हुई है।

हिन्दी साहित्य का पहला गीत कौन-सा है ? इसके रचनाकार कौन थे ? इस प्रश्न का सीधा-सीधा उत्तर नहीं दिया जा सकता। वस्तुतः गीत-परम्परा का स्रोत लोकजीवन में निहित है। लोकजीवन में प्रचलित लोकगीतों से प्रभावित होकर ही गीतिकारों ने गीत-रचना प्रारम्भ की। पालि, प्राकृत, अपभ्रंश आदि सभी भाषाओं में लोकगीत रचे गए हैं।

हिन्दी 'नवगीत' का उद्‌भव देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् ही हुआ। निराला के परवर्ती गीतों में 'नवगीत' के बीज विद्यमान हैं। कुछ आलोचकों ने निराला की रचना 'नवगीत नव लय, ताल-छन्द नव' को तो कुछ ने 'बाँधो न नाव इस ठाँव बन्धु' को नवगीत के बीजरूप में देखा है। गीत की टेक्नीक की दृष्टि से तथा नये-नये छन्दों का प्रयोग करने वाले गीतकारों में निराला का प्रमुख स्थान है। माखनलाल चतुर्वेदी के काव्य-संग्रह 'बीजुरी काजर आँज रही' और 'वेणु लो गूँजे धरा' के कई गीतों में कुछ विद्वानों ने 'नवगीत' की छाया ढूँढने का प्रयत्न किया है। छायावादोत्तर काल के प्रसिद्ध गीतकार हरिवंश राय बच्चन ने भी लोक-जीवन से सम्पृक्त अनेक गीतों की रचना की। गीतों के विकास में बच्चनजी का विशिष्ट योगदान है।

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय जनमानस एक नवीन चेतना दृष्टि से सम्पन्न हुआ। फलस्वरूप सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों के साथ ही सांस्कृतिक क्षेत्र में भी नवीनता का आभास होने लगा। चित्रकला, स्थापत्य कला के साथ-साथ संगीत, गायन तथा नृत्य कला में नूतन प्रवृत्तियों का समावेश हुआ। काव्य में सर्वप्रथम निराला ने गीत के छन्द, राग और लय में नये प्रयोग किए। निराला की यह गीतात्मक चेतना वस्तु-शिल्प की दृष्टि से पूर्ववर्ती परम्परा से बहुत भिन्न थी।

विभिन्न कवि अपने-अपने क्षेत्रों में नये-नये प्रयोग कर रहे थे। नये सोच-विचार के साथ आधुनिकता की लहर में गोता लगा रहे थे। उसी समय ठाकुर प्रसाद सिंह ने संथाल परगना के एकबहुत बड़े उपेक्षित वर्ग की पीड़ा, करुणा, अभाव, लाचारी, निराशा एवं दुःख-दर्द का अनुभव समेटकर 'वंशी और बादल' काव्य-संग्रह प्रकाशित किया जिसकी ताज़गी, कथ्य और शिल्प की नवीनता ने हिन्दी काव्य-परम्परा को एक नूतन विधा से परिचित कराया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि निराला प्रवर्तित नवगीत के बीजों को ठाकुर प्रसाद सिंह ने 'वंशी और बादल' रूपी हवा-पानी प्रदान कर अंकुरित किया तथा डॉ॰ शम्भुनाथ रूपी किसान ने अपनी प्रतिभा रूपी खाद से उसे विकसित-पुष्पित एवं पल्लवित किया। इस नवीन गीत-विधा को विद्वानों ने अलग-अलग पहचान दी। रामदरश मिश्र और सियारामशरण प्रसाद ने गीत के इस नये स्वर को 'आज का गीत' कहा है। बालस्वरूप राही और शलभ सिंह ने इसे 'नया गीत' नाम दिया जबकि गंगाप्रसाद विमल और ओंकार ठाकुर ने इसे 'आधुनिक

गीत' की संज्ञा से विभूषित किया। इस नवीन गीतात्मक चेतना को लिखित रूप में सर्वप्रथम राजेन्द्र प्रसाद सिंह द्वारा 'नवगीत' शीर्षक से अभिहित किया गया जो सर्वमान्य हुआ।

नवगीत के नामकरण के प्रश्न पर डॉ॰ रवीन्द्र भ्रमर ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि – "नवगीत जैसा यह नाम 'नयी कविता' के वजन पर आया है लेकिन कुछ समय के लिए इसकी सख्त ज़रूरत भी है जिससे व्यतीत जीवी भावबोध और बासी शैली-शिल्प से लिखे जाने वाले गीतों की लम्बी कतार से अत्याधुनिक गीतों को अलग-थलग किया जा सके।" डॉ॰ रामदरश मिश्र ने 'नवगीत' शीर्षक में नवीन संभावनाओं को तलाशने का प्रयत्न किया है। वे कहते हैं कि – "जिसे हम नया गीत कहते हैं, वह परम्परागत गीतों से कई अर्थों में भिन्न है। वह गीत की चुकती हुई संभावनाओं को नये ढंग से स्थापित करता है।"

यहाँ सहज ही एक प्रश्न उठता है कि 'नवगीत' में 'नव' विशेषण क्यों लगाया गया ? इसमें 'नया' क्या है ? विचारपूर्वक इस प्रश्न का समाधान इस प्रकार किया जा सकता है कि यह 'नव' विशेषण जहाँ एक ओर उसे परम्परागत गीतों से अलग करता है, वहीं दूसरी ओर आधुनिक युग-बोध एवं यथार्थ को भी अभिव्यक्त करने में पूर्णतया समर्थ है। इस सम्बन्ध में बालस्वरूप रही का कथन समीचीन प्रतीत होता है – "महत्त्वपूर्ण यह नहीं है कि नया क्या है, महत्त्वपूर्ण यह है कि हमारे लिए प्रासंगिक या सार्थक क्या है ? नये के नाम पर अजूबा खड़ा कर देना, कलात्मकता की कोई विशेष पहचान नहीं है। जो चीज आज के सन्दर्भ में महत्त्व रखती है वह चाहे पुरानी हो या नयी हमेशा महत्त्वपूर्ण रहेगी।" 'नवगीत' के प्रवर्तक डॉ॰ शम्भुनाथ सिंह ने 'नवगीत दशक- 2' की भूमिका में विचार करते हुए लिखा है कि – "नवगीत का 'नव' विशेषण 'गीत' के सामयिक सन्दर्भ से जुड़े होने का बोधक है।"

डॉ॰ रघुवंश ने तर्कसम्म्मत ढ़ंग से इस नयी बुनावट के बारे में महत्त्वपूर्ण बात कही है – "मानवीय जीवन की भूमिका और परिवेश के बदलने के साथ उनके अनुभव, सन्दर्भ और विधान भिन्न हो जाते हैं तथा रचनाकार जब उनको रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है तो उसे नया रचना-विधान खोज प्रदान करता है।" वस्तुतः मानव का जीवन व परिवेश दिन-प्रतिदिन बदलता रहता है, साथ ही साथ उसकी आवश्यकताएँ भी बदलती रहती हैं। परम्परागत गीत जब पूरी तरह से युग-यथार्थ को अभिव्यक्ति देने में असफल हुआ तभी 'नवगीत' अस्तित्व में आया। अतः कहा जा सकता है कि 'नवाता' से सम्बद्ध होने के करण ही परम्परागत गीत 'नवगीत' के साँचे में ढल गया।

5.3.5. नवगीत : उद्भव और विकास

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। उद्भव के पश्चात् विकास सृष्टि का नियम है। संसार में जितने भी जीव-जन्तु जन्म लेते हैं समय की गति के साथ सभी विकसित होते हैं। माता के गर्भ से जन्मा शिशु निरन्तर विकास कर वयस्क हो जाता है। धरती की कोख में पड़ा बीज पहले अंकुरित होता है और शनैः शनैः विकसित हो विशाल वृक्ष बन जाता है। वैज्ञानिक औटो स्मिथ की परिकल्पना के अनुसार ब्रह्माण्ड में फैले धूल और गैस के सैकड़ों

सूक्ष्म कण अपनी कक्षाओं में रहकर चक्रण एवं चक्रमण के कारण संघनित हो विशाल ग्रहों-उपग्रहों में तब्दील हो गए और सूर्य का परिभ्रमण करने लगे। कहने का तात्पर्य है कि समय एवं परिस्थितियों के साथ प्रत्येक वस्तु और पदार्थ तत्त्व में परिवर्तन होता है। मानवीय सभ्यता और संस्कृति में भी इसी प्रकार निरन्तर विकास हुआ है और लगातार परिवर्तन होते गए हैं। मनुष्य एक विवेकशील प्राणी है अतः अपनी सभ्यता और संस्कृति के परिवर्तन को उसने अपनी सुविधानुसार विकसित किया है। स्वभावतः मनुष्य सुविधाभोगी है अतः बदलते समय के साथ उसने अपनी जीवन-शैली को लगातार सरलीकृत करने का प्रयत्न किया है। पहले जिन दूरियों को वह वर्षों एवं महीनों में तय कर पाता था उन्हें वह आज घण्टों में तय कर रहा है। नृत्य, गायन और संगीत मानवीय अन्तःकरण द्वारा स्वतः स्फूर्त कलाएँ हैं। समयानुकूल इन कलाओं में भी उत्तरोत्तर विकास होता गया है। कभी अपने विचारों को सम्प्रेषित करने के लिए तो कभी स्वान्तःसुखाय के लिए मानव मन गीत-संगीत की रचना करने लगा। मूलतः लोकहृदय से निःसृत गीत एक सुदीर्घकालीन विकास-यात्रा के पश्चात् गीतिकाव्य के रूप में हमारे सामने आते हैं।

लोकगीतों से गीतिकाव्य व गीत और गीत से 'नवगीत' का विकास हुआ। विद्वानों ने निराला के काव्य-संग्रह 'गीतिका' में संकलित 'वर दे वीणावादिनी वर दे !' गीत की अधोलिखित पंक्तियों को नवगीत बीज-रूप में देखा है –

नवगीत, नवलय, ताल-छन्द नव
नवलकन्थ, नव जलद-मन्द्र रव
नव नभ के नव विहग-वृन्द को
नव पर, नव स्वर दे !

निराला नये छन्द, नयी लय, नयी गति, नये कण्ठ के स्वागतोत्सुक हैं। यहाँ तक कि नये आकाश में नये पंछियों के नवगान की अभीप्सा करते हैं। वे पारम्परिक बन्धनों से मुक्ति चाहते हैं इसीलिए पुराने बन्धनों को तोड़ डालने के आग्रही हैं। अपने काव्य और जीवन में भी नवीनता की कामना करते हैं।

'नवगीत' के नामकरण के सम्बन्ध में एक प्रसंग उल्लेखनीय है। ठाकुर प्रसाद सिंह ने अपने लेख 'हिन्दी गीत कविता' में काशी में आयोजित गीत केन्द्रित 'नौका गोष्ठी' का जिक्र करते हुए लिखा है कि – "सन् 1951-52 में काशी में हुए साहित्यिक संघ के अधिवेशन में हिन्दी के नये गीतों पर चर्चा हुई थी। चाँदनी रात में गंगा की धारा की धारा पर हुई नौका गोष्ठी में उस दिन धर्मवीर भारती, नरेश मेहता, जगदीश गुप्त, रामदरश मिश्र, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, शम्भुनाथ सिंह, नामवर सिंह तथा अन्य कितने ही नये कवि उपस्थित थे लगभग सभी कवियों ने अपने सुकण्ठ से नये गीत गाए थे।" उस 'नौका गोष्ठी' के प्रत्यक्ष सहभागी रहे डॉ॰ शंभुनाथ सिंह सन् 1956 में इलाहाबाद में परिमल द्वारा आयोजित साहित्यकार सम्मेलन में शामिल हुए और आगे की घटना स्वयं लिखते हुए कहते हैं – "उस अवसर पर जो काव्य-गोष्ठी आयोजित हुई थी उसमें मैंने 'पुरवैया धीरे बहो' शीर्षक गीत गाया था। गीत सुनाने से पूर्व मैंने कहा था कि अन्य साथियों ने नयी कविताएँ सुनाई हैं; मैं एक नवगीत सुनाने जा रहा हूँ। इस तरह बिना किसी विचार-विमर्श, प्रस्ताव अथवा घोषणा के नयी कविता के मंच पर ही पहले-पहल 'नवगीत'

शब्द का प्रयोग सहज रूप से प्रयुक्त हो गया ।" सुधी समाज में इस नयी विधा का स्वागत हुआ और इसका नवगीत नाम भी तभी से निर्विरोध सर्वमान्य हो गया । विगत छह दशक में नवगीत ने विकास के विभिन्न सोपानों को पार कर अपने आधुनिक स्वरूप को प्राप्त किया है ।

वैसे तो आधुनिक युग के प्रारम्भ के साथ ही पारम्परिक गीतिकाव्य का नवीनीकरण होने लगा था । भारतेन्दु हरिश्चन्द्र एवं उनके मण्डल के कवियों यथा – उपाध्याय बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन, प्रतापनारायण मिश्र आदि ने पारम्परिक गीतिकाव्य को छोड़कर लोकगीतों की तर्ज पर, होलीगीत, कजरी, बिरहा आदि की रचना की। इसी क्रम में श्रीधर पाठक आदि ने लोकगीतों के आधार पर देश-प्रेम एवं प्रकृति-चित्रण से सम्बन्धित गीत लिखे। परन्तु अधिकतर विद्वानों का मानना है कि 'नवगीत' के बीज-सूत्र तो छायावाद और उत्तर छायावाद से ही प्राप्त होते हैं। खासकर निराला के 'बान कूटता है', 'बहुत दिन बाद खुला आसमान', 'सहज चाल चलो उधर', 'स्नेह निर्झर बह गया है', 'बाँधो न नाव इस ठाँव, बन्धु' आदि गीत 'नवगीत' के बीज गीतों में परिगणित किए जाते हैं। सुमित्रानन्दन पन्त-कृत 'ग्राम्या' नामक काव्य-संकलन में तथा चतुर्वेदीजी की कुछ कविताओं में भी 'नवगीत' की झलक दिखाई देती है। उनके 'आज बन्धु चार पाँव ही चलो' और 'समय के समर्थ अश्वमान लड़े' आदि गीत उस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं । व्यक्तिवादी स्वच्छन्दतावादी कवियों में हरिवंश राय बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, रामविलास शर्मा, केदारनाथ अग्रवाल, कुँवर चन्द्रप्रकाश आदि ने भी आंचलिकता से परिपूर्ण गीत लिखे। कहना गलत नहीं होगा कि इन गीतों में 'नवगीत' का प्रारम्भिक रूप विद्यमान है । प्रयोगवादी कवियों में से रामविलास शर्मा और गिरिजाकुमार माथुर के कुछ गीत 'नवगीत' जैसे लगते हैं । आजादी के बाद 'नयी कविता' एवं 'नवगीत' का प्रादुर्भाव प्रायः साथ-साथ हुआ । नयी कविता के कवियों में खासकर, गिरिजाकुमार माथुर, केदारनाथ अग्रवाल, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती और अज्ञेय ने 'नवगीत' के विकास में अपना योगदान दिया। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से नवगीत की विकास-यात्रा को तीन चरणों में विभाजित किया जा सकता है – प्रथम चरण (1950 से 1960), द्वितीय चरण (1961 से 1970) तथा तृतीय चरण (1971 से अद्यतन) ।

5.3.5.1. प्रथम चरण : 1950 से 1960

प्रथम चरण में 'नवगीत' अपनी परम्पराओं से भिन्न नवीन रूप में प्रतिष्ठित हुआ । इस कालखण्ड में भी नवगीत दो रूपों में विभक्त दिखाई देता है। जिसमें प्रथम प्रयोगवादी कवियों द्वारा विकसित नवगीत तथा द्वितीय पारम्परिक गीत-धारा से विकसित नवगीत । प्रयोगवादी कवियों द्वारा विकसित नवगीतकारों में अज्ञेय, शंभुनाथ सिंह एवं त्रिलोचन शास्त्री ने गीतिकाव्य को नवीन दिशा में मोड़ने का प्रयत्न किया। प्रयोगवादी कवि अज्ञेय के कुछ ऐसे गीत उनके काव्य-संकलन 'इत्यलम्' और 'हरी घास पर क्षण भर' में संगृहीत हैं । अज्ञेय ने अन्य प्रयोगवादी कवियों के गीतों को नयी कविता का गीत मानकर ही उन्हें तारसप्तकों में स्थान दिया है। इन गीतों में कुछ गीत आंचलिकबोध से प्रभावित हैं जबकि कुछ प्रयोगधर्मी हैं। तारसप्तक नवगीतकारों में वे नवगीतकार आते हैं जिन्होंने पारम्परिक गीत-धारा को ही नयी दिशा में मोड़ने का प्रयास किया है । इन कवियों में डॉ॰ शम्भुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, शिवबहादुर सिंह भदौरिया एवं रामचन्द्र 'चन्द्रभूषण' प्रमुख हैं।

इन नवगीतकारों ने नवगीतों में अब तक अछूते आंचलिकता-बोध एवं आत्मानुभूति को नये बिम्बों, नये प्रतीकों एवं नये कथ्यों के माध्यम से उद्घाटित करने का प्रयत्न किया।

डॉ० शम्भुनाथ सिंह के काव्य-संग्रहों 'दिवालोक' और 'माध्यम मैं' के अन्तर्गत लोक-धुनों पर आधारित गीतों की पर्याप्त संख्या है। ठाकुर प्रसाद सिंह के काव्य-संकलन 'वंशी और बादल' के गीत भी इसी कालावधि में लिख गए थे। इस प्रकार नवगीत अपने प्रथम चरण में नयी भाषा, नये बिम्ब-विधान, नये प्रतीक और नये कथ्य की ताज़गी से परिपूर्ण हुआ।

5.3.5.2. द्वितीय चरण : 1961 से 1970

द्वितीय चरण के 'नवगीत' में आधुनिकता-बोध की अभिव्यक्ति व्यापकता में होने लगी। इस कालखण्ड में विरचित नवगीतों में आधुनिक जीवन की समस्याओं यथा – उत्पीड़न, निराशा, आकांक्षा, हताशा, पीड़ा, क्लेश, हर्ष-विषाद इत्यादि का चित्रण नवीन ढंग से अभिव्यक्त हुआ।

सत्तर के दशक में नयी कविता में बिखराव आने लगा था। इसके कई भेद हुए यथा – विद्रोही पीढ़ी, अ-कविता, बीट पीढ़ी, भूखी पीढ़ी की कविता, कबीर पीढ़ी की कविता, अति कविता, दिगम्बर कविता, युयुत्सावादी कविता, श्मशानी कविता, वाम कविता, सहज कविता, विचार कविता इत्यादि। इन समस्त खेमे के कवि प्रायः गीत-विधा के विरोधी थे और वे गीति-काव्य को कविता की मुख्य धारा से उखाड़ फेंकना चाहते थे। प्रायः ये सभी कवि अलग-अलग शहरों से भिन्न-भिन्न पत्रिकाएँ निकलते थे, जिसमें छोटी-बड़ी गद्यात्मक रचनाएँ प्रकशित करते थे परन्तु, सारे अवरोधों के बावजूद धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, ज्ञानोदय, वासंती, कल्पना आदि पत्र-पत्रिकाओं में 'नवगीत' भी प्रकाशित होते रहे।

द्वितीय चरण के नवगीतों में धर्मवीर भारती का 'फागुन की शाम', 'डोले का गीत', 'वेला महका', 'बोवाई का गीत', केदार सिंह की 'दुपहरियीं फागुन का गीत', 'पात नये आ गए', 'धानों का गीत और रात' आदि उल्लेखनीय हैं। सर्वेश्वरदयाल सक्सेना के 'सुहागिन के गीत', 'बंजारे का गीत', 'सावन का गीत', 'झूले का गीत', 'चरवाहों का युगल गान', 'आँधी पानी आया' आदि गीतों में लोकतत्त्व की प्रधानता है।

इसी कालखण्ड में अज्ञेय के 'इन्द्रधनुष रौंदे हुए ये', 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी' आदि काव्य-संग्रहों में गिरिजा कुमार माथुर के 'नाश और निर्माण', 'धूप की धान', 'शीलापंख चमकीले' आदि काव्य-संग्रहों में, धर्मवीर भारती के 'ठण्डा लोहा', 'सात गीत वर्ष' आदि काव्य-संग्रहों में, नरेश मेहता के 'वनपाखी सुनो' आदि काव्य-संग्रहों में, शम्भुनाथ सिंह के 'समय की शिला पर' आदि काव्य-संग्रहों में, जगदीश गुप्त के 'नाव के पाऊँ', 'हिमदंश' आदि काव्य-संग्रहों में, ठाकुर प्रसाद सिंह के 'वंशी और बादल' आदि काव्य-संग्रहों में, रामदरश मिश्र के 'बैरन बेनाम चिट्ठियाँ', 'पक गई है धूप' आदि काव्य-संग्रहों में, केदारनाथ सिंह के 'अभी बिलकुल अभी' आदि काव्य-संग्रहों में, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना के 'काठ की धन्तियों' आदि काव्य-संग्रहों में, रवीन्द्र भ्रमर के 'रवीन्द्र भ्रमर की गीत' आदि काव्य-संग्रहों में, वीरेन्द्र मिश्र के 'गीतम' आदि काव्य-संग्रहों में,

भवानी प्रसाद मिश्र के 'गीत-फरोश' आदि काव्य-संग्रहों में और राजेन्द्र प्रसाद सिंह की 'आओ खुली बयार' आदि काव्य-संग्रहों में नवगीत अपने उत्कर्ष को प्राप्त हुआ।

5.3.5.3. तृतीय चरण : 1971 से अद्यतन

'नवगीत' की विकास-यात्रा के तृतीय चरण के दौर में जहाँ 'नयी कविता' के कवि अपनी सांस्कृतिक भूमि को त्यागकर आधुनिकता में ही लीन हो गए वहीं नवगीतकारों ने भारतीय परम्परा की आधारभूमि पर ही नवगीत को आधुनिकता की ओर अग्रसर किया। 'नवगीत' के इस तेवर को न अपना सकने के कारण कुछ कवि 'जनवादी कविता' आदि खेमों की ओर मुड़ गए, तो शेष कवि अपनी पूरी ताकत के साथ 'नवगीत' को एक नया आयाम देने में जुट गए।

नवगीत विकास के तृतीय चरण में कई नवगीतकारों के काव्य-संकलन प्रकशित हुए जिसमें ओम प्रभाकर-कृत 'पुष्प चरित', उमाकान्त मालवीय-कृत 'सुबह रक्त पलाश की', डॉ० शंभुनाथ सिंह-कृत 'जहाँ दर्द नीला है', अनूप अशेष-कृत 'लौट आयेंगे सगुन पंछी', सुरेश श्रीवास्तव-कृत 'रितु वृन्दावन' एवं नीम-कृत 'पथराई आँखें' ही सही अर्थों में नवगीतों के संकलन हैं।

नवें दशक के पूर्वार्द्ध में प्रकाशित महेश्वर तिवारी-कृत 'हरशृंगार कोई तो हो', विनोद निगम-कृत 'जारी हैं लेकिन यात्राएँ', कृष्ण तिवारी-कृत 'सन्नाटे की झील', उमाकान्त मालवीय-कृत 'एक चावल नेह रिधा' इत्यादि काव्य-संकलन विशुद्ध नवगीत हैं।

अपने विकास-क्रम के तीसरा चरण में नवगीत ने चरमोत्कर्ष प्राप्त किया। इस कालखण्ड के नवगीतकारों में शिवबहादुर सिंह भदौरिया, देवेन्द्र शर्मा इन्द्र, सोम ठाकुर, देवेन्द्र कुमार, ओम प्रभाकर, भगवान स्वरूप, कुमार रवीन्द्र, राजेन्द्र गौतम, डॉ० कुँवर 'बेचैन, योगेन्द्र शर्मा, बुद्धिनाथ मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र, रमेश रंजक, कैलाश गौतम, रामनरेश पाठक, शलभ, देवेन्द्र आर्य और अवध बिहारी श्रीवास्तव इत्यादि का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

5.3.6. प्रमुख नवगीतकार

नवगीत परम्परा के प्रमुख नवगीतकार और उनकी नवगीत-संग्रहों के नाम इस प्रकार हैं –

(i)	धर्मवीर भारती	:	ठण्डा लोहा, सात गीत वर्ष
(ii)	शंभुनाथ सिंह	:	समय की शिला पर
(iii)	नरेश मेहता	:	वनपाखी सुनो
(iv)	जगदीश गुप्त	:	नाव के पाऊँ, हिमदेश
(v)	ठाकुर प्रसाद सिंह	:	वंशी और बादल
(vi)	रामदरश मिश्र	:	बैरंग बेनाम चिट्ठियाँ

(vii) रवीन्द्र भ्रमर : रवीन्द्र भ्रमर के गीत
(viii) राजेन्द्र प्रसाद सिंह : आओ खुली बयार, गीतांगिनी

इनके अतिरिक्त चन्द्रदेव सिंह द्वारा सम्पादित 'पंच जोड़ बांसुरीं' नवगीत संग्रह भी महत्त्वपूर्ण कृति है। ठाकुर प्रसाद सिंह का 'वंशी और बादल' नवगीत के स्वरूप और विशेषताओं पर व्यापक प्रकाश डालने वाला एक महत्त्वपूर्ण गीत-संग्रह है। इसमें लोकजीवन और लोकभाषा का सहज संस्पर्श विद्यमान है। साथ ही साथ गीतकार द्वारा दृश्य के रागात्मक भावों का सहज स्फुरण भी दर्शनीय है। इसमें गर्मी अंचल के लोकजीवन से संवेदनशील जीवन-सन्दर्भ एवं सौन्दर्यपरक बिम्ब चुने गए हैं और सामाजिक विषमता का भाव भी कहीं-कहीं उभरा है किन्तु प्रायः रागतत्त्व के आधिक्य के कारण दब-सा गया है।

वस्तुतः 'नवगीत' राग को यथार्थ से अनुबन्धित कर जीवन को नये सिरे से समायोजित करने की एक चेष्टा है। पहले-पहल यह प्रयास धर्मवीर भारती के 'सात गीत वर्ष' में दिखता है। उन्होंने युगीन संक्रान्ति को व्यक्त करने के लिए मध्यमवर्ग की पीड़ा को अपना वर्ण्य-विषय बनाया। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरान्त युवा पीढ़ी निरर्थकता बोध से कुण्ठित हो जिस तनाव से जूझ रही थी और अपने अस्तित्व के प्रति संशयग्रस्त थी उस एकाकीपन, संत्रास, पीड़ा, छटपटाहट, उच्चाटन, द्विविधाग्रस्त मानसिकता और किंकर्त्तव्यविमूढ़ स्थिति का 'सात गीत वर्ष' में सफल चित्रण हुआ है। भाव और भाषा दोनों ही दृष्टि से इसमें युग-संक्रान्ति की झलक विद्यमान है।

उपर्युक्त नवगीतकारों के साथ ही डॉ॰ शम्भुनाथ सिंह, ठाकुर प्रसाद सिंह, रामदरश मिश्र, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, रामचन्द्र चन्द्र भूषण, शिव बहादुर सिंह भदौरिया, गोपालदास सक्सेना 'नीरज', देवेन्द्र शर्मा इन्द्र, सोम ठाकुर, देवेन्द्र कुमार, ओम प्रभाकर, भगवान स्वरूप, कुमार रवीन्द्र, राजेन्द्र गौतम, डॉ॰ कुँवर 'बेचैन, योगेन्द्र शर्मा, बुद्धिनाथ मिश्र, वीरेन्द्र मिश्र, रमेश रंजक, कैलाश गौतम, रामनरेश पाठक, शलभ, देवेन्द्र आर्य और अवध बिहारी श्रीवास्तव नवगीत परम्परा के प्रमुख नवगीतकार हैं।

5.3.7. पाठ-सार

मानवीय भावनाओं को अभिव्यक्त करने के अनेक साधन है जिसमें गेयता प्रमुख है। विश्वभर के लोग अपने सुख-दुखों को गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करते हैं। सन्त-महात्मा अपने गीतों के माध्यम से जागरण का सन्देश दे रहे होते हैं तो वहीं घरेलू काम-काज करते वृद्धा माताएँ भी कल्याणकारी गीत गुनगुनाती रहती हैं। पर्व-त्योहार, उत्सव, विवाह, मृत्यु आदि के समय भी अवसरानुकूल गीत गाए जाते हैं। गीतों के माध्यम से राष्ट्रभक्ति और भ्रातृत्व की भावना को प्रेरित किया जाता है। प्रेमी हृदय की भावनाओं का सम्प्रेषण भी गीत के माध्यम से सुगम होता आया है। गीत-गायन की परम्परा आदिकाल से सतत विद्यमान है। यथार्थ, सटीक, टटके और देशीपन में गाये गए गीत हमारे अन्तर्मन ही नहीं हमारे जीवन को भी लयबद्ध करते हैं। मूलतः लोकहृदय से व्युत्पन्न गीत परम्परा आज 'नवगीत' के रूप में पल्लवित-पुष्पित हो रही है। यही कारण है कि बाल-वृद्ध, पुरुष-स्त्रियाँ, युवक-युवतियाँ, ग्रामीण-नगरीय, शिक्षित-अशिक्षित, व्यापारी-मजदूर, उद्योगपति-कृषक, आधुनिक्तावादी-परम्परावादी

सभी वर्गों के लोग अपने अनुराग और आनन्द की अभिव्यक्ति के लिए नवता से भरपूर 'नवगीत' की ओर आकर्षित हो खिंचे चले आते हैं।

5.3.8. बोध प्रश्न

1. नवगीत की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।
2. नवगीत का स्वरूप स्पष्ट कीजिए।
3. नवगीत परम्परा का सामान्य परिचय दीजिए।
4. नवगीत के उद्भव और विकास का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
5. प्रमुख नवगीतकारों और उनके द्वारा विरचित नवगीतों का उल्लेख कीजिए।

5.3.9. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. राजेन्द्र प्रसाद, गीतांगिनी
02. डॉ॰ शंभुनाथ सिंह, नवगीत दशक-2
03. डॉ॰ राजेन्द्र गौतम, हिन्दी नवगीत : उद्भव और विकास
04. गीत पत्रिका, आज का गीत
05. धर्मयुग, नया गीत (20 मार्च 1966)
06. रवीन्द्र भ्रमर, वातायन (अप्रैल 1965)
07. डॉ॰ रामदरश मिश्र, हिन्दी कविता : आधुनिक आयाम
08. बालस्वरूप राही, अन्तराल- 3
09. राग-विराग (निराला), सं. : रामविलास शर्मा
10. नवगीत अर्द्धशती, सं. : डॉ॰ शंभुनाथ सिंह

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/
4. http://www.dli.ernet.in/
5. http://www.archive.org

❖❖❖

खण्ड – 5 : समकालीन हिन्दी कविता

इकाई – 4 : ग़ज़ल का मिज़ाज, भाषिक वैशिष्ट्य, हिन्दी ग़ज़ल परम्परा, प्रमुख ग़ज़लकार

इकाई की रूपरेखा

5.4.00. उद्देश्य कथन
5.4.01. प्रस्तावना
5.4.02. ग़ज़ल का मिज़ाज
  5.4.02.1. ग़ज़ल : तात्पर्य एवं स्वरूप
5.4.03. भाषिक वैशिष्ट्य
  5.4.03.1. शब्दगत विशेषता
  5.4.03.2. मुहावरों-कहावतों का प्रयोग
  5.4.03.3. प्रतीक एवं बिम्ब
  5.4.03.4. अलंकार एवं छन्द
  5.4.03.5. संगीतात्मकता
5.4.04. हिन्दी ग़ज़ल परम्परा
5.4.05. प्रमुख ग़ज़लकार
  5.4.05.01. दुष्यन्त कुमार
  5.4.05.02. बलवीर सिंह 'रंग'
  5.4.05.03. चन्द्रसेन 'विराट'
  5.4.05.04. गोपालदास सक्सेना 'नीरज'
  5.4.05.05. रामवतार त्यागी
  5.4.05.06. बालस्वरूप राही
  5.4.05.07. डॉ॰ कुँअर बेचैन
  5.4.05.08. शेरजंग गर्ग
  5.4.05.09. ज़हीर कुरैशी
  5.4.05.10. अदम गोंडवी
  5.4.05.11. ज्ञान प्रकाश विवेक
  5.4.05.12. जावेद अख़्तर
  5.4.05.13. निदा फाजली
  5.4.05.14. मुनव्वर राना
  5.4.05.15. गुलज़ार
5.4.06. पाठ-सार
5.4.07. बोध प्रश्न
5.4.08. व्यवहार
5.4.09. कठिन शब्दावली
5.4.10. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची
5.4.11. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

5.4.00. उद्देश्य कथन

i. ग़ज़ल के स्वरूप को स्पष्ट करना।
ii. हिन्दी ग़ज़ल के आरम्भ एवं विकास-क्रम पर प्रकाश डालना।
iii. हिन्दी और उर्दू ग़ज़ल के बीच के अन्तर को स्पष्ट करना।
iv. हिन्दी के प्रमुख ग़ज़लकारों से परिचित कराना।
v. 'ग़ज़ल' को महत्त्वपूर्ण काव्य-विधा के रूप में परिचित कराना।

5.4.01. प्रस्तावना

समकालीन हिन्दी कविता अनेकविध काव्य-विधाओं से सम्पन्न है। दोहा-चौपाई लेखन, अभंग लेखन, लघु कविता, लम्बी कविता, हायकू, नवगीत आदि कई सारी काव्य-विधाओं में इस समय खूब लिखा जा रहा है। इसी समय एक ऐसी काव्य-विधा में भी भावाभिव्यक्ति की जा रही है जो वर्तमान समय में अत्यधिक लोकप्रिय है। यह काव्य-विधा ग़ज़ल है। निःसन्देह हिन्दी ग़ज़ल को उर्दू ग़ज़ल ने प्राणवायु प्रदान की है। उर्दू ग़ज़ल से हिन्दी ग़ज़ल ने बहुत कुछ पाया। हिन्दी ग़ज़ल का आरम्भ अधिकांश विद्वान् अमीर ख़ुसरो से मानते हैं किन्तु ग़ज़ल को ख़ुसरो से भी प्राचीन और भारतेन्दु के पश्चात् उदित हुई विधा मानने वाले आलोचक हैं। इस पर पर्याप्त विचार आवश्यक है।

हिन्दी ग़ज़ल के रूपाकार की चर्चा भी यहाँ समीचीन है। हिन्दी और उर्दू ग़ज़ल को अलगाने वाली सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता भाषा है। अतः हिन्दी ग़ज़ल के भाषिक वैशिष्ट्य की चर्चा करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है। शब्द-प्रयोग, छन्द-प्रयोग, मुहावरा-कहावत प्रयोग, बिम्ब, अलंकार, प्रतीक आदि प्रयोगों के कारण हिन्दी ग़ज़ल की अपनी कुछ भाषिक विशेषताएँ है जिन पर विचार किया जाएगा। हिन्दी ग़ज़ल परम्परा पर ख़ुसरो पूर्व और ख़ुसरो पश्चात्, अति प्राचीन और अति आधुनिक जैसी भिन्न विचारधाराओं के कारण पुनर्विचार आवश्यक है। दुष्यन्त से होती हुई अदम गोंडवी तक पहुँची हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के पड़ाव देखना ग़ज़ल को समझने की दृष्टि से आवश्यक है।

हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में महत्त्वपूर्ण योगदान देने वाले ग़ज़लकारों का परिचय पाना भी इस क्रम में आवश्यक है। इन प्रमुख ग़ज़लकारों में निःसन्देह ऐसे भी कुछ ग़ज़लकारों पर बात की जाएगी जो उर्दू और हिन्दी दोनों में समान रूप से सक्रिय हैं। कुल मिलाकर हिन्दी ग़ज़ल का यथासम्भव परिचय प्राप्त करने की दृष्टि से प्रस्तुत पाठ महत्त्वपूर्ण सिद्ध होगा।

5.4.02. ग़ज़ल का मिज़ाज

ग़ज़ल उर्दू का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य-रूप है। अपने आरम्भिक रूप में ग़ज़ल प्रेमाभिव्यक्ति के अत्यन्त सशक्त माध्यम के रूप में प्रचलित रही। इस पारम्परिक स्वरूप में प्रेम, विरह, समर्पण आदि ग़ज़ल के

मुख्य विषय रहे। ग़ज़ल मूलतः अरबी का शब्द है जिसका अर्थ ही 'प्रेमी-प्रेमिका की गुफ्तगू' बताया जाता है। आरम्भिक उर्दू ग़ज़ल इसी के अनुरूप शमा-परवाना, गुल औ बुलबुल की कहानियाँ बयाँ करती थी। इन ग़ज़लों में आशिक और माशूक़ की उपस्थिति के साथ-साथ एक अदद रक़ीब, हजारों ख़्वाहिशें और हसरतें भी शामिल हुआ करती थीं। कई विद्वान् ग़ज़ल का सम्बन्ध 'गजाला' से जोड़ते हैं जिसका अर्थ है – 'हिरन की आँखें या मृगनयनी'। इसी तरह तीर चुभने के बाद हिरनी की बेकसी के आलम में निकली कराह को ग़ज़ल के साथ जोड़ा गया। बात साफ है, उर्दू ग़ज़ल अपने मिज़ाज में हुस्न और इश्क के साथ ही दुःख-दर्द, कसक और आह लिये हुए है।

ग़ज़ल अपने आप में अनेक विरोधाभासों को समेटती हुई विधा है। वह अपने मिज़ाज में जितनी ठोस है, उतनी ही लचीली भी। मौलाना शिबली ग़ज़ल के स्वभाव को बड़े ही प्रतीकात्मक ढंग से व्यक्त करते हैं – "तस्वीर जितनी धुँधली होगी, उतनी ही दिलकश होगी।"

प्रस्तुत कथन ग़ज़ल की संकेत प्रधानता में निहित उसकी शक्ति का सशक्त प्रमाण है। ग़ज़ल का सौन्दर्य इसी में निहित है कि वह संकेत देकर बात को पाठक की अनुमान-शक्ति के हवाले कर दे। ग़ज़ल के प्रत्येक शेर में दो पंक्तियाँ होती हैं। दोनों ही पंक्तियाँ बहर, काफ़िया और रदीफ़ के अनुशासन में बद्ध होती हैं। इन्हीं दो पंक्तियों में पूरे कथ्य को समेटते हुए 'गागर में सागर' भरने का प्रयास किया जाता है। ग़ज़ल के प्रत्येक शेर का स्वतन्त्र अर्थ होता है और यह अर्थ जितना अस्पष्ट होगा, शेर उतना ही खूबसूरत माना जाता है। अर्थ की खोज अर्थात् शेर की तशरीह करना ग़ज़ल को समझने की यात्रा का सर्वाधिक सुखद अनुभव कहा जा सकता है। यह प्रक्रिया, पाठक को शेर के कथ्य तक पहुँचने के पश्चात्, उसे अद्भुत आनन्द का धनी बना देती है। शेर का अर्थ-सम्प्रेषण भी पाठक की ग्रहणशक्ति, वृत्ति एवं भावनाओं के अनुरूप बदलता है। प्रत्येक पाठक शेर को अपने अनुभवों और क्षमताओं के अनुसार ग्रहण करता है अतः हर पाठक का किया हुआ रस-ग्रहण भिन्न भी हो सकता है। डॉ॰ वजीर आगा ग़ज़ल की विशेषता को अलग ढंग से विश्लेषित करते हैं – " ... ग़ज़ल के शेर में बात संकेत या प्रतीक से आगे नहीं बढ़ती। उसमें कल्पना और विश्लेषण की उस क्रिया का अभाव है जो नज़्म में उभरती है। यह ग़ज़ल का दोष नहीं, बल्कि उसके स्वरूप का एक भाव विशेष है और उसी में ग़ज़ल का सारा सौन्दर्य छुपा है। ... चूँकि ग़ज़ल मूलतः एक लज्जालु काव्य-विधा है, इसलिए उसने अपनी अभिव्यक्ति के लिए सामान्य रूप से उपमा और अलंकार जैसे साधनों का प्रयोग किया है, जिनमें उसकी लज्जालुता समा सके।"

ग़ज़ल की संकेत प्रधानता, ग़ज़ल का लचीलापन (कि हर पाठक उसका स्वानुभावाधारित अर्थ ग्रहण करने के लिए स्वतन्त्र है) उसके सशक्त पक्ष हैं। ग़ज़ल का स्वतन्त्र शेरों से गुम्फित स्वरूप भी व्यापक चर्चा का विषय रहा है। फिराक़ गोरखपुरी ग़ज़ल को 'असम्बद्ध कविता' कहते हैं। इसी असम्बद्धता को ग़ज़ल का एक और दमदार पक्ष कहना चाहिए जैसे कि फिराक़ गोरखपुरी कहते हैं – "ग़ज़ल का हर शेर, अपनी दुनिया आप बनाता है। उसमें ऐसा जादू होता है कि जीवन की अनेक परिस्थितियाँ या अनेक प्रसंगों में, अनेक अवसरों पर, अनेक पारस्परिक सम्बन्धों और व्यवहारों पर वह लागू हो जाता है।"

प्रत्येक शेर के स्वतन्त्र अस्तित्व को समेटती हुई ग़ज़ल कई लोगों को अटपटी विधा लगती है किन्तु इस सन्दर्भ में यह याद रखना होगा कि ग़ज़ल में प्रत्येक शेर स्वतन्त्र भले ही हो, वह एक ही बहर में रहता और एक ही क़ाफिए-रदीफ़ में बद्ध होता है। यह कुल मिलाकर एक विशिष्ट समानधर्मा ध्वन्यात्मक वातावरण निर्माण करता है। इन सबसे बनी हुई ग़ज़ल विविधता से भरपूर एकाकार स्वरूप में उभरकर आती है। ग़ज़ल के स्वभाव के सशक्त पक्षों के साथ-साथ दुर्बल पक्ष की भी काफी चर्चा की गई है। इनमें से एक तथ्य की ओर तो स्वयं फिराक़ साहब संकेत देते हैं – "मैं यह भी गहराई से महसूस करता रहा हूँ के उर्दू शायरी (ग़ज़ल) में घरेलू जीवन की पवित्रता और संतोषजनक प्रयोग और अनुभूतियों की बड़ी कमी रही है..."

उर्दू ग़ज़ल की जिन सीमाओं का उल्लेख फिराक़ साहब ने किया है, वह सीमाएँ हिन्दी ग़ज़ल पर लागू नहीं हैं, यह हिन्दी ग़ज़ल के मिज़ाज का सुखद पक्ष है।

हिन्दी ग़ज़ल में उर्दू ग़ज़ल की भाँति प्रेम, विरह, समर्पण तो है ही, साथ ही घरेलू जीवन की पवित्रता, मध्यमवर्गीय जीवन के छोटे-बड़े, सुख-दुःख, रोजमर्राह के जीवन को जीते समय आने वाले अनुभव, रिश्ते-नाते, सगे-सम्बन्धी सभी का बेहद उम्दा चित्रण पाया जाता है –

मुझको यकीं है सच कहती थीं जो भी अम्मी कहती थीं
जब मेरे बचपन के दिन थे चाँद में परियाँ रहती थीं
एक ये घर जिस घर में मेरा साज़ो-सामाँ रहता है
एक वो घर जिस घर में मेरी बूढ़ी नानी रहती थीं।

कई बार हिन्दी ग़ज़ल रिश्तों की खूबसूरती बयाँ करती है –

इस तरह मेरे गुनाहों को वो धो देती है
माँ बहुत गुस्से में होती है तो रो देती है।

वर्तमान समय में सर्वव्याप्त हो चुकी महँगाई, शहरीकरण के परिणाम, महानगरीय बोध जैसी समस्याओं पर हिन्दी ग़ज़ल बेबाक टिप्पणी करती है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं –

अब मैं राशन की कतारों में नज़र आता हूँ
अपने खेतों से बिछड़ने की सजा पाता हूँ
इतनी महँगाई है के बाज़ार से कुछ लाता हूँ
अपने बच्चों में उसे बाँट के शरमाता हूँ

या फिर –

चीनी नहीं है घर में लो मेहमान आ गए
महँगाई की भट्टी पे शराफत उबाल दो

इसी वैविध्य ने हिन्दी ग़ज़ल के स्वरूप को अद्वितीय सौन्दर्य प्रदान किया है।

5.4.02.1. ग़ज़ल : तात्पर्य एवं स्वरूप

ग़ज़ल कुछ विशेषताएँ अपनी संरचना में तो कुछ विशेषताएँ अपने अन्तरंग में छुपाये हुए होती है। इन विशेषताओं के कारण भी ग़ज़ल विधा अन्यान्य विधाओं से विशिष्ट बनती है। लय, ताल, तुकान्तता, गीत न होते हुए भी भीतर सँजोयी हुई गीतात्मकता अर्थात् काफ़िया, रदीफ़, बहर आदि बातें ग़ज़ल का मिज़ाज बनाती हैं, साथ ही, ग़ज़ल में निहित प्रेमाभिव्यक्ति से लेकर सामाजिक-सांस्कृतिक आदि संवेदनाएँ भी ग़ज़ल के स्वरूप को गठित करती हैं।

ग़ज़ल के स्वरूप को गठित करने वाला संरचनात्मक पक्ष उसकी बनावट-बुनावट से उभरता है। ग़ज़ल, जैसा कि इससे पूर्व भी कहा गया है, शेरों से बनने वाली असम्बद्ध रचना है। इसका प्रत्येक शेर स्वतन्त्र अर्थ प्रदान करने की ताकत रखता है। प्रत्येक ग़ज़ल में कम से कम पाँच शेर होने चाहिए। ग़ज़ल में शेरों की संख्या विषम अर्थात् दो से न कटने वाली हो। यथा – पाँच, सात, नौ, ग्यारह आदि। ग़ज़लों में अधिकतम शेर कितने हों, इस विषय में कोई निर्धारित मत नहीं है। वैसे तो शेरों की संख्या, उनका विषम संख्या में होना आदि पारम्परिक बातों का भी आधुनिक ग़ज़लकारों द्वारा न केवल उल्लंघन बल्कि विरोध भी हो रहा है।

ग़ज़ल की प्रत्येक पंक्ति 'मिसरा' कहलाती है। दो मिसरे मिलाकर एक शेर बनता है। प्रत्येक मिसरा अपने आप में सम्पूर्ण भावाभिव्यक्ति करने में सक्षम होता है। ग़ज़ल में शेर का एक निश्चित बहर अर्थात् छन्द के साथ चलना ग़ज़ल की खूबसूरती की दृष्टि से आवश्यक माना जाता है अपनी तमाम संकेतप्रधानता के बावजूद शेर अबोधगम्य न हो। शेर की सम्प्रेषणीयता में उसकी संकेतात्मकता बाधक न बने। शेर केवल खूबसूरत शब्दों का गुच्छा मात्र न हो बल्कि अपनी तासीर, अपने प्रभाव में अत्यधिक सार्थक हो।

ग़ज़ल का पहला शेर अपनी दोनों पंक्तियों में काफ़िया और रदीफ़ को समेटे हुए होता है। ग़ज़ल के पहले शेर को 'मतलअ' कहा जाता है। 'मतलअ' का शाब्दिक अर्थ 'उदय' है। ग़ज़ल के अन्तिम शेर को 'मकतअ' कहा जाता है। इसी में ग़ज़लकार अपने नाम या उपनाम का प्रयोग करता है। गोपालदास नीरज 'मतलअ' को 'आरम्भिका' और 'मकतअ' को 'अन्तिका' कहते हैं। मतलअ और मकतअ के बीच के शेर ग़ज़ल का मध्यभाग कहलाते हैं।

ग़ज़ल के पहले शेर अर्थात् 'मतलअ' की दोनों पंक्तियों के अन्त में आने वाले शब्द या शब्द-समूह को 'रदीफ़' अर्थात् समान्त कहा जाता है। मतलअ के बाद के प्रत्येक शेर में दूसरी पंक्ति में रदीफ़ का प्रयोग होता है। मतलअ की दोनों मिसरों में आने वाले रदीफ़ के पहले का शब्द या स्वर 'काफ़िया' अर्थात् 'तुक़ान्त' कहलाता है। मतलअ के बाद प्रत्येक शेर के दूसरे मिसरे में अर्थात् पंक्ति में काफ़िया प्रयुक्त किया जाताहै। ग़ज़ल में रदीफ़ और काफिये का यथोचित निर्वाह होना चाहिए। किन्तु आधुनिक ग़ज़लकार ग़ज़ल में रदीफ़ और काफ़िये के निर्वाह का शत प्रतिशत पालन नहीं करते हैं। ग़ज़ल के मिज़ाज के साथ ऐसी छेड़खानी निरन्तर जारी है। इस बात को कभी नहीं भूलना चाहिए कि ग़ज़ल मूलतः अरबी-फारसी से उर्दू में आयी एक काव्य-विधा है जिसे हिन्दी सारस्वतों ने

हृदय से स्वीकारा है। ग़ज़ल की लोकप्रियता का एक महत्त्वपूर्ण कारण उसका मिज़ाज है। इसी मिज़ाज का विशुद्ध हिन्दीकरण करने का प्रयास ग़ज़ल के सौन्दर्य के लिए बाधक सिद्ध होगा।

'मतलअ' को 'आरम्भिका', 'मकतअ' को 'अन्तिका', 'मिसरा' को 'पंक्ति', 'रदीफ़' को 'समान्त', 'क़ाफ़िये' को 'तुकान्त', 'बहर' को 'छन्द', 'शेर' को 'द्वैतिका' या 'द्विपदिका', 'ग़ज़ल' को 'गीतिका' कहना ग़लत तो नहीं किन्तु इससे 'ग़ज़ल' के उर्दू लहजे में निहित असीम सौन्दर्य और आपाततः समग्र ग़ज़ल की प्रभावपूर्णता पर अत्यधिक विपरीत परिणाम होता है। अतः ग़ज़ल के संरचनागत मिज़ाज को आघात पहुँचाने से बचना अधिक श्रेयस्कर है।

उर्दू में 'ग़ज़ल' का अर्थ 'प्रेमिका और प्रेमी के बीच की गुफ्तगू' बताया जाता है। 'शेर' भी अरबी शब्द है जिसका अर्थ 'जनाना, जुल्फ या बाल' है। इन शब्द-अर्थों से उर्दू ग़ज़ल का मिज़ाज स्पष्ट होता है कि ग़ज़ल प्रेमाभिव्यक्ति, सौन्दर्य, प्रेम से उपजी कसक, दुःख-दर्द को बयान करती है। उर्दू ग़ज़ल के इस मिज़ाज के साथ भी हिन्दी ग़ज़लकारों ने छेड़खानी की और कुछ अत्यन्त सुखद परिणाम सामने आए। ग़ज़ल की संवेदनाएँ जहाँ प्रेम, विरह, सौन्दर्य और समर्पण तक सीमित थीं वहीं हिन्दी ग़ज़लकारों ने उसमें सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक आदि संवेदनाओं को व्यक्त करना आरम्भ किया। इससे ग़ज़ल का दायरा बढ़ा और हिन्दी ग़ज़ल उर्दू ग़ज़ल की सीमाओं को उल्लांघकर परिवार से समाज तक, उनकी समस्याओं से समाधानों तक बेबाक टिप्पणी करने लगी।

ग़ज़लकार भी आपाततः एक सामाजिक इकाई होता है। अतः हिन्दी में सामाजिक चिन्तन से युक्त ग़ज़लें बेझिझक लिखी जाने लगी हैं। सामान्य मनुष्य, उसके सुख-दुःख, मूल्य-क्षरण, महानगरीय जीवन-बोध, आतंकवाद, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही का सहज चित्रण इस समय ग़ज़ल में सामाजिकता भर रहा है –

जुबाँ है और, बयाँ और, उसका मतलब और
अजीब आज की दुनिया का व्याकरण देखा
लुटेरे, डाकू भी अपने पे नाज करने लगे
उन्होंने आज जो सन्तों का आचरण देखा

गोपालदास नीरज के यह शेर सामाजिक क्षरण को सुन्दरता से व्यक्त करते हैं। पारम्परिक उर्दू ग़ज़ल की प्रेमविरहाभिव्यक्ति हिन्दी में आते-आते बड़ी यथार्थवादी हो जाती है, जैसा कि जावेद अख़्तर कहते हैं –

लो देख लो ये इश्क है ये वस्ल है ये हिज्र
अब लौट चलें आओ बहुत काम पड़ा है।

राजनैतिक चित्रण भी हिन्दी ग़ज़ल के मिज़ाज में शामिल है। भारतीय राजनीति की तमाम विद्रूपताएँ, राजनेताओं की स्वार्थी और भ्रष्टाचारी वृत्ति, संसद और संसदीय तत्त्वों का अवमूल्यन, खद्दर और मलमल की साँठगाँठ आदि बातों का जीवन्त चित्रण वर्तमान हिन्दी ग़ज़ल करती है –

काजू भुने प्लेट में व्हिस्की गिलास में
उतरा है रामराज विधायक निवास में
पक्के समाजवादी हैं तस्कर हों या डकैत
इतना असर है ख़ादी के उजले लिबास में

अदम गोंडवी की इस ग़ज़ल ने न केवल नये भाषिक तेवर दर्ज किए हैं बल्कि भाव-पक्ष की दृष्टि से भी नवीन संभावनाएँ व्यक्त की हैं। ठीक इसी प्रकार अर्थ जैसे नितान्त शुष्क मुद्दे पर भी हिन्दी ग़ज़ल बेबाक टिप्पणी करती है।

भूख से मरता सामान्य आदमी, आर्थिक विषमता, पूँजीवाद का कसता पंजा आदि कई बातों पर हिन्दी ग़ज़ल टिप्पणी करती है –

लगी है होड़-सी देखो अमीरी और गरीबी में
ये पूँजीवाद के ढाँचे की बुनियादी खराबी है
तुम्हारी मेज चाँदी की तुम्हारे जाम सोने के
यहाँ जुम्मन के घर में आज भी फूटी रकाबी है।

दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें सामाजिक-सांस्कृतिक, राजनैतिक-आर्थिक संवेदनाओं को बेजोड़ तरीके से अभिव्यक्त करती हैं। मात्र इन्हीं संवेदनाओं को हिन्दी ग़ज़ल व्यक्त नहीं करती बल्कि इस समय जिन जीवन्त प्रश्नों से हम जूझ रहे हैं, उन बाज़ारवाद, पर्यावरण आदि को लेकर भी ग़ज़ल में समय-समय चेताया गया है। राजेश रेड्डी बाज़ारवाद को लेकर कहते हैं –

काफिले लेके हर इक सिम्त चले सौदागर
सारे संसार को बाज़ार बना कर छोड़ा
इश्तहारों में जो थीं गैर ज़रूरी चीजें
हमको उनका भी खरीदार बनाकर छोड़ा

संक्षेप में कहा जा सकता है कि संरचना और संवेदना दोनों ही दृष्टि से हिन्दी ग़ज़ल के मिज़ाज में कुछ ऐसी विशेषताएँ शामिल हैं जो हिन्दी ग़ज़ल को उर्दू ग़ज़ल से भिन्न, स्वतन्त्र रूपाकार के साथ स्थापित करती है।

5.4.03. भाषिक वैशिष्ट्य

हिन्दी ग़ज़ल ने वर्तमान समय में उर्दू ग़ज़ल से भिन्न अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बना लिया है। संवेदना के स्तर पर जहाँ उर्दू ग़ज़ल हुस्न-ओ-इश्क में कैद अभिव्यक्ति देती रही, वहीं हिन्दी ग़ज़ल अनेकानेक समसामयिक विषयों पर मार्मिक टिप्पणी करती है। वर्तमान समय में जीवन्त बहस का विषय सिद्ध हो चुके प्रत्येक सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक आदि मुद्दों पर हिन्दी ग़ज़ल ने सार्थक चर्चा छेड़ी है। कुछ तो अपने आधुनिक रूपाकार के कारण और कुछ वैविध्यपूर्ण संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने के कारण हिन्दी ग़ज़ल की

भाषा अपने आप में कई विशेषताएँ समेटे हुए है। हिन्दी ग़ज़ल का भाषिक वैशिष्ट्य स्वतन्त्र चिन्तन का विषय है किन्तु यहाँ संक्षेप में उस पर विचार करने का प्रयास किया जाएगा।

5.4.03.1. शब्दगत विशेषता

हिन्दी ग़ज़लों की भाषिक विशेषताओं की चर्चा करते समय सबसे पहला मुद्दा तो भाषा में प्रयुक्त शब्द-वैविध्य है। हिन्दी ग़ज़लों ने उर्दू ग़ज़लों से विरासत में काफी कुछ पाया है, इसमें कोई सन्देह नहीं। स्वाभाविक रूप से फारसी-उर्दू शब्दों का अत्यधिक प्रयोग हिन्दी ग़ज़लों में होता है। हिन्दी के ग़ज़लकार अपनी ग़ज़लों में फारसी-उर्दू शब्दों का प्रयोग करने का मोह त्याग नहीं पाए हैं। बल्कि ज्ञान प्रकाश विवेक जैसे कई ग़ज़लकार और ग़ज़ल समीक्षक मानते हैं कि उर्दू-फारसी शब्द ग़ज़ल का प्राणतत्त्व है अतः इन्हें हटाकर जिदवश खींचतान कर हिन्दी शब्दों का प्रयोग ग़ज़ल के सौन्दर्य के लिए हानिकारक सिद्ध होगा। इसी दृष्टिकोण के तहत हिन्दी ग़ज़लों में उर्दू-फारसी शब्दों का खूब प्रयोग हुआ। दुष्यन्त कुमार की ग़ज़लें इस दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं –

कहाँ तो तय था चिरागाँ हरेक घर के लिए,
कहाँ चिराग़ मयस्सर नहीं शहर के लिए

प्रस्तुत शेर में तय, चिराग, मयस्सर जैसे शब्दों पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है। ये शब्द अपना अर्थ सम्पूर्णता के साथ प्रकट करते हैं और हिन्दी ग़ज़ल में चार चाँद लगा देते हैं।

हिन्दी ग़ज़लों में हो रहे विशुद्ध हिन्दी शब्द प्रयोगों के कारण हिन्दी ग़ज़ल की भाषा भीड़ में स्वतन्त्र नज़र आती है। हिन्दी ग़ज़लें अब संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावली के साथ लिखी जा रही हैं। अर्थात् इस सन्दर्भ में दो स्वतन्त्र विचारधाराएँ देखी जा सकती हैं।

पहली विचारधारा के अनुसार उर्दू-फारसी का प्रयोग ग़ज़लों को उर्दू ग़ज़ल की छाया से बाहर न निकलने देगा अतः इसे वर्जित माना जाए तो दूसरी विचारधारा के अनुसार हिन्दी शब्दों के तत्सम प्रयोग के कारण हिन्दी ग़ज़लों में स्वाभाविकता के दर्शन तो होंगे किन्तु ग़ज़ल 'ग़ज़ल' न लगेगी। बहरहाल, विविध विचारधाराओं का परिपाक यही है कि हिन्दी ग़ज़ल मानक हिन्दी शब्दों के प्रयोग के साथ लिखी जाए। इसी का अनुपालन करते 'रंग', 'नीरज' आदि कई ग़ज़लकार विशुद्ध हिन्दी प्रयोग करते हुए ग़ज़लें लिख रहे हैं। निराला, दुष्यन्त की ओर से इस सन्दर्भ में किये गए प्रयास विशेष उल्लेखनीय हैं –

मन हमारा मग्न दु:ख की, दुर्धरा में हो गया
कुछ न था तब लग्न वह, विश्वंभरा में हो गया
विश्व को वैषयिकता से सीख देने के लिए
देह छोड़ी स्नेह से ज्योतिस्सरा में हो गया।

बलवीर सिंह 'रंग' की ग़ज़ल देखिए –

पधारी चाँदनी है, तुम कहाँ हो,
तुम्हारी यामिनी है तुम कहाँ हो,
अमृत के आचमन का अर्थ ही क्या,
तृषा वैरागिनी है तुम कहाँ हो

हिन्दी ग़ज़ल समय के साथ कदमताल करते हुए आधुनिक हो रही है अतः बिना किसी संकोच के साथ प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग हिन्दी ग़ज़ल में किया जा रहा है –

कल महोत्सव वोट गिराने का है शायद इसलिए
आज 'पर्वत' पूछने आया है 'कंकर' का पता

हिन्दी ग़ज़ल के भाषिक वैशिष्ट्यों में एक महत्त्वपूर्ण वैशिष्ट्य यह कि हिन्दी ग़ज़ल देशज-खाँटी शब्दों का प्रयोग करते हुए लिखी जा रही है। देशज शब्दों का प्रयोग भाषा को सहज-स्वाभविक बना देता है। वर्तमान हिन्दी ग़ज़ल में देशज शब्द-प्रयोगों के कारण एक स्वाभाविकता का समावेश हो चुका है। देशज शब्द माने देश की ठेठ गँवई माटी से निर्मित हुए शब्द। जनसामान्यों द्वारा ऐसे शब्दों का खुलकर प्रयोग किया जाता है। हिन्दी ग़ज़ल के जनसाधारण में लोकप्रिय होने का एक महत्त्वपूर्ण कारण उसमें प्रयुक्त देशज शब्द हैं। दुष्यन्त समेत कई ग़ज़लकारों ने अपनी ग़ज़लों में ऐसे प्रयोग किए हैं –

बायें से उड़ के दाईं दिशा को गरुड़ गया,
कैसा शकुन हुआ है कि बरगद उखड़ गया

जैसे शेर हों या –

अफवाह है या सच है ये कोई नहीं बोला,
मैंने भी सुना है अब जाएगा तेरा डोला

ओमप्रकाश यती की देशज ठाठ के साथ लिखी ग़ज़ल देखिए –

खेतों-खलिहानों की, फसलों की खुशबू
लाते हैं बाबूजी गाँवों की खुशबू
गठरी में तिलवा है, चिवड़ा है, गुड़ है,
लिपटी है अम्मा के हाथों की खुशबू
बाहर हैं, भइया की मीठी फटकारें,
घर में है भाभी की बातों की खुशबू,
मँगरू भी चाचा हैं, बुधिया भी चाची,
गाँव में ज़िन्दा है रिश्तों की खुशबू
खिचड़ी है, बहुरा है, पिंड़िया है, छठ है,
गाँवों में हरदम त्योहारों की खुशबू

5.4.03.2. मुहावरों-कहावतों का प्रयोग

हिन्दी ग़ज़लों की भाषा की विशेषताओं में से एक महत्त्वपूर्ण विशेषता उसका मुहावरेदार होना है। मुहावरों-कहावतों के प्रयोग के कारण हिन्दी ग़ज़ल बेहद सहज बन चुकी है। अरबी शब्द 'मुहावरा' का अर्थ है 'बातचीत'। हिन्दी ग़ज़लों में विशिष्ट अर्थ को प्रस्तुत करते वाक्यांश अर्थात् मुहावरे का बखूबी प्रयोग हो रहा है। सामान्य भाषा की तुलना में सांकेतिकता के साथ प्रयुक्त मुहावरे ग़ज़ल की भाषा में जीवन्तता भर देते हैं। मुहावरे के साथ-साथ कहावतों का सक्षम प्रयोग भी हिन्दी ग़ज़ल में पाया जा रहा है। कहावत अर्थात् लोकोक्ति अपने आप में एक सम्पूर्ण वाक्य होता है। इसका ग़ज़ल में प्रयोग मुहावरा-प्रयोग की तुलना में काफी कठिन है। बावजूद इसके हिन्दी ग़ज़ल की भाषा मुहावरों कहावतों से युक्त है एक बेहतरीन मुहावरा-प्रयोग देखिए –

हो व्यवस्था कुर्सियों की पान की दुकान पर
पान खाओ ठाठ से चूना लगाओ देश को

कहावत-प्रयोग कठिन होने के बावजूद धड़ल्ले से हो रहा है। ग़ज़ल के शेर में एक सम्पूर्ण वाक्य शामिल करना ग़ज़लकारों के लिए इसलिए भी सम्भव हो पा रहा है क्योंकि वर्तमान हिन्दी ग़ज़ल पारम्परिक उर्दू ग़ज़ल-सी नहीं बल्कि नित नये रूखे-सूखे पर महत्त्वपूर्ण विषयों को छूने का माद्दा रखती है –

दूध का दूध करे, पानी का पानी कर दे
न्यायधीशों में भला कौन है हँसों से बड़ा

5.4.03.3. प्रतीक एवं बिम्ब

वर्तमान हिन्दी ग़ज़लों में प्रतीक-प्रयोग अत्यधिक मात्रा में हुआ है। प्रतीक एक ऐसा शब्द होता है जो विशिष्ट अर्थ प्रदान करता है। हिन्दी के ग़ज़लकारों ने विविध प्रकार के प्रतीकों को प्रयुक्त किया है। पौराणिक प्रतीकों का प्रयोग करने में हिन्दी ग़ज़लकारों को विशेष महारथ हासिल है। राम, सीता, रावण, विभीषण, द्रौपदी, पाण्डव, एकलव्य, द्रोणाचार्य जैसे अनेकानेक रामायण-महाभारतकालीन चरित्रों को वे प्रतीक के रूप में प्रयुक्त करते हैं। हिन्दी ग़ज़लकारों ने पशुपंछी, प्राकृतिक उपादान आदि प्रतीकों का प्रयोग कर भाषागत विशेषताओं में वृद्धि की है। प्रतीकों की ही भाँति बिम्ब-प्रयोग भी हिन्दी ग़ज़ल का उत्कृष्ट भाषिक वैशिष्ट्य है। बिम्बों अर्थात् इमेजेस की सार्थकता उभरने में होती है। हिन्दी ग़ज़लकार इतने अद्वितीय बिम्ब प्रयुक्त करते हैं कि वे क्षणांश में मन में उभर आते हैं। गत्वर बिम्ब, नाद बिम्ब, स्पर्श बिम्ब, रस बिम्ब, गन्ध बिम्ब, दार्शनिक बिम्ब, प्राकृतिक बिम्ब, राजनैतिक बिम्ब जैसे बिम्बों के नये-पुराने प्रकारों का सार्थक प्रयोग हिन्दी ग़ज़ल में देखा जा सकता है। गन्धात्मक बिम्ब का सफल प्रयोग देखिए –

उसमें खुशबू है तो फिर सबको ही खुशबू देगा
फूल धरती पै खिले, चाहे खिले पानी में

5.4.03.4. अलंकार एवं छन्द

विभिन्न अलंकारों के प्रयोग ने हिन्दी ग़ज़ल की भाषा को खूब सजाया है। 'हो गई पीर पर्वत-सी पिघलनी चाहिए' में प्रयुक्त उपमा अलंकार हो या 'यहाँ दरख़्तों के साये में धूप लगती है' जैसा विरोधाभास अलंकार हो, ऐसे प्रयोगों ने काव्य की शोभा बढ़ाई है, इसमें कोई सन्देह नहीं।

हिन्दी ग़ज़लों में उर्दू के बहर के तर्ज पर दोहा, चौपाई आदि कई छन्दों का सफल प्रयोग देखा जा सकता है। चौपाई छन्द का एक सफल प्रयोग द्रष्टव्य है –

यह मेरी गुमनाम ज़िंदगी बिना बात बदनाम ज़िंदगी
सुबह ज़िंदगी, शाम ज़िंदगी गोया आठो याम ज़िंदगी

भारतीय शैली के छन्दों के साथ-साथ उर्दू के बहर का भारतीयकरण करके हिन्दी ग़ज़लों में उन्हें प्रयोग किया गया है। यथा – बहरे वाफ़िर (सुमन छन्द), बहरे मुनसरिह (सहज छन्द), बहरे मुतकारिब (मिलन छन्द), बहरे वसीत (विशाल छन्द), बहरे क़रीब (समीपा छन्द), बहरे खफ़ीफ़ (लघुता छन्द), बहरे जदीद (नूतन छन्द) आदि अनगिनत बहरों को छन्दों में रूपान्तरित कर प्रयुक्त किया गया है। उर्दू बहरों की विशेषताओं को हिन्दीकरण करते हुए प्रयुक्त करने की वजह से हिन्दी ग़ज़लें भारत की गंगा-जमनी संस्कृति की प्रतीक बन चुकी हैं।

5.4.03.5. संगीतात्मकता

हिन्दी ग़ज़लों की गेयता और संगीतात्मकता से युक्त भाषा उनका बड़ा ही महत्त्वपूर्ण भाषिक वैशिष्ट्य है। हिन्दी की ग़ज़लें सहज भाषा में लिखी ऐसी ग़ज़लें हैं जिनको संगीत की रागदारी में पिरोया जा सकता है और गाया भी जा सकता है। कई हिन्दी ग़ज़लें केवल गेयता और संगीतात्मकता के कारण सारस्वत परिधि को उल्लांघकर जनमानस में पहुँच चुकी हैं। "अब मैं राशन की कतारों में नज़र आता हूँ, अपने खेतों से बिछड़ने की सजा पाता हूँ" जैसी प्रेम-विरह से कोसों दूर नितान्त सामाजिक संवेदनाओं का प्रचार-प्रसार केवल हिन्दी ग़ज़ल के भाषिक वैशिष्ट्यों के कारण सम्भव हो पाया है।

ऐसी अनगिनत विशेषताओं ने हिन्दी ग़ज़ल की भाषा को जीवन्त और सहज बना दिया है किन्तु इसका तात्पर्य यह कतई नहीं कि हिन्दी ग़ज़लों की भाषा दोषों से पूर्णतः मुक्त है। हिन्दी ग़ज़ल पर अश्लीलता, छन्द उल्लंघन आदि प्रकार के आक्षेप लगाए जाते हैं किन्तु हिन्दी ग़ज़ल की भाषिक विशेषताओं के समक्ष यह आक्षेप काफी छुटपुट हैं। अतः स्वाभाविक रूप से हिन्दी ग़ज़ल के भाषिक वैशिष्ट्यों की बात करते समय उसके दुर्बल पक्ष की तुलना में उसके सक्षम पक्ष ही निर्विवाद रूप से याद रहते हैं।

5.4.04. हिन्दी ग़ज़ल परम्परा

हिन्दी ग़ज़ल परम्परा को लेकर काफी मतभेद देखे जा सकते हैं। अधिकांश विद्वान् हिन्दी ग़ज़ल परम्परा का आरम्भ खड़ीबोली के प्रथम कवि अमीर ख़ुसरो से मानते हैं। अमीर ख़ुसरो द्वारा रची गईं ग़ज़लें अपने कथ्य, शब्द-संयोजन, प्रभाव आदि सभी दृष्टि से अद्वितीय कही जा सकती हैं। एक उदाहरण देखिए –

जब यार देखा नैन भर दिल की गई चिन्ता उतर
ऐसा नहीं कोई अजब, राखे उसे समझाए कर
जब आँख से ओझल भया तड़पन लगा मेरा जिया
हक्का इलाही, क्या किया आँसू चले भर लाए हैं
तू तो हमारा यार है तुझ पर हमारा प्यार कर
तुझ दोस्ती बिसियार है इक शब मिलो तुम आये कर
जाना तलब तेरी करूँ दीगर तलब किसकी करूँ
तुमने जो मेरा मन लिया तुमने उठा ग़म को दिया
तेरी जो चिन्ता दिल धरूँ, इक दिन मिलो तुम आये कर
तुमने मुझे ऐसा किया जैसे पतंगा आग पर
ख़ुसरों कहें बातें ग़ज़ब दिल में न लावें कुछ अजब
कुदरत खुदा की है अजब, जब दिल दिया गुल लाय कर

हिन्दी में लिखी अमीर ख़ुसरो की ग़ज़ल के कुछ अश्आर पढ़कर यह कहने में कोई हर्ज नहीं मालूम होता कि हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के आद्य ग़ज़लकार अमीर ख़ुसरो हैं। लेकिन इस बात को लेकर विद्वानों में काफी मतभेद है। एक ओर हिन्दी ग़ज़ल परम्परा को ख़ुसरो से भी पहले के समय से जोड़ा जा रहा है तो दूसरी ओर, ठीक विपरीत मत व्यक्त करते हुए हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा को एकदम आधुनिककालीन बताया जा रहा है। दोनों पक्षों के अपने-अपने प्रमाण हैं। दोनों पक्ष इन प्रमाणों के आधार पर अपने मत को सही सिद्ध कर रहे हैं।

नित्यानन्द श्रीवास्तव हिन्दी ग़ज़ल परम्परा को ख़ुसरो से भी पहले की बताते हुए कहते हैं – "अमीर ख़ुसरो से लगभग दो सौ वर्ष पूर्व विद्यमान महाकवि जयदेव की एक अष्टपदी में इस काव्य-विधा की तकनीक और अन्तर्वस्तु के स्पष्ट संकेत मिलते हैं।" वे जिस अष्टपदी के आधार पर यह बात कहते हैं, उस अष्टपदी के कुछ अंश द्रष्टव्य हैं –

श्रितकमलाकुचमण्डल घृतकुण्डल ए।
कलितललित वनमाल जय जय देव हरे॥
दिनमणि मण्डल मण्डन भवखण्डन ए।
मुनिजनमानस हंस! जय जय देव हरे॥
कालिय विषधरगंजन जनरंजन ए।
यदु कुल नलिन दिनेश जय जय देव हरे॥

इस उदाहरण के पश्चात् श्री नित्यानन्द श्रीवास्तव कहते हैं – "इसी गीति-बन्ध में 'ग़ज़ल' के शिल्प की पहचान की जा सकती है। ... जयदेव की इस रचना में 'काफ़िया' का ठीक-ठीक प्रयोग और नौवीं पंक्ति को छोड़कर शेष अष्टपदी में 'हुस्न-ए-मतला' की उपस्थिति दर्शनीय है। यह तो तय है कि इस गीतिबन्ध को भारतीय परिवेश में 'ग़ज़ल' नहीं कहा गया, फिर भी उसकी उपस्थिति इस सम्भावना को पुष्ट करती है कि इसके समरूप काव्य-रूप भारतीय भाषाई परिवेश में आयातित और नये नहीं हैं।"

हिन्दी ग़ज़ल के कुछ विद्वान् आलोचक कबीर को हिन्दी का पहला ग़ज़लकार बताते हैं। उनकी एक ग़ज़ल देखिए –

हमन है इश्क मस्ताना हमन को होशियारी क्या
रहें आज़ाद या जग से, हमन दुनिया से यारी क्या
जो बिछड़े हैं पियारे से भटकते दर ब दर फिरते
न पल बिछुड़े पिया हमसे, न हम बिछुड़े पियारे से,
उन्हीं से नेह लागी है, हमन को बेकरारी क्या
कबीरा इश्क का माता, दुई को दूर कर दिल से
जो चलना राह नाजुक है, हमन सिर बोझ भारी क्या

इसे एम.ए. गनी अपनी पुस्तक 'हिस्ट्री ऑफ़ द पार्शियन लैंग्वेज एट अ मुगल कोर्ट' में हिन्दी की पहली ग़ज़ल के रूप में स्वीकारते हैं। लेकिन ख़ुसरो, कबीर को हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में शामिल करना ही कुछ विद्वानों को मंजूर नहीं। हिन्दी के प्रसिद्ध ग़ज़लगो ज्ञान प्रकाश विवेक इस सन्दर्भ में लिखते हैं – "वस्तुतः हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा अमीर ख़ुसरो या कबीर में ढूँढना हिन्दी के ग़ज़ल विद्वानों की कोई ग्रन्थि प्रतीत होती है। वे हर हाल में यह सिद्ध करना चाहते हैं कि हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा, उर्दू ग़ज़ल की रिवायत से पहले की है। ... यदि हिन्दी ग़ज़ल की कोई परम्परा होती तो हिन्दी ग़ज़ल का पाँच सौ वर्षों का विकासक्रम स्पष्ट दिखाई देता, जिस प्रकार उर्दू ग़ज़ल में नज़र आता है। हिन्दी ग़ज़ल परम्परा बहुत बाद की है ..."

अमीर ख़ुसरो खड़ीबोली हिन्दी के आद्यकवि हैं अतः उनकी हिन्दी में लिखी ग़ज़ल को हिन्दी परम्परा का आरम्भ बिन्दु मानना जितना उचित है, उतना ही विचारणीय यह मुद्दा भी है कि वास्तव में यदि हिन्दी ग़ज़ल प्राणवान् थी तो भारतेन्दु युग तक उसकी परम्परा में निरन्तरता क्यों नहीं रही, बहरहाल, यह निश्चित है कि हिन्दी ग़ज़ल का शंखनाद अमीर ख़ुसरो और कबीर के द्वारा हो चुका है।

हिन्दी ग़ज़ल की परम्परा भारतेन्दु, निराला, हरिऔध, शमशेर, दुष्यन्त से आज तक अनवरत रूप से जारी है। भारतेन्दु के पिता गिरधरदास ने भी कुछ ग़ज़लें लिखीं जिन पर उर्दू ग़ज़लों का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने ग़ज़ल परम्परा को सही मायने में आगे बढ़ाया। उन्होंने 'रसा' और 'हरिश्चन्द्र' दो नामों के साथ ग़ज़लों का सृजन किया। 'तख़ल्लुस' के साथ ग़ज़ल लिखना, उनका ग़ज़ल के प्रति समर्पण दर्शाता है। प्रेमाभिव्यक्ति, ध्वन्यात्मक सौन्दर्य, लोच हर दृष्टि से भारतेन्दु की ग़ज़लें अद्वितीय कही जा सकती हैं –

दिल मेरा ले गया दग़ा करके
बेवफा हो गया वफा करके
वक्ते रूख़सत जो आये वली पर
खूब रोये गले लगा करके
दोस्तों, कौन मेरी तुरबत पर
रो रहा है रसा रसा करके

मक्ते में तख़ल्लुस का अप्रतिम प्रयोग कर भारतेन्दु ने उर्दू ग़ज़ल की-सी परिपक्व हिन्दी ग़ज़ल का निर्माण किया। उर्दू मुहावरे से हटकर विशुद्ध हिन्दी में भी उन्होंने ग़ज़लों का निर्माण किया है –

वंशी बजा के हमको बुलाना नहीं अच्छा
घर-बार को तो हमसे छुड़ाना नहीं अच्छा
मिल जायेंगे हम कुंज में मौका जो मिलेगा
गलियों में हमारे सदा आना नहीं अच्छा
'हरीचंद' तुम्हारे ही हैं हम सभी तरह से
यों अपने गुलामों को सताना नहीं अच्छा

इस ग़ज़ल में भारतेन्दु ने ग़ज़ल के हिन्दी मिज़ाज को परवान चढ़ाया है। हिन्दी ग़ज़ल की सृजनधर्मिता और उर्दू की खूबसूरती का सुन्दर समन्वय भारतेन्दु की ग़ज़लों में पाया जाता है।

भारतेन्दु के पश्चात् स्वामी रामतीर्थ ने आध्यात्मिक संवेदना से भरपूर ग़ज़लें लिखीं। उनकी ग़ज़लों में देशभक्ति के स्वर भी गूँजते हैं। भाव-वैविध्य से भरपूर स्वामी रामतीर्थ की ग़ज़लों को हिन्दी ग़ज़ल परम्परा का महत्त्वपूर्ण पड़ाव कहना होगा –

न है कुछ तमन्ना न कुछ जुस्तजू है
कि वहदत में साकी न सागर न बू है
मिली दिल की आँखें जमी मारफत की
जिधर देखता हूँ सनम रू-ब-रू है।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' की ग़ज़लें हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं –

तेरे इश्क में हमने दिल को जलाया
कसम सर की तेरे मजा कुछ न आया
नज़र खार की शक्ल आते हैं सब गुल
इन आँखों में जब से तू आकर समाया
तुझे शेख जिसने बनाया है मोमिन
हमें भी है हिन्दू उसी ने बनाया

इसी दौर में प्रतापनारायण मिश्र, गोपाललाल गुल, श्रीधर पाठक आदि कई कवि अप्रतिम ग़ज़लें रच रहे थे। लाला भगवान 'दीन' की ग़ज़लें इन दिनों खासी लोकप्रिय हो गई थीं –

तुमने पैरों में लगाई मेहंदी
मेरी आँखों में समाई मेहंदी
है हरी ऊपर मगर अंतस है लाल
है ये जादू की जगाई मेहंदी
चुनरी से है सवाई मेहंदी
'दीन' को इस हेतु भायी मेहंदी

प्रस्तुत ग़ज़ल में हिन्दी शब्दों के प्रयोग के साथ ग़ज़ल की रचना ग़ज़ल को सौन्दर्य प्रदान करती है। द्विवेदी युग में मैथिलीशरण गुप्त और अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने भी ग़ज़लें रचकर हिन्दी ग़ज़ल को पुष्ट किया।

छायावादी समय में निराला और प्रसाद ने एक से बढ़कर एक ग़ज़लें लिखीं। प्रसाद काफ़िया, रदीफ़, मतला और मक्ता की परिपाटी को निभाते हुए विशुद्ध हिन्दी शब्द प्रयोग के साथ ग़ज़ल लिखते हैं जो एक अद्‌भुत गंगा-जमनी संस्कृति का निर्माण करती हैं–

सरासर भूल करते हैं उन्हें जो प्यार करते हैं
बुराई कर रहे हैं और अस्वीकार करते हैं
उन्हें अवकाश ही कहाँ रहता है मुझसे मिलने का
किसी से पूछ लेते हैं यही उपकार करते हैं
न इतना फूलिए तरूवर, सुफल कोरी कली लेकर
बिना मकरंद के मधुकर नहीं गुंजार करते हैं
'प्रसाद' उनको न भूलो तुम तुम्हारा जो प्रेमी है
न सज्जन छोड़ते उसको जिसे स्वीकार करते हैं

निराला हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। निराला से पहले तक हिन्दी ग़ज़ल का मुख्य विषय बड़ा ही पारम्परिक रहा। प्रेम, विरह, शृंगार, समर्पण की कसकभरी अभिव्यक्ति हिन्दी ग़ज़ल में होती रही। निराला पहले ऐसे ग़ज़लकार कहे जा सकते हैं जिन्होंने ग़ज़लों की विषयवस्तु में आमूलचूल परिवर्तन किये। निराला ने ग़ज़लों की भाषा के साथ भी कई प्रयोग किये। उन्होंने पहली बार विशुद्ध हिन्दी शब्दों के प्रयोग का मोह त्याग दिया। चुन-चुनकर हिन्दी शब्दों का प्रयोग करने की अपेक्षा हिन्दी-उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी में ग़ज़लें लिखना निराला ने अधिक श्रेयस्कर समझा। निराला की ग़ज़ल संघर्ष और मानवीय संवेदनाओं को अधोरेखित करती रही –

आँख के आँसू न शोले बन गए तो क्या हुआ
काम के अवसर न गोले बन गए तो क्या हुआ
जान लेने को ज़मीं से आसमां जैसे बना

काठ के कोठे न पोले बन गए तो क्या हुआ
पेच खाते रह गए गैरों के हाथों आज तक
पेच में डाले न चोले बन गए तो क्या हुआ
नींद से जगकर बला की आफतों के सामने
जी से घबराए न तोले बन गए तो क्या हुआ
धार से निखरे हुए ऋतु के सुहाने बाग में
आम भरने के न झोले बन गए तो क्या हुआ

दुष्यन्त ने हिन्दी ग़ज़ल को जिस रूपाकार में ढाला, उसकी प्रेरणा उन्होंने निश्चित रूप से महाप्राण निराला से ही पायी।

हिन्दी ग़ज़ल के आगामी पड़ाव पर त्रिलोचन और शमशेर बहादुर सिंह का नाम प्रधानता के साथ लेना होगा। त्रिलोचन की ग़ज़लों में निजी दुःख-दर्द की अभिव्यक्ति विशेष रूप से मिलती है –

ये दिल क्या है देखा दिखाया हुआ है –
मगर दर्द कितना समाया हुआ है
मेरा दु :ख सुना चुप रहे फिर वो बोले
कि ये राग पहले से गाया हुआ है
यही दर्द था जिसने तुमसे मिलाया
ये यों ही नहीं जी को भाया हुआ है
त्रिलोचन सुनाओ हमें गान अपने
जहाँ दर्द जी का समाया हुआ है।

"मैं हिन्दी और उर्दू का दोआब हूँ, मैं वो आईना हूँ जिसमें आप हैं" कहते हुए हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में अविस्मरणीय योगदान देनेवाले शमशेर बहादुर सिंह को हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर कहना होगा। शमशेर ने 'शमशेरियत' के साथ ग़ज़लें रचीं।

वही उम्र का एक पल कोई लाए
तड़पती हुई-सी ग़ज़ल कोई लाए
हक़ीकत को लाए तख़ैयुल से बाहर
मेरी मुश्किलों का जो हल कोई लाए

शमशेर की ग़ज़ल समझने के लिए उर्दू ग़ज़ल का जानकार होना अत्यावश्यक है। शमशेर की ग़ज़लों में रूमानियत भी है और समय से दो हाथ करने का भाव भी। हर तरह की संवेदना को समेटते शमशेर ने हिन्दी ग़ज़ल परम्परा को असीम संभावनाओं से परिपूर्ण बना दिया। दुष्यन्त का हिन्दी ग़ज़ल परम्परा में अविर्भाव इसी पृष्ठभूमि पर हुआ। दुष्यन्त तक आते-आते हिन्दी ग़ज़ल को अपनी राह मिल गई थी। दुष्यन्त ने हिन्दी ग़ज़ल परम्परा को एक अवर्णनीय ऊँचाई प्रदान की।

5.4.05. प्रमुख ग़ज़लकार

विगत पचास वर्षों में हिन्दी ग़ज़ल अविश्वसनीय रीति से फलफूल चुकी है। उर्दू की प्रेम और शृंगार, हुस्न-ओ-शबाब, रुख़ ओ ज़ुल्फ़ में गिरफ्त ग़ज़ल को हिन्दी में अत्यधिक विस्तार मिला है। हिन्दी ग़ज़ल अपने सौन्दर्य को किंचित भी घटाये बिना चिन्तन प्रधानता के साथ आगे बढ़ रही है। समाज, राजनीति, धर्म, अध्यात्म कोई क्षेत्र ऐसा नहीं जिसमें हिन्दी ग़ज़ल ने सार्थक हस्तक्षेप नहीं किया। हिन्दी ग़ज़ल को इस ऊँचाई तक पहुँचाने का श्रेय निःसन्देह हिन्दी के उन श्रेष्ठ ग़ज़लकारों को जाता है जिनकी लेखनी पारम्परिक विषयों के दायरों को तोड़कर जनाभिमुख लेखन में विश्वास करती है। हिन्दी ग़ज़ल को पूरी तरह समझने के लिए इन ग़ज़लकारों का परिचय पाना अत्यावश्यक है।

5.4.05.01. दुष्यन्त कुमार

आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल के प्रमुख ग़ज़लकारों की चर्चा करते समय पहला नाम अनिवार्यतः दुष्यन्त कुमार का आता है। दुष्यन्त ने 'साये में धूप' से हिन्दी ग़ज़ल क्षेत्र में पदार्पण किया। शमशेर की परम्परा का अनुपालन करते हुए वे ग़ज़लों में समकालीन समाज, राजनीति, धर्म-व्यवस्था, अर्थ-व्यवस्था को लेकर जगह-जगह टिप्पणियाँ करते हैं। साथ ही, बेपनाह आत्माभिमान उनकी ग़ज़लों में पाया जाता है। प्रेम और समर्पण में डूबी उर्दू ग़ज़ल की प्रवृत्तियों के ठीक विपरीत जाकर दुष्यन्त की ग़ज़लें अपने अस्तित्व के प्रति सजग नज़र आती हैं।

भूख है तो सब्र कर, रोटी नहीं तो क्या हुआ,
आजकल दिल्ली में है ज़ेरे बहस ये मुद्दआ

जैसी राजनैतिक टिप्पणी हो या

तुम को निहारता हूँ सुबह से ऋतंबरा
अब शाम हो रही है मगर मन नहीं भरा

जैसी कोमल कहन हो, दुष्यन्त हर तरह से ग़ज़ब के शायर सिद्ध होते हैं। ग़ज़ल उनके लिए नैतिक दायित्व रहा –

मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ
हर ग़ज़ल अब सल्तनत के नाम एक बयान है।

दुष्यन्त ने हिन्दी ग़ज़ल का रूपाकार बदल डाला। ग़ज़ल विधा हिन्दी में किस रंगरूप में हो, इसे दुष्यन्त की शायरी ने तय किया। ग़ज़ल विधा को लेकर दुष्यन्त के विचारों ने हिन्दी ग़ज़ल को कई मायने में दिग्दर्शन कराया। अपनी ग़ज़ल-भाषा को लेकर दुष्यन्त ने जो कहा, हिन्दी ग़ज़ल का संविधान बन गया – "कुछ उर्दू-दाँ दोस्तों ने कुछ उर्दू शब्दों के प्रयोग पर एतराज किया है। उनका कहना है कि शब्द 'शहर' नहीं 'शह्र' होता है,

'वजन' नहीं 'वज़्न' होता है ... इन शब्दों का प्रयोग यहाँ अज्ञानतावश नहीं, जानबूझकर किया गया है। यह कोई मुश्किल काम न था कि 'शहर' की जगह 'नगर' लिखकर इस दोष से मुक्ति पा लूँ किन्तु मैंने उर्दू शब्दों को उस रूप में इस्तेमाल किया है, जिस रूप में वे हिन्दी में घुलमिल गए हैं ... उर्दू और हिन्दी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर जब आम आदमी के पास आती हैं तो उनमें फ़र्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है। मेरी नीयत और कोशिश यह रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज्यादा से ज्यादा करीब ला सकूँ। इसलिए ये ग़ज़लें उस भाषा में कही गई हैं, जिसे मैं बोलता हूँ।"

आज हिन्दी ग़ज़ल जिस स्वरूप में लहलहाती नज़र आती है, उस स्वरूप को दुष्यन्त ने निर्धारित किया है, इसमें कोई दो राय नहीं।

5.4.05.02. बलवीर सिंह 'रंग'

आधुनिक हिन्दी ग़ज़ल की बात करें तो बलवीर सिंह 'रंग' एक महत्त्वपूर्ण नाम है जैसा कि शेरजंग गर्ग कहते हैं – "आधुनिक युग में हिन्दी ग़ज़ल को सर्वाधिक लोकप्रियता प्रदान करने की शुरुआत की बलवीर सिंह 'रंग' ने।" सचमुच 'रंग' ने हिन्दी ग़ज़ल को नया रंग प्रदान किया। नया रंग प्रदान किया। उर्दू ग़ज़ल के पारम्परिक सौष्ठव को उन्होंने बखूबी निभाया –

आबोदाना रहे, रहे, न रहे,
चहचहाना रहे, रहे, न रहे,
हमने गुलशन की खैर माँगी है,
आशियाना रहे, रहे, न रहे

यही फक्कड़पन 'रंग' के स्वभाव में भी था सो अपनी रचनाओं के प्रति जतन का भाव उन्होंने कभी न निभाया। अतः उनकी बहुत ही कम ग़ज़लें बचीं और प्रकाश में आ पायीं। उर्दू ग़ज़ल से पायी प्रेम और समर्पण की विरासत उन्होंने हिन्दी लहजे में निभायी। उनकी ग़ज़लों ने हिन्दी ग़ज़ल को खूब सम्पन्न बनाया।

5.4.05.03. चन्द्रसेन 'विराट'

चन्द्रसेन 'विराट' हिन्दी ग़ज़ल के क्षितिज पर उभरे ऐसे सितारे थे जिन्होंने दुष्यन्त की ग़ज़ल-परम्परा को अधिक सार्थकता के साथ आगे बढ़ाया। उन्होंने ग़ज़लों से उर्दूपन को हटाकर अधिकाधिक शब्दों का प्रयोग करती हुई ग़ज़लें लिखीं। सामान्य मनुष्य जिन समस्याओं से दो हाथ करते हुए जीवन जीता है, उन समस्याओं का, उस जीवन-शैली का चित्रण 'विराट' की ग़ज़लों का मुख्य कथ्य रहा। मानवीय सम्बन्धों में शामिल अविश्वास, तनाव का उन्होंने अत्यधिक सटीक चित्रण किया। प्रेम, सौन्दर्य और शृंगार को उनकी ग़ज़लों में विशेष स्थान नहीं था।

चाँद को देखो तो, रोटी की याद जाग उठी।
पेट की भूख से राहत मिले तो प्यार करूँ।

अपनी विशाल ग़ज़ल सम्पदा पर 'विराट' को गर्व रहा। इसीलिए हिन्दी ग़ज़ल के सहृदय पाठकों को उन्होंने कह रखा – "हिन्दी ग़ज़ल की बात चली तो तुम्हें विराट उद्धृत करेंगे लोग, मिसालों के नाम पर।" विराट की ग़ज़लें हिन्दी ग़ज़लों में बड़ा अहम स्थान रखती हैं। राजनीति का विडम्बनाएँ, मानवीय मूल्यों का क्षरण, इंसानियत का लुप्तप्राय हो जाना जैसी समस्याओं और इसके लिए उत्तरदायी सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तत्त्वों की वे कड़ी पड़ताल करते हैं –

धुँध का वातावरण है इन दिनों
कैद कुहरे में किरण है इन दिनों
कुर्सियों पर है सिफ़ारिश मूढ़तम
और प्रतिभा को ग्रहण है इन दिनों
एक भी मानक अखण्डित है नहीं
मूल्यों पर आक्रमण है इन दिनों

महानगरीय बोध, आतंकवाद सभी में पाँव पसारती अवसरपरस्ती की जितनी सटीक चर्चा 'विराट' की ग़ज़लों में मिलती है, उतनी ही सहजता वे आज नितान्त शारीरीय और भोगवादी बन चुके प्रेम की चर्चा भी करते हैं। यह 'विराट' की लेखनी का कमाल है कि उर्दू ग़ज़लों में छाया प्रेम अपने आदर्शात्मक प्रेम को त्यागकर वास्तविकता का दर्पण दिखाने लगा –

प्राण को प्राण कहाँ मिलता है
स्नेह का दान कहाँ मिलता है
हृदय मिल जाए बहुत संभव है
हृदय में स्थान कहाँ मिलता है
ओढ़ लेते हैं वासना तन पर
प्रेम परिधान कहाँ मिलता है

अपने परिवेश से असंतुष्ट 'विराट' ने बहुत ही उम्दा तरीके से समकालीन वातावरण चित्रित किया है और यह हिन्दी ग़ज़ल की महत्त्वपूर्ण पूँजी है।

5.4.05.04. गोपालदास सक्सेना 'नीरज'

गोपालदास सक्सेना 'नीरज' हिन्दी कविता के लोकप्रिय हस्ताक्षर हैं। उन्हें काव्य-लेखन की प्रेरणा हरिवंशराय बच्चन के 'निशा निमन्त्रण' से मिली। मूलरूप से नीरज एक गीतकार हैं किन्तु उन्होंने कुछ बेहतरीन ग़ज़लों का सृजन किया। ग़ज़लों को वे 'गीतिकाएँ' कहते हैं। उनकी ग़ज़लें अर्थात् गीतिकाएँ ग़ज़ल और गीत का

ख़ूबसूरत मिश्रण हैं। देश की आर्थिक विषमता, सर्वसामान्य जन के दुःख-दर्द, मानवीय संवेदनाएँ, प्रेम, सद्भाव नीरज की लेखनी के मुख्य विषय रहे।

साम्प्रदायिक सद्भाव उनकी ग़ज़लों में अत्यधिक सुन्दरता से व्यक्त हुआ –

काश ऐसी भी मोहब्बत हो कभी इस देश में
मेरे घर उपवास हो जब तेरे घर रमजान हो
मजहबी झगड़े ये अपने आप सब मिट जायेंगे
और कुछ होकर न गर इन्सान बस इन्सान हो।

जीवन की विषमताओं के साथ जीने का दर्द उनकी ग़ज़लों में खूब व्यक्त हुआ –

ज़िंदगी से निबाह करना पड़ा
इसलिए ही गुनाह करना पड़ा
वक्त ऐसा भी हम पे गुजरा जब
आह भर भरके वाह करना पड़ा

हिन्दी ग़ज़ल में नीरज का योगदान अल्प किन्तु अहम है।

5.4.05.05. रामवतार त्यागी

रामवतार त्यागी हिन्दी के महत्त्वपूर्ण ग़ज़लगो हैं। उन्होंने भी विराट् की भाँति समकालीन परिवेश के प्रति असन्तोष जताया है। वे पीड़ा को अपनी अभिव्यक्ति में विशेष महत्त्व देते हैं। आँखों की नमी के लिए कारणभूत तत्त्वों पर भी वे खूब लिखते हैं।

रोशनी तो चाहिए पर लौ ज़रा मद्धम रखो
चाहिए मुझसे ग़ज़ल तो आँख मेरी नम रखो

5.4.05.06. बालस्वरूप राही

बालस्वरूप राही भी त्यागीजी की तरह लुप्तप्राय इंसानियत और मूल्य-क्षरण की चर्चा करते हैं। वैज्ञानिक उन्नति ने हमें उच्चतम तकनीकी साधनों से सम्पन्न बना दिया लेकिन इन साधनों ने हमारी भावनाएँ-संवेदनाएँ हमसे छीन ली हैं, इस पर गहरा दुःख राही की ग़ज़लों में व्यक्त हुआ है –

हर तरफ एक ही आवाज़ है मारो-मारो,
ऐसा बेखौफ़ कोई कब से हुआ है यारो।
जिसको पढ़कर ये लगे, लोग अभी ज़िंदा है
कोई तो ऐसी खबर लाओ कभी अख़बारों

5.4.05.07. डॉ॰ कुँअर बेचैन

हिन्दी ग़ज़ल के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर डॉ॰ कुँअर बेचैन के अब तक बारह से अधिक ग़ज़ल-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। प्रेम में बहाये जानेवाले आँसुओं की बजाय बेचैन की ग़ज़लें पेट की आग से उपजी बेबसी का अधिक जीवन्त वर्णन करती हैं। मनुष्यता को कलंकित करने वाली वर्तमान समस्याओं का चित्रण करना उनकी लेखनी ने अपना धर्म समझा। मूलतः कुँअर बेचैन नवगीत के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उन्होंने जब ग़ज़ल विधा में अभिव्यक्त होना आरम्भ किया तो उर्दू ग़ज़ल की विशेषताओं को यथावत रखते हुए उसमें हिन्दी ग़ज़ल की अपनी विशेषताएँ मिलाकर एक अद्‌भुत आकर्षक ग़ज़ल समीकरण निर्मित किया। बदलते हुए समय में क्षरण होते मूल्य, स्वार्थपरकता, स्वार्थपूर्ति हेतु फिसलन भरी राह पर चल पड़ी मनुष्यता उनकी ग़ज़लों का मुख्य कथ्य रहा –

जब मेरे घर के पास में कोई नगर न था
कुछ भी था, जंगलों की तरह का सफर न था
जंगलों में मगर राह में लुटने का डर न था।
जंगलों की तरह का सफर न था
सूरत में आदमी की कोई जानवर न था

आर्थिक विषमता भारतीय समाज को त्रस्त करता भीषण रोग है। यहाँ एक वर्ग के पास सात पुश्तों के बाद भी बची रहेगी, इतनी सम्पत्ति है और एक वर्ग दो जून रोटी के लिए भी तड़प रहा है। इस दूसरे वर्ग की संघर्ष-गाथा को कुँअर बेचैन अभिव्यक्त करते हैं –

गर्दन है अगर हम तो वो आरी की तरह है
सीने में अब तो दिल भी कटारी की तरह है
ये रात और दिन तो सरौते की तरह है
इन्सान की औकात सुपारी की तरह है
यह हमको नचाता है, इशारों पे रात दिन
यारों हमारा पेट मदारी की तरह है

कुँअर बेचैन की ग़ज़लों को लेकर बशीर बद्र कहते हैं – "कुँअर बेचैन की ग़ज़लें हिन्दी ग़ज़ल में ही नहीं, बल्कि पूरे ग़ज़ल साहित्य में एक इज़ाफ़ा है।" बेचैन की प्रत्येक ग़ज़ल बशीर बद्र के कथन को सत्य प्रमाणित करती है।

5.4.05.08. शेरजंग गर्ग

शेरजंग गर्ग हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में प्रसिद्ध ग़ज़लकार, ग़ज़ल समीक्षक और हिन्दी ग़ज़लकारों के संकलक के रूप में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। अधिकांश हिन्दी ग़ज़लकारों की भाँति शेरजंग गर्ग समकालीन

राजनीति, राजनीति की विडम्बनाएँ, भ्रष्टाचार, रिश्तों में पैठता ठण्डापन जैसे कई मुद्दों को अपनी लेखनी का विषय बनाते हैं –

सज्जनों को सज़ा अब तो हद हो गई
भ्रष्टता में मज़ा अब तो हद हो गई
रो रही है वफ़ा अब तो हद हो गई
लापता है हया अब तो हद हो गई

5.4.05.09. ज़हीर कुरैशी

हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में ज़हीर कुरैशी का नाम विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। विगत चार दशकों से वे हिन्दी ग़ज़ल लेखन में सक्रिय हैं। ज़हीर जनवादी लेखक संघ से संलग्न ग़ज़लकार हैं। इस एक बात से उनकी लेखकीय प्रतिबद्धता का अनुमान लगाया जा सकता है। हिन्दी ग़ज़ल के सन्दर्भ में उन्होंने कहा है – "हिन्दी ग़ज़ल आज की ... यानी विचार युग की ग़ज़ल है। वह कोठों पर गायी जाने वाली संगीत-उन्मुख ग़ज़ल नहीं, बल्कि खेतों, दफ्तरों, कारखानों में काम करते 'रफ-टफ' लोगों की भावनाओं की निर्मल अभिव्यक्ति है। इसलिए रदीफ़, काफ़िया, अरूज का पालन करते हुए भी हिन्दी ग़ज़ल अपने बर्ताव ... अपने भाव-भंगिमा के आधार पर उर्दू ग़ज़ल से एकदम करते हैं।" ज़हीर ने महानगरीय जीवन की सभ्यता का खोखलापन, पर्यावरण के प्रति लापरवाही, भूख के कारण समाप्तप्राय सामान्य आदमी जैसे विषयों के साथ-साथ मूल्य-ह्रास की समस्या का बेबाक चित्रण किया। वे कभी –

शहर में हर कहीं मेला दिखाई देता है
हरेक, फिर भी, अकेला दिखाई देता है।

कहकर तो कभी –

पीठ पीछे से हुए वार से डर लगता है
मुझ को हर दोस्त से, हर यार से डर लगता है।

कहकर वर्तमान जीवन में व्याप्त अविश्वसनीयता को अभिव्यक्त करते हैं।

ज़हीर ने स्त्री-जीवन की विडम्बना को व्यक्त करने में कोई कसर बाकी नहीं रखी। समय बदला, स्त्री की स्थिति न बदली बल्कि आधुनिक जीवन में स्त्री-समस्याओं ने अधिक विकराल रूप धारण किया है, इस बात को वे सक्षमता से अधोरेखित करते हैं –

लिंग निर्धारण समस्या हो गई
कोख में ही कत्ल कन्या हो गई

कहकर स्त्री से छीना जा रहा जीवन व्यक्त करते हैं। पर्यावरण चिन्ता पर वे ऐसी टिप्पणियाँ करते हैं –

सर्प रक्षा न कर पाए पेड़ की
बाहु-बलशाली ही चंदन ले गए।

'इकोनामी ऑफ़ वर्ड्स' और 'डेंसिटी ऑफ़ पोएट्री' जैसी विशेषताओं के कारण ग़ज़ल विधा चुनने वाले ज़हीर ग़ज़लों के साथ अपने रिश्ते को अभिव्यक्त करते हुए अपने ग़ज़ल-संग्रह 'एक टुकड़ा धूप' के फ्लैप पर लिखते हैं – "कविता मेरे लिए न तो बुद्धि विलास का साधन रही और न ही कविता को मैंने पेट भरने का काम सौंपा है। ये दोनों स्थितियाँ कवि को कविता के प्रति ईमानदार नहीं रहने दे सकतीं। कविता मेरी उस तिलमिलाहट की अभिव्यक्ति है, जो वर्तमान जीवन परिवेश में बिखरी हुई विसंगतियों तथा विद्रूपताओं के कारण मुझमें बूँद-बूँद जमा होती रहती है। ऐसे ही जीवन्त क्षणों का स्पन्दन ये मेरी ग़ज़लें हैं।" यही कारण है कि वे अपने अक्षर-अक्षर को लेकर आश्वस्त हैं –

किस्से नहीं हैं ये किसी विरहन की पीर के
ये शेर हैं – अंधेरों से लड़ते 'ज़हीर' के

5.4.05.10. अदम गोंडवी

अदम गोंडवी हिन्दी ग़ज़ल का अजरामर नाम है। दुष्यन्त की ग़ज़ल परम्परा को आगे बढ़ाने वाले ग़ज़लकारों में पहला नाम अदम गोंडवी का ही है। भारतीय राजनीति को लेकर उन्होंने इतनी बेबाक टिप्पणियाँ की हैं कि अदम देखते ही देखते एक राजनैतिक शायर के रूप में उभरे। वे भारत की गन्दी राजनीति, भ्रष्टाचार, लालफीताशाही, संसद की विडम्बनाएँ, आर्थिक विषमता, सामाजिक विसंगतियाँ जैसे विषयों पर लेखनी चलाते रहे –

काजू भुने प्लेट में व्हिस्की गिलास में
उतरा है रामराज विधायक निवास में
पक्के समाजवादी हैं तस्कर हों या डकैत
इतना असर है खादी के उजले लिबास में

गरीबी, भुखमरी में जीती भारतीय सामान्य जन की व्यथा-मनोदशा को अदम अत्यधिक मार्मिकता के साथ व्यक्त करते हैं –

आप कहते हैं सरापा गुलमुहर है ज़िंदगी
हम गरीबों की नज़र में इक कहर है ज़िंदगी
भुखमरी की धूप में कुम्हला गई अस्मत की बेल
मौत के लम्हात में भी तल्खतर है ज़िंदगी

अदम गोंडवी एक अल्पशिक्षित शायर थे। उन्हें किताबों से ज्यादा शिक्षा जीवन ने दी, सो किताबी शिक्षा की दृष्टि से कुछ कमियाँ उनकी ग़ज़लों में पायी जाती हैं। आलोचक कहते हैं कि अदम गोंडवी की ग़ज़लों की भाषा एवं शिल्प पक्ष में कई कमियाँ हैं। जैसे, वे बहर का योग्य ध्यान नहीं रख पाते हैं आदि-आदि। इस सन्दर्भ में प्रसिद्ध ग़ज़लकार एवं ग़ज़लों के आलोचक ज्ञान प्रकाश विवेक कहते हैं – "... और शब्दावली एकदम मुँहफट। इसके बावजूद यह शब्दावली अखरती नहीं। ग़ज़ल की न होने के बावजूद ग़ज़ल की लगती है। अदम गोंडवी ग़ज़ल को 'देसी' बना देते हैं। गँवारू नहीं।"

सही है, ग़ज़ल को ठेठ देसी आयाम प्रदान करने वाले यथार्थवादी ग़ज़लकार की बाइस वर्षों की ग़ज़ल यात्रा अत्यधिक संस्मरणीय है।

5.4.05.11. ज्ञान प्रकाश विवेक

ज्ञान प्रकाश विवेक हिन्दी ग़ज़ल का महत्त्वपूर्ण नाम है। वस्तुतः शायरी विवेक को अपने पिता से विरासत में मिली किन्तु पिता की पारम्परिक शायरी की बजाय उन्होंने प्रगतिशील लेखन चुना। ज्ञान प्रकाश विवेक ने विस्थापन की पीड़ा, विभाजन की त्रासदी को झेला था अतः वह तल्खी उनके लेखन में स्वाभाविक रूप से उतरी है –

हर खुशी में छुपा हुआ गम था
हँसने वाला भी चश्में-पुरनम था
मील-ही-मील साथ चलता रहा
दर्द ही था जो मेरा हमदम था

दर्द के साथ इस नाते को निभाते-निभाते विवेक देश की विषमताओं और विसंगतियों पर भी कड़ी टिप्पणियाँ करते हैं –

उस भूखे आदमी का तब दर्द मैंने जाना
जब गोल चाँद को भी रोटी-सा उसने माना

5.4.05.12. जावेद अख़्तर

जावेद अख़्तर हिन्दी और उर्दू ग़ज़ल की सीमारेखा पर लेखनरत शायर हैं। उनकी ग़ज़लों में मानवीय संवेदनाएँ, साम्प्रदायिक सद्भाव की चर्चा बार-बार आती है। शायरी का गुण उन्हें अपने प्रगतिशील पिता से प्राप्त हुआ। माँ के अत्यधिक करीब जावेद अख़्तर माँ की मृत्यु और पिता के दूसरे निकाह के बाद बिल्कुल अकेले हो गए। यह अकेलापन उनकी शायरी में सर्वत्र छाया हुआ है। जैसा कि कुर्रतुल ऐन हैदर कहती हैं – "ताज़गी, गहराई और विविधता, भावनाओं की ईमानदारी और ज़िंदगी में नये भावों की तलाश उनकी शायरी की विशेषताएँ हैं।"

हम तो बचपन में भी अकेले थे
सिर्फ़ दिल की गली में खेले थे
इक तरफ मोर्चे थे पलकों के
इक तरफ आँसुओं के रेले थे

या फिर

अपनी महबूबा में अपनी माँ देखे
बिना माँ के लड़कों की फितरत होती है

जैसे भावुक शेर हो या 'साजो सामान से भरे घर' के मुकाबले वह घर 'जिसमें बूढ़ी नानी रहती थीं' का दिल के करीब होना हो या फिर 'कत्थई आँखों वाली लड़की' की अठखेलियों का वर्णन हो जावेद अख़्तर ने खूब डूबकर लिखा और हिन्दी ग़ज़ल को नितान्त सुन्दर मनोवैज्ञानिक आयाम प्रदान किया।

5.4.05.13. निदा फाजली

निदा फाजली का नाम ग़ज़ल का बेहद सशक्त नाम है। वे उर्दू ग़ज़ल के दमदार शायर हैं। उर्दू ग़ज़ल को उन्होंने अनेक नये आयाम प्रदान किये। उन्होंने देशविभाजन, धार्मिक उन्माद, विस्थापन जैसे दंश सहे। अपनी सारी पीड़ा को वे शायरी में उंडेलते रहे। 'आँखों भर आकाश' निदा फाजली का देवनागरी में लिखा ग़ज़ल-गीत संकलन है। इसमें विशुद्ध हिन्दी में लिखी ग़ज़लों ने हिन्दी ग़ज़ल को एक नयी ताज़गी प्रदान की –

छोटा करके देखिए जीवन का विस्तार
आँखों भर आकाश है मुट्ठी भर संसार

जैसे शेरों ने हिन्दी ग़ज़ल-विश्व को समृद्ध बनाया।

5.4.05.14. मुनव्वर राना

मुनव्वर राना भी उर्दू के साथ-साथ हिन्दी में खूब लिखते हैं। भावनाओं से ओतप्रोत उनकी ग़ज़लें विशेष रूप से माँ को केन्द्र में रखकर लिखी हुई हैं। महबूबा का हुस्नो शबाब, रूख-रूखसार का चित्रण करने की अपेक्षा माँ के चित्रण में वे अधिक रमे हैं। उनकी शायरी पर कई बार 'इमोशनल ब्लैकमेलिंग' का आरोप लगाया जाता है। इस सन्दर्भ में वे कहते हैं – "मेरी शायरी पर मुद्दतों, बल्कि अब तक ज्यादा पढ़े लिखे लोग 'इमोशनल ब्लैकमेलिंग' का इल्जाम लगाते रहे हैं। शब्दकोशों के मुताबिक ग़ज़ल का मतलब महबूब से बातें करना है। अगर इसे सच मान लिया जाए तो फिर महबूब 'माँ' क्यों नहीं हो सकती ... अगर मेरे शेर इमोशनल ब्लैकमेलिंग है तो श्रवणकुमार की फरमां-बरदारी को ये नाम क्यों नहीं दिया गया" वे अपने भावनाप्रधान लेखन में तन्मयता से डूबे रहे –

ज़रा-सी बात है लेकिन हवा को कौन समझाए
दिए से मेरी माँ मेरे लिए काजल बनाती है।

'ग़ज़ल गाँव', 'पीपल छाँव', 'सब उसके लिए', 'नीम के फूल', 'माँ' आदि कई संकलनों में प्रकाशित उनकी ग़ज़लें हिन्दी ग़ज़ल साहित्य को समृद्ध बना रही हैं।

5.4.05.15. गुलज़ार

गुलज़ार हिन्दी और उर्दू की सीमारेखा पर खड़े एक ऐसे ग़ज़लकार हैं जिनका हिन्दी और उर्दू ग़ज़लों को समान योगदान रहा है। जैसा कि यतीन्द्र मिश्र कहते हैं – "उनकी कविता, जो हिन्दी की ज़मीन से निकलकर दूर आसमान तक उर्दू की पतंग बनकर उड़ती है ... ।" उनके द्वारा किये गए बिम्ब-प्रयोग अपने आप में अनोखे हैं। प्राकृतिक, साहित्यिक, आध्यात्मिक बिम्बों का प्रयोग कर वे अपनी ग़ज़लों को उच्चाकाश तक ले जाते हैं। विभाजन की त्रासदी झेल चुका यह शायर नितान्त कोमल मानसिकता का धनी है। अतः उनकी शायरी में कोमलता, रिश्तों का व्याकरण, सूफ़ियाना ढंग, प्रेम, पीड़ा आदि कई भाव कुलाँचे भरते हैं –

जब भी ये दिल उदास होता है
जाने कौन आसपास होता है

जैसे शेर हों या

ज़िंदगी यूँ हुई बसर तन्हा
काफिला साथ और सफर तन्हा

जैसे शेर हों, उनका भावनाप्रधान वीतराग बराबर झलकता है। शब्दों की कारीगिरी गुलजार की ग़ज़लों की विशेषता है –

हाथ छूटें भी तो रिश्ते नहीं छोड़ा करते
वक्त की शाख़ से लम्हे नहीं तोड़ा करते

जैसे नाजुक शब्द प्रयोग गुलजार ही कर सकते हैं। सहज सरल हिन्दुस्तानी बानी में लिखने वाले गुलजार हिन्दी ग़ज़ल साहित्य को समृद्ध बना रहे हैं।

हिन्दी ग़ज़ल को समृद्धि के इस पड़ाव पहुँचाने में शेरजंग गर्ग, राजेश रेड्डी, गिरिराज शरण अग्रवाल, हनुमंत नायडू, वेद प्रकाश अमिताभ, अनिल गहिलौत, राधेश्याम शुक्ल जैसे कई-कई ग़ज़लकारों का अत्यधिक योगदान है। इन्हीं ग़ज़लकारों की लेखनी के कारण आज हिन्दी ग़ज़ल साहित्य-विश्व का सूर्य बन चुकी है।

5.4.06. पाठ-सार

ग़ज़ल समकालीन हिन्दी कविता का सर्वाधिक लोकप्रिय काव्य रूप है। उर्दू से अलग अपना अस्तित्व निर्माण करते समय हिन्दी ग़ज़ल ने अपने मिज़ाज में संरचना और संवेदना के स्तर पर कई बदलाव किये हैं। उर्दू ग़ज़ल के विषय हिन्दी में आते-आते बिल्कुल बदल गए। उर्दू ग़ज़ल के प्रेम-विरह के रूमानियत के ठीक विपरीत हिन्दी ग़ज़ल का स्वभाव ठेठ यथार्थवादी है।

भाषा के स्तर पर भी भाषा, शब्द से लेकर मुहावरों-कहावतों तक और बिम्ब-प्रतीकों से लेकर छन्दालंकारों तक हिन्दी ग़ज़ल का मिज़ाज उर्दू से नितान्त भिन्न रूप में उभरता है। उसके भाषिक वैशिष्ट्यों की चर्चा द्वितीय मुद्दे के अन्तर्गत की गई है। हिन्दी ग़ज़ल की भाषागत विशेषताओं की चर्चा करते समय कई नये मुद्दे उभर आये हैं।

हिन्दी ग़ज़ल परम्परा की चर्चा करते समय उसके उद्‌भव को लेकर प्रचलित विविध मतधाराओं पर विचार किया गया है। साथ ही प्रमुख हिन्दी ग़ज़लकारों की जानकारी प्राप्त करते समय उर्दू और हिन्दी दोनों में लिख रहे ग़ज़लकारों को पाठ की परिधि में समाविष्ट किया गया है। इस सन्दर्भ में उर्दू ग़ज़लकारों का समावेश चौंका सकता है किन्तु वर्तमान में संस्कृतनिष्ठ हिन्दी शब्दावली का प्रयोग करते हुए देवनागरी लिपि में लिखने वाले, हिन्दी-उर्दू के दोआब पर खड़े ग़ज़लकारों को टालना उन पर अन्याय होता। इस क्रम में कई महत्त्वपूर्ण ग़ज़लकार स्थानाभाव के कारण छूटे भी होंगे किन्तु अधिकतर ग़ज़लकारों का समावेश करने का प्रयास किया गया है। संक्षेप में हिन्दी ग़ज़ल की साररूप जानकारी प्रस्तुत पाठ से प्राप्त होगी।

5.4.07. बोध प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों में दिए गए विकल्पों में से सही विकल्प का चयन कीजिए –

01. 'ग़ज़ल' शब्द का सम्बन्ध मूलतः किस भाषा से है ?
    - (क) हिन्दी
    - (ख) अरबी
    - (ग) उर्दू
    - (घ) फारसी

02. 'हिस्ट्री ऑफ़ द पर्शियन लैंग्वेज एट अ मुगल कोर्ट' के रचनाकार का नाम बताइए।
    - (क) एम.ए. गनी
    - (ख) नित्यानन्द श्रीवास्तव
    - (ग) दुष्यन्त कुमार
    - (घ) अदम गोंडवी

03. 'मुझमें रहते हैं करोड़ों लोग चुप कैसे रहूँ' यह पंक्ति किस ग़ज़लकार की है ?

(क) चन्द्रसेन

(ख) गोपाल लाल गुल

(ग) शमशेर बहादुर सिंह

(घ) दुष्यन्त कुमार

04. 'ग़ज़ल' को 'असम्बद्ध कविता' की संज्ञा किसने दी?

(क) गोपालदास नीरज

(ख) डॉ॰ वज़ीर आगा

(ग) फिराक गोरखपुरी

(घ) जावेद अख़्तर

05. निदा फाज़ली द्वारा देवनागरी में लिखित ग़ज़ल गीत संकलन का नाम बताइए।

(क) आँखों भर आकाश

(ख) नीम के फूल

(ग) माँ

(घ) पीपल छाँव

06. 'साये में धूप' इस रचना से हिन्दी ग़ज़ल के क्षेत्र में पदार्पण करने वाले रचनाकार का नाम बताइये।

(क) श्रीधर पाठक

(ख) दुष्यन्त कुमार

(ग) गोपालदास 'नीरज'

(घ) हनुमंत नायडू

07. हिन्दी-उर्दू मिश्रित हिन्दुस्तानी में ग़ज़लें लिखना किस रचनाकार ने अधिक श्रेयस्कर समझा ?

(क) प्रसाद

(ख) श्रीधर पाठक

(ग) भारतेन्दु

(घ) निराला

08. 'एक टुकडा धूप' इस ग़ज़ल संग्रह के रचनाकार का नाम बताइए।

(क) रामवतार त्यागी

(ख) डॉ॰ कुँवर बेचैन

(ग) ज़हीर कुरैशी
(घ) ज्ञानप्रकाश विवेक

09. ग़ज़लकार बलवीर सिंह ने किस उपनाम से ग़ज़लें लिखीं ?
(क) विराट
(ख) रंग
(ग) रसा
(घ) नीरज

10. 'रसा' उपनाम से ग़ज़ल लिखने वाले रचनाकार का नाम बताइए।
(क) भारतेन्दु
(ख) अमीर ख़ुसरो
(ग) गिरधरदास
(घ) दुष्यन्त कुमार

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. 'ग़ज़ल' से तात्पर्य स्पष्ट करते हुए ग़ज़ल के स्वरूप पर प्रकाश डालिए।
2. गुलज़ार की रचनाधर्मिता पर टिप्पणी लिखिए।
3. "उर्दू ग़ज़ल की तुलना में हिन्दी ग़ज़ल में मानवीय संवेदनाओं की अभिव्यक्ति अधिक प्रखर रूप में हुई है।" समझाइए।
4. हिन्दी के प्रमुख ग़ज़लकारों पर प्रकाश डालिए।
5. 'हिन्दी ग़ज़ल परम्परा' विषय पर टिप्पणी लिखिए।

दीर्घोत्तरीय प्रश्न

1. "हिन्दी ग़ज़ल की सृजन धर्मिता और उर्दू की खूबसूरती का सुन्दर समन्वय भारतेन्दु की ग़ज़लों में पाया जाता है।" उक्त कथन की समीक्षा कीजिए।
2. हिन्दी ग़ज़ल की भाषिक विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
3. "हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के महत्त्वपूर्ण हस्ताक्षर दुष्यन्त कुमार ने हिन्दी ग़ज़ल परम्परा को एक अवर्णनीय ऊँचाई प्रदान की।" समझाइए।
4. 'हिन्दी ग़ज़ल का शिल्प पक्ष' विषय पर टिप्पणी लिखिए।
5. हिन्दी ग़ज़ल परम्परा के आरम्भ बिन्दु माने जाने वाले ग़ज़लकार अमीर ख़ुसरो की रचनाओं पर प्रकाश डालिए।

5.4.08. व्यवहार

1. हिन्दी एवं उर्दू की बहुचर्चित ग़ज़लों का अध्ययन कीजिए।
2. प्रसिद्ध ग़ज़लकारों की सूची बनाइए।
3. अपने क्षेत्र विशेष से सम्बन्धित किसी प्रसिद्ध ग़ज़लकार की ग़ज़लों का संकलन कीजिए।
4. भाषिक विशेषताओं को केन्द्र में रखते हुए हिन्दी एवं उर्दू की बहुचर्चित ग़ज़लों का अध्ययन कीजिए।
5. हिन्दी और उर्दू की ग़ज़लों का तुलनात्मक अध्ययनकीजिए।

5.4.09. कठिन शब्दावली

अदद	:	संख्या, गिनती
मक्ता	:	ग़ज़ल का अन्तिम शेर
मिज़ाज	:	स्वभाव, प्रकृति, प्रवृत्ति
काफ़िया	:	तुकान्त
तशरीह	:	व्याख्या
तखैयुल	:	कल्पना
जुस्तजू	:	अन्वेषण, खोज, तलाश
तख़ल्लुस	:	उपनाम, धारण किया हुआ नाम
हिज्र	:	विरह, वियोग
वस्ल	:	मिलन
इज़ाफा	:	वृद्धि
अश्आर	:	शेर
उम्दा	:	उत्तम, श्रेष्ठ
मतला	:	उदय, ग़ज़ल का पहला शेर
मिसरा	:	ग़ज़ल की पंक्ति, चरण

5.4.10. सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची

01. विवेक, ज्ञान प्रकाश, हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकुला से उद्धृत मौलाना शिबली का कथन, पृ. 02
02. आगा, डॉ॰ वजीर, उर्दू शायरी का मिज़ाज, जटवाडा प्रकाशन, दरियागंज, दिल्ली, पृ. 186
03. गोरखपुरी, फिराक, उर्दू कविता, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 11
04. वार्ताकार सुमत प्रकाश शौक द्वारा लिए गए फिराक गोरखपुरी के साक्षात्कार 'गुफ्तगू' से उद्धृत पृ. 19
05. अख़्तर, जावेद, तरकश, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
06. राना, मुनव्वर, माँ, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
07. धनतेजवी, ख़लील की ग़ज़ल

08. गोंडवी, अदम की ग़ज़ल, समय से मुठभेड़
09. अख़्तर, जावेद, तरकश, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली
10. गोंडवी, अदम की ग़ज़ल, समय से मुठभेड़
11. वही
12. रेड्डी, राजेश, आसमान से आगे
13. श्रीवास्तव, नित्यानन्द के 'अलाव' के मई-अगस्त, 2015 संयुक्तांक में 'हिन्दी ग़ज़ल : परम्परा और प्रयोग' शीर्षक से छपे लेख से उद्धृत, पृ. 273
14. विवेक, ज्ञान प्रकाश, हिन्दी ग़ज़ल की विकास यात्रा, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकुला, द्वि.सं. 2012, पृ. 45
15. कुमार, दुष्यन्त, भूमिका, साये में धूप, बीसवाँ सं. 2009, राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली
16. राना, मुनव्वर, माँ, सं. 2008, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, पृ. 12
17. त्रिपाठी, सूर्यकान्त 'निराला', बेला
18. कुरैशी, जहीर, समंदर ब्याहने आया नहीं है, सं. 1992, अयन प्रकाशन, दिल्ली
19. प्रतीक, पुरुषोत्तम, घर तलाश कर, पृ. 34
20. कुरैशी, जहीर, समंदर ब्याहने आया नहीं है, सं. 1992, अयन प्रकाशन, दिल्ली
21. बेचैन, डॉ॰ कुँवर, रस्सियाँ पानी की, पृ. 23
22. सिंह, बलवीर 'रंग', गन्ध रचती छन्द, पृ. 149

5.4.11. उपयोगी ग्रन्थ-सूची

1. गर्ग, शेरजंग (सं.), हिन्दी ग़ज़ल शतक, संस्करण 2006, किताबघर प्रकाशन
2. डॉ॰ नरेश, ग़ज़ल : शिल्प और संरचना, संस्करण 1992, हरियाणा ग्रन्थ अकादमी, पंचकुला
3. मुज़ावर, डॉ॰ सरदार, हिन्दी ग़ज़ल की भाषिक संरचना, संस्करण 2010, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली
4. खराटे, डॉ॰ मधु, हिन्दी ग़ज़ल के नवरत्न, संस्करण 2014, विद्या प्रकाशन, कानपुर
5. 'पथिक', डॉ॰ रामप्रकाश, हिन्दी ग़ज़ल का सौन्दर्यशास्त्र, संस्करण 2004, जवाहर पुस्तकालय, मथुरा
6. मुजीब, मुहम्मद, गालिब, संस्करण 1979, साहित्य अकादेमी, नयी दिल्ली

उपयोगी इंटरनेट स्रोत :

1. http://epgp.inflibnet.ac.in/ahl.php?csrno=18
2. http://www.hindisamay.com/
3. http://hindinest.com/

❖❖❖